विष्णु—पुराण

(द्वितीय खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित

●

सम्पादक—

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार।

●

प्रकाशक—

संस्कृति-संस्थान,

ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :
पं० श्रीरामशर्मा आचार्य





प्रथम संस्करण
१९६७ ई०

मुद्रक :
वृन्दावन शर्मा
जन-जागरण प्रेस,
मथुरा ।



मूल्य — सात रुपया।

दो शब्द

विष्णुपुराण के इस द्वितीय खण्ड में जिन विषयों का विवेचन किया गया है वह अनेक दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसके चतुर्थ अंश में जो सूर्य और चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन किया गया है वह संक्षिप्त होते हुये भी अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक क्रमबद्ध है और उसके पढ़ने से भारतवर्ष के इन दो प्रमुख शासक परिवारों के नरेशों का सामान्य परिचय अच्छी तरह मिल जाता है। यद्यपि पौराणिक वर्णनों में प्राचीन घटनाओं का जो समय दिया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें हजारों और लाखों की संख्या से कम की बात ही नहीं की गई है, तो भी भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की खोज करने वालों ने पुराणों की वंशावलियों का उपयोग किया है और अनेक पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में दी गई राजाओं की नामावलियों की तुलना करके उस अज्ञात काल की एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की है। ऐतिहासिक विद्वानों ने इस निगाह से 'विष्णुपुराण' को अधिक प्रामाणिक माना है और उसका जिक्र हम अनेक देशी और विदेशी इतिहास ग्रन्थों में पाते हैं।

पञ्चम अंश में जो कृष्ण चरित्र दिया गया है उसमें भी ऐसी ही विशेषताऐं पाई जाती हैं। यों तो 'भागवत' में भगवान् कृष्ण का जो वर्णन मिलता है वह भक्ति और साहित्यिक उच्चता की दृष्टि से सर्वाधिक प्रसिद्ध है और ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी गोकुल, वृन्दावन में निवास करने के समय का वर्णन बहुत विस्तार, रोचकता और शृङ्गार-रस के साथ वर्णन किया गया है, पर 'विष्णुपुराण' में थोड़े से पृष्ठों में समस्त कृष्ण चरित्र जिस प्रकार स्वाभाविक ढंग से लिखा गया है और व्रज तथा द्वारिका के कार्यकलापों के वर्णन में जो उचित अनुपात तथा संतुलन का ध्यान रखा गया है उससे इसकी लेखन सम्बन्धी श्रेष्ठता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि सभी पुराणों से छोटा होते हुये भी इसका महत्त्व अधिक माना गया है और विद्वन्मण्डली में भागवत के पश्चात् इसी का प्रचार अधिक देखने में आता है।

अन्तिम अंश मे कलियुग की जो विशेषताएं और अध्यात्म मार्ग की शिक्षाएं मिलती हैं उन्हें भी अपने ढग की अनूठी ही कहा जा सकता है। लेखक ने वर्तमान युग की उपयोगिता जिस प्रकार प्रतिपादित की है वह निस्सन्देह प्रशसनीय है। अनेक पौराणिक लेखको ने जिस प्रकार कलियुग को पापो की खान और दुष्कर्मों का आगार बतलाने मे ही अपनी शक्ति खर्च कर दी है उसे व्यक्ति तथा समाज के कल्याण की दृष्टि से उपयोगी नहीं कहा जा सकता। किसी के दोषो का ढ़ढोरा पीटकर हम उसका अधिक सुधार नहीं कर सकते। इसका मार्ग तो यही है कि उसकी अच्छाइयो को सामने लाकर उसे सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाय। 'विष्णुपुराण' मे यही किया गया है।

इन बातो पर विचार करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह पुराण निस्सन्देह प्राचीन धार्मिक साहित्य मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमे धार्मिक शिक्षाओ को सरल तथा सुबोध रूप मे उपस्थित करके पाठकों के लिये एक लाभकारी माध्यम प्रस्तुत किया गया है।

—सम्पादक

विष्णु पुराण के द्वितीय खण्ड की

विषय-सूची

अध्याय — चतुर्थ अंश

पंचम अंश

षष्ठम अंश

ॐ

श्रीविष्णुपुराण

(द्वितीय भाग)

चतुर्थ अंश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

तीसरा अध्याय

अतश्च मान्धातुः पुत्रसन्ततिरभिधीयते ।१। अम्बरीषस्य मान्धातृतनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् ।२। तस्माद्धारीतः यतोऽङ्गीरसो हारीताः ।३। रसातले मौनेया नाम गन्धर्वा बभूवुष्षट्कोटिसङ्ख्यातास्तैरशेषाणि नागकुलान्यपहृतप्रधानरत्नाधिपत्यान्यक्रियन्त ।४। तैश्च गन्धर्ववीर्यावधुतैरुरगेश्वरैः स्तूयमानो भगवानशेषदेवेशः स्तवच्छ्रवणोन्मीलितोन्निद्रपुण्डरीकनयनो जलशयनो निद्रावसानात् प्रबुद्धः प्रणिपत्याभिहितः भगवन्नस्माकमेतेभ्यो गन्धर्वेभ्यो भयमुत्पन्नं कथमुपशममेष्यतीति ।५। आह च भगवाननादिनिधनपुरुषोत्तमो योऽसौ यौवनाश्वस्य मान्धातुः पुरुकुत्सनामा पुत्रस्तमहमनुप्रविश्य तानशेषान् दुष्टगन्धर्वानुपशमं नयिष्यामीति ।६। तदाकर्ण्य भगवते जलशायिने कृतप्रणामाः पुनर्नागलोकमागताः पन्नगाधिपतयो नर्मदां च पुरुकुत्सानयनाय चोदयामासुः ।७। सा चैनं रसातलं नीतवती ।८।

अब मान्धाता की सन्तति का वर्णन किया जाता है ॥१॥ राजा मान्धाता के पुत्र अम्बरीष के जो युवनाश्व नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उससे हारीत नामक पुत्र हुआ, जिससे आंगिरस हारीतगण उत्पन्न हुए ॥२-३॥ पूर्व-काल की बात है—पाताल में मौनेय नाम के छः करोड़ गन्धर्व रहते थे, उन्होंने सभी नागकुलों के प्रमुख-प्रमुख रत्नों और अधिकारों का अपहरण कर लिया ॥४॥ जब गन्धर्वों के पराक्रम से तिरस्कृत हुए उन नागराजों द्वारा स्तुति की गई, तब उसे सुनते हुए जिनके पद्म के समान विकसित नेत्र खुल गये, ऐसे उन निद्रा से जगे हुए जलशायी सर्वदेवेश्वर प्रभु को प्रणाम करके उन नागों ने निवेदन किया—हे भगवन् ! इन गन्धर्वों से जो भय उत्पन्न हो गया है, उसकी शान्ति किस प्रकार हो सकेगी ? ॥५॥ इस पर आदि-अन्त-शून्य भगवान् श्री पुरुषोत्तमदेव बोले—हे नागगण ! युवनाश्व-पुत्र राजा मान्धाता के पुरुकुत्स नामक पुत्र के शरीर में प्रविष्ट होकर मैं उन सभी दुष्ट गन्धर्वों को नष्ट कर डालूँगा ॥६॥ यह सुन कर सब नागगण उन जलशायी भगवान् श्रीहरि को प्रणाम करते हुए नागलोक में लौट और पुरुकुत्स को लाने के लिए उन्होंने अपनी बहिन नर्मदा को प्रेरित किया जो पुरुकुत्स को रसातल में लिवा लाई ॥७-८॥

रसातलगतश्चासौ भगवत्तेजसाप्यायितात्मवीर्यस्सकलगन्धर्वान्निजघान ।९। पुनश्च स्वपुरमाजगाम ।१०। सकलपन्नगाधिपतयश्च नर्मदायै वरं ददुः यस्तेऽनुस्मरणसमवेतं नामग्रहणं करिष्यति न तस्य सर्पविषभयं भविष्यतीति ।११। अत्र च श्लोकः ।१२। नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि । नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ।१३। इत्युच्चार्याहर्निशमन्धकारप्रवेशे वा सर्पैर्न दश्यते न चापि कृतानुस्मरणभुजो विषमपि भुक्तमुपघाताय भवति ।१४। पुरुकुत्साय सन्ततिविच्छेदो न भविष्यतीत्युरगपतयो वरं ददुः ।१५।

भगवान् विष्णु के तेज से प्रवृद्ध हुए उस पुरुकुत्स ने रसातल में पहुँचकर सभी गन्धर्वों का वध कर डाला और तब वह अपने नगर में लौट आया ॥९-१०॥ उस समय सभी नागों ने नर्मदा को यह वर दिया कि तेरे स्मरण

पूर्वक जो कोई तेरे नाम का उच्चारण करेगा, उसे सर्प-विष का भय नहीं रहेगा ॥११॥ इस विषय में एक श्लोक है नर्मदा को प्रातःकाल नमस्कार, रात्रिकाल में भी नमस्कार। हे नर्मदे ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है, तुम विष और सर्प से मेरी रक्षा करो ॥१२-१३॥ इसके उच्चारण पूर्वक दिन या रात्रि में, किसी भी समय कहीं अँधेरे में जाने पर भी सर्प नहीं काटता तथा इसका स्मरण करके भोजन करने से, भोजन में मिला हुआ विष भी मारक नहीं होता ॥१४॥ उस समय पुरुकुत्स ने भी नागों को वर दिया कि तुम्हारी सन्तति अन्त को कभी भी प्राप्त नहीं होगी ॥१५॥

पुरुकुत्सो नर्मदाया त्रसद्दस्युमजीजनत् ।१६। त्रसद्दस्युतस्सम्भूतोऽनरण्यः यं रावणो दिग्विजये जघान।१७। अनरण्यस्य पृषदश्वः पृषदश्वस्य हर्यश्वः पुत्रोऽभवत् ।१८। तस्य च हस्तः पुत्रोऽभवत् ।१९। ततश्च सुमनास्तस्यापि त्रिधन्वा त्रिधन्वनस्त्रय्यारुणिः ।२०। त्रय्यारुणेस्सत्यव्रतः योऽसौ त्रिशंकुसंज्ञामवाप ।२१। स चाण्डालतामुपगतश्च ।२२। द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां विश्वामित्रकलत्रापत्यपोषणार्थं चाण्डालप्रतिग्रहपरिहरणाय च जाह्नवीतीरन्यग्रोधे मृगमासमनुदिनं बबन्ध।२३। स तु परितुष्टेन विश्वामित्रेण सशरीरस्स्वर्गमारोपितः ।२४।

पुरुकुत्स ने अपनी उस भार्या नर्मदा से त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१६॥ त्रसद्दस्यु का पुत्र अनरण्य हुआ, जिसका दिग्विजय के समय रावण ने वध किया था ॥१७॥ उस अनरण्य का पुत्र पृषदश्व हुआ पृषदश्व का हर्यश्व, हर्यश्व का हस्त, हस्त का सुमना, सुमना का त्रिधन्वा और त्रिधन्वा का पुत्र त्रय्यारुणि हुआ ॥१८-२०॥ त्रय्यारुणि का पुत्र सत्यव्रत हुआ, वही फिर त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२१॥ वह त्रिशंकु चाण्डाल हो गया ॥२२॥ एक समय बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। उस समय वह विश्वामित्रजी के सभी बालकों के पोषण के निमित्त तथा अपने चाण्डालत्व को दूर करने के लिए गंगातट स्थित वट वृक्ष पर मृग का माँस बाँध देता था ॥२३॥ उसके इस कार्य से प्रसन्न हुए महर्षि विश्वामित्र ने उसे देह सहित स्वर्ग में भेज दिया ॥२४॥

त्रिशङ्कोर्हरिश्चन्द्रस्तस्माच्च रोहिताश्वस्ततश्च हरितो हरितस्य चञ्चुश्चञ्चोर्विजयवसुदेवौ रुरुको विजयाद्रुरुकस्य वृकः ।२५। ततो वृकस्य बाहुर्योऽसौ हैहयतालजङ्घादिभिः पराजितोऽन्तर्वत्न्या महिष्या सह वनं प्रविवेश ।२६। तस्याश्च सपत्न्या गर्भस्तम्भनाय गरो दत्तः ।२७। तेनास्या गर्भस्सप्तवर्षाणि जठर एव तस्थौ ।२८। स च बाहुर्वृद्धभावादौर्वाश्रमसमीपे ममार ।२९। सा तस्य भार्या चितां कृत्वा तमारोप्यानुमरणकृतनिश्चयाभूत् ।३०। अथैतामतीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी भगवानौर्वस्स्वाश्रमान्निर्गत्याब्रवीत् ।३१।

उसी त्रिशंकु से हरिश्चन्द्र हुए। हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व और रोहिताश्व से हरित हुआ। हरित से चञ्चु, चञ्चु से विजय और वासुदेव तथा विजय से रुरुक और रुरुक से वृक उत्पन्न हुआ ॥२५॥ वृक का बाहु हुआ, जिसे हैहय तथा तालजंघादि क्षत्रियों ने युद्ध में हरा दिया, इस कारण वह अपनी गर्भवती राजमहिषी को साथ लेकर वन में चला गया ॥२६॥ परन्तु राजमहिषी की सौत ने उसके गर्भ का स्तम्भन करने के विचार से उसे विष दे दिया ॥२७॥ उस विष के प्रभाव से उसका गर्भ सात वर्ष तक गर्भाशय में ही रुका रहा ।२८। अन्त में वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बाहु की और्व ऋषि के आश्रम के निकटवर्ती स्थान में मृत्यु हो गई ॥२९॥ तब उसकी महिषी ने चिता बनाकर उसमें अपने पति का शव रखा और उसके साथ सती हो जाना चाहा ॥३०॥ तभी भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञाता महर्षि और्व ने अपने आश्रम से निकल कर राजमहिषी से कहा ॥३१॥

अलमलमनेनासद्ग्राहेणाखिलभूमण्डलपतिरतिवीर्यपराक्रमो नैकयज्ञकृदरातिपक्षक्षयकर्त्ता तवोदरे चक्रवर्त्ती तिष्ठति ।३२। नैवमतिसाहसाध्यवसायिनी भवती भवत्वित्युक्ता सा तस्मादनुमरणनिर्बन्धाद्विरराम ।३३। तेनैव च भगवता स्वाश्रममानीता ।३४। तत्र कतिपयदिनाभ्यन्तरे च सहैव तेन गरेणातितेजस्वी बालको जज्ञे ।३५। तस्यौर्वो जातकर्मादिक्रिया निष्पाद्य सगर इति नाम चकार ।३६। कृतोपनयनं चैनमौर्वो वेदशास्त्राण्यस्त्रं चाग्नेयं भार्गवाख्यमध्यापयामास।३७। उत्पन्न-

बुद्धिश्च मातरमब्रवीत् ।३८। अम्ब कथमत्र वयं क्व वा तातोऽस्माकमित्येवमादिपृच्छन्तं माता सर्वमेवावोचत् ।३६। ततश्च पितृराज्यापहरणादमर्षितो हैहयतालजङ्घादिवधाय प्रतिज्ञामकरोत् ।४०। प्रायशश्च हैहयतालजङ्घाञ्जघान ।४१।

हे साध्वी ! यह दुराग्रह त्याग देने योग्य है । क्योंकि तेरे उदर में अत्यंत बलवीर्ययुक्त, अनेक यज्ञों का अनुष्ठाता, सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी तथा सभी शत्रुओं को मारने वाला चक्रवर्त्ती सम्राट स्थित है ।।३२।। इसलिए, तू ऐसे दुस्साहस का प्रयत्न न कर । मुनि के वचन सुन कर उसने सती होने के आग्रह का परित्याग किया ।।३३।। तब महर्षि और्व उसे अपने आश्रम पर लिवा ले गये ।।३४।। कुछ कालोपरान्त उस रानी के उदर से 'गर' (विष) के सहित एक तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ ।।३५।। तब महर्षि और्व ने उसका जातकर्म संस्कारादि कर उसका 'सगर' नाम रखा और उपनयनादि संस्कार के पश्चात् उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेयास्त्रों की शिक्षा प्रदान की ।।३६-।।३७।। जब उसकी बुद्धि विकसित हो गई तब वह बालक अपनी माता से बोला ।।३८।। हे माता ! हम इस तप तपोवन में क्यों रह रहे हैं ? हमारे पिता कहाँ हैं ? इसी प्रकार के अन्य प्रश्न भी उसने पूछे तब उसकी माता ने उसे सब बातें बता दीं ।।३९।। माता के मुख से राज्यापहरण की बात सुन कर उस बालक ने हैहय और तालजङ्घादि क्षत्रियों का संहार करने की प्रतिज्ञा ली और कालान्तर में उसने उन सभी राजाओं को मार डाला ।।४०-४१।।

शकयवनकाम्बोजपारदपह्लवाः हन्यमानास्तत्कुलगुरुं वसिष्ठं शरणं जग्मुः ।४२। अथैनान्वसिष्ठो जीवन्मृतकान् कृत्वा सगरमाह ।४३। वत्सालमेभिर्जीवन्मृतकैरनुसृतैः ।४४। एते च मयैव त्वत्प्रतिज्ञापरिपालनाय निजधर्मद्विजसङ्गपरित्यागं कारिताः ।४५। तथेति तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेषान्यत्वमकारयत् ।४६। यवनान्मुण्डितशिरसोऽर्द्धं मुण्डितान्शकान् प्रलम्बकेशान् पारदान् पह्लवाञ्श्मश्रुधरान् निस्स्वाध्यायवषट्कारानेतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार ।४७। एते चात्मधर्मपरित्यागा-

द्ब्राह्मणैः परित्यक्ता म्लेच्छतां ययु ।४८। सगरोऽपि स्वमधिष्ठानमागम्यास्खलितचक्रस्सप्तद्वीपवतीमिमामुर्वी प्रशशास ।४९।

इसके अनन्तर उसने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवगण को भी हताहत किया, जिससे वह सगर के कुलगुरु वसिष्ठजी की शरण को प्राप्त हुए ।।४२।। वसिष्ठजी ने उन्हें जीवित रह कर भी मृतक समान करके राजा सगर से कहा ।।४३।। हे वत्स ! इन जीवन्मृत मनुष्यों को मारने से क्या लाभ है ? ।।४४।। मैंने तेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए ही इन्हें स्वधर्म और द्विजातियों के संसर्ग से बहिष्कृत कर दिया है ।।४५।। राजा सगर ने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर उनकी वेश-भूषा में परिवर्तन करा दिया ।।४६।। उसने यवनों के शीश मुँड़वाये, शकों के आधे सिर को मुँडवाया, पारदों के लम्बे बाल वाले बनाया, पह्लवों के मूँछ-दाढ़ी रखवाईं तथा इन सब को और अन्यान्य वैरियों को भी स्वाध्याय तथा वषट्कार आदि से वंचित कर दिया ।।४७।। स्वधर्म हीन होने के कारण ब्राह्मणों ने भी इनका परित्याग कर दिया, इसलिए यह सब म्लेच्छ बन गये ।।४८।। फिर महाराज सगर अपनी राजधानी में आ गये और सेना से युक्त होकर सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य करने लगे ।।४९।।



चौथा अध्याय

काश्यपदुहिता सुमतिर्विदर्भराजतनया केशिनी च द्वे भार्ये सागरस्यास्ताम् ।१। ताभ्यां चापत्यार्थमौर्व. परमेण समाधिनाराधितो वरमदात् ।२। एका वंशकरमेकं पुत्रमपरा षष्टिं पुत्रसहस्राणि जनयिष्यतीति यस्या यदभिमतं तदिच्छया गृह्यतामित्युक्ते केशिन्येकं वरयामास ।३। सुमति. पुत्रसहस्राणि षष्टिं वव्रे ।४। तथेत्युक्ते अल्पैरहोभिः केशिनी पुत्रमेकमसमञ्जसनामानं वंशकरमसूत ।५। काश्यपतनयायास्तु

सुमत्याः षष्टि पुत्रसहस्राण्यभवन् ।६। तस्मादसमञ्जसादंशुमान्नाम कुमारो जज्ञे ।७। स त्वसमञ्जसो बालो बाल्यादेवासद्वृत्तोऽभूत् ।८। पिता चास्याचिन्तयदयमतीतबाल्यः सुबुद्धिमान् भविष्यतीति ।९। अथ तथापि च वयस्यतीते असच्चरितमेन पिता तत्याज ।१०। तान्यपि षष्टिः पुत्रसहस्राण्यसमञ्जसचरितमेवानुचक्रुः ।११।

श्री पराशरजी ने कहा—काश्यपपुत्री सुमति और विदर्भराज की पुत्री केशिनी यह दोनों राजा सगर की भार्या हुई ॥१॥ उनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति की कामना के लिए आराधित होकर भगवान् और्व ने यह वर प्रदान किया ॥२॥ तुम मे से एक से वंश-वृद्धि करने वाला एक पुत्र उत्पन्न होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी। इनमे से दो वर जिसे अच्छा लगे, उसी वर को वह माँग ले। ऋषि द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर केशिनी ने एक पुत्र और सुमति ने साठ हजार पुत्रों का वर माँगा ॥३-४॥ महर्षि के 'ऐसा ही हो' कहने पर केशिनी ने वंश की वृद्धि वाले असमञ्जस नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया और सुमति ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया ॥५-६॥ असमञ्जस के अंशुमान नामक एक पुत्र हुआ ॥७॥ वह असमञ्जस अपने बाल्यकाल से ही दुराचरण वाला हुआ ॥८॥ पिता ने समझा कि जब इसकी बाल्यवस्था व्यतीत हो जायगी, तब यह सुधर जायगा ॥९॥ परन्तु उस अवस्था के निकलने पर भी उसके आचरण मे परिवर्तन न देख कर पिता ने उसका त्याग कर दिया ॥१०॥ तथा सगर के साठ हजार पुत्र भी असमञ्जस के ही अनुगामी हुए ॥११॥

ततश्चासमञ्जसचरितानुकारिभिस्सागरैरपध्वस्तयज्ञादिसन्मार्गे जगति देवास्सकलविद्यामयमसंस्पृष्टमशेषदोषैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्यांशभूतं कपिलं प्रणम्य तदर्थमूचुः ।१२। भगवन्नेभिस्सगरतनयैरसमञ्जसचरितमनुगम्यते ।१३। कथमेभिरसद्वृत्तमनुसरद्भिर्जगद्भविष्यतीति ।१४। अत्यार्त्तजगत्परित्राणाय च भगवतोऽत्र शरीरग्रहणमित्याकर्ण्य भगवानाहाल्पैरेव दिनैर्विनङ्क्ष्यन्तीति ।१५।

अत्रान्तरे च सगरो हयमेधमारभत ।१६। तस्य च पुत्रै रधिष्ठितमस्याश्व कोऽप्यपहृत्य भुवो बिलं प्रविवेश ।१७। ततस्तत्तनयाश्चाश्वखुरगतिनिर्बन्धेनावनीमेकैको योजन चख्नुः ।१८। पाताले चाश्व परिभ्रमन्त तमवनीपतितनयास्ते ददृशुः ।१६। नातिदूरेऽवस्थितं च भगवन्तमपघने शरत्कालेऽर्कमिव तेजोभिरनवरतमूर्ध्वमधश्चाशेपदिशश्चोद्भासयमान हयहर्त्तारं कपिलर्षिमपश्यन् ।२०।

इन असमंजस के चरित्र का अनुगमन करने वाले साठ हजार सगर पुत्रों ने विश्व से यज्ञादि सन्मार्ग का उच्छेद किया, तब सकल विद्याओं के ज्ञाता भगवान् के अंशभूत श्री कपिलजी को देवताओं ने प्रणाम कर उन सगर-पुत्रो के विषय मे निवेदन किया ॥१२॥ हे भगवन् ! सगर के यह सभी पुत्र असमंजस के चरित्र का अनुकरण करने वाले हुए हैं ॥१३॥ इन सब के सन्मार्ग के विपरीत चलने से यह जगत किस दशा को प्राप्त होगा ? ॥१४॥ हे भगवन् ! आपने दीनो की रक्षा करने के लिये ही यह देह धारण किया है। यह बात सुनकर कपिलजी बोले—इन सब का कुछ ही दिनो मे नाश होना है ॥१५॥ इसी अवसर पर महाराज सगर ने अश्वमेध का अनुष्ठान आरम्भ किया ॥१६॥ तब उसके पुत्रों द्वारा सुरक्षित अश्व का अपहरण करके कोई पृथिवी मे प्रविष्ट हो गया ॥१७॥ तब उस अश्व के खुर-चिह्नों का अनुसरण करते हुए सगर-पुत्रो मे से प्रत्येक ने चार-चार योजन भूमि खोद डाली ॥१८॥ और पाताल मे पहुँचकर उन्होने अश्व को विचरण करते हुए देखा ॥१९॥ उनके निकट ही मेघ आवरण से रहित शरदकालीन सूर्य के समान अपने तेज से सब दिशाओं को प्रकाशमय करने वाले महर्षि कपिल अश्वहर्ता के रूप में बैठे हुए देखा ॥२०॥

ततश्चोद्यतायुधा दुरात्मानोऽयमस्मदपकारी यज्ञविघ्नकारी हन्यतां हयहर्त्ता हन्यतामित्यवोचन्नभ्यधावंश्च ।२१। ततस्तेनापि भगवता किञ्चिदीपत्परिवर्त्तितलोचनेनावलोकितास्स्वशरीरसमुत्थेनाग्निना दह्यमाना विनेशुः ।२२।

सगरोऽप्यवगम्याश्वानुसारितत्पुत्रबलमशेषं परमर्षिणा कपिलेन तेजसा दग्ध ततोऽशुमन्तमसमञ्जसपुत्रमश्वानयनाय युयोज।२३।सतु सगरतनयखातमार्गेण कपिलमुपगम्य भक्तिनम्रस्तदा तुष्टाव।२४। अथैनं भगवानाह।२५। गच्छैन पितामहायाश्व प्रापय वरं वृणीष्व च पुत्रक पौत्रश्च ते स्वर्गाद्गङ्गा भुवमानेष्यत इति।२६। अथाशुमानपि स्वर्याताना ब्रह्मदण्डहतानामस्मत्पितृणामस्वर्गयोग्याना स्वर्गप्राप्तिकर वरमस्माक प्रयच्छेति प्रत्याह।२७।

उन्हे इस प्रकार देख कर वे सब दुरात्मा सगरपुत्र अपने शास्त्रास्त्रों को सम्भाल कर 'यही हमारा अपकार करने वाला और यज्ञ मे बाधा डालने वाला है, इस अश्वचोर को मार दो, वध कर डालो' कहते हुए कपिलजी की ओर दौड़ पड़े ।।२१।। तब भगवान् कपिल ने अपने परिवर्तित नेत्रों से देखा, जिससे वे सब अपने ही देह से प्रकट होते हुए अग्नि मे भस्म हो गये ।।२२।। जब राजा सगर को यह ज्ञात हुआ कि अश्व के पीछे रक्षक रूप से जाने वाले उनके सभी पुत्र भस्म हो गए हैं, तो उन्होंने असमंजस के पुत्र अंशुमान को अश्व प्राप्ति के कार्य मे नियुक्त किया ।।२३।। तब वह उन राजपुत्रों द्वारा खोदे हुये मार्ग से कपिलदेव के पास गया और उसने अत्यन्त भक्तिभाव से नम्र होकर उनकी प्रशंसा किया ।।२४। फिर प्रसन्न हुए उन कपिलजी ने अंशुमान से कहा—हे वत्स ! इस अश्व को लेजाकर अपने दादा को सौंप और जो तू चाहे वही मुझसे मांग ले। तेरा पौत्र गंगाजी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाने मे समर्थ होगा ।।२५-२६।। इस पर अंशुमान ने कहा—कि मेरे यह स्वर्ग को न प्राप्त हुए पितृगण ब्रह्मदण्ड से भस्म हुए हैं, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला वर प्रदान कीजिए ।।२७।

प्रतित सद्यश्शरीरिण स्वर्गं नयतीत्युक्त प्रणम्य भगवतेऽश्वमादाय पितामहयज्ञमाजगाम ।३१। सगरोऽप्यश्वमासाद्य तं यज्ञं समापयामास ।३२। सागरं चात्मजप्रीत्या पुत्रत्वे कल्पितवान् ।३३। तस्यांशुमतो दिलीप पुत्रोऽभवत् ।३४। दिलीपस्य भगीरथः योऽसौ गङ्गा स्वर्गादिहानीय भागीरथीसंज्ञा चकार ।३५।

अंशुमान की बात सुनकर भगवान् कपिलजी बोले—यह मैंने पहिले ही कहा है कि तेरा पुत्र गंगाजी को स्वर्ग से उतारेगा ॥२८॥ और जैसे ही उनके जल का स्पर्श उनकी अस्थियों से होगा, वैसे ही यह सब स्वर्ग को प्राप्त होंगे ॥२६॥ भगवान् विष्णु के पादांगुष्ठ से निर्गत हुए उस जल का यह माहात्म्य है कि वह केवल अभीष्टमय स्नानादि कार्यों में ही प्रयुक्त नहीं होता, किन्तु बिना किसी कामना के ही मृतक की हड्डी, चर्म, स्नायु या केशादि का उससे स्पर्श होने या जिसमें उसके किसी अङ्ग के गिर जाने से भी उस प्राणी को तत्काल स्वर्ग मिलता है। भगवान् कपिल का वचन सुन कर अंशुमान ने उन्हें प्रणाम किया और अश्व को साथ लेकर अपने दादा की यज्ञशाला में आकर उपस्थित हुआ ॥३०-३१॥ तब राजा सगर ने उस अश्व को प्राप्त कर अपने यज्ञ को सम्पूर्ण किया और अपने पुत्रों के द्वारा खोदे हुए उस सागर को ही उन्होंने अपना पुत्र माना ॥३२-३३॥ उस अंशुमान के दिलीप हुआ। दिलीप के भगीरथ हुआ, जिसके प्रयत्न से गङ्गाजी स्वर्ग पर उतर आई और उनका नाम उसके नाम पर ही भागीरथ हुआ ॥३४-३५॥

भगीरथात्सुहोत्रस्सुहोत्राच्छ्रुतः तस्यापि नाभागः ततोऽम्बरीषः तत्पुत्रस्सिन्धुद्वीप सिन्धुद्वीपादयुतायु ।३६। तत्पुत्रश्च ऋतुपर्णः योऽसौ नलसहायोऽक्षहृदयज्ञोऽभूत् ।३७। ऋतुपर्णपुत्रस्सर्वकाम ।३८। तत्तनयस्सुदास ।३९। सुदासात्सौदासो मित्रसहनामा ।४०। स चाटव्यां मृगयार्थी पर्यटन् व्याघ्रद्वयमपश्यत् ।४१। ताभ्यां तद्वनमपमृगं कृत मत्वैकं तयोर्बाणेन जघान ।४२। म्रियमाणश्चासावतिभीषणाकृतिरतिकरालवदनो राक्षसोऽभूत् ।४३। द्वितीयोऽपि प्रतिक्रियां ते करिष्यामीत्युक्त्वान्तर्धानं जगाम ।४४।

भगीरथ का सुहोत्र हुआ। सुहोत्र से श्रुति, श्रुति से नाभाग, नाभाग से अम्बरीष, अम्बरीष से सिंधुद्वीप, सिंधुद्वीप से अयुतायु और अयुतायु से ऋतपर्ण हुआ, जो द्यूत क्रीड़ा का ज्ञाता और राजा नल का सहायक था ॥३६-३७॥ ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम हुआ। सर्वकाम का सुदास और सुदास का सौदास मित्रसह हुआ ॥३८-४०॥ उसने एक मृगया के लिए वन में विचरण करते-करते दो व्याघ्रों को देखा ॥४१॥ उनके सम्पूर्ण वन हीन को मृगहीन हुआ समझ कर उनमें से एक को उसने मार दिया ॥४२॥ मरणकाल मे अत्यन्त घोर रूप और विकराल मुख वाला राक्षस बन गया ॥४३॥ और दूसरा जो मरने से बच गया वह 'मैं इसका प्रतिशोध लूँगा' कहता हुआ तत्काल अन्तर्धान हो गया ॥४४॥

कालेन गच्छता सौदासो यज्ञमयजत् ।४५। परिनिष्ठितयज्ञे आचार्ये वसिष्ठे निष्क्रान्ते तद्रक्षो वसिष्ठरूपमास्थाय यज्ञावसाने मम नरमांसभोजनं देयमिति तत्सस्क्रियतां क्षणादागमिष्यामीत्युक्त्वा निष्क्रान्तः ।४६। भूयश्च सूदवेषं कृत्वा राजाज्ञया मानुषं मांसं संस्कृत्य राज्ञे न्यवेदयत् ।४७। असावपि हिरण्यपात्रे मांसमादाय वसिष्ठागमनप्रतीक्षकोऽभवत् ।४८। आगताय वसिष्ठाय निवेदितवान् ।४९। स चाप्यचिन्तयदहो अस्य राज्ञो दौश्शील्य येनैतन्मांसमस्माकं प्रयच्छति किमेतद्द्रव्यजातमिति ध्यानपरोऽभवत् ।५०। अपश्यच्च तन्मांसं मानुषम् ।५१। अतः क्रोधकलुषीकृतचेता राजनि शापमुत्ससर्ज ।५२। यस्मादभोज्यमेतदस्मद्विधाना तपस्विनामवगच्छन्नपि भवान्मह्यं ददाति तस्मात्तवैवात्र लोलुपता भविष्यतीति ।५३।

कुछ समय व्यतीत होने पर सौदास ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥४५॥ जब यज्ञ के समाप्त होने पर आचार्य वसिष्ठजी वहाँ से चले गए तब वह राक्षस वसिष्ठजी का रूप धारण कर वहाँ आकर कहने लगा—यज्ञ की समाप्ति पर मुझे मनुष्य-मांस युक्त भोजन कराया जाना चाहिए, इसलिए तुम वैसा भोजन बनवाओ, मैं क्षण भर में लौट कर आता हूँ। यह कहता हुआ वह वहाँ से चला गया ॥४६॥ फिर उसने रसोइये का रूप धारण कर राजाज्ञा से मनुष्य

मांसमय भोजन बना कर राजा के समक्ष लाया ॥४७॥ राजा ने उसे स्वर्णपात्र मे रखा और वसिष्ठजी के आने पर उसने उन्हे यह नरमांस निवेदन किया ॥४८-४६॥ तब वसिष्ठजी ने मन मे विचार किया कि यह राजा कितना कुटिल है जो जानते हुए भी मुझे यह मास दे रहा है। फिर यह जानने के लिये कि यह किस जीव का मास है, उन्होने समाधि का आश्रय लिया और ध्यानावस्था मे उन्होंने जान लिया कि मनुष्य का मांस है ॥५०-५१॥ तब तो वसिष्ठजी अत्यन्त क्रोधित और क्षुब्ध मन हुए और उन्होंने तत्काल ही राजा को शाप दे डाला कि तूने इस अत्यन्त अभक्ष्य नर मांस को मेरे जैसे तपस्वी को जान-बूझ कर आहार हेतु दिया है, इसलिये तेरी लोलुपता नरमास में ही होगी ॥५२॥

अनन्तरं च तेनापि भगवतैवाभिहितोऽस्मीत्युक्ते किं किं मयाभिहितमिति मुनिः पुनरपि समाधौ तस्थौ ।५४। समाधिविज्ञानावगतार्थश्चानुग्रहं तस्मै चकार नात्यन्तिकमेतद्द्वादशाब्द तव भोजनं भविष्यतीति ।५५। असावपि प्रतिगृह्योदकाञ्जलिं मुनिशापप्रदानायोद्यतो भगवन्नयमस्मद्गुरुर्नार्हस्येन कुलदेवताभूतमाचार्यं शप्तुमिति मदयन्त्या स्वपत्न्या प्रसादितस्सस्याम्बुदरक्षणार्थंतच्छापाम्बु नोर्व्यां न चाकाशे चिक्षेप किं तु तेनैव स्वपदौ सिषेच ।५६। तेन च क्रोधाश्रितेनाम्बुना दग्धच्छायौ तत्पादौ कल्मापतामुपगतौ ततस्स कल्मापपादसंज्ञामवाप ।५७। वसिष्ठशापाच्च षष्ठे षष्ठे काले राक्षसस्वभावमेत्याटव्यां पर्यटन्ननेकशो मानुपानभक्षयत् ।५८।

फिर जब राजा ने यह कहा कि 'भगवन् आपकी ही ऐसी आज्ञा थी' तो वसिष्ठजी ने कहा कि 'अरे क्या कहता है, मैंने ऐसा कहा था ? और वह पुन: ध्यानावस्थित हुए ॥५४॥ तब उस ध्यानावस्था मे उन्हे वास्तविकता का ज्ञान हुआ और वह राजा पर अनुग्रह करते हुए बोले—तू अधिक समय के लिये नरमासभोजी नही होगा, केवल बारह वर्ष ही ऐसी अवस्था रहेगी ॥५५॥ जब वसिष्ठजी का ऐसा वचन सुना तो राजा सौदास ने अपनी अंजलि मे जल ग्रहण किया और मुनिवर वशिष्ठ को शाप देने लगा, परन्तु उसकी पत्नी मदयन्ती ने उसे यह कह कर शान्त किया कि हे स्वामिन् ! यह हमारे कुल गुरु हैं, इसलिये

इन्हें शाप नहीं देना चाहिये। तब शाप के लिये ग्रहण किये हुये उस जल को राजा ने अन्न और मेघ की रक्षा के लिये पृथिवी या आकाश में नहीं फेंका, किन्तु उसे अपने ही पाँवों पर डाल लिया ॥५६॥ उस क्रोधमय जल के पड़ने से उसके पाँव दग्ध होकर चितकबरे वर्ण के हो गये। तभी से वह कल्माषपाद कहा जाने लगा ॥५७॥ फिर वसिष्ठजी के शाप के प्रभाव से वह राजा तीसरे दिन के अन्तिम भाग में राक्षस स्वभाव होकर वन में विचरण करने और मनुष्यों को खाने में प्रवृत्त हुआ ॥५८॥

एकदा तु कश्चिन्मुनिमृतुकाले भार्यासङ्गतं ददर्श ।५९। तयोश्च तमतिभीषणं राक्षसस्वरूपमवलोक्य त्रासाद्दम्पत्योः प्रधावितयोर्ब्राह्मणं जग्राह ।६०। ततस्सा ब्राह्मणी बहुशस्तमभियाचितवती ।६१। प्रसीदेक्ष्वाकुकुलतिलकभूतस्त्वं महाराजो मित्रसहो न राक्षसः ।६२। नार्हसि स्त्रीधर्मसुखाभिज्ञो मय्यकृतार्थायामस्मद्भर्तारं हन्तुमित्येवं बहुप्रकारं तस्यां विलपन्त्यां व्याघ्रः पशुमिवारण्येऽभिमतं तं ब्राह्मणमभक्षयत् ।६३। ततश्चातिकोपसमन्विता ब्राह्मणी तं राजानं शशाप ।६४। यस्मादेवं मय्यतृप्तायां त्वयायं मत्पतिर्भक्षितः तस्मात्त्वमपि कामोपभोगप्रवृत्तोऽन्तं प्राप्स्यसीति ।६५। शप्त्वा चैवं साग्निं प्रविवेश ।६६।

एक दिन उस राक्षसत्व प्राप्त राजा ने एक मुनि को ऋतुकाल में अपनी पत्नी से रमण करते हुये देखा ॥५९॥ उस अत्यन्त भीषण राक्षस रूप वाले राजा को देखकर भयसे भागते हुये उन दम्पति में से उसने मुनि को पकड़ लिया ॥६०॥ उस समय मुनि-पत्नी ने उससे अनेक प्रकार अनुनय विनय करते हुये कहा—हे राजन्! प्रसन्न होइये। आप राक्षस नहीं, इक्ष्वाकुवंश के तिलक रूप महाराज मित्रसह हैं ॥६१-६२॥ आप स्त्री-सुख के ज्ञाता हैं, मुझ अतृप्ता के पति की हत्या करना आपके लिये उचित नहीं है। इस प्रकार उस ब्राह्मणी द्वारा अनेक प्रकार से विलाप किये जाने पर भी जैसे व्याघ्र अपने इच्छित पशु को जङ्गल में पकड़ कर भक्षण कर लेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण को पकड़ कर खा लिया ॥६३॥ तब उस ब्राह्मणपत्नी ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक राजा को शाप दिया कि अरे [illegible]! तूने मेरे अतृप्त अवस्था में रहते हुये भी मेरे स्वामी का

आकर अपनी बुद्धि से तीनों लोकों को पार किया और सत्यरूप भगवान् श्रीहरि को प्राप्त कर लिया ॥८१-८२॥

खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुः पुत्रोऽभवत् ।८३। ततो रघुरभवत् ।८४। तस्मादप्यज ।८५। अजाद्दशरथ ।८६। तस्यापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नरूपेण चतुर्द्धा पुनत्वमायासीत् ।८७।

रामोऽपि बाल एव विश्वामित्रयागरक्षणाय गच्छंस्ताटकां जघान ।८८। यज्ञे च मारीचमिषुवाताहतं समुद्रे चिक्षेप ।८९। सुबाहुप्रमुखांश्च क्षयमनयत् ।९०। दर्शनमात्रेणाहल्यामपापां चकार ।९१। जनकगृहे च महेश्वरं चापमनायासेन बभञ्ज ।९२। सीतामयोनिजां जनकराजतनयां वीर्यशुल्कां लेभे ।९३। सकलक्षत्रियक्षयकारिणमशेषहैहयकुलधूमकेतुभूतं च परशुराममपास्तवीर्यबलावलेपं चकार ।९४।

खट्वांग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ। दीर्घबाहु का रघु और रघु का पुत्र अज हुआ। अज के पुत्र दशरथ हुए, जिनके पुत्र रूप में भगवान् पद्मनाभ इस विश्व की रक्षा के निमित्त अपने चार अंशों से राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हुये ॥८३-८७॥ बाल्यकाल में ही श्री राम ने विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा करने के लिये जाते हुए मार्ग में ही ताटका नाम की राक्षसी का वध किया और यज्ञशाला में पहुँचकर अपने बाण रूपी वायु से मारीच पर आघात कर उसी समुद्र में फैंका और सुबाहु आदि राक्षसों को मार डाला ॥८८-९०॥ उनके दर्शन करने से ही मुनि-पत्नी अहल्या पाप से मुक्त हो गई। उन्होंने राजा जनक के यहाँ पहुँच कर बिना किसी श्रम के ही शिवजी का धनुष तोड़ डाला और केवल पुरुषार्थ से मिलने वाली जनकसुता अयोनिजा सीता को भार्या रूप में प्राप्त किया ॥९१-९३॥ फिर सब क्षत्रियों का संहार कर देने वाले तथा हैहय वंश रूपी दारों के लिए अग्नि के समान श्री परशुरामजी का बलवीर्ययुक्त गर्व खण्डन किया ॥९४॥

पितृवचनाच्चागणितराज्याभिलाषो भ्रातृभार्यासमेतो वनं प्रविवेश ।९५। विराधखरदूषणादीन् कबन्धवालिनौ च निजघान ।९६। बद्-

ध्वा चाम्भोनिधिमशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशाननापहृतां भार्य्यां तद्वधादपहृतकलङ्कामप्यनलप्रवेशशुद्धामशेषदेवसङ्घैः स्तूयमानशीलां जनकराजकन्यामयोध्यामानिन्ये ।९७। ततश्चाभिषेकमङ्गलं मैत्रेय वर्षशतेनापि वक्तु न शक्यते सङ्क्षेपेण श्रूयताम् ।९८।

फिर पिता के वचन के आगे राज्य को तुच्छ मान कर वह अपने छोटे भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या सीताजी को साथ लेकर वन मे गये ।।९५।। वहाँ उन्होने विराध, खर, दूषण आदि राक्षसो को और कबंध तथा बाली को मारा और समुद्र पर सेतु बन्धन कर सम्पूर्ण राक्षस कुल का संहार किया । फिर वह राक्षसराज रावण द्वारा हरण की गई और उसके मरने के कारण निष्कलङ्क होने पर भी अग्नि मे प्रवेश करके शुद्ध हुई तथा सभी देवताओ द्वारा प्रशंसित आचरण वाली अपनी धर्मपत्नी जनकपुत्री सीताजी को अपने साथ लेकर अयोध्या मे आ गए ।।९६-९७।। हे मैत्रेयजी ! उनके अयोध्या मे लौट आने पर राज्याभिषेक का जैसा महोत्सव हुआ, उसका वर्णन तो सौ वर्षों मे भी नही किया जा सकता । फिर भी मैं उसे संक्षेप मे कहता हूँ, श्रवण करो ।।९८।।

लक्ष्मणभरतशत्रुघ्नविभीषणसुग्रीवाङ्गदजाम्बवद्धनुमत्प्रभृतिभिस्समुत्फुल्लवदनैश्छत्रचामरादियुतैः सेव्यमानो दाशरथिर्ब्रह्मेन्द्राग्नियमनिरृतिवरुणवायुकुबेरेशानप्रभृतिभिस्सर्वामरैर्वसिष्ठवामदेववाल्मीकिमार्कण्डेयविश्वामित्रभरद्वाजागस्त्यप्रभृतिभिर्मुनिवरैः ऋग्यजुस्सामाथर्वभिस्संस्तूयमानो नृत्यगीतवाद्याद्यखिललोकमङ्गलवाद्यैर्वीणावेणुमृदङ्गभेरीपटहशङ्खकाहलगोमुखप्रभृतिभिस्सुनादैस्समस्तभूभृतां मध्ये सकललोकरक्षार्थं यथोचितमभिषिक्तो दाशरथिः कोसलेन्द्रो रघुकुलतिलको जानकीप्रियो भ्रातृत्रयप्रियस्सिंहासनगत एकादशाब्दसहस्रं राज्यमकरोत् ।९९।

श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या के राज्य सिंहासन पर विराजमान हुए । उस समय लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, अंगद, जाम्बवन्त और हनुमान आदि छत्र-चमर आदि सेवा करने लगे । श्री ब्रह्माजी, इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशानादि सब देवता यथास्थान स्थित हुए । वसिष्ठ, वामदेव,

विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्यादि मुनि श्रेष्ठ ऋग्वेद, अथर्ववेद के द्वारा स्तुति करने लगे (नृत्य, गीत, वाद्यादि र वीणा, वेणु, मृदंग, भेरी, पटह, शंख, कातल तथा ई बाजे बजने लगे।) उस समय सभी राजाओं की उपस्थिति में लोकों की रक्षा के निमित्त विधि पूर्वक उनका राज्याभिषेक हुआ। इस प्रकार दशरथ नन्दन, कोसलेन्द्र, रघुकुलतिलक, जानकीनाथ, अपने तीनों भाइयों के परमप्रिय भगवान् श्रीराम ने राज्यपद प्राप्त कर ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया ॥९९॥

भरतोऽपि गन्धर्वविषयसाधनाय गच्छन् संग्रामे गन्धर्वकोटीस्तिस्रो जघान ।१००। शत्रुघ्नेनाप्यमितबलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणो नाम राक्षसो निहतो मथुरा च निवेशिता ।१०१। इत्येवमाद्यतिबलपराक्रमवधैरतिदुष्टसंहारिणोऽशेषस्य जगतो निष्पादितस्थितयो रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः पुनरपि दिवमारूढाः ।१०२। येऽपि तेषु भगवदंशेष्वनुरागिणः कोसलनगरजानपदास्तेऽपि तन्मनसस्तत्सालोक्यतामवापुः ।१०३।

फिर भरतजी गन्धर्वलोक को जीतने के लिये गये और वहां युद्ध में उन्होंने तीन करोड़ गन्धर्वों का संहार किया तथा शत्रुघ्नजी ने अत्यन्त बलवान् एवं महान् पराक्रमी मधुपुत्र लवणासुर को मार कर मथुरा नामक नगर बसाया ॥१००-१०१॥ इस प्रकार अपने महान् बल-पराक्रम से विकराल दुष्टों का संहार करने वाले श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था की और फिर देवलोक को चले गये ॥१०२॥ जो अयोध्या निवासी उन भगवान् के अंशों में अत्यन्त आसक्त थे, वे सब भी उनमें तल्लीन होने के कारण उन्हीं के साथ सालोक्य को प्राप्त हुए ॥१०३॥

अतिदुष्टसंहारिणो रामस्य कुशलवौ द्वौ पुत्रौ लक्ष्मणस्याङ्गदचन्द्रकेतू तक्षपुष्कलौ भरतस्य सुबाहुशूरसेनौ शत्रुघ्नस्य ।१०४। कुशस्यातिथिरतिथेरपि निषधः पुत्रोऽभूत् ।१०५। निषधस्याप्यनलस्तस्मादपि नभाः नभसः पुण्डरीकस्तत्तनयः क्षेमधन्वा तस्य च देवानीकस्तस्याप्य-

हीनकोऽहीनकस्यापि रुरुस्तस्य च पारियात्रकः पारियात्रकाद्देवलो देवलाद्वचलः तस्याप्युत्कः उत्काच्च वज्रनाभस्तस्माच्छङ्खणस्तस्माद्युपिताश्वस्ततश्च विश्वसहो जज्ञे ।१०६। तस्माद्धिरण्यनाभ. यो महायोगीश्वराज्जैमिनेर्शिष्याद्याज्ञवल्क्याद्योगमवाप ।१०७। हिरण्यनाभस्य पुत्रः पुष्यस्तस्माद्ध्रुवसन्धिस्ततस्सुदर्शनस्तस्मादग्निवर्णस्ततश्शीघ्रगस्तस्मादपि मरुःपुत्रोऽभवत्।१०८।योऽसौ योगमास्थायाद्यापि कलापग्राममाश्रित्य तिष्ठति ।१०९। आगामियुगे सूर्यवंशक्षत्रप्रवर्त्तयिता भविष्यति ।११०। तस्यात्मजः प्रसुश्रुतस्यापि सुसन्धिस्ततश्चाप्यमर्षस्तस्य च सहस्वांस्ततश्च विश्वभव.।१११। तस्य बृहद्बलः योऽर्जुनतनयेनाभिमन्युना भारतयुद्धे क्षयमनीयत ।११२। एते इक्ष्वाकुभूपाला. प्राधान्येन मयेरिताः। एतेषा चरित शृण्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।११३।

दुष्टों का सहार करने वाले श्रीराम के दो पुत्र हुए, जिनका नाम कुश और लव था। लक्ष्मण के भी अ गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए। भरत के तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नामक दो-दो पुत्र ही हुए ।।१०४।। कुश का पुत्र प्रतिथि हुआ। प्रतिथि का निषध, निषध का प्रनल, प्रनल का नभ और नभ का पुण्डरीक हुआ। पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा का देवानीक, उसका अहीनक उसका रुरु और रुरु का पारियात्रक हुआ। पारियात्रक का देवल, देवल का वच्चल, वच्चल का उत्क और उत्क का वज्रनाभ हुआ। वज्रनाभ का शंखण और उसका पुत्र युषिताश्व हुआ तथा युषिताश्व का पुत्र का नाम विश्वसह हुआ ।।१०५-१०६।। उसी विश्वसह के पुत्र हिरण्यनाभने जैमिनि के शिष्य महायोगेश्वर याज्ञवल्क्यजी से योग विद्या ग्रहण की थी ।।१०७।। हिरण्यनाभ का पुत्र पुष्य हुआ, उसका पुत्र ध्रुवसन्धि और उसका सुदर्शन हुआ। सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण, अग्निवर्ण का शीघ्रग और शीघ्रग का पुत्र मरु हुआ। वह शीघ्रग-पुत्र मरु अब भी कलापग्राम मे योगाभ्यास-परायण रहता है ।।१०८-१०९।। आगे वाले युग मे यही सूर्यवंशी क्षत्रियों का प्रवर्त्तक होगा ।।११०।। उस मरु का पुत्र प्रसुश्रुत हुआ। प्रसुश्रुत का सुसन्धि, सुसन्धि का अमर्ष, अमर्ष का सहस्वान्, सहस्वान् का

विश्वभव और विश्वभव का बृहद्बल हुआ, जो महाभारत युद्ध मे अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु द्वारा मारा गया था ॥१११-११२॥ इस प्रकार यह इक्ष्वाकु वंश के सब प्रमुख-प्रमुख राजाओ का वर्णन मैंने तुमसे किया है। इनके चरित्र का श्रवण करने से सभी पापो से छुटकारा होता है ॥११३॥



पाँचवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिर्नाम सहस्रं वत्सरं सत्रमारेभे ।१। वसिष्ठं च होतारं वरयामास ।२। तमाह वसिष्ठोऽहमिन्द्रेण पञ्चवर्षशतयागार्थं प्रथमं वृतः ।३। तदन्तरं प्रतिपाल्यतामागतस्तवापि ऋत्विग्भविष्यामीत्युक्ते स पृथिवीपतिर्न किञ्चिदुक्तवान् ।४। वसिष्ठोऽप्यनेन समन्वीप्सितमित्यमरपतेर्यागमकरोत् ।५। सोऽपि तत्काल एवान्यैर्गौतमादिभिर्यागमकरोत् ।६।

श्री पराशरजी ने कहा—इक्ष्वाकु के निमि नामक पुत्र ने सहस्र वर्षों मे सम्पन्न होने वाले यज्ञानुष्ठान का आरम्भ किया ॥१॥ उस यज्ञ मे उन्होंने होता के रूप मे वसिष्ठजी का वरण किया ॥२॥ तब वसिष्ठ ने उससे कहा कि इन्द्र ने पांच सौ वर्षों मे सम्पन्न होने वाले यज्ञ के लिए मुझे पहिले से ही वरण किया हुआ है ।३। इसलिए तुम अभी इतने समय और रुको,मैं वहाँ से लौटकर तुम्हारा ऋत्विक् बनूंगा। उनकी बात सुनकर राजा उन्हे कोई उत्तर न देकर चुप हो गया ॥४॥ वसिष्ठजी ने समझा कि राजा ने उनकी बात मान ली है, इसलिये वह इन्द्र का यज्ञ करने लगे। इधर राजा निमि ने गौतमादि अन्य होताओ को वरण कर उनके द्वारा अपना यज्ञ आरम्भ करा दिया ॥६॥

समाप्ते चामरपतेर्यागे त्वरया वसिष्ठो निमियज्ञं करिष्यामीत्याजगाम ।७। तत्कर्मकर्तृत्वं च गौतमस्य दृष्ट्वा स्वपते तस्मै राज्ञे मा प्रत्याख्यायैतदनेन गौतमाय कर्मान्तरं समर्पितं यस्मात्तस्मादयं विदेहो

भविष्यतीति शापं ददौ ।८। प्रबुद्धश्चासाववनिपतिरपि प्राह ।९। यस्मान्मामसम्भाष्याज्ञानत एव शयानस्य शापोत्सर्गमसौ दुष्टगुरुश्चकार तस्मात्तस्यापि देहः पतिष्यतीति शापं दत्त्वा देहमत्यजत् ।१०।

उधर वसिष्ठजी सोच रहे थे कि मुझे निमि का यज्ञ कराना है, इसलिये इन्द्र का यज्ञ समाप्त होते ही वह शोघ्रता पूर्वक वहाँ आ गये ।।७।। उस यज्ञ में अपने स्थान पर गौतम को कर्म करते हुऐ देखकर सोते हुए राजा निमि को शाप दिया कि इसने गौतम को होता नियुक्त करके मेरा तिरस्कार किया है,इसलिये यह देह-रहित हो जायगा ।।८।। जब राजा निमि सोकर उठा और उसे यह मालूम हुआ कि वसिष्ठजी ने ऐसा शाप दिया है, तब उसने भी शाप दिया कि इस दुष्ट गुरु ने मुझसे सम्भाषण किये बिना ही अज्ञानवश मुझ सोते हुये को शाप दिया है, इसलिए यह भी देह-रहित होगा। इस प्रकार शाप देकर राजा ने अपना देह त्याग दिया ।।९-१०।।

तच्छापाच्च मित्रावरुणयोस्तेजसि वसिष्ठस्य चेतः प्रविष्टम् ।११। उर्वशीदर्शनादुद्भूतबीजप्रपातयोस्तयोस्सकाशाद्वसिष्ठो देहमपरं लेभे ।१२। निमेरपि तच्छरीरमतिमनोहरगन्धतैला दिभिरुपसंस्क्रियमाणं नैव क्लेदादिकं दोषमवाप सद्यो मृत इव तस्थौ ।१३। यज्ञसमाप्तौ भागग्रहणाय देवानागतानृत्विज ऊचुर्यजमानाय वरो दीयतामिति ।१४। देवैश्च छन्दितोऽसौ निमिराह ।१५। भगवन्तोऽखिलसंसारदुःखहन्तारः ।१६। नह्येतादृगन्यद्दुःखमस्ति यच्छरीरात्मनोर्वियोगे भवति ।१७। तदहमिच्छामि सकललोकलोचनेषु वस्तुं न पुनश्शरीरग्रहणं कर्तुमित्येवमुक्तैर्देवैरसावशेषभूतानां नेत्रेष्ववतारितः ।१८। ततो भूतान्युन्मेषनिमेषं चक्रुः ।१९।

राजा निमि के शाप से वसिष्ठजी का प्राण मित्रावरुण के वीर्य प्रविष्ट हुआ और जब उर्वशी को देखकर कामवश मित्रावरुण का वीर्य स्खलन होने से वसिष्ठ को उसी से पुनर्देह की प्राप्ति हो गई ।।११-१२।। राजा निमि का देह भी अत्यन्त मनोहर गन्ध और तैल आदि के द्वारा सरक्षित किया जाने से खराब नहीं हुआ और उसी समय मरे हुए के समान बना रहा ।।१३।। जब यज्ञ समाप्त

हुआ, तब सब देवता अपना-अपना भाग लेने के लिए वहाँ उपस्थित हुए। उस समय ऋत्विकों ने उनसे कहा कि यजमान, को वर प्रदान करिये ॥१४॥ यह, सुन कर देवताओं ने राजा निमि के शरीर को, प्रेरित किया, तब उसने उनसे कहा ॥१५॥ हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण संसार-दुःख के हरण करने वाले हैं ॥१६॥ मैं समझता हूँ कि देह और आत्मा का वियोग ,होने मे जो दुःख है, वैसा दुःख अन्य कोई भी नही है ॥१७॥ इसलिए अब मैं देह को पुनःग्रहण नही करना चाहता, सब प्राणियों के नेत्रो मे रहना चाहता हूँ। यह सुन कर देवताओं ने राजा निमि को सब प्राणियों के नेत्रो में स्थित कर दिया ॥१८॥ उसी समय मे प्राणियों में उन्मेष-निमेष का आरम्भ हुआ ॥१९॥

अपुत्रस्य च भूभुजः शरीरमराजकभीरवो मुनयोऽरण्या ममन्थुः ।२०। तत्र च कुमारो जज्ञे ।२१। जननाज्जनकसंज्ञा चावाप ।२२। अभूद्विदेहोऽस्य पितेति वैदेहः मथनान्मिथिरिति ।२३। तस्योदावसुः पुत्रोऽभवत् ।२४। उदावसोर्नन्दिवर्द्धनस्ततस्सुकेतुः तस्माद्देवरातस्ततश्च बृहदुक्थः तस्य च महावीर्यस्तस्यापि सुधृतिः ।२५। ततश्च धृष्टकेतुरजायत ।२६। धृष्टकेतोर्हर्यश्वस्तस्य च मनुर्मनो प्रतिकः तस्मात्कृतरथस्तस्य देवमीढः, तस्य च विबुधो विबुधस्य महाधृतिस्ततश्च कृतरातः ततो महारोमा तस्य सुवर्णरोमा तत्पुत्रो ह्रस्वरोमा ह्रस्वरोम्णस्सीरध्वजोऽभवत् ।२७। तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना ।२८।

फिर अराजकता फैलने की आशका से मुनियो ने उस पुत्रहीन राजा के देह को अरणि से मथना आरम्भ किया ॥२०॥ उससे एक बालक उत्पन्न हुआ जो स्वय जन्म लेने के कारण 'जनक' कहा गया ॥२१-२२॥ इसके पिता के विदेह होने के कारण इसका नाम 'वैदेह' हुआ तथा मन्थन करने से उत्पन्न होने के कारण 'मिथि' भी कहलाया ॥२३॥ उसके पुत्र का नाम उदावसु हुआ ॥२४॥ उदावसु का पुत्र नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धन का सुकेतु और सुकेतु का पुत्र देवरात हुआ। देवरात का बृहदुक्थ बृहदुक्थ का महावीर्य और महावीर्य का सुधृति नामक पुत्र हुआ। सुधृति के पुत्र का नाम धृष्टकेतु हुआ। धृष्टकेतु का पुत्र हर्यश्व हुआ, जिससे मनु का जन्म हुआ। मनु से प्रतिक, प्रतिक से कृतरथ, कृतरथ से

देवमीढ, देवमीढ से विबुध और विबुध से महाधृति हुआ। महाधृति का पुत्र कृतरात, कृतरात का महारोमा, महारोमा का सुवर्णरोमा, उसका पुत्र ह्रस्वरोमा तथा उसका पुत्र सीरध्वज हुआ ॥२६ २७॥ वह सीरध्वज पुत्र प्राप्ति की इच्छा से यज्ञ भूमि को जोत रहा था, तभी उसके हल के अगले भाग से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम सीता हुआ ॥२८॥

सीरध्वजस्य भ्राता साङ्काश्याधिपति कुशध्वजनामासीत् ।२९। सीरध्वजस्यापत्य भानुमान् भानुमतश्शतद्युम्न तस्य तु शुचि तस्मा-दूर्जनामा पुत्रो जज्ञे ।३०। तस्यापि शतध्वज तत कृति कृतेरञ्जन तत्पुत्र कुरुजित् ततोऽरिष्टनेमि तस्माच्छ्रुतायु श्रुतायुप सुपार्श्व तस्मात्सृञ्जय तत क्षेमावी क्षेमाविनोऽनेना तस्माद्भौमरथ तस्य सत्यरथ तस्मादुपगुरुपगोरुपगुप्त तत्पुत्र स्वागतस्तस्य च स्वानन्द तस्माच्च सुवर्चा तस्य च सुपार्श्व तस्यापि सुभाष तस्य सुश्रुत तस्मा-त्सुश्रुताज्जय तस्य पुत्रो विजयो विजयस्य ऋत ऋतात्सुनय सुनया-द्वीतहव्य तस्माद्धृतिर्धृतेर्बहुलाश्व तस्य पुत्र कृति ।३१। कृतौ सतिष्ठ-तेऽय जनकवंश ।३२। इत्येते मैथिला ।३३। प्रायेणैते आत्मविद्याश्र-यिणो भूपाला भवन्ति ।३४।

साङ्काश्याधिपति कुशध्वज सीरध्वज का भाई था ॥२९॥ सीरध्वज का पुत्र भानुमान् हुआ। भानुमान् का शतद्युम्न, शतद्युम्न का शुचि, शुचि का ऊर्जनामा, ऊर्जनामा का शतध्वज शतध्वज का कृति कृति का अञ्जन, अञ्जन का कुरुजित् और कुरुजित् का अरिष्टनेमि हुआ। अरिष्टनेमि का श्रुतायु, श्रुतायु का सुपार्श्व सुपार्श्व का सृञ्जय, सृञ्जय का क्षेमावी, क्षेमावी का अनेना, अनेना का भौमरथ, भौमरथ का सत्यरथ, सत्यरथ का उपगु, उपगु का उपगुप्त, उपगुप्त का स्वागत, स्वागत का स्वानन्द स्वानन्द का सुवर्चा, सुवर्चा का सुपार्श्व, सुपार्श्व का सुभाष, सुभाष का सुश्रुत और सुश्रुत का जय हुआ। जय के पुत्र का नाम विजय रखा गया। विजय का पुत्र ऋत, ऋत का सुनय सुनय का वीतहव्य, वीतहव्य का धृति, धृति का बहुलाश्व तथा बहुलाश्व का पुत्र कृति हुआ॥३०-३१। कृति पर आकर यह जनक वंश समाप्त हो गया। यह सभी मैथिल देश के राजा

गण ये ॥३२-३३॥ तथा यह सब पृथिवी-पालक नरेश आत्म विद्या के आश्रय-दाता हुए ॥३४॥



छठा अध्याय

सूर्यस्य वंश्या भगवन्कथिता भवता मम। सोमस्याप्यखिला-न्वंश्याञ्छ्रोतुमिच्छामि पार्थिवान् ।१। कीर्त्यंते स्थिरकीर्तीनां येषामद्यापि सन्तति.। प्रसादसुमुखस्तान्मे ब्रह्मन्नाख्यातुमर्हसि।२। श्रूयतां मुनिशार्दूल वंशः प्रथिततेजसः। सोमस्यानुक्रमात्ख्याता यत्रोर्वीपतयोऽभवन् ।३। अय हि वंशोऽतिबलपराक्रमद्युतिशीलचेष्टावद्भिरतिगुणान्वितैर्नहुषययातिकार्तवीर्यार्जुनादिभिर्भूपालैरलङ्कृतस्तमहं कथयामि श्रूयताम् ।४।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन्! आपने सूर्य वंश के राजाओं का वर्णन किया, अब मैं चन्द्रवंश के शासकों का वर्णन सुनने की इच्छा करता हूँ। जिन स्थिर यश वाले राजाओं की सन्तान का श्रेष्ठ यश आज गाया जाता है, उन सभी का प्रसन्नता पूर्वक वर्णन करिये ॥१-२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने! अत्यन्त तेजस्वी चन्द्रवंश का वर्णन सुनो। उस वंश में अनेकों प्रसिद्ध कीर्ति वाले राजा हुए हैं ॥३॥ इस वंश को अलङ्कृत करने वाले राजा नहुष, ययाति, कार्तवीर्य, अर्जुन आदि अनेक अत्यन्त बली, पराक्रमी, तेजस्वी, क्रियाशील और सद्गुण-सम्पन्न राजा हुए हैं उनका वर्णन सुनो ॥४॥

अखिलजगत्स्रष्टुर्भगवतो नारायणस्य नाभिसरोजसमुद्भवाब्जयोनेर्ब्रह्मण पुत्रोऽत्रि ।५। अत्रेस्सोम ।६। तं च भगवानब्जयोनि. अशेषौषधिद्विजनक्षत्राणामाधिपत्येऽभ्यषेचयत् ।७। स च राजसूयमकरोत् ।८। तत्प्रभावादत्युत्कृष्टाधिपत्याधिष्ठातृत्वाच्चैनं मद आविवेश ।९। मदावलेपाच्च सकलदेवगुरोर्बृहस्पतेस्तारां नाम पत्नीं जहार।१०। बहु-

शश्च बृहस्पतिचोदितेन भगवता ब्रह्मणा चोद्यमानः सकलैश्च देवर्षिभिर्याच्यमानोऽपि न मुमोच ।११।

तस्य चन्द्रस्य च बृहस्पतेर्द्वेषादुशना पार्ष्णिग्राहोऽभूत् ।१२। अङ्गिरसश्च स काशादुपलब्धविद्यो भगवान्रुद्रो बृहस्पतेः साहाय्यमकरोत् ।१३।

सम्पूर्ण विश्व के रचने वाले भगवान् श्री नारायण के नाभि-कमल से अवतीर्ण हुए श्री ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि प्रजापति हुये ॥४॥ इन्ही अत्रि के पुत्र चन्द्रमा हुये ॥६॥ पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माजी ने उनका सब औषधि, द्विजजन और नक्षत्रों के आधिपत्य पर आभिषेक किया ॥७॥ तब चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया ॥ ॥ अपने अत्यन्त उच्चाधिपत्य के अधिकार और प्रभाव से चन्द्रमा राजमद मे भर गया ॥६॥ इस प्रकार मदोन्मत्त हुये उस चन्द्रमा ने देवताओं के पूजनीय गुरु बृहस्पतिजी की पत्नी तारा का अपहरण किया ॥१०॥ फिर उसने बृहस्पतिजी के प्रेरित किये हुये श्री ब्रह्माजी के बहुत बार अनुरोध करने पर तथा देवर्षियो द्वारा मागे जाने पर भी उसे मुक्त न किया ॥११॥ बृहस्पतियो से द्वेष होने के कारण शुक्र भी चन्द्रमा के सहायक हुए और अंगिरा से विद्या प्राप्त करने के कारण भगवान् रुद्र बृहस्पति के सहायक हो गये ॥१२-१३॥

यतश्चोशना ततो जम्भकुम्भाद्याः समस्ता एव दैत्यदानवनिकाया महान्तमुद्यमं चक्रुः ।१४। बृहस्पतेरपि सकलदेवसैन्ययुतः सहायः शक्रोऽभवत् ।१५। एवं च तयोरतीवोग्रसंग्राममस्तारानिमित्तस्तारकामयो नामाभूत् ।१६। ततश्च समस्तशस्त्राण्यसुरेषु रुद्रपुरोगमा देवा देवेषु चाशेषदानवा मुमुचुः ।१७। एवं देवासुराहवसंक्षोभक्षुब्धहृदयमशेषमेव जगद्ब्रह्माणं शरणं जगाम ।१८। ततश्च भगवानब्जयोनिरप्युशनसं शङ्करमसुरान्देवांश्च निवार्य बृहस्पतये तारामदापयत् ।१९। तां चान्तःप्रसवामवलोक्य बृहस्पतिरप्याह ।२०। नैष मम क्षेत्रे भवत्यान्यस्य सुतो धार्यस्समुत्सृजैनमलमलमतिधार्ष्ट्येनेति ।२१।

शुक्र ने जिधर का पक्ष लिया, उधर से ही जम्भ और कुम्भादि सभी दैत्य-दानवों ने भी सहायता का प्रयत्न किया ॥१४॥ इधर सब देवताओं की

सेना के सहित इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता की ॥१५॥ इस प्रकार तारा की प्राप्ति के लिए तारकामय घोर संग्राम उपस्थित हो गया ॥१६॥ तब रुद्रादि देवता दानवों पर और दानव देवताओं पर विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से प्रहार करने लगे ॥१७॥ इस प्रकार देवासुर-संग्राम से सन्त्रस्त हुए सम्पूर्ण विश्व ने भगवान् श्री ब्रह्माजी की शरण ली ॥१८॥ तब उन कमलयोनि भगवान् ने शुक्र, शंकर आदि दानवों और दैत्यों को शान्त किया और युद्ध रुकवा कर बृहस्पतिजी को तारा दिलवा दी॥१९॥ उसके गर्भाधान हुआ देखकर बृहस्पति ने उससे कहा ॥२०॥ मेरे क्षेत्र में दूसरे के पुत्र को धारण करना अनुचित है, इस प्रकार की धृष्टता ठीक नहीं है, इसे निकाल कर फेंक दे ॥२१॥

सा च तेनैवमुक्तातिपतिव्रता भर्तृवचनानन्तरं तमिषीकास्तम्बे गर्भमुत्ससर्ज ।२२। स चोत्सृष्टमात्र एवातितेजसा देवानां तेजांस्याचिक्षेप ।२३। बृहस्पतिमिन्दुं च तस्य कुमारस्यातिचारुतया साभिलाषौ दृष्ट्वा देवास्समुत्पन्नसन्देहास्तारां पप्रच्छुः ।२४। सत्यं कथयास्माकमिति सुभगे सोमस्याथ वा बृहस्पतेरयं पुत्र इति ।२५। एवं तैरुक्ता सा तारा ह्रिया किञ्चिन्नोवाच ।२६। बहुशोऽप्यभिहिता यदासौ देवेभ्यो नाचचक्षे ततस्स कुमारस्तां शप्तुमुद्यतः प्राह ।२७। दुष्टेऽम्ब कस्मान्मम तातं नाख्यासि ।२८। अद्यैव ते व्यलीकलज्जावत्यास्तथा शास्तिमहं करोमि ।२९। यथा च नैवमद्याप्यतिमन्थरवचना भविष्यसीति ।३०।

बृहस्पतिजी का यह कथन सुनकर उसने उनकी आज्ञा के अनुसार उस गर्भ को सींकों की झाड़ी में फेंक दिया ॥२२॥ उस फेंके हुए गर्भ ने अपने तेज से सब देवताओं का तेज फीका कर दिया ॥२३॥ तब उस बालक को अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी देख कर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही उसे ग्रहण करने के अभिलाषी हुए। यह देखकर देवताओं को सन्देह हुआ और उन्होंने तारा से पूछा कि हे सुभगे ! यह पुत्र बृहस्पति का है या चन्द्रमा का, यह बात हमें यथार्थ रूप से बता ? ॥२४-२५॥ उनके प्रश्न का उसने लज्जा के कारण कुछ उत्तर न दिया और बारम्बार पूछने पर भी उसने देवताओं को उत्तर न देकर मौन धारण कर लिया। तब वह बालक ही क्रोध पूर्वक शाप देने को उद्यत

होता हुआ कहने लगा कि अरी दुष्टा माता ! तू मेरे पिता का नाम क्यों नही बताती है ? तू व्यर्थ ही ऐसी लज्जावती क्यो बन रही है ? यदि नही बतायेगी तो मैं तुझे इस प्रकार अत्यन्त धीरे-धीरे बोलना भुला दूँगा ॥२६-३०॥

अथ भगवान् पितामहः त कुमारं सन्निवार्य स्वयमपृच्छत्तां ताराम् ।३१। कथय वत्से कस्यायमात्मजः सोमस्य वा बृहस्पतेर्वा इत्युक्ता लज्जमानाह सोमस्येति ।३२। ततः प्रस्फुरदुच्छ्वसितामलकपोलकान्तिर्भगवानुडुपतिः कुमारमालिङ्ग्य साधु साधु वत्स प्राज्ञोऽसीति बुध इति तस्य च नाम चक्रे ।३३। तदाख्यातमेवैतत् स च यथेलायामात्मजं पुरूरवसमुत्पादयामास ।३४। पुरूरवास्त्वतिदानशीलोऽतियज्वातितेजस्वी । य सत्यवादिनमतिरूपवन्तं मनस्विनं मित्रावरुणशापान्मानुषे लोके मया वस्तव्यमिति कृतमतिरुर्वशी ददर्श ।३५। दृष्टमात्रे च तस्मिन्नपहाय मानमशेषमपास्य स्वर्गसुखाभिलाषं तन्मनस्का भूत्वा तमेवोपतस्थे ।३६। सोऽपि च तामतिशयितसकललोकस्त्रीकान्तिसौकुमार्यलावण्यगतिविलासहासादिगुणामवलोक्य तदायत्तचित्तवृत्तिर्बभूव ।३७। उभयमपि तन्मनस्कमनन्यदृष्टि परित्यक्तसमस्तान्यप्रयोजनमभूत् ।३८।

तब पितामह श्री ब्रह्माजी ने उस बालक को निवारण करके स्वयं ही तारा से पूछा कि हे वत्से ! तू यथार्थ रूप से बता दे कि यह बृहस्पति का पुत्र है या चन्द्रमा का ? इस प्रकार उसने लजाते हुए कह दिया कि 'चन्द्रमा का है' ॥३१-३२॥ यह सुनते ही चन्द्रमा ने उस बालक को अपने हृदय से लगा लिया और उससे कहा कि 'वाह, पुत्र ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान हो' यह कह कर उसका नाम बुध रख दिया । इस समय उनके स्वच्छ कपोलों की कान्ति अत्यन्त तेजयुक्त हो रही थी ॥३३॥ उसी बुध ने इला से पुरूरवा को उत्पन्न किया था, जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है ॥३४॥ पुरूरवा अत्यन्त दानी, याज्ञिक और तेजस्वी हुआ । उर्वशी को मित्रावरुण का जो शाप था, उसका विचार करते हुए कि 'मुझे उस शाप के कारण मृत्युलोक में निवास करना होगा' राजा पुरूरवा पर उसकी दृष्टि पड़ी और वह अत्यन्त सत्यभाषी, रूपवन्त और मेधावी राजा पुरूरवा के पास, अपनी मान-मर्यादा और स्वर्ग-सुख की कामना को त्याग

कर तन्मयता पूर्वक आकर उपस्थित हुई ॥३५-३६॥ राजा पुरूरवा ने भी उसे सब स्त्रियो मे विशिष्ट लक्षण वाली, सुकुमार, कान्तिमयी सौंदर्य, चाल-ढाल, मुसकान आदि मे श्रेष्ठ देखा तो वह उसमे आसक्त हो गया ॥३७॥ इस प्रकार वे दोनों ही परस्पर तन्मय और अनन्य चित्त वाले होकर अन्य सभी कार्यों को छोड़ बैठे ॥३८॥

राजा तु प्रागल्भ्यात्तामाह ।३९। सुभ्रु त्वामहमभिकामोऽस्मि प्रसीदानुरागमुद्वहेत्युक्ता लज्जावखण्डितमुर्वशी तं प्राह ।४०। भवत्वेवं यदि मे समयपरिपालन भवान् करोतीत्याख्याते पुनरपि तामाह ।४१। आख्याहि मे समयमिति ।४२। अथ पृष्टा पुनरप्यब्रवीत् ।४३। शयनसमीपे ममोरणकद्वयं पुत्रभूतम् नापनेयम् ।४४। भवाश्च मया न नग्नो द्रष्टव्यः ।४५। घृतमात्र च ममाहार इति ।४६। एवमेवेति भूपतिरप्याह ।४७।

उस समय राजा ने सकोच-रहित भाव से कहा—हे श्रेष्ठ भ्रू वाली ! मैं तुम्हे चाहता हूँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होकर अपना प्रेम प्रदान करो। राजा की बात सुन कर उर्वशी भी लज्जावश खण्डित स्वर मे कहने लगी ॥३९-४०॥ यदि आप मेरी प्रतिज्ञा का परिपालन करा सकें तो, मैं अवश्य ही ऐसा करने को प्रस्तुत हूँ। यह सुनकर राजा बोला कि—तुम अपनी उस प्रतिज्ञा को मेरे प्रति कहो ॥४१-४२॥ उसके इस प्रकार पूछने पर उर्वशी ने कहा—मेरे यह दो मेष शिशु सदा मेरे पास रहेंगे। आप इन्हे मेरी शय्या से कभी न हटायेगे ? मैं आपको कभी भी नग्न न देख सकूंगी तथा घृत ही मेरा भोजन होगा। इस पर राजा ने कहा कि 'यही होगा' ॥४३-४७॥

तया सह च चावनिपतिरलकायां चैत्ररथादिवनेष्वमलपद्मखण्डेषु मानसादिसरस्स्वतिरमणीयेषु रममाणः षष्टिवर्षसहस्राण्यनुदिनप्रवर्द्धमानप्रमोदोऽनयत् ।४८। उर्वशी च तदुपभोगात्प्रतिदिनप्रवर्द्धमानानुरागा अमरलोकवासेऽपि न स्पृहा चकार ।४९। विना चोर्वश्या सुरलोकोऽप्सरसां सिद्धगन्धर्वाणा च नातिरमणीयोऽभवत् ।५०। ततश्चोर्वशीपुरूरवसोस्समयविद्विश्वावसुर्गन्धर्वसमवेतो निशि शयनाभ्याशादेकमुरणकं जहार ।५१। तस्याकाशे नीयमानस्योर्वशी शब्दमशृणोत् ।५२।

एवमुवाच च ममानाथाया पुत्र केनापह्रियते क शरणमुपयामीति ।५३। तदाकर्ण्य राजा मा नग्न देवी वीक्ष्यतीति न ययौ ।५४। अथान्यमप्युरणकमादाय गन्धर्वा ययु ।५५। तस्याप्यपह्रियमाणस्याकर्ण्य शब्दमाकाशे पुनरप्यनाथास्म्यहमभर्तृका कापुरुषाश्रयेत्यार्त्तराविणी बभूव ।५६।

फिर राजा पुरूरवा दिनो दिन वृद्धि को प्राप्त होते हुए सुख के साथ कभी अलकापुरी के चैत्ररथ आदि वनों में और कभी श्रेष्ठ कमलखण्डों वाले अत्यन्त रमणीय मानसादि सरोवरों में उसके साथ विहार करते रहे। इस प्रकार उन्होंने साठ हजार वर्ष व्यतीत कर दिए ॥४८॥ उपभोग सुख और आसक्ति के अत्यन्त बढ जाने से उर्वशी भी अब स्वर्ग में रहने की इच्छा से विमुख हो गई ॥४९॥ उधर स्वर्गलोक में अप्सराओं, सिद्धों और गन्धर्वों को उर्वशी के अभाव में उतनी रमणीयता प्रतीत नहीं होती थी ॥५०॥ इसलिए उर्वशी और पुरूरवा के मध्य हुई प्रतिज्ञा को जानने वाले विश्वावसु ने एक रात्रि में गन्धर्वों के साथ पुरूरवा के शयनागार में जाकर उसके एक मेष का अपहरण किया और जब वह आकाश मार्ग से लेजाया जा रहा था, तब उर्वशी ने उसका शब्द सुना और वह बोली कि मुझ अनाथा के पुत्र का अपहरण करके कौन लिए जा रहा है? अब मैं किसकी शरण में जाऊँ? ॥५१-५३॥ परन्तु उर्वशी की पुकार सुनकर भी राजा इस भय से नहीं उठा कि यह मुझे वस्त्र विहीन स्थिति में देख लेगी ॥५४॥ इसी अवसर में गन्धर्वों ने दूसरे मेष का भी हरण कर लिया और वे उसे लेकर चले गए ॥५५॥ उसके ले जाए जाने का शब्द भी उर्वशी ने सुन लिया और वह चीत्कार कर उठी कि अरे, मैं अनाथा और स्वामी विहीन नारी एक कापुरुष के वश में पड गई हूँ। इस प्रकार कहती हुई उर्वशी आर्त्त स्वर में रोने लगी ॥५६॥

राजाप्यमर्षवशादन्धकारमेतदिति खड्गमादाय दुष्ट दुष्ट हतोऽसीति व्याहरन्नभ्यधावत् ।५७। तावच्च गन्धर्वैरप्यतीवोज्ज्वला विद्युज्जनिता ।५८। तत्प्रभया चोर्वशी राजानमपगताम्बरं दृष्ट्वापवृत्तसमया तत्क्षणादेवापक्रान्ता ।५९। परित्यज्य तावप्युरणकौ गन्धर्वास्सुरलोक-

मुपगताः ।६०। राजापि च तौ मेषावादायातिहृष्टमनाः स्वशयनमायातो नोर्वशी ददर्श ।६१। तां चापश्यन् व्यपगताम्बर एवोन्मत्तरूपो बभ्राम ।६२। कुरुक्षेत्रे चाम्भोजसरस्यन्याभिश्चतसृभिरप्सरोभिस्समवेतामुर्वशीं ददर्श ।६३। ततश्चोन्मत्तरूपो जाये हे तिष्ठ मनसि घोरे तिष्ठ वचसि कपटिके तिष्ठेत्येवमनेकप्रकारं सूक्तमवोचत् ।६४। आह चोर्वशी ।६५। महाराजालमनेनाविवेकचेष्टितेन ।६६। अन्तर्वर्त्न्यहमब्दान्ते भवताऽत्रा-गन्तव्य कुमारस्ते भविष्यति एका च निशामह त्वया सह वत्स्यामी-त्युक्तः प्रहृष्टस्स्वपुर जगाम ।६७।

उस समय राजा ने सोचा कि अभी अधेरा है और तब क्रोधपूर्वक तल-वार हाथ मे लेकर 'अरे दुष्ट तू नष्ट हो गया' कहते हुए शीघ्रतापूर्वक दौड पडा ॥५७॥ तभी गन्धर्वों ने अत्यन्त प्रकाश वाली विद्युत प्रकट कर दी और उसके प्रकाश मे उर्वशी ने राजा को वस्त्र-विहीन देख लिया। इस प्रकार प्रतिज्ञा भग हो जाने के कारण उर्वशी वहाँ से तत्काल चली गई ॥५८-५९॥ तब गन्धर्वों ने भी उन मेषों को वही छोड दिया और स्वर्गलोक को चले गये ॥६०॥ जब राजा उन मेषो को लेकर अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ अपने शयनगृह मे आया तब वहाँ उसने उर्वशी को न पाया ॥६१॥ उसको न देखकर वह उन्मत्त-सा हो गया और उस वस्त्र-विहीन अवस्था मे ही सर्वत्र विचरने लगा ॥६२॥ इस प्रकार विचरण करते हुए उसने कुरुक्षेत्र के पद्म-सरोवर मे उर्वशी को अन्य चार अप्स-राओ के सहित देखा ॥६३॥ वह उसे देखते ही बोला—हे जाये ! हे निष्ठुर हृदय वाली ! हे कपटिके ! थोडी देर तो ठहर, किंचित् सम्भाषण तो कर ॥६४॥ उसके ऐसे अनेक वचनो को सुनकर उर्वशी ने कहा—हे महाराज ! इस प्रकार की अविवेक-युक्त चेष्टा न करो। मैं इस समय गर्भवती हूँ, इसलिए एक वर्ष के पश्चात् आप यहीं आवें उस समय आपके एक पुत्र होगा और मैं भी एक रात्रि आपके साथ व्यतीत करूँगी। उर्वशी की बात सुनकर पुरूरवा प्रसन्न हुआ और वह अपने नगर मे लौट आया ॥६५-६७॥

तासां चाप्सरसामुर्वशी कथयामास ।६८। अयं स पुरुषोत्कृष्टो येनाहमेतावन्त कालमनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति ।६९। एवमुक्तास्ता-

आप्सरस ऊचु ।७०। साधु साध्वस्य रूपमप्यनेन सहास्माकमपि सर्वकालमास्या भवेदिति ।७१। अब्दे च पूर्णे स राजा तत्राजगाम ।७२। कुमार चायुपमस्मै चोर्वशी ददौ ।७३। दत्त्वा चैकां निशां तेन राज्ञा सहोषित्वा पञ्च पुत्रोत्पत्तये गर्भमवाप ।७४। उवाचैनं राजानमस्मत्प्रीत्या महाराजाय सर्व एव गन्धर्वा वरदास्संवृत्ता व्रियतां च वर इति ।७५। आह च राजा ।७६। विजितसकलारातिरविहतेन्द्रियसामर्थ्यो बन्धुमानमितबलकोशोऽस्मि, नान्यदस्माकमुर्वशीसालोक्यात्प्राप्तव्यमस्ति तदहमनया सहोर्वश्या कालं नेतुमभिलषामीत्युक्ते गन्धर्वा राज्ञेऽग्निस्थाली ददुः ।७७। ऊचुश्चैनमग्निमाम्नायानुसारी भूत्वा त्रिधा कृत्वोर्वशीसलोकतामनोरथमुद्दिश्य सम्यग्यजेथा. ततोऽवश्यमभिलषितमवाप्स्यसीत्युक्तस्तामग्निस्थालीमादाय जगाम ।७८।

इसके पश्चात् उर्वशी ने अपने साथ की अप्सराओं से कहा कि—यही वह पुरुष श्रेष्ठ महाराज हैं, जिनके साथ प्रेमासक्त चित्त से रहते हुये मैंने पृथिवी पर निवास किया था ॥६८-६९॥ यह सुनकर वे अप्सराएँ कहने लगी—वाह, वाह, कैसे सुन्दर हैं, इनका रूप यथार्थ में ही चित्ताकर्षण है, इनके साथ तो हम भी कभी रह सकें ॥७०-७१॥ एक वर्ष की समाप्ति पर राजा पुरूरवा पुनः वहाँ पहुँचे ॥७२॥ तब उर्वशी ने उन्हें 'आयु' नामक एक शिशु प्रदान किया ॥७३॥ फिर उसने उनके साथ एक रात्रि रह कर पाँच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए गर्भ धारण किया ॥७४॥ इसके पश्चात् बोली कि हमारी पारस्परिक प्रीति के कारण सभी गन्धर्व आप महाराज को वर देने की इच्छा करते हैं, इसलिए आप अपना इच्छित वर मांगिए ॥७५॥ तब राजा ने कहा—मैंने अपने सभी वैरियों पर विजय प्राप्त की है, मेरी इन्द्रियाँ भी सामर्थ्य से हीन नहीं हुई हैं, मेरे पास बन्धु-बाधव, असंख्य सेना और कोश की भी कमी नहीं है, इसलिए इस समय उर्वशी के सङ्ग के अतिरिक्त और कुछ भी मैं नहीं चाहता तथा इसी के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। राजा की बात सुन कर गन्धर्वों ने उन्हें एक अग्निस्थाली प्रदान करते हुए कहा—वैदिक विधि से इस अग्नि के गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि रूप में तीन भाग करके उर्वशी मय में मनोरथ के

साथ इसमे यजन करने पर तुम्हे अवश्य ही अपने अभीष्ट की प्राप्ति होगी। गन्धर्वों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस अग्निस्थाली को ग्रहण करके राजा पुरूरवा वहाँ से चल दिया ॥७६-७८॥

अन्तरटव्यामचिन्तयत् अहो मेऽतीव मूढता किमहमकरवम् ।७९। वह्निस्थाली मयैषानीता नोर्वशीति ।८०। अथैनामटव्यामेवाग्निस्थाली तत्याज स्वपुरं च जगाम ।८१। व्यतीतेऽर्द्धं रात्रे विनिद्रश्चाचिन्तयत् ।८२। ममोर्वशीसालोक्यप्राप्त्यर्थमग्निस्थाली गन्धर्वैर्दत्ता सा च मयाटव्यां परित्यक्ता ।८३। तदहं तत्र तदाहरणाय यास्यामीत्युत्थाय तत्राप्युपगतो नाग्निस्थालीमपश्यत् ।८४। शमीगर्भं चाश्वत्थमग्निस्थालीस्थाने दृष्ट्वाचिन्तयत् ।८५। मयात्राग्निस्थाली निक्षिप्ता सा चाश्वत्थश्शमीगर्भोऽभूत् ।८६। तदेनमेवाहमग्निरूपमादाय स्वपुरमभिगम्यारणिं कृत्वा तदुत्पन्नाग्नेरुपास्ति करिष्यामीति ।८७।

फिर वन मे जाते हुए राजा ने सोचा—अरे, मैं भी कितना मूर्ख हूँ, जो इस अग्निस्थाली को ही लेकर चला आया और उर्वशी को साथ नही लाया ॥७९-८०॥ यह सोच कर उसने उस अग्निस्थाली को वन मे ही छोड दिया और अपने नगर को लौट आया ॥८१॥ अर्द्धरात्रि के समय जब राजा की निद्रा भग हुई, तब उसने पुन विचार किया—उर्वशी का सग प्राप्त होने के निमित्त ही उन गन्धर्वों ने मुझे वह अग्निस्थाली प्रदान की थी, परन्तु मैं उसे वन मे ही छोड आया ॥८२-८३॥ इसलिये मुझे उसे लने के लिये वहाँ जाना उचित है। यह सोचकर वह तुरत उठकर उस वन मे गया, परन्तु वह स्थाली उसे कहीं भी दिखाई न पडी ॥८४॥ उस अग्निस्थाली के स्थान पर एक शमीगर्भ पीतल का वृक्ष उसने देखा और विचार करने लगा कि मैंने वह अग्निस्थाली इसी स्थान पर फेंकी थी, वही अग्नि स्थाली शमीगर्भ पीतल हो गई जान पडती है ॥८६॥ इसलिए अब इस अग्नि रूप पीतल को ही अपने नगर मे ले चलना चाहिए, जिससे इसकी अरणि बनाकर उससे उत्पन्न हुए अग्नि की उपासना की जा सके ॥८७॥

एवमेव स्वपुरमभिगम्यारणिं चकार ।८८। तत्प्रमाणं चाङ्गुलैः कुर्वन् गायत्रीमपठत् ।८९। पठतश्चाक्षरसङ्ख्यान्येवाङ्गुलान्यरण्यभवत् ।९०। तत्राग्नि निर्मथ्याग्नित्रयमाम्नायानुसारी भूत्वा जुहाव ।९१। उर्वशीसालोक्य फलमभिसंहितवान् ।९२। तेनैव चाग्निविधिना बहुविधान् यज्ञानिष्ट्वा गान्धर्वलोकानवाप्योर्वश्या सहावियोगमवाप ।९३। एकोऽग्निरादावभवद् एकेन त्वत्र मन्वन्तरे त्रेधा प्रवर्तिताः ।९४।

यह सोचकर राजा उस पीपल वृक्ष को लेकर अपने नगर में आया और उसने उसकी अरणि बनायी ॥८८॥ फिर उन्होंने उस काष्ठ के एक-एक अंगुल के टुकड़े करके गायत्री-मन्त्र का पाठ किया ॥८९॥ गायत्री का पाठ करने से वे सब गायत्री मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतनी अरणियाँ हो गई ॥९०॥ उनके मन्थन द्वारा तीनों प्रकार के अग्नियों को प्रकट कर उनमें वेद विधि से आहुतियाँ दी और उर्वशी का संग प्राप्ति रूप फल का मनोरथ किया ॥९१-९२॥ फिर उसी अग्नि से अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए राजा पुरूरवा ने गन्धर्व लोक में जाकर उर्वशी को प्राप्त किया और कभी उसका उससे वियोग नहीं हुआ ॥९३॥ प्राचीन काल में एक ही अग्नि था और इस मन्वन्तर में उसी एक अग्नि से तीन प्रकार के अग्नि प्रवर्तित हुये ॥९४॥



सातवाँ अध्याय

तस्याप्यायुर्धीमानमावसुर्विश्वावसुः श्रुतायुश्शतायुरयुतायुरिति-संज्ञाः षट् पुत्रा अभवन् ।१। तथामावसोर्भीमनामा पुत्रोऽभवद् ।२। भीमस्य काञ्चनः काञ्चनात्सुहोत्रः तस्यापि जह्नुः ।३। योऽसौ यज्ञवाटमखिलं गङ्गाम्भसा प्लावितमवलोक्य क्रोधसंरक्तलोचनो भगवन्तं यज्ञपुरुषमात्मनि परमेण समाधिना समारोप्याखिलामेव गङ्गामपिबत् ।४। अथैनं देवर्षयः प्रसादयामासुः ।५। दुहितृत्वे चास्य गङ्गामनयन् ।६।

जह्नोश्च सुमन्तुर्नाम पुत्रोऽभवत् ।७। तस्याप्यजकस्ततो वलाकाश्वस्तस्मात्कुशस्तस्यापि कुशाम्बकुशनाभाधूर्त्तरजसो वसुश्चेति चत्वारः पुत्रा बभूवुः ।८। तेषां कुशाम्बः शक्रतुल्यो मे पुत्रो भवेदिति तपश्चकार ।९। तं चोग्रतपसमवलोक्य मा भवत्वन्योऽस्मत्तुल्यवीर्य इत्यात्मनैवास्येन्द्रः पुत्रत्वमगच्छत् ।१०। स गाधिर्नाम पुत्रः कौशिकोऽभवत् ।११।

श्री पराशरजी ने कहा—उस राजा पुरूरवा के छः पुत्र हुए जिनका नाम आयु, धीमान, अमावसु, श्रुतायु, शतायु और अयुतायु हुआ ।।१।। अमावसु का पुत्र भीम हुआ। भीम का कांचन, कांचन का सुहोत्र और सुहोत्र का पुत्र जह्नु हुआ, जिसकी सम्पूर्ण यज्ञशाला गंगाजल से आप्लावित हो गई थी, तब उसने क्रोध से लाल नेत्र करके भगवान् यज्ञ पुरुष को समाधि के द्वारा अपने में स्थापित कर लिया और फिर सम्पूर्ण गङ्गाजल का पान कर लिया ।।२-४।। तब देवर्षियों ने इन्हें प्रसन्न करके गंगाजी को इनका पुत्रीत्व भाव प्राप्त कराया ।।५-६।। उसी राजा जह्नु का पुत्र सुमंत हुआ ।।७।। सुमंत का अजक, अजक का बलाकाश्व, बलाकाश्व का कुश और कुश के चार पुत्र हुए कुशाम्ब, कुशनाभ, अधूर्त्तरजा और वसु ।।८।। उनमें से कुशाम्ब ने इन्द्र के समान पुत्र-प्राप्ति की कामना से तप किया ।।९।। उसकी उग्र तपस्या को देखकर बल में अपने समान होने की आशंका से इन्द्र स्वयं ही कुशाम्ब के यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।।१०।। उस पुत्र का नाम 'गाधि' हुआ जो बाद में 'कौशिक' कहलाया ।।११।।

गाधिश्च सत्यवतीं कन्यामजनयत् ।१२। तां च भार्गव ऋचीको वव्रे ।१३। गाधिरप्यतिरोषणायातिवृद्धाय ब्राह्मणाय दातुमनिच्छन्नेकतश्श्यामकर्णानामिन्दुवर्चसामनिलरंहसामश्वानां सहस्रं कन्याशुल्कमयाचत ।१४। तेनाप्यृषिणा वरुणसकाशादुपलभ्याश्वतीर्थोत्पन्नं तादृशमश्वसहस्रं दत्तम् ।१५।

ततस्तामृचीकः कन्यामुपयेमे ।१६। ऋचीकश्च तस्याश्चरुमपत्यार्थं चकार ।१७। तत्प्रसादितश्च तन्मात्रे क्षत्रवरपुत्रोत्पत्तये चरुमपरं साधयामास ।१८। एष चरुर्भवत्या अयमपरश्चरुस्त्वन्मात्रा सम्यगुपयोज्य इत्युक्त्वा वनं जगाम ।१९।

गाधि के सत्यवती नाम की कन्या हुई जो भृगुपुत्र ऋचीक को व्याही गई ।।१२-१३।। गाधि ने अत्यन्त क्रोधी तथा वृद्ध ब्राह्मण को कन्या न देने के विचार से ऋचीक से कन्या के बदले मे चन्द्रमा जैसे तेजस्वी और पवन के समान वेग वाले एक हजार श्यामकर्ण अश्वो की माग की ।।१४।। इस प्रकार ऋचीक ने अश्वतीर्थ से उत्पन्न वैसे ही गुण वाले एक हजार अश्व वरुण से लेकर गाधि को दे दिये ।१५। फिर उस कन्या से ऋचीक ऋषि का विवाह हुआ ।।१६।। कालान्तर में सन्तान की कामना करते हुए ऋचीक ने सत्यवती के लिये चरु सिद्ध किया ।।१७।। और उस सत्यवती द्वारा प्रसन्न किये जाने पर महर्षि ऋचीक ने एक क्षत्रिय श्रेष्ठ पुत्र की उत्पत्ति के निमित्त एक चरु उसकी माता के लिये सिद्ध किया ।१८। फिर 'यह चरु तुम्हारे लिये और यह दूसरा चरु तुम्हारी माता के लिये है' यह निर्देश करते हुये महर्षि वन को चले गये ।।१९।।

उपयोगकाले च तां माता सत्यवतीमाह ।२०। पुत्रि सर्व एवात्मपुत्रमतिगुणमभिलपति नात्मजायाभ्रातृगुणेष्वतीवादृतो भवतीति ।२१। अतोऽर्हसि ममात्मीयं चरुं दातु मदीय चरुमात्मनोपयोक्तुम् ।२२। मत्पुत्रेण हि सकलभूमण्डलपरिपालनं कार्य कियद्वा ब्राह्मणस्य बलवीर्यसम्पदेत्युक्ता सा स्वचरुं मात्रे दत्तवती ।२३।

चरुओ के उपयोग के समय सत्यवती की माता ने उससे कहा कि—हे बेटी ! अपने लिये सभी सब से अधिक गुण वाले पुत्र की इच्छा करते है, अपनी भार्या के भ्राता के अधिक गुणवान् होने मे किसी की विशेष कामना नही होती ।।२०-२१।। इसलिये तू अपना चरु मुझे देकर मेरा चरु तू ले ले, क्योकि मेरे जो पुत्र होगा, उसे सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करनी पड़ेगी और तेरे पुत्र ब्राह्मण कुमार को बल वीर्य और सम्पत्ति का करना ही क्या है ? माता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सत्यवती ने अपना चरु उसे दे दिया ।।२२-२३।।

अथ वनादागत्य सत्यवतीमृषिरपश्यत् ।२४। आह चैनामतिपापे किमिदमकार्यं भवत्या कृतम् अतिरौद्रं ते वपुर्लक्ष्यते ।२५। नूनं त्वया त्वन्मातृसात्कृतश्चरुरुपयुक्तो न युक्तमेतत् ।२६। मया हि तत्र चरौ सकलैश्वर्यवीर्यशौर्यबलसम्पदारोपिता त्वदीयचरावप्यखिलशान्तिज्ञानतिति-

क्षादिब्राह्मणगुणसम्पत् ।२७। तच्च विपरीत कुर्वंत्यास्तवातिरौद्रास्त्रधारणपालननिष्ठ क्षत्रियाचार पुत्रो भविष्यति तस्याश्चोपश मरुचिर्ब्राह्मणाचार इत्याकर्ण्यैव सा तस्य पादौ जग्राह ।२८। प्रणिपत्य चैनमाह ।२९। भगवन्मयैतदज्ञानादनुष्ठित प्रसाद मे कुरु मैवविध पुत्रो भवतु काममेवविध पौत्रो भवत्वित्युक्ते मुनिरप्याह ।३०। एवमस्त्विति।३१।

महर्षि ने वन से लौटकर जब अपनी पत्नी को देखा, तब उससे बोले—अरी दुर्मति पापिनी ! तू यह क्या अकार्य कर बैठी है, जिसके कारण तेरा शरीर अत्यन्त भयङ्कर लगने लगा है ।।२४-२५।। तूने निश्चय ही अपनी माता के लिये बने हुये चरु का उपयोग कर लिया है जो तेरे लिए उचित नहीं था ।।२६।। मैंने उसमे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के साथ पराक्रम, शौय, बल आदि को स्थापित किया था और तेरे चरु मे शान्ति, ज्ञान, तितिक्षादि सभी ब्राह्मणोचित गुणो का आरोपण किया था ।।२७।। परन्तु उन चरुओ के विपरीत उपयोग से तेरे अत्यन्त भयङ्कर शस्त्राओ का धारण करने वाला क्षत्रियोचित आचरण युक्त पुत्र उत्पन्न होगा और तेरी माता के ब्राह्मणोचित आचरण वाला शान्ति प्रिय पुत्र की उत्पत्ति होगी । यह सुनकर सत्यवती ने महर्षि के चरण पकड लिये और प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा ।।२८-२९।। हे भगवन् ! मुझसे अज्ञानवश ही ऐसा हो गया है, इसलिये प्रसन्न हूजिये । मेरा पुत्र इस प्रकार का न हो, चाहे पौत्र वैसा हो जाय इस पर ऋषि ने 'एवमस्तु' कहा ।।३० ३१।।

अनन्तर च सा जमदग्निमजीजनत् ।३२। तन्माता च विश्वामित्र जनयामास ।३३। सत्यवत्यपि कौशिकी नाम नद्यभवत् ।३४।

जमदग्निरिक्ष्वाकुवशोद्भवस्य रेणोस्तनया रेणुकामुपयेमे ।३५। तस्या चाशेपक्षत्रहन्तार परशुरामसज्ञ भगवतस्सकललोकगुरोर्नारायणस्याश जमदग्निरजीजनत् ।३६। विश्वामित्रपुत्रस्तु भार्गव एव शुनश्शेपो देवैर्दत्त ततश्च देवरातनामाभवत् ।३७। ततश्चान्ये मधुच्छन्दोधनञ्जयकृतदेवाष्टककच्छपहारीतकाख्या विश्वामित्रपुत्रा बभूवु ।३८। तेषां च बहूनि कौशिकगोत्राणि ऋष्यन्यन्तरेषु विवाह्यन्यभवन् ।३९।

फिर सत्यवती के उदर से जमदग्नि ने और उसकी माता से विश्वामित्र ने जन्म लिया। फिर सत्यवती कौशिकी नाम की नदी होकर प्रवाहित हो गई ॥३२-३४॥ इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए रेणुका से जमदग्नि का विवाह हुआ ॥३५॥ जमदग्नि ने उसमें सम्पूर्ण क्षत्रियों का विनाश करने वाले भगवान् परशुराम को उत्पन्न किया, जो लोक गुरु नारायण के अंश भूत थे ।३६। देवगण ने भृगुवंशी शुनःशेप विश्वामित्रजी को पुत्र रूप में प्रदान किया, इसलिये बाद में उसका नाम देवरात पड़ गया। उसके पश्चात् भी मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक, कच्छप, तथा हारीतक आदि अन्य अनेक पुत्र विश्वामित्र जी के हुए। ॥३७-३८॥ उन पुत्रों से अन्यान्य ऋषिवंशों में विवाहे हो जाने योग्य अनेक कौशिक गोत्रीय उत्पन्न हुए ॥३९॥



आठवाँ अध्याय

पुरूरवसो ज्येष्ठ पुत्रो यस्त्वायुर्नामा स राहोर्दुहितरमुपयेमे ।१। तस्यां च पञ्च पुत्रानुत्पादयामास ।२। नहुषक्षत्रवृद्धरम्भरजिसंज्ञास्तथैवानेना पञ्चम पुत्रोऽभूत् ।३। क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रः पुत्रोऽभवत् ।४। काश्यकाशगृत्समदास्त्रयस्तस्य पुत्रा बभूवु ।५। गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताभूत् ।६।

काश्यस्य काशेय काशिराज. तस्माद्राष्ट्रः राष्ट्रस्य दीर्घतपाः पुत्रोऽभवत् ।७। धन्वन्तरिस्तु दीर्घतपसः पुत्रोऽभवत् ।८। स हि संसिद्धकार्यकरणः सकलसम्भूतिष्वशेषज्ञानविद् भगवता नारायणेन चातीतसम्भूतौ तस्मै वरो दत्त ।९। काशिराजगोत्रेऽवतीर्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि यज्ञभागभुग्भविष्यसीति ।१०।

रजि और अनेना नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२-३॥ क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र हुआ और सुहोत्र के तीन पुत्र हुए, जिनके नाम काश्य, काश और गृत्समद थे। गृत्समद का पुत्र शौनक चारो वर्णों का प्रवर्तक हुआ ॥४-६॥ काश्य का पुत्र काशी नरेश काशेय हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र और राष्ट्र का दीर्घतपा तथा दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि हुआ ॥७-८॥ यह धन्वन्तरि जरादि विकारो से रहित देह और इन्द्रिय वाला तथा सभी जन्मो मे सर्व शास्त्र ज्ञाता हुआ था। भगवान् नारायण ने उसे पूर्व जन्म मे यह वर प्रदान किया था कि तुम काशिराज के वंश मे उत्पन्न होकर आयुर्वेद के आठ भाग करोगे और यज्ञ-भाग के भोक्ता बनोगे ॥९-१०॥

तस्य च धन्वन्तरेः पुत्रः केतुमान् केतुमतो भीमरथस्तस्यापि दिवोदासस्तस्यापि प्रतर्दनः ।११। स च मद्रश्रेण्यवंशविनाशनादशेषशत्रवोऽनेन जिता इति शत्रुजिदभवत् ।१२। तेन च प्रीतिमतात्मपुत्रो वत्स वत्सेत्यभिहितो वत्सोऽभवत् ।१३। सत्यपरतया ऋतध्वजसंज्ञामवाप ।१४। ततश्च कुवलयनामानमश्वं लेभे ततः कुवलयाश्व इत्यस्या पृथिव्यां प्रथितः ।१५। तस्य च वत्सस्य पुत्रोऽलर्कनामाभवद् यस्यायमद्यापि श्लोको गीयते ।१६।

धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् हुआ। केतुमान् का भीमरथ और भीमरथ का दिवोदास हुआ। दिवोदास के पुत्र का नाम प्रतर्दन रखा गया ॥११॥ प्रतर्दन ने मद्रश्रेण्य वंश का विध्वंस करके सब बैरियो को जीत लिया था इसलिए वह शत्रुजित् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१२॥ अपने इस पुत्र को दिवोदास स्नेह वश 'वत्स ! वत्स' कह कर पुकारा था, इसलिये यह वत्स भी कहलाया ॥१३॥ अत्यन्त सत्य परायण होने कारण—इसे ऋतुध्वज भी कहने लगे ॥१४॥ फिर इसे कुवलय नामक अपूर्व अश्व की प्राप्ति हुई, इसलिये यह कुवलयाश्व के नाम से विख्यात हुआ ।१५। इस वत्स नामक राजा का पुत्र अलर्क हुआ, जिसके विषय मे यह श्लोक अब तक कीर्तन किया जाता है ॥१६॥

षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिर्वर्षशतानि च। अलर्कादपरो नान्यो बुभुजे मेदिनी युवा ।१७।

तस्याप्यलर्कस्य सन्नतिनामाभवदात्मज ।१८। सन्नते सुनीथ-स्तस्यापि सुकेतुस्तस्माच्च धर्मकेतुर्यज्ञे ।१९। ततश्च सत्यकेतुस्तस्माद्विभु-स्तत्तनयस्सुविभुस्ततश्च सुकुमारस्तस्यापि धृष्टकेतुस्ततश्च वीतिहोत्र-स्तस्माद्भार्गो भार्गस्य भार्गभूमिस्ततश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिरित्येते काश्यभूभृत कथिता ।२०। रजेस्तु सन्तति श्रूयताम् ।२१।

पूर्वकाल मे अलर्क के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति ने छियासठ हजार वर्ष तक युवावस्था मे स्थित रह कर पृथिवी को नही भोगा ।।१७।। अलर्क का पुत्र सन्नति हुआ । सन्नति का सुनीथ और सुनीथ का सुकेतु हुआ । सुकेतु का धर्मकेतु धर्मकेतु का सत्यकेतु और सत्यकेतु का पुत्र विभु हुआ । विभु से सुविभू की उत्पत्ति हुई । सुविभु से सुकुमार और सुकुमार से धृष्टकेतु हुआ । धृष्ट-केतु का पुत्र वीतिहोत्र, वीतिहोत्र का भार्ग और भार्ग का पुत्र भार्गभूमि हुआ, जिसने चार वर्णों को प्रवृत्त किया । इस प्रकार यह काश्यवंशीय राजाओं का वृत्तान्त कहा गया, अब रजि की सन्तान का वर्णन श्रवण करो ।।१८-२१।।



नवाँ अध्याय

रजेस्तु पञ्च पुत्रशतान्यतुलबलपराक्रमसाराण्यासन् ।१। देवासुरसंग्रामारम्भे च परस्पर वधेप्सवो देवाश्चासुराश्च ब्रह्माणमुपेत्य पप्रच्छु ।२। भगवन्नस्माकमत्र विरोधे कतर पक्षो जेता भविष्यतीति ।३। अथाह भगवान् ।४। येषामर्थे रजिरात्तायुधो योत्स्यति तत्पक्षो जेतेति ।५।

अथ दैत्यैरुपेत्य रजिरात्मसाहाय्यदानायाभ्यर्थित प्राह ।६। योत्स्येऽह भवतामर्थे यद्यहममरजयाद्भवतामिन्द्रो भविष्यामीत्याकर्ण्य-तत्तैरभिहितम् ।७। न वयमन्यथा वदिष्यामोऽन्यथा करिष्यामोऽस्मा-कमिन्द्र प्रह्लादस्तदर्थमेवायमुद्यम इत्युक्त्वा गतेष्वसुरेषु देवैरप्य-साववनिपतिरेवमेवोक्तस्तेनापि च तथैवोक्ते देवैरिन्द्रस्त्व भविष्यसीति समन्वीप्सितम् ।८।

श्री पराशर जी ने कहा—रजि के अत्यन्त बली और पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥१॥ एक बार देवासुर-संग्राम का आरम्भ होने पर परस्पर मे मारने की इच्छा करते हुए देवताओ और दैत्यों ने ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे प्रश्न किया—हे भगवन् ! हमारे पारस्परिक कलह में किस पक्ष की विजय होगी ? ॥२-३॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि राजा रजि शस्त्र धारण पूर्वक जिसके पक्ष में युद्ध करेगा वही पक्ष जीतेगा ॥४-५॥

यह सुन कर दैत्यगण ने राजा रजि के पास जाकर उनसे सहायता माँगी, इस पर उन्होंने कहा कि यदि देवताओ पर विजय प्राप्त करके मैं दैत्यों का इन्द्र हो सकता हूँ तो अवश्य ही आपके पक्ष मे युद्ध करने को तैयार हूँ। ॥६-७॥ यह सुन कर दैत्य गण ने उनसे कहा—हे राजन् ! हम जो यह देते हैं, उससे विपरीत आचरण कभी नही करते । हमारे इन्द्र प्रह्लाद हैं और उन्ही के लिये हम इस सग्राम मे तत्पर हुए हैं। इतना कह कर दैत्य गण वहाँ से चले गये । तब देवताओ ने वहाँ आकर उनसे वैसी ही प्रार्थना की, जिसे सुन-कर उन्होंने जो कुछ दैत्यो से कहा था, वही सब देवताओ से कह दिया । तब देवताओ ने उनकी बात स्वीकार करते हुए कहा—अच्छी बात है, आप ही हमारे इन्द्र होगे ॥८॥

रजिनापि देवसैन्यसहायेनानेकैर्महास्त्रैस्तदशेषमहासुरबलं निषूदितम् ।६। अथ जितारिपक्षश्च देवेन्द्रो रजिचरणयुगलमात्मनः शिरसा निपीड्याह ।१०। भयत्राणादन्नदानाद्भवानस्मत्पिताशेपलोकानामुत्तमोत्तमो भवान् यस्याहं पुत्रस्त्रिलोकेन्द्रः ।११। स चापि राजा प्रहस्याह ।१२। एवमस्त्वेवमस्त्वनतिक्रमणीया हि वैरिपक्षादप्यनेकविधचाटुवाक्यगर्भा प्रणतिरित्युक्त्वा स्वपुरं जगाम ।१३।

शतक्रतुरपीन्द्रत्व चकार ।१४। स्वर्याते तु रजौ नारदर्षिचोदिता रजिपुत्रास्शतक्रतुमात्मपितृपुत्र समाचाराद्राज्यं याचितवन्तः ।१५। अप्रदानेन च विजित्येन्द्रमतिबलिनः स्वयमिन्द्रत्व चक्रुः ।१६।

इस प्रकार राजा रजि ने देवताओ की सहायता की और युद्ध भूमि मे उपस्थित होकर अपने महान् अस्त्रो से दैत्यो की सम्पूर्ण सेना का सहार कर

डाला ॥९॥ जब शत्रु-पक्ष पर विजय प्राप्त हो गई, तब देवराज इन्द्र ने महाराज रजि के दोनो चरणो को अपने शिर पर धारण करके कहा ॥१०॥ हे राजन् ! भय से बचाने और अन्न-दान करने के कारण आप हमारे पिता के समान हैं क्योकि आप तीनो लोको मे सर्वोत्कृष्ट है, इसलिए मैं तीनो लोको का इन्द्र आपका पुत्र ही हूँ ॥११॥ इस पर राजा ने हँसते हुए कहा—ऐसा ही हो ! क्योकि शत्रु-पक्ष का भी अनेक प्रकार की चाटुकारिता पूर्ण प्रार्थनाओ को मान लेना ही उचित समझा जाता है। यह कह कर राजा रजि अपने नगर को चले गये ॥१२-१३॥ इस प्रकार शतक्रतु इन्द्र ही इन्द्र पद पर बना रहा। फिर जब राजा रजि की मृत्यु हो गई, तब देवर्षि नारद जी की प्रेरणा से उसके पुत्रो ने अपने पिता के पुत्र-भाव को प्राप्त हुए इन्द्र से स्वर्ग के राज्य की माँग की और जब इन्द्र ने उन्हे राज्य न दिया, तब उन रजि पुत्रो ने इन्द्र पर आक्रमण करके उसे जीत लिया और स्वय ही इन्द्र पद पर अभिषिक्त होकर स्वर्ग का राज्य भोगने लगे ॥१४-१६॥

ततश्च बहुतिथे काले ह्यतीते बृहस्पतिमेकान्ते दृष्ट्वा अपहृतत्रै-लोक्ययज्ञभाग शतक्रतुरुवाच ।१७। बदरीफलमात्रमप्यर्हसि ममाप्यायनाय पुरोडाशखण्ड दातुमित्युक्तो बृहस्पतिरुवाच ।१८। यद्येव त्वयाह पूर्वमेव चोदितस्स्या तन्मया त्वदर्थ किमकर्त्तव्यमित्यल्पैरेवाहोभिस्त्वा निज पद प्रापयिष्यामीत्यभिधाय तेपामनुदिनमाभिचारिक बुद्धिमोहाय शक्रस्य तेजोऽभिवृद्धये जुहाव ।१९। ते चापि तेन बुद्धिमोहेनाभिभूयमाना ब्रह्मद्विपो धर्मत्यागिनो वेदवादपराङ्मुखा बभूवु ।२०। ततस्तानपेत-धर्माचारानिन्द्रो जघान ।२१। पुरोहिताप्यायिततेजाश्च शक्रो दिवमाक्रमत् ।२२।

एतदिन्द्रस्य स्वपदच्यवनादारोहण श्रुत्वा पुरुष स्वपदभ्र श दौरात्म्य च नाप्नोति ।२३।

फिर जब बहुत काल व्यतीत हो गया, तब एक दिन अपने गुरु बृहस्पति जी को एकान्त मे बैठे हुए देख कर त्रैलोक्य के यज्ञ-भाग से वंचित हुए

इन्द्र ने उनके प्रति कहा—क्या मेरी तृप्ति के लिये मुझे आप बदरीफल के बराबर भी पुरोडाश का अ श दे सकते हैं ? यह सुन कर वृहस्पति जी बोले ।।१७-१८।। यदि तुम यह चाहते थे तो तुमने मुझे पहिले ही क्यों नहीं बताया ? तुम्हारे लिये मुझे अकर्त्तव्य क्या है ? अब मैं कुछ ही समय में तुम्हें तुम्हारे पद पर बिठा दूंगा। यह कह कर वृहस्पतिजी ने रजि के पुत्रों की बुद्धि को भ्रमित करने के लिये अभिचार कर्म और इन्द्र के तेज को बढ़ाने के लिये भजन करना आरम्भ किया ।।१९।। बुद्धि को मोहित कर देने वाले उस अभिचार कर्म के प्रभाव वश रजि-पुत्रों ने ब्राह्मणों से द्वेष, धर्म का परित्याग और वैदिक कर्मों से विमुखता आरम्भ की ।।२०।। इसके पश्चात् धर्माचरण से हीन हुए उन रजि पुत्रों का इन्द्र ने वध कर दिया ।।२१।। देव पुरोहित वृहस्पति जी के द्वारा उसकी तेजोवृद्धि की जाने पर ही इन्द्र इस प्रकार स्वर्ग पर अधिकार करने में समर्थ हुआ ।।२२।। अपने इन्द्र पद से पतित हुए इन्द्र के उस पुनः आरूढ होने वाले इस प्रसग को जो पुरुष श्रवण करता है, वह अपने पद से कभी नहीं गिरता और न उसमें कभी दौरात्म्य का ही प्रवेश होता है ।।२३।।

रम्भस्त्वनपत्योऽभवत् ।२४। क्षत्रवृद्धसुत. प्रतिक्षत्रोऽभवत् ।२५। तत्पुत्रः सञ्जयस्तस्यापि जयस्तस्यापि विजयस्तस्माच्च जज्ञे कृतः ।२६। तस्य च हर्यधनो हर्यधनसुतस्सहदेवस्तस्माददीनस्तस्य जयत्सेनस्ततश्च सस्कृतिस्तत्पुत्र. क्षत्रधर्मा इत्येते क्षत्रवृद्धस्य वंश्याः ।२७। ततो नहुषवश प्रवक्ष्यामि ।२८।

आयु-पुत्र रम्भ के कोई सन्तान नहीं थी ।।२४।। क्षत्रवृद्ध का जो पुत्र हुआ, उसका नाम प्रतिक्षत्र था। प्रतिक्षत्र का पुत्र सजय, सजय का जय, जय का विजय और विजय का पुत्र कृत हुआ। कृत का हर्यधन, हर्यधन का सहदेव, सहदेव का अदीन और उसका पुत्र जयत्सेन हुआ। जयत्सेन के पुत्र का नाम सम्कृति और संकृति का पुत्र क्षत्रधर्मा हुआ। ये सभी क्षत्रवृद्ध के वंशज हुए। अब मैं नहुषवश के विषय में कहूँगा ।।२५-२८।।



दसवाँ अध्याय

यतिययातिसंयात्यायातिवियातिकृतिसंज्ञा नहुषस्य षट् पुत्रा महाबलपराक्रमा बभूवुः ।१। यतिस्तु राज्यं नैच्छत ।२। ययातिस्तु भूभृदभवत् ।३। उशनसश्च दुहितरं देवयानी वार्षपर्वणीं च शर्मिष्ठामुपयेमे ।४। अत्रानुवंशश्लोको भवति ।५।

यदु च दुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्यु चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।६।

श्री पराशर जी ने कहा—नहुष के छः हुए, उन महान् बल विक्रमशालियों का नाम यति, ययाति, सयाति, आयाति, वियाति और कृति था ।।१।। यति को राज्यपद की कामना नहीं थी, इसलिये ययाति ही राज्यपद कर अभिषिक्त हुआ ।।२-३।। ययाति शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा का पाणिग्रहण किया ।।४।। उनका वंश-विषयक यह श्लोक प्रचलित है—देवयानी के उदर से यदु और दुर्वसु तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु, और पूरु उत्पन्न हुए ।।५-६।।

काव्यशापाच्चाकालेनैव ययातिर्जरामवाप ।७। प्रसन्नशुक्रवचनाच्च स्वजरां सङ्क्रामयितुं ज्येष्ठं पुत्रं यदुमुवाच ।८। वत्स त्वन्मातामहशापादियमकालेनैव जरा ममोपस्थिता तामहं तस्यैवानुग्रहाद्भवतस्सञ्चारयामि ।९। एकं वर्षसहस्रमतृप्तोऽस्मि विषयेषु त्वद्वयसा विषयानहं भोक्तुमिच्छामि ।१०। नात्र भवता प्रत्याख्यानं कर्त्तव्यमित्युक्तस्स यदुर्नेच्छत्तां जरामादातुम् ।११। तं च पिता शशाप त्वत्प्रसूतिः राज्यार्हा भविष्यतीति ।१२।

शुक्राचार्य जी के शाप के कारण ययाति को असमय में ही बुढ़ापा आ गया ।।७।। कालान्तर में जब शुक्राचार्य जी प्रसन्न हो गये तब उनके कहने से ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से उस वृद्धावस्था को ग्रहण करने के लिये कहा ।।८।। हे पुत्र ! मैं तुम्हारे नानाजी के शाप से असमय में ही वृद्ध हो गया हूँ, अब उनकी ही कृपा मुझे प्राप्त हुई है, जिसके कारण वह वृद्धावस्था मैं अब तुम्हें देना चाहता हूँ ।।९।। विषयों के भोग में

अभी मेरी तृप्ति नहीं हो पाई है, इसलिए मैं तुम्हारी युवावस्था का उपभोग एक हजार वर्ष तक करना चाहता हूँ ॥१०॥ तुम्हें इस विषय में कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पिता की ऐसी आज्ञा सुन कर भी यदु ने अपने पिता की वृद्धावस्था ग्रहण करने की इच्छा नहीं की ॥११॥ यह देख कर पिता ने उसे शाप दिया कि तेरी सन्तति राज्याधिकार से वंचित होगी ॥१२॥

अनन्तरं च तुर्वसुं द्रुह्युमनुं च पृथिवीपतिर्जरापहरणार्थं स्वयौवनप्रदानाय चाभ्यर्थयामास ॥१३॥ तैरप्येकैकेन प्रत्याख्यातस्तान्शशाप ॥१४॥ अथ शर्मिष्ठातनयमशेषकनीयांसं पूरुं तथैवाह ॥१५॥ स चातिप्रवणमति सबहुमानं पितरं प्रणम्य महाप्रसादोऽयमस्माकमित्युदारमभिधाय जरां जग्राह ॥१६॥ स्वकीयं च यौवनं स्वपित्रे ददौ ॥१७॥

सोऽपि यौवनमासाद्य धर्माविरोधेन यथाकामं यथाकालोपपन्नं यथोत्साहं विषयांश्चचार ॥१८॥ सम्यक् च प्रजापालनमकरोत् ॥१९॥ विश्वाच्या देवयान्या च सहोपभोगं भुक्त्वा कामानामन्तं प्राप्स्यामीत्यनुदिनं तन्मनस्को बभूव ॥२०॥ अनुदिनं चोपभोगतः कामानतिरम्यान्मेने ॥२१॥ ततश्चैवमगायत ॥२२॥

अनेक प्रकार के सुखो का उपभोग करते हुए अपनी कामनाओ को समाप्त करने की बात सोचते सोचते अनमने से रहने लगे ॥२०॥ निरन्तर अपने इच्छित विषयो के भोगते रहने से उन कामनाओ मे ही उनकी प्रीति बढ़ती गई तब उन्होंने इस प्रकार कहा ॥२१-२२॥

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ।२३।
यत्पृथिव्या व्रीहियव हिरण्य पशव स्त्रिय ।
एकस्यापि न पर्याप्त तस्मात्तृष्णा परित्यजेत् ।२४।
यदा न कुरुते भाव सर्वभूतेषु पापकम् ।
समदृष्टेस्तदा पु स सर्वास्सुखमया दिश ।२५।
या दूस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यत ।
ता तृष्णा सन्त्यजेत्प्राज्ञस्सुखेनेवाभिपूर्यते ।२६।
जीर्यन्ति जीर्यत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत ।
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यत ।२७।
पूर्णं वर्षसहस्र मे विषयासक्तचेतस ।
तथाप्यनुदिन तृष्णा मम तेषूपजायते ।२८।
तस्मादेतामह त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यमि मृगैस्सह ।२९।

भोगो के भोगते रहने से उनकी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती, किन्तु आज्याहुति से प्रवृद्ध होने वाल अग्नि के समान निरन्तर बढ़ती जाती है ॥२३॥ भूमण्डल पर जितने भी धा य, जौ, स्वर्ण पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्य के लिये भी तृप्त नही कर सकते, इसलिय इस तृष्णा का सर्वथा त्याग करना चाहिए ॥२४॥ जब कोई पुरुष किसी भी प्राणी के प्रति पापमयी दृष्टि नही रखता तब उस समदर्शी के लिए दिशायें आनन्ददायिनी हो जाती हैं ॥२५॥ जो तृष्णा खोटी बुद्धि वालो के लिये अत्यन्त कठिनाई पूर्वक त्यागी जा सकती है और जो वृद्धावस्था म भी शिथिलता को प्राप्त नही होती, उसी

तृष्णा को त्याग कर बुद्धिमान पुरुष पूर्ण रूप से सुखी हो जाता है ॥२६॥ जीर्णावस्था के प्राप्त होने पर बाल और दाँत जो जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु उनके जीर्ण होने पर भी धन और जीवन की आशा जीर्ण नहीं हो पाती ॥२७॥ इन विषयों में आसक्त रहते हुए मेरे एक हजार वर्ष व्यतीत होगये, फिर भी उनके प्रति नित्य ही इच्छा रहती है। इसलिये, अब मैं इसको त्याग कर अपने चित्त को ब्रह्म में लगाऊँगा और निर्द्वन्द्व तथा निर्मम होकर मृगों के साथ विचरण करूँगा ॥२८-२९॥

पूरोस्सकाशादादाय जरां दत्वा च यौवनम् ।
राज्येऽभिषिच्य पूरुं च प्रययौ तपसे वनम् ।३०।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं च समादिशत् ।
प्रतीच्यां च तथा द्रुह्युं दक्षिणायां ततो यदुम् ।३१।
उदीच्यां च तथैवानुं कृत्वा मण्डलिनो नृपान् ।
सर्वपृथ्वीपतिं पूरुं सोऽभिषिच्य वनं ययौ ।३२।

श्री पराशरजी ने कहा—इसके अनन्तर राजा ययाति ने पूरु से अपनी वृद्धावस्था वापिस लेकर उसकी युवावस्था उसे लौटा दी और उसका राज्याभिषेक कर स्वयं वन को चले गये ॥३०॥ उन्होंने दक्षिण-पूर्व में तुर्वसु, पश्चिम में द्रुह्यु, दक्षिण में यदु और उत्तर में अनु को माण्डलिक राज्य दिया और पूरु को समस्त पृथिवी के राज्यपद पर अभिषिक्त कर स्वयं वन के लिये चल दिये ॥३१-३२॥



ग्यारहवाँ अध्याय

अतः परं ययातेः प्रथमपुत्रस्य यदोर्वंशमहं कथयामि ।१। यत्राशेषलोकनिवासो मनुष्यसिद्धगन्धर्वयक्षराक्षसगुह्यककिंपुरुषाप्सरउरगविहगदैत्यदानवादित्यरुद्रवस्वश्विमरुद्देवर्षिभिर्मुमुक्षुभिर्धर्मार्थकाममो-

क्षार्थिभिश्च तत्तत्फललाभाय सदाभिष्टुतोऽपरिच्छेद्यमाहात्म्यांशेन भगवाननादिनिधनो विष्णुरवततार ।२। अत्र श्लोक ।३। यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म निराकृति ।४।

सहस्रजित्क्रोष्टुनलनहुषसंज्ञाश्चत्वारो यदुपुत्रा बभूवुः ।५। सहस्रजित्पुत्रश्शतजित् ।६। तस्य हैहयहेहयवेणुहयाख्यः पुत्रा बभूवुः ।७। हैहयपुत्रो धर्मस्तस्यापि धर्मनेत्रस्ततः कुन्तिः कुन्तेः सहजित् ।८। तत्तनयो महिष्मान् योऽसौ माहिष्मती पुरी निवासयामास ।६।

श्री पराशर जी ने कहा—अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश तुमसे कहता हूँ ॥१॥ जिस वंश में मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, अप्सरा, उरग, विहग, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र, वसु, अश्विनीद्वय, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षुजन और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के अभिलाषीजनों द्वारा सदा स्तुत होने वाले सकल विश्व के आश्रय, आदि अन्त से रहित भगवान् विष्णु ने अवतार धारण किया था ॥२॥ इस विषय में यह श्लोक कहा जाता है ॥३॥ जिस वंश में श्रीकृष्ण नामक निराकार परब्रह्म अवतीर्ण हुये थे, उस यदुवंश को सुनने से सभी पापों से छुटकारा मिलता है ॥४॥ यदु के चार पुत्र हुए, सहस्रजित, क्रोष्टु, नल और नहुष उनके नाम थे। सहस्रजित का पुत्र शतजित् और शतजित् के हैहय, हेहय और वेणुहय नामक तीन पुत्र हुए ॥५-७॥ हैहय का पुत्र धर्म हुआ, धर्म का धर्मनेत्र, धर्मनेत्र का कुन्ति, कुन्ति का सहजित् और सहजित् का पुत्र महिष्मान् हुआ, जिसने माहिष्मतीपुरी को बसाया था ॥८-९॥

तस्माद्भद्रश्रेण्यस्ततो दुर्दमस्तस्माद्धनको धनकस्य कृतवीर्यकृताग्निकृतधर्मकृतौजसश्चत्वारः पुत्रा बभूवुः ।१०। कृतवीर्यादर्जुनस्सप्तद्वीपाधिपतिर्बाहुसहस्रो जज्ञे ।११। योऽसौ भगवदशमत्रिकुलप्रसूत दत्तात्रेयाख्यमाराध्य बाहुसहस्रमधर्मसेवानिवारणं स्वधर्मसेवित्वं रणे पृथिवीजयं धर्मतश्चानुपालनमरातिभ्योऽपराजयमखिलजगत्प्रख्यातपुरुषाच्च मृत्युमित्येतान्वरानभिलषितवाँल्लेभे च ।१२। तेनेयमशेषद्वीप-

वती पृथिवी सम्यक्परिपालिता ।१३। दशयज्ञसहस्राण्यसावयजत् ।१४।
तस्य च श्लोकोऽद्यापि गीयते ।१५।

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा प्रश्रयेण श्रुतेन च ।१६।

अनष्टद्रव्यता च तस्य राज्येऽभवत् ।१७। एवं च पञ्चाशीतिवर्ष-
सहस्राण्यव्याहतारोग्यश्रीबलपराक्रमो राज्यमकरोत् ।१८।

महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्य का दुर्दम, दुर्दम का धनक और धनक के कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतधर्म और कृतौजा नाम चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०॥ कृतवीर्य का पुत्र सातों द्वीपों का अधिश्वर सहस्रबाहु अर्जुन हुआ ॥११॥ उसने अत्रिकुलोत्पन्न भगवान् के अंशरूप श्री दत्तात्रेयजी की आराधना कर हजार भुजायें, अधर्माचरण की शान्ति, अपने धर्म का सेवन, सग्राम द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय, धर्मानुसार प्रजापालन, शत्रुओं से अजेयता और अखिल जगत् प्रसिद्ध पुरुष के हाथ से मरण आदि अनेक वर प्राप्त किये थे ॥१२॥ उस अर्जुन ने इस सात द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करते हुए दस हजार यज्ञ किये थे ॥१३-१४॥ उसके विषय में यह श्लोक अब तक गाया जाता है ॥१५॥ यज्ञ, दान, तपस्या, विनम्रता और विद्या में कोई भी राजा कार्तवीर्य के समान नहीं हो सकता ॥१६॥ उसके राज्य काल में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं हुआ ॥१७॥ उसने बल, पराक्रम, आरोग्य और सम्पत्ति को भले प्रकार सुरक्षा—व्यवस्था पूर्वक पिचासी हजार वर्ष तक इस पृथिवी पर राज्य किया था ॥१८॥

माहिष्मत्यां दिग्विजयाभ्यागतो नर्मदाजलावगाहनक्रीडाति-
पानमदाकुलेनायत्नेनैव तेनाशेषदेवदैत्यगन्धर्वेशजयोद्भूतमदावलेपोऽपि
रावणः पशुरिव बद्ध्वा स्वनगरैकान्ते स्थापितः ।१९। यश्च पञ्चाशीति-
वर्षसहस्रोपलक्षणकालावसाने भगवन्नारायणांशेन परशुरामेणोपसंहृतः
।२०। तस्य च पुत्रशतप्रधानाः पञ्च पुत्रा बभूवुः शूरशूरसेनवृषसेन-
मधुजयध्वजसंज्ञाः ।२१।

जयध्वजात्तालजङ्घः पुत्रोऽभवत् ।२२। तालजङ्घस्य तालजङ्घाख्यं पुत्रशतमासीत् ।२३। एषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रस्तथान्यो भरतः ।२४। भरताद्वृषः ।२५। वृषस्य पुत्रो मधुरभवत् ।२६। तस्यापि वृष्णिप्रमुखं पुत्रशतमासीत् ।२७। यतो वृष्णिसञ्ज्ञामेतद्गोत्रमवाप ।२८। मधुसञ्ज्ञाहेतुश्च मधुरभवत् ।२९। यादवाश्च यदुनामोपलक्षणादिति ।३०।

एक दिन की बात है कि वह अत्यन्त मद्य-पान के कारण व्याकुल होकर नर्मदा के जल में क्रीड़ा कर रहा था, तभी सब देवता, दैत्य, गन्धर्व और राजाओं पर विजय प्राप्त करने के मद से उन्मत्त हुए दिग्विजय के अभिलाषी रावण ने उसकी राजधानी माहिष्मतीपुरी पर आक्रमण कर दिया, तब सहस्रार्जुन ने उसे अनायास ही पशु के समान बाँधकर अपनी पुरी के एक जन-हीन स्थान में डाल दिया ॥१९॥ पिचासी हजार वर्ष राज्य करने के उपरान्त भगवान नारायण के अंशावतार श्री परशुराम जी ने उसे मार दिया ॥२०॥ इसके सौ पुत्र थे, जिनमें शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु और जयध्वज प्रमुख हुए ॥२१॥ जयध्वज का पुत्र तालजंघ था, उसके सौ पुत्रों में सबसे बड़ा वीतिहोत्र और दूसरा भरत हुआ ॥२२-२४॥ भरत का पुत्र वृष हुआ, वृष का पुत्र मधु और मधु के सौ पुत्र हुए, जिनमें वृष्णि सबसे बड़ा था। उसी के नाम पर यह वंश 'वृष्णि' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२५-२८॥ मधु के कारण यह मधु संज्ञक हुआ और यदु के कारण इस वंश के पुरुष 'यादव' कहे जाने लगे ॥२९-३०॥



बारहवाँ अध्याय

क्रोष्टोस्तु यदुपुत्रस्यात्मजो ध्वजिनीवान् ।१। ततश्च स्वातिस्ततो रुशङ्कुः रुशङ्कोश्चित्ररथः ।२। तत्तनयश्शशिबिन्दुश्चतुर्दशमहारत्नेऽष्वेकवर्त्यभवत् ।३। तस्य च शतसहस्रं पत्नीनामभवत् ।४। दशलक्षसंख्याश्च पुत्राः ।५। तेषां च पृथुश्रवाः पृथुकर्मा पृथुकीर्तिः पृथुयशाः

नाहं प्रसूता पुत्रेण नान्या पत्न्यभवत्तव ।
स्नुषासम्बन्धता ह्येषा कतमेन सुतेन ते ।२९।

ऐसा विचार राजा ज्यामघ ने उस राज्यकन्या को अपने रथ पर चढाया और अपने नगर को चल दिये ॥-३॥ विजय प्राप्त करके लौटे हुए, राजा के दर्शनाथ अपने सब पुरजनों, सेवको कुटुम्बियो और मन्त्रियों के सहित रानी शैव्या स्वय राजद्वार पर उपस्थित थी ॥२४॥ उसने जैसे ही राजा के वामाङ्ग मे उस राज्यकन्या को बैठी हुई देखा, वैसे ही अत्यत क्रोध के कारण काँपते हुए अधरो से कहा ॥२५॥ हे चपलचित्त वाले महाराज ! आपने अपने रथ मे किसे बिठा रखा है ? ॥२६॥ यह सुन कर राजा को कोई उत्तर न सूझा और उसने भय पूर्वक कहा—यह मेरी पुत्र-वधू है ॥२७॥ इस पर शैव्या ने कहा—मेरे तो कभी कोई पुत्र ही नही हुआ और आपकी कोई अन्य पत्नी भी नही है, फिर यह आपकी पुत्र वधू किस प्रकार से हुई ? ॥२८-२९॥

इत्यात्मेर्ष्याकोपकलुपितवचनमुषितविवेको भयाद्दुरुक्तपरिहारार्थमिदमवनीपतिराह ।३०। यस्ते जनिष्यत आत्मजस्तस्येयमनागतस्यैव भार्या निरूपितेत्याकर्ण्योद्भूतमृदुहासा तथेत्याह ।३१। प्रविवेश च राज्ञा सहाधिष्ठानम् ।३२।

अनन्तर चातिशुद्धलग्नहोराशवावयवोक्तकृतपुत्रजन्मलाभगुणाद्वयस. परिणाममुपगतापि शैव्या स्वल्पैरेवाहोभिर्गर्भमवाप ।३३। कालेन च कुमारमजोजनत् ।३४। तस्य च विदर्भ इति पिता नाम चक्रे ।३५। स च ता स्नुषामुपयेमे ।३६। तस्या चासौ क्रथकैशिकसंज्ञौ पुत्रावजनयत् ।३७।

श्री पराशरजी ने कहा—रानी शैव्या के इन ईर्ष्या और क्रोध मिश्रित वचनो को सुनकर विवेकहीनता और भय के कारण कहे हुए अपन असम्बद्ध वचनो से उत्पन्न हुए सदेह को मिटाने के विचार से राजा ने कहा—मैंने तुम्हारे होने वाले पुत्र के लिए अभी से यह पत्नी निश्चित कर दी है । यह सुन कर रानी ने मुसकाते हुए मृदु शब्दो मे कहा—ऐसा ही हो । इसके पश्चात् राजा के साथ नगर मे प्रविष्ट हुई ॥३१-३२॥ इसके

पश्चात् पुत्र प्राप्ति के गुणों वाली उस अत्यन्त शुद्ध लग्न मे, होराशक अवयव के समय जो पुत्र-विषयक सम्भाषण हुआ था, उसके प्रभाव से, गर्भधारण योग्य अवस्था के निकल जाने पर भी शैब्या गर्भवती हो गई और समय प्राप्त होने पर उसके उदर मे पुत्र का जन्म हुआ ।।३३-३४।। पिता ने उसका नाम-करण करते हुए 'विदर्भ' सज्ञा दी ।।३५।। फिर उसी के साथ उस राजकन्या का विवाह हुआ ।।३६।। विदर्भ ने उससे क्रथ और कैशिक नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये ।।३७।।

पुनश्च तृतीय रोमपादसज्ञ पुत्रमजीजनद्यो नारदादवाप्तज्ञानवान-भवत् ।३८। रोमपादाद्बभ्रर्बभ्रोधृं तिधृं ते. कैशिक. कैशिकस्या प चेदिः पुत्रोऽभवद् यस्य सन्ततौ चैद्या भूपाला. ।३९।

क्रथस्य स्नुषापुत्रस्य कुन्तिरभवत् ।४०। कुन्तेर्धृं ष्टिधृं ष्टेर्निधृति-र्निधृतेर्दशार्हस्ततश्च व्योमा तस्यापि जीमूतस्ततश्च विकृतिस्ततश्च भीम-रथ तस्मान्नवरथस्तस्यापि दशरथस्ततश्च शकुनिः तत्तनय करम्भिः करम्भेर्देवरातोऽभवत् ।४१। तस्माद्देवक्षत्रस्तस्यापि मधुर्मधो कुमारवशः कुमारवशादनुरनो पुरुमित्र. पृथिवीपतिरभवत् ।४२। ततश्चाशुस्तस्मा-च्चसत्वत. ।४३। सत्वतादेते सात्वता ।४४। इत्येता ज्यामघस्य सन्तर्ति सम्यक्श्रद्धासमन्वित श्रुत्वा पुमान् मैत्रेय स्वपापै प्रमुच्यते ।४५।

सात्वत वंश का प्रारम्भ हुआ ।।४४।। हे मैत्रेयजी ! ज्यामघ की संतति के इस वर्णन को जो श्रद्धा सहित सुनता है, वह अपने सभी पापों से छूट जाता है।४५।



तेरहवाँ अध्याय

भजनभजमानदिव्यान्धकदेवावृधमहाभोजवृष्णिसंज्ञास्सत्वतस्य पुत्रा बभूवु ।१। भजमानस्य निमिकृकणवृष्णयस्तथान्ये द्वैमात्रा. शतजित्सहस्रजिदयुतजित्संज्ञास्त्रय. ।२। देवावृधस्यापि बभ्रु पुत्रोऽभवत् ।३। तयोश्चाय श्लोको गीयते ।४।

यथैव श्रृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ।
बभ्रु श्रेष्ठो मनुष्याणा देवैर्देवावृधस्सम ।५।
पुरुषा षट् च षष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ।
तेऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।६।

महाभोजस्त्वतिधर्मात्मा तस्यान्वये भोजा मृत्तिकावरपुरनिवासिनो मार्तिकावरा बभूवु ।७। वृष्णे सुमित्रो युधाजिच्च पुत्रावभूताम् ।८। ततश्चानमित्रस्तथानमित्राच्छिघ्न ।९। निघ्नस्य प्रसेनसत्राजितौ ।१०। तस्य च सत्राजितो भगवानादित्य. सखाभवत् ।११।

श्रीपराशरजी ने कहा—सत्वत के पुत्रो के नाम भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज और वृष्णि थे ।।१।। भजमान् के छः पुत्र हुए—निमि, कृकण और वृष्णि तथा इनके विमाता-पुत्र शतजित् सहस्रजित और अयुतजित थे ।।२।। देवावृध के पुत्र का नाम बभ्रु था ।३। इन दोनो के विषयमे यह श्लोक गाया जाता है—जैसा दूर से सुना वैसा ही समीप से देखा, बभ्रु मनुष्यो मे श्रेष्ठ तथा देवावृध देवताओं के सदृश है । बभ्रु और देवावृध के मार्ग से छः हजार चौहत्तर मनुष्यो को अमृतत्व की प्राप्ति हुए थी ।।४-६।। महाभोज अत्यन्त धर्मात्मा पुरुष था, उसकी सन्तान भोजवंशी मार्त्तिकावर राजाओ के रूप मे

प्रसिद्ध हुई ।।७।। घृष्णि के दो पुत्र-सुमित्र और युधाजित् नाम से हुये । उनमे से सुमित्र का पुत्र अनमित्र, अनमित्र का निघ्न और निघ्न से प्रसेन और सत्राजित् दो पुत्र हुए ।।८-१०।। भगवान् आदित्य उसी सत्राजित् के मित्र हो गये थे ।।११।।

एकदा त्वम्भोनिधितीरसंश्रयः सूर्यं सत्राजित्तुष्टाव तन्मनस्कतया च भास्वानभिष्टूयमानोऽग्रतस्तस्थौ ।१२। ततस्त्वस्पष्टमूर्तिधरं चैनमालोक्य सत्राजित्सूर्यमाह ।१३। यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपम त्वामहमपश्य तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृत विशेषमुपलक्षयामीत्येवमुक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्यैकान्ते न्यस्तम् ।१४।

ततस्तमाताम्रोज्ज्वलं ह्रस्ववपुषमीषदापिङ्गलनयनमादित्यमद्राक्षीत् ।१५। कृतप्रणिपातस्तवादिकं च सत्राजितमाह भगवानादित्यस्सहस्रदीधितिर्वरमस्मत्तोऽभिमतं वृणीष्वेति ।१६। स च तदेव मणिरत्नमयाचत ।१७। स चापि तस्मै तद्दत्वा दीधितिपतिर्वियति स्वधिष्ण्यमारुरोह ।१८।

एक दिन समुद्र के किनारे पर बैठे हुए सत्राजित् ने भगवान् आदित्य की स्तुति की तब उसके तन्मयतापूर्वक आराधन को देखकर भगवान् सूर्य उसके सम्मुख प्रकट हो गए ।।१२।। उस समय उन्हे अस्पष्ट स्वरूप में देखकर सत्राजित् ने उनसे कहा ।।१३।। जिस अग्नि पिण्ड के रूप में मैंने आपको आकाश में देखा था, वैसे ही रूप में यहाँ प्रत्यक्ष पधारने पर देख रहा हूँ । इस रूप में आपकी कृपा कोई विशेषता मुझे दिखाई नहीं दे रही है। सत्राजित् की बात सुन कर सूर्य ने स्यमन्तक नाम की श्रेष्ठ महामणि को अपने कंठ से उतार कर पृथक् रख दिया ।।१४।। तब सत्राजित् ने उनके स्वरूप को देखा कि वह कुछ ताम्रवर्ण, अत्यन्त उज्वल और छोटा था तथा उनके नेत्र कुछ पीले रंग के से थे ।।१५।। इसके पश्चात् सत्राजित् ने उन्हें प्रणाम, स्तुति आदि से प्रसन्न किया तब भगवान् भास्कर ने उससे अपना अभीष्ट वर माँगने को कहा ।।१६।। इस पर सत्राजित्

ने उस स्यमन्तक मणि की ही याचना की ॥१७॥ भगवान् भास्कर उसे वह मणि प्रदान कर अपने स्थान को अन्तरिक्ष-मार्ग से चले गये ॥१८॥

सत्राजिदप्यमलमणिरत्नसनाथकण्ठतया सूर्य इव तेजोभिरशेषदिगन्तराण्युद्भासयन् द्वारकां विवेश ।१९। द्वारकावासी जनस्तु तमायान्तमवेक्ष्य भगवन्तमादिपुरुषं पुरुषोत्तममवनिभारावतरणायांशेन मानुषरूपधारिणं प्रणिपत्याह ।२०। भगवन् भवन्तं द्रष्टुं नूनमयमादित्य आयातीत्युक्तो भगवानुवाच ।२१। भगवान्नायमादित्यः सत्राजिदयमादित्यदत्तस्यमन्तकाख्यं महामणिरत्नं बिभ्रदत्रोपयाति ।२२। तदेनं विश्रब्धाः पश्यतेत्युक्तास्ते तथैव ददृशुः ।२३।

स च तं स्यमन्तकमणिमात्मनिवेशने चक्रे ।२४। प्रतिदिनं तन्मणिरत्नमष्टौ कनकभारान्स्रवति ।२५। तत्प्रभावाच्च सकलस्यैव राष्ट्रस्योपसर्गानावृष्टिव्यालाग्निचोरदुर्भिक्षादिभयं न भवति ।२६। अच्युतोऽपि तद्दिव्यं रत्नमुग्रसेनस्य भूपतेर्योग्यमेतदिति लिप्सां चक्रे ।२७। गोत्रभेदभयाच्छक्तोऽपि न जहार ।२८।

इसके पश्चात् उस स्वच्छ मणि रत्न धारण से सुशोभित कण्ठ वाले सत्राजित् ने सभी दिशाओं को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए द्वारकापुरी में प्रवेश किया ॥१९॥ उस समय द्वारकावासी पुरुषों ने उसे आता देखकर भू-भार हरणार्थ अंश रूप से पृथिवी पर उत्पन्न हुये मनुष्य रूपी आदि पुरुष भगवान् श्री कृष्ण से कहा ॥२०॥ हे भगवन् ! भगवान् सूर्य आपके दर्शनों के लिए आ रहे प्रतीत होते हैं। उनके द्वारा ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने उनसे कहा ॥२१॥ यह भगवान् भास्कर नहीं, सत्राजित् है। भगवान् भास्कर से प्राप्त हुई स्यमन्तक नाम की महामणि को धारण करके वह यहाँ आ रहा है ॥२२॥ अब तुम सब उसे ठीक प्रकार से देखो। भगवान् के वचन सुनकर सब द्वारकावासी उसे यथार्थ रूप में देखने लगे ॥२३॥ उस स्यमन्तक मणि को सत्राजित् ने अपने घर में ले जाकर रख दी ॥२४॥ नित्य प्रति वह मणि आठ भार स्वर्ण प्रदान करती थी ॥२५॥ उसके प्रभाव से सम्पूर्ण राष्ट्र रोग, अनावृष्टि, सर्प विष, अग्नि, चोरी, दुर्भिक्ष आदि भयों से सर्वथा बचा रहता था ॥२६॥ भगवान् अच्युत की यह

इच्छा थी कि वह दिव्य रत्न महाराज उग्रसेन के योग्य है ।।२७।। परन्तु, जाति में विद्रोह फैलने के डर से उन्होंने समर्थ होते हुए भी उसे उससे नहीं लिया ।।२८।।

सत्राजिदप्यच्युतो मामेतद्याचयिष्यतीत्यवगम्य रत्नलोभाद्भ्रात्रे प्रसेनाय तद्रत्नमदात् ।२९। तच्च शुचिना ध्रियमाणमशेषमेव सुवर्णस्रवादिकं गुणजातमुत्पादयति अन्यथा धारयन्तमेव हन्तीत्यजानन्नसावपि प्रसेनस्तेन कण्ठसक्तेन स्यमन्तकेनाश्वमारुह्याटव्यां मृगयामगच्छत् ।३०। तत्र च सिंहाद्वधमवाप ।३१। साश्वं च तं निहत्य सिंहोऽप्यमलमणिरत्नमास्याग्रेणादाय गन्तुमभ्युद्यतः ऋक्षाधिपतिना जाम्बवता दृष्टो घातितश्च ।३२। जाम्बवानप्यमलमणिरत्नमादाय स्वबिले प्रविवेश ।३३। सुकुमारसंज्ञाय बालकाय च क्रीडनकम करोत् ।३४।

सत्राजित् को ज्ञात हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि को उससे ले लेना चाहते हैं तो उसने लोभ के वश में पड़ कर वह रत्न अपने भाई प्रसेन को दे दिया ।।२९।। परन्तु प्रसेन को यह मालूम नहीं था कि उस मणि के पवित्रता पूर्वक धारण से तो यह स्वर्ण-दान आदि गुण वाली होती है और अपवित्रता से धारण करने पर घातक हो जाती है। इसलिए वह उसे कंठ में धारण कर, अश्व पर बैठ कर मृगया करने के लिए वन को चला गया ।।३०।। वहाँ वह एक सिंह के द्वारा मार डाला गया ।।३१।। उसे घोड़े के सहित मार कर सिंह ने उस निर्मल मणि को अपने मुँह में रखा और चलने को उद्यत हुआ, तभी ऋक्षराज जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला ।।३२।। और उस निर्मल मणिरत्न को ग्रहण करके जाम्बवान् अपनी गुफा में पहुँचा ।।३३।। वहाँ जाकर उसने अपने सुकुमार नामक शिशु के लिए खिलौने के रूप में दे दिया ।।३४।।

अनागच्छति तस्मिन्प्रसेने कृष्णो मणिरत्नमभिलषितवान्स च प्राप्तवान्नूनमेतदस्य कर्मेत्यखिलएव यदुलोकः परस्परं कर्णाकर्ण्यकथयत् ।३५। विदितलोकापवादवृत्तान्तश्च भगवान् सर्वयदुसैन्यपरिवारपरिवृतः प्रसेनाश्वपदवीमनुससार ।३६। ददर्श चाश्वसमवेतं प्रसेनं सिंहेन

विनिहतम् ।३७। अखिलजनमध्ये सिंहपददर्शनकृतपरिशुद्धिः सिंहपदमनुससार ।३८। ऋक्षपतिनिहतं च सिंहमप्यल्पे भूमिभागे दृष्ट्वा ततश्च तद्रत्नगौरवादृक्षस्यापि पदान्यनुययौ ।३९। गिरितटे च सकलमेव तद्यदुसैन्यमवस्थाप्य तत्पदानुसारी ऋक्षबिलं प्रविवेश ।४०।

जब प्रसेन वन से लौट कर न आया, तब यादवगण परस्पर में चर्चा करने लगे कि—उस मणि को कृष्ण हथियाना चाहते थे, इसलिए इन्हीं ने ले लिया होगा। यह कार्य अवश्य ही कृष्ण ने किया है ।।३१।। जब इस लोकापवाद को श्री कृष्ण ने सुना तो वह सम्पूर्ण यादव सेना सहित प्रसेन के घोड़े के पद-चिह्नों पर चल दिए और वन में पहुँच कर देखा कि प्रसेन को उसके अश्व सहित सिंह ने मार डाला है ।।३६-३७।। इस प्रकार सिंह के चरण चिन्ह दिखाई देने पर भी अपने ऊपर लगे आरोप को दूर करने के लिए वे उस चिन्हों का अनुसरण करते हुए सब के सहित आगे बढ़े और कुछ दूर जाने पर ही उन्हें ऋक्षराज द्वारा मारा गया वह सिंह भी मिल गया। फिर उस महामणि की महिमा के कारण उन्होंने ऋक्षराज के पद चिन्हों का भी अनुसरण किया ।।३८-३९।। उस समय उन्होंने सब यादव-सेना पर्वत के किनारे छोड़ दी और जाम्बवान् के पद-चिन्हों के सहारे चलते हुये उनकी गुफा में प्रविष्ट हो गये ।।४०।।

अन्तः प्रविष्टश्च धात्र्याः सुकुमारकमुल्लालयन्त्या वाणीं शुश्राव ।४१।

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।४२।

इत्याकर्ण्योपलब्धस्यमन्तकोऽन्तः प्रविष्टः कुमारक्रीडनकीकृतं च धात्र्या हस्ते तेजोभिर्जाज्वल्यमानं स्यमन्तकं ददर्श ।४३। तं च स्यमन्तकाभिलषितचक्षुषमपूर्वपुरुषमागतं समवेक्ष्य धात्री त्राहि त्राहीति व्याजहार ।४४।

तदार्त्तरवश्रवणानन्तरं चामर्षपूर्णहृदयः स जाम्बवानाजगाम ।४५। तयोश्च परस्परमुद्धतामर्षयोर्युद्धमेकविंशतिदिनान्यभवत् ।४६। ते च यदुसैनिकास्तत्र सप्ताष्टदिनानि तन्निष्क्रान्तिमुदीक्षमाणास्तस्थुः ।४७।

अनिष्क्रमणे च मधुरिपुरसाववश्यमत्र विलेऽत्यन्तं नाशमवाप्तो भविष्यत्यन्यथा तस्य जीवतः कथमेतावन्ति दिनानि शत्रुजये व्याक्षेपो भविष्यतीति कृताध्यवसाया द्वारकामागम्य हतः कृष्ण इति कथयामासुः ।४८। तद्बान्धवाश्च तत्कालोचितमखिलमुत्तरक्रियाकलापं चक्रुः ।४६।

गुफा में पहुँचकर उन्होंने सुकुमार को बहलाती हुई धाय के वचन सुने–सिंह ने प्रसेन को मारा और ऋक्षराज ने सिंह को मार दिया। हे सुकुमार! अब यह स्यमन्तक मणि तेरी ही है, तू रुदन न कर ॥४१-४२॥ इस वाणी के सुनने से श्री कृष्ण को यह पता लग गया कि स्यमन्तक मणि यहीं है तो उन्होंने भीतर जाकर देखा कि धाय के साथ पर रखी हुई सुकुमार की खिलौना रूपिणी स्यमन्तक मणि अपने तेज से जाज्वल्यमान हो रही है ॥४३॥ तब स्यमन्तक मणि की ओर कामना-भरी दृष्टि को देखते हुये एक अपूर्व पुरुष को वहाँ आया हुआ देखकर 'त्राहि-त्राहि' कहती हुई धाय चीत्कार करने लगी ॥४४॥ उसकी आर्त्त-पुकार को सुनकर क्रोधित हुआ जाम्बवान् वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ फिर दोनों में परस्पर अत्यन्त रोष की वृद्धि हुई और इक्कीस दिनों तक घोर संग्राम होता रहा ॥४६॥ श्री कृष्ण की प्रतीक्षा करती हुई यादव-सेना को जब सात-आठ दिन व्यतीत हो गये और लौट कर नहीं आये तब उन्होंने सोचा कि 'कृष्ण अवश्य ही इस गुफा में मृत्यु को प्राप्त हो गये, अन्यथा शत्रु को जीतने में उन्हें इतने दिन कदापि नहीं लग सकते थे।' ऐसा विचार स्थिर कर के सब द्वारका लौटे और वहाँ श्रीकृष्ण के मारे जाने की बात कह दी ॥४७-४८॥ यह सुन कर उनके बन्धुओं ने उनकी सम्पूर्ण मरणोत्तर क्रिया सम्पन्न कर दी ॥४६॥

ततश्चास्य युद्धयमानस्यातिश्रद्धादत्तविशिष्टोपपात्रयुक्तान्नतोयादिना श्रीकृष्णस्य वलप्राण पुष्टिरभूत् ।५०। इतरस्यानुदिनमतिगुरुपुरुषभेद्यमानस्य अतिनिष्ठुरप्रहारपातपीडिताखिलावयवस्य निराहारतया वलहानिरभूत् ।५१। निर्जितश्च भगवता जाम्ववान्प्रणिपत्य व्याजहार ।५२। सुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसादिभिरप्यखिलैर्भवान्न जेतुं शक्यः किमुतावनिगोचरैरल्पवीर्यैर्नरैर्नरावयवभूतैश्च तिर्यग्योन्यनुसृतिभिः किं

पुनरस्मद्विधैरवश्यं भवतास्मत्स्वामिना रामेणेव नारायणस्य सकलजगत्परायणस्यांशेन भगवता भवितव्यमित्युक्तस्तस्मै भगवानखिलावनिभारावतरणार्थं मवतरणमाचचक्षे ।५३। प्रीत्यभिव्यञ्जितकर तलस्पर्शनेन चैनमपगतयुद्धखेद चकार ।५४।

इस प्रकार अत्यन्त श्रद्धा सहित प्रदान किए हुये विशिष्ट पात्रों में अन्न और जल दानादि की प्राप्ति से श्री कृष्ण के दैहिक बल और प्राण पुष्ट हो गये ।।५०।। तथा अत्यन्त महान् पुरुष के घोर प्रहारों के आघात से मर्दित और पीडित देह वाले जाम्बवान् के निराहार रहने से उनका बल नितान्त क्षीण हो गया ।।५१।। अन्तमें जाम्बवान् की हार हुई और तब उसने भगवान् मधुसूदन को प्रणाम करके कहा—हे भगवन् ! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसादि में से कोई भी आपको नहीं जीत सकता तो भूतल पर रहने वाले अल्प पराक्रमी मनुष्य अथवा हमारे जैसे तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुये जीवों का तो कहना ही क्या है ? मुझे विश्वास हो गया कि आप हमारे स्वामी भगवान् श्री राम के समान सकल विश्व के पालक भगवान नारायण के ही अंश रूप हैं जब जाम्बवान् ने विनम्रता पूर्वक ऐसा कहा तब भगवान् श्रीकृष्ण ने भू-भार हरण करने के निमित्त अपने अवतीर्ण होने का सब वृत्तान्त उससे कहा और प्रीति सहित उसके देह को अपने हाथ के स्पर्श से श्रम-रहित और स्वस्थ कर दिया ।।५२-५४।।

स च प्रणिपत्य पुनरप्येनं प्रसाद्य जाम्बवती नाम कन्यां गृहागतायार्घ्यभूता ग्राहयामास ।५५। स्यमन्तकमणिरत्नमपि प्रणिपत्य तस्मै प्रददौ ।५६। अच्युतोऽप्यतिप्रणतात्तस्मादग्राह्यमपि तन्मणिरत्नमात्मसंशोधनाय जग्राह ।५७। सह जाम्बवत्या स द्वारकामाजगाम ।५८। भगवदागमनोद्भूतहर्षोत्कर्षस्य द्वारकावासिजनस्य कृष्णावलोकनात्तत्क्षणमेवातिपरिणतवयसोऽपि नवयौवनमिवाभवत् ।५९। दिष्ट्यादिष्ट्येति सकलयादवाः स्त्रियश्च सभाजयामासुः ।६०। भगवानपि यथानुभूतमशेषं यादवसमाजे यथा वदाचचक्षे ।६१। स्यमन्तकं

च सत्राजिते दत्त्वा मिथ्याभिशस्तिपरिशुद्धिमवाप ।६२। जाम्बवतीं चान्तः पुरे निवेशयामास ।६३।

तदनन्तर ने जाम्बवान् उन्हे पुन. प्रणाम द्वारा प्रसन्न किया और अपने घर पर आये हुए भगवान् रूप अतिथि को अपनी जाम्बवती नाम की कन्या अर्घ्य रूप से प्रदान की तथा प्रणाम पूर्वक स्यमन्तक मणि भी उन्हे भेंट कर दी ॥५५-५६॥ उस अत्यन्त विनीत से ग्रहण करने योग्य न होने पर भी भगवान् ने अपने ऊपर लगे आरोप की सिद्धि के लिए उस मणि को ले लिया और जाम्बवती को साथ लिए हुए द्वारका पहुँचे ॥५७-५८॥ उनके आगमन की बात सुनते ही द्वारकावासियो मे हर्ष की अत्यन्त वृद्धि हुई और वृद्धावस्था के निकट पहुँचे हुये पुरुष भी मानो उनके दर्शन करके नवयुवक बन गये ॥५९ । उस समय सभी यादवो और उनकी स्त्रियो ने 'अहोभाग्य' कह-कहकर उनका अभिवादन किया ॥६०॥ जो घटना जिस प्रकार हुई, उसका सम्पूर्ण विवरण श्रीकृष्ण ने यादवों को सुनाया और सत्राजित् को स्यमन्तक मणि लौटा कर मिथ्यापवाद से मुक्ति प्राप्त की। तदनन्तर जाम्बवती को अपने अन्त पुर मे प्रविष्ट किया ॥६१-६३॥

सत्राजिदपि मयास्याभूतमलिनमारोपित मिति जातसन्त्रासा- स्स्वसुता सत्यभामा भगवते भार्यार्थं ददौ ।६४। ता चाक्रूरकृतवर्मशत- धन्वप्रमुखा यादवा प्राग्वरयाम्बभूवु ।६५। ततस्तत्प्रदानादवज्ञातमेवा- स्मान मन्यमाना सत्राजिति वैरानुबन्ध चक्रु ।६६।

अक्रूरकृतवर्मप्रमुखाश्च शतधन्वानमूचु ।६७। अयमतीव दुरात्मा सत्राजिद् योऽस्माभिर्भवता च प्रार्थितोऽप्यात्मजामस्मान् भवन्त चाविगणय्य कृष्णाय दत्तवान् ।६८। तदलमनेन जीवता घातयित्वैन तन्महारत्न स्यमन्तकाख्य त्वया कि न गृह्यते वयमभ्युपपत्स्यामो यद्यच्युतस्त्वोपरि वैरानुबन्ध करिष्यतीत्येवमुक्तस्तथेत्यसावप्याह ।६९।

जतुगृहदग्धाना पाण्डुतनयाना विदितपरमार्थोऽपि भगवान् दुर्योधनप्रयत्नशैथिल्यकरणार्थं कुल्यकरणाय वारणावत गत. ।७०।

कृतोद्यमौ च तावुभावुपलभ्य शतधन्वा कृतवर्माणमुपेत्य पार्ष्णिपूरणकर्मनिमित्तमचोदयत् ।८१। आह चैनं कृतवर्मा ।८२। नाहं बलदेववासुदेवाभ्यां सह विरोधायालमित्युक्तश्चाक्रूरमचोदयत् ।८३। असावप्याह ।८४। न हि कश्चिद्भगवता पादप्रहारपरिकम्पितजगत्त्रयेण सुररिपुवनितावैधव्यकारिणा प्रबलरिपुचक्राप्रतिहतचक्रेण चक्रिणा मदमुदितनयनावलोकिताखिलनिशातनेनातिगुरुवैरिवारणापकर्षणाविकृतमहिमोरुसीरेण सीरिणा च सह सकलजगद्वन्द्यानाममरवराणामपि योद्धुं समर्थः किमुताहम् ।८५। तदन्यश्शरणमभिलष्यतामित्युक्तश्शतधनुराह ।८६। यद्यस्मत्परित्राणासमर्थं भवानात्मानमधिगच्छति तदयमस्मत्तस्तावन्मणिः संगृह्य रक्ष्यतामिति ।८७। एवमुक्तः सोऽप्याह ।८८। यद्यन्त्यायामप्यवस्थायां न कस्मैचिद्भवान् कथयिष्यति तदहमेतं ग्रहीष्यामीति ।८९। तथेत्युक्ते चाक्रूरस्तन्मणिरत्नं जग्राह ।९०।

जब शतधन्वा ने कृष्ण बलदेव को अपने मारने के प्रयत्न मे उद्यत हुये जाना तब वह सहायता के लिये कृतवर्मा के पास गया ॥८१॥ इस पर कृतवर्मा ने कहा कि 'कृष्ण बलदेव से विरोध करने की समार्थ्य मुझ मे नही है'। उसके ऐसा कहने पर शतधन्वा अक्रूर के पास गया और उसने उससे सहायता मांगी। इस पर अक्रूर ने कहा ॥८२-८४॥ जिनके पाद-प्रहार से ही तीनो लोक कांप उठते हैं और उसी से देवताओं के शत्रु असुरो की स्त्रिया वैधव्य को प्राप्त होती हैं तथा जिनका चक्र महाबली शत्रुओं की सेना मे भी अप्रतिहत रहता है उन चक्रधारी श्रीकृष्ण से और जो अपने मदोन्मत्त नेत्रो की चितवन से ही शत्रुओ का दमन करने मे समर्थ तथा भयङ्कर शत्रु समूह रूपी हाथियो को भी वशमे करने के लिए अखण्ड महिमा वाले प्रचण्ड हल को धारण किए रहते हैं उन हलधर बलदेव से अखिल विश्व मे वन्दनीय देवताओ मे से कोई भी समर्थ नही हो सकता तो मैं ही क्या कर सकता हूं ? ॥८५॥ इसलिए तुम्हे किसी अन्य व्यक्ति की शरण लेनी चाहिये। अक्रूर की बात सुन कर शतधन्वा बोला ॥८६॥ अच्छा यदि आप मेरी रक्षा करने मे असमर्थ पाते हैं, तो लीजिए, इ

मणि की ही रक्षा करिये ।।८७।। इस पर अक्रूर बोला—मैं इस मणि को तभी ग्रहण कर सकता हूँ, जब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मरणकाल उपस्थित होने पर भी तुम इसके मेरे पास होने के विषय मे किसी से न कहोगे ।।८९।। यह सुन कर शतधन्वा ने कहा 'ऐसा ही होगा' और अब अक्रूर ने उस मणि-रत्न को उससे लेकर अपने पास सुरक्षित रखा ।।९०।।

शतधनुरप्यतुलवेगा शतयोजनवाहिनी बडवामारुह्याधक्रान्तः ।९१। शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाश्वचतुष्टययुक्तरथस्थितौ बलदेववासुदेवौ तमनुप्रयातौ ।९२। सा च वडवा शतयोजनप्रमाणमार्गमतीता पुनरपि वाह्यमाना मिथिलावनोद्देशे प्राणानुत्ससर्ज ।९३। शतधनुरपि तां परित्यज्य पदातिरेवाद्रवत् ।९४। कृष्णोऽपि बलभद्रमाह ।९५। तावदत्र स्यन्दने भवता स्थेयमहमेनमधमाचारं पदातिरेव पदातिमनुगम्य यावद्घातयामि अत्र हि भूभागे दृष्टदोषास्समया अतो नैतेऽश्वा भवतेमं भूमिभागमुल्लङ्घनीया ।९६। तथेत्युक्त्वा बलदेवो रथ एव तस्थौ ।९७।

इसके पश्चात् शतधन्वा एक अत्यन्त वेगवती और निरन्तर सौ योजन तक चलने मे सामर्थ्य वाली एक घोडी पर चढकर भाग निकला ।।९१।। तब शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक चार घोडो से सयुक्त रथ पर आरूढ होकर कृष्ण-बलदेव ने उसका पीछा किया ।।९२।। सौ योजन मार्ग के पूरा हो जाने पर भी जब शतधन्वा जिसे आगे ले जा रहा था, उस घोडी ने मिथिला के वन प्रदेश मे अपने प्राण त्याग दिये ।।९३।। तब उस घोडी को वहीं पडी छोड कर शतधन्वा पैदल ही भागने लगा ।।९४।। यह देखकर श्रीकृष्ण ने बलदेव जी से कहा ।।९५।। अभी आप रथ मे ही बैठे रहें, इस पैदल भागते हुए अधमाचारी को मैं भी पैदल जाकर मार दूंगा ।।९६।। इस पर बलदेव 'अच्छा' कहकर रथ मे ही बैठे रहे ।।९७।।

कृष्णोऽपि द्विक्रोशमात्रं भूमिभागमनुसृत्य दूरस्थितस्यैव चक्रं क्षिप्त्वा शतधनुषश्शिरश्चिच्छेद ।९८। तच्छरीराम्बरादिषु च बहुप्रकारमन्विच्छन्नपि स्यमन्तकमणिं नावाप यदा तदोपगम्य

वलभद्रमाह ।९९। वृथैवास्माभि शतधनुर्घातितो न प्राप्तमखिलजगत्सारभूत तन्महारत्न स्यमन्तकाख्यमित्याकर्ण्योद्भूतकोपो वलदेवो वासुदेवमाह ।१००। धिक्त्वा यस्त्वमेवमर्थलिप्सुरेतच्च ते भ्रातृत्वान्मया क्षान्त तदय पन्थास्स्वेच्छया गम्यता न मे द्वारकया न त्वया न चाशेषवन्धुभि कार्य्यमलमलमेभिर्ममाग्रतोऽलीकशपथैरित्याक्षिप्य तत्कथा कथञ्चित्प्रसाद्यमानोऽपि न तस्थौ ।१०१। स विदेहपुरी प्रविवेश ।१०२।

श्रीकृष्ण ने दो कोस तक पैदल चलते हुए उसका पीछा किया और दूर से अपना चक्र चलाकर शतधन्वा का मस्तक काट डाला ॥९८॥ परन्तु उसके शरीर के वस्त्रादि मे बहुत कुछ खोजने पर भी उन्हे स्यमन्तक मणि न मिली, तब उन्होने वलदेवजी के पास पहुँच कर कहा ॥९९॥ शतधन्वा का वध व्यर्थ ही हुआ, क्योकि विश्व की सारभूता स्यमन्तक मणि उसके पास नही मिली। यह सुनकर बलदेवजी अत्यन्त क्रोधित हुए और श्रीकृष्ण की बात को भेद पूर्ण समझकर उन्होने कहा ॥१००॥ तुमको धिक्कार है, तुम अत्यन्त ही धन-लोलुप हो, मैं तुम्हे भाई होने के कारण ही क्षमा कर रहा हूँ। तुम अपने मार्ग पर स्वेच्छापूर्वक जा सकते हो क्योकि मुझे अब द्वारका से, तुमसे अथवा अन्य सब बधु-बाँधवो से कोई प्रयोजन नही है। मैं इन निरर्थक सौगधो को भी नही मानता। इस प्रकार कहते हुये वलदेवजी अनेक प्रकार से समझाने और विश्वास दिलाने पर भी वहा न रुक कर विदेहनगरको चल पडे ॥१०१-१०२॥

जनकराजश्चार्घ्यपूर्वकमेन गृह प्रवेशयामास ।१०३। स तत्रैव च तस्थौ ।१०४। वासुदेवोऽपि द्वारकामाजगाम ।१०५। यावच्च जनकराजगृहे वलभद्रोऽवतस्थे तावद्धार्तराष्ट्रो दुर्योधनस्तत्सकाशाद्गदाशिक्षामशिक्षयत् ।१०६। वर्षत्रयान्ते च बभ्रूग्रसेनप्रभृतिभिर्यादवैर्न तद्रत्न कृष्णेनापहृतमिति कृतावगतिभिर्विदेहनगरी गत्वा वलदेवस्सम्प्रत्याय्य द्वारकामानीत ।१०७।

उनके विदेह नगर पहुँचने पर राजा जनक ने अर्घ्यादि के द्वारा उनका स्वागत किया और फिर उन्हे अपने घर मे ठहराया ॥१०३-१०४॥ इधर श्री

कृष्ण द्वारका में लौट आये ॥१०५॥ राजा जनक के यहाँ बलदेवजी ने जितने दिन निवास किया, उतने दिनों तक धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने उनसे गदायुद्ध की शिक्षा ग्रहण की ॥१०६॥ फिर स्यमन्तक मणि श्रीकृष्ण के पास नहीं है, यह जानने वाले बभ्रु और उग्रसेन आदि यादवों ने विदेहनगर जाकर बलदेवजी को शपथ पूर्वक विश्वास दिलाया, तब वह तीन वर्ष व्यतीत होने पर द्वारका में लौटे ॥१०७॥

अक्रूरोऽप्युत्तममणिसमुद्भूतसुवर्णेन भगवद्ध्यानपरोऽनवरतं यज्ञानियाज ।१०८। सवनगतौ हि क्षत्रियवैश्यौ निघ्नन्ब्रह्महा भवतीत्येवम्प्रकारं दीक्षाकवचं प्रविष्ट एव तस्थौ ।१०९। द्विषष्टिवर्षाण्येवं तन्मणिप्रभावात्तत्रोपसर्गदुर्भिक्षमारिकामरणादिकं नाभूत् ।११०। अथाक्रूरपक्षीयैर्भोजैश्शत्रुघ्ने सात्वतस्य प्रपौत्रे व्यापादिते भोजैस्सहाक्रूरो द्वारकामपहायापक्रान्तः ।१११। तदपक्रान्तिदिनादारभ्य तत्रोपसर्गदुर्भिक्षव्यालानावृष्टिमारिकाद्युपद्रवा बभूवु ।११२।

भगवान् के ध्यान में निरन्तर लगे रहते हुए अक्रूरजी उस मणि रत्न द्वारा प्राप्त होने वाले सुवर्ण से यज्ञानुष्ठानादि कर्म करने लगे ॥१०८॥ यज्ञ में दीक्षित क्षत्रियों और वैश्यों का वध करने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है, इस कारण अक्रूर ही यज्ञ दीक्षा रूपी उस कवच को सदा ही पहिने रहते थे ।१०९। उस मणि के प्रभाव से ही द्वारकापुरी में बासठ वर्ष रोग, दुर्भिक्ष, महामारी अथवा मृत्यु आदि का प्रकोप नहीं हुआ ॥११०॥ फिर अक्रूर-पक्ष के भोज-क्षत्रियों के द्वारा सात्वत के प्रपौत्र शत्रुघ्न का वध कर देने पर अन्य भोजवंशियों के साथ अक्रूर ने भी द्वारका का परित्याग कर दिया ॥१११॥ अक्रूर के वहाँ से जाते ही द्वारका में रोग, दुर्भिक्ष, सर्प अनावृष्टि और महामारी आदि उपद्रव होने लग गये ॥११२॥

अथ यादवबलभद्रोग्रसेनसमवेतो मन्त्रममन्त्रयद्भगवानुरगारिकेतनः ।११३। किमिदमेकदैव प्रचुरोपद्रवागमनमेतदालोच्यतामित्युक्तेऽन्धकनामा यदुवृद्धः प्राह ।११४। अस्याक्रूरस्य पिता श्वफल्को यत्र यत्राभूत्तत्र तत्र दुर्भिक्षमारिकानावृष्ट्यादिकं नाभूत् ।११५। काशिराजस्य

विषये त्वनावृष्ट्या च श्वफल्को नीत ततश्च तत्क्षणादेवो ववर्ष ।११६। काशिराजपत्न्याश्च गर्भे कन्यारत्न पूर्वमासीत् ।११७। सा च कन्या पूर्णेऽपि प्रसूतिकाले नैव निश्चक्राम ।११८। एव च तस्य गर्भस्य द्वादशवर्षाण्यनिष्क्रामतो ययु· ।११९। काशिराजश्च तामात्मजां गर्भस्थामाह ।१२०। पुत्रि कस्मान्न जायसे निष्क्रम्यतामास्य ते द्रष्टुमिच्छामि एता च मातर किमिति चिर क्लेशयसीत्युक्ता गर्भस्थैव व्याजहार ।१२१। तात यद्येकैका गा दिने दिने ब्राह्मणाय प्रयच्छसि तदाहमन्यैस्त्रिभिर्वर्षैरस्माद्गर्भात्तावदवश्य निष्क्रमिष्यामीत्येतद्वचनमाकर्ण्य राजा दिने दिने ब्राह्मणाय गा प्रादात् ।१२२। सापि तावता कालेन जाता ।१२३।

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने बलदेवजी और उग्रसेन आदि प्रमुख यदुवशियो के साथ मन्त्रणा की और कहने लगे ।।११३।। एक साथ ही इतने उपद्रव आकर उपस्थित हो गये, इसके कारण पर विचार करना चाहिए। उनकी यह बात सुनकर अन्धक नाम एक वृद्ध यादव ने कहा ।।११४।। अक्रूर के पिता श्वफल्क जब-जब जहा-जहा रहे, तब-तब वहा-वहा दुर्भिक्ष, महामारी, अनावृष्टि आदि कोई भी उपद्रव कभी नही हुआ ।।११५।। एक बार जब काशिराज के राज्य मे वर्षा नही हुई, तब श्वफल्क को वहा ले जाते ही वर्षा आरम्भ हो गई ।।११६।।

उस समय काशिराज की भार्या गर्भवती थी और कन्या उसमे स्थित थी ।।११७।। वह कन्या बालक उत्पन्न होने मे जितना समय लगना चाहिये, उतने समय में उत्पन्न न हुई ।।११८।। इस प्रकार उसे गर्भ मे रहते-रहते बारह वर्ष व्यतीत हो गये ।।११९।। तब काशिराज अपनी उस गर्भस्थ कन्या से बोले ।।१२०।। हे सुते ! तू गर्भ से बाहर क्यो नही आती ? तू उत्पन्न हो, मैं तेरे मुख को देखने की इच्छा कर रहा हूँ ।।१२१।। अपनी माता को इतने समय से तू ऐसा कष्ट क्यो दे रही है ? राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस कन्या ने गर्भ में से ही कहा—हे पिताजी ! यदि आप नित्य प्रति एक गौ किसी ब्राह्मण को प्रदान करें तो तीन वर्ष व्यतीत होने पर मैं अवश्य ही उत्पन्न हो

जाऊँगी। यह सुन कर राजा ने नित्यप्रति एक गाय ब्राह्मण को देना प्रारम्भ किया ॥१२२॥ इस प्रकार तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह कन्या उत्पन्न हुई ॥१२३॥

ततस्तस्या पिता गान्दिनीति नाम चकार ।१२४। ता च गान्दिनी कन्या श्वफल्कायोपकारिणे गृहमागतायार्घ्यंभूता प्रादात् ।१२५। तस्यामयमक्रूर श्वफल्काज्जज्ञे ।१२६। तस्यैवङ्गुणमिथुनादुत्पत्ति ।१२७। तत्कथमस्मिन्नपक्रान्तेऽत्र दुर्भिक्षमारिकाद्युपद्रवा न भविष्यन्ति ।१२८। तदयमत्रानीयतामलमतिगुणवत्यपराधान्वेषणेनेति यदुवृद्धस्यान्धकस्यैतद्वचनमाकर्ण्य केशवोग्रसेनबलभद्रपुरोगमैर्यदुभि कृतापराधतितिक्षुभिरभय दत्त्वा श्वफल्कपुत्र स्वपुरमानीत ।१२९। तत्र चागतमात्र एव तस्य स्यमन्तकमणे प्रभावादनावृष्टिमारिकादुर्भिक्षव्यालाद्युपद्रवोपशमा बभूवु ।१३०।

उस कन्या का नाम पिता ने गान्दिनी रखा और उसे अपना उपकार करने वाले श्वफल्क को, जब वह काशिराज के यहा गये थे, तब अर्घ्य रूप से प्रदान किया ॥१२४-१२५॥ श्वफल्क ने उसी के गर्भ से इन अक्रूरजी को उत्पन्न किया था ॥१२६॥ इन अक्रूरजी का जन्म जब ऐसे गुणी माता से हुआ है, तो उनके इस नगर का त्याग कर देने से यहा दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रव भला क्यो नही होंगे ? ॥१२७ १२८॥ इसलिए उन अक्रूरजी को यहा लिवा-लाना चाहिये, जो मनुष्य अत्यधिक गुणवाला हो उससे यदि कुछ अपराध हो भी जाय तो उसका अधिक अन्वेषण उचित नही है । यदोवृद्ध यादव अन्धक की बात सुनकर श्रीकृष्ण बलदेव, उग्रसेन आदि ने श्वफल्क पुत्र अक्रूर जी के अपराध को क्षमा कर दिया और उन्हे अभय प्रदान पूर्वक द्वारका मे ले आये ॥१२९॥ जैसे ही वह नगर मे आये, वैसे ही स्यमन्तक मणि के प्रभाव से अनावृष्टि, महामारी, दुर्भिक्ष, सर्पभय आदि सभी उपद्रवो की शान्ति हो गई ॥१३०॥

कृष्णश्चिन्तयामास ।१३१। स्वल्पमेतत्कारण यदय गान्दिन्या श्वफल्केनाक्रूरो जनित ।१३२। सुमहांश्चायमनावृष्टिदुर्भिक्षमारिकाद्युपद्रवप्रतिषेधकारी प्रभाव ।१३३। तन्नूनमस्य सकाशे स महामणि

स्यमन्तकारयस्तिष्ठति ।१३४। तस्य ह्येवंविधाः प्रभावाः श्रूयन्ते ।१३५। अयमपि च यज्ञादनन्तरमन्यत्क्रत्वन्तरं तस्यानन्तरमन्यद्यज्ञान्तरं चाजस्रमविच्छिन्नं यजतीति ।१३६। अल्पोपादानं चास्यासंशयमत्रासौ मणिवरस्तिष्ठतीति कृताध्यवसायोऽन्यत्प्रयोजनमुद्दिश्य सकलयादवसमाजमात्मगृह एवाचीकरत् ।१३७।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण सोचने लगे कि श्वफल्क के द्वारा गान्दिनी के गर्भ से अक्रूर का उत्पन्न होना एक साधारण बात है ॥१३१-१३२॥ परन्तु, उसका अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदि उपद्रवों को रोकने वाला प्रभाव अत्यन्त महिमा युक्त है ॥१३३॥ इसके पास अवश्य ही स्यमन्तक महामणि होनी चाहिये ।।१३४।। क्योंकि उस मणि का ही ऐसा प्रभाव सुना गया है ॥१३५॥ इस अक्रूर को एक यज्ञ के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा यज्ञ करते ही देखा जाता है। इसके अनुष्ठानों का क्रम कभी टूटता नहीं ॥१३६॥ इसके पास यज्ञ के लिए साधनों की भी न्यूनता है, इसलिये इसके पास स्यमन्तक मणि होने में संदेह नहीं रहता। ऐसा स्थिर कर उन्होंने अपने घर में सभी यादवों को किसी विशेष प्रयोजन के लिये एकत्रित किया ॥१३७॥

तत्र चोपविष्टेष्वखिलेषु यदुषु पूर्वं प्रयोजनमुपन्यस्य पर्यवसिते च तस्मिन् प्रसङ्गान्तरपरिहासकथामक्रूरेण कृत्वा जनार्दनस्तमक्रूरमाह ।१३८। दानपते जानीम एव वयं यथा शतधन्वना तदिदमखिलजगत्सारभूतं स्यमन्तकं रत्नं भवतः समर्पितं तदशेषराष्ट्रोपकारकं भवत्सकाशे तिष्ठति तिष्ठतु सर्वं एव वयं तत्प्रभावफलभुजः किं त्वेष बलभद्रोऽस्मानाशङ्कितवांस्तदस्मत्प्रीतये दर्शयस्वेत्येवमभिधाय जोषं स्थिते भगवति वासुदेवे सरत्नस्सोऽचिन्तयत् ।१३९। किमनानुष्ठेयमन्यथा चेद्ब्रवीम्यहं तत्केवलाम्बरतिरोधानमन्विष्यन्तो रत्नमेते द्रक्ष्यन्ति अतिविरोधो न क्षेम इति सञ्चिन्त्य तमखिलजगत्कारणभूतं नारायणमाहाक्रूरः ।१४०। भगवन्ममैतत्स्यमन्तकरत्नं शतधनुषा समर्पितमपगते च तस्मिन्नद्य श्वः परश्वो वा भगवान् याचयिष्यतीति कृतमतिरतिकृच्छ्रेणैतावन्तं कालमधारयम् ।१४१। तस्य च धारण-

क्लेशेनाहमशेषोपभोगेष्वसङ्गिमानसो न वेद्मि स्वसुखकलामपि ।१४२। एतावन्मात्रमप्यशेषराष्ट्रोपकारि धारयितुं न शक्नोति भवान्मन्यत इत्यात्मना न चोदितवान् ।१४३। तदिदं स्यमन्तकरत्नं गृह्यतामिच्छया यस्याभिमतं तस्य समर्प्यताम् ।१४४।

जब सब यदुवंशी वहां आकर बैठ गए तो पहिले उन्हें अपना प्रयोजन बताया और उसका उपसंहार हो गया तब उन्होंने प्रसङ्ग बदलकर अक्रूर के साथ परिहास-पूर्वक कहा ॥१३८॥ हे दानपते ! शतधन्वा ने जिस प्रकार वह स्यमन्तक मणि तुम्हें दी थी, वह सब विषय हमें ज्ञात है। वह सम्पूर्ण राष्ट्र का उपकार करती हुई यदि तुम्हारे पास रहती है तो उससे हमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि उसके प्रभाव से प्राप्त होने वाले फल को तो हम सभी भोगते हैं। परन्तु, इन बलरामजी का मुझ पर संदेह रहा है, इसलिए यदि आप उसे एक बार दिखला दें तो हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी। जब भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कह कर मौन हो गये तब मणि के साथ होने के कारण अक्रूरजी विचार करने लगे ॥१३९॥ अब मैं क्या करूँ ? यदि कुछ बहाना बनाता हूँ तो वह मेरे वस्त्रों में टटोल कर ही मणि को देख लेंगे। फिर यदि इनसे विरोध हो गया तो किसी प्रकार भी कुशल नहीं है। इस प्रकार स्थिर कर अक्रूरजी ने सम्पूर्ण संसार के कारण रूप भगवान् श्री कृष्ण से कहा ॥१४०॥ हे भगवन् ! वह मणि शतधन्वा ने मुझे दे दी थी और उसकी मृत्यु होने पर अत्यन्त सावधानी पूर्वक मैंने इसे रखा है, क्योंकि मैं सोचता था कि आप इसे आज-कल में मुझसे माँग ही लेंगे ॥१४१॥ इसकी सुरक्षा के क्लेश से मैं किसी प्रकार के भोग में भी अपना मन न लगा सकने के कारण किंचित् भी सुखी नहीं रहा हूँ ॥ परन्तु आपसे मैंने स्वयं इसलिये नहीं कहा कि कहीं आप यह न सोचने लगें कि यह सम्पूर्ण राष्ट्र का उपकार करने वाले इतने स्वल्प भार को भी वहन नहीं कर सका ॥१४३॥ आपकी यह स्यमन्तक मणि यह है, इसे आप ग्रहण कीजिए और आप जिसे चाहें उसे दीजिए ॥१४४॥

ततः स्वोदरवस्त्रनिगोपितमतिलघुकनकसमुद्गगतं प्रकटीकृतवान् ।१४५। ततश्च निष्क्राम्य स्यमन्तकमणिं तस्मिन्यदुकुलसमाजे

मुमोच ।१४६। मुक्तमात्रे च मुक्तमात्रे च तस्मिन्नतिकान्त्या तदखिलमास्थानमुद्योतितम् ।१४७ अथाहाक्रूरः स एष मणिः शतधन्वनास्माकं समर्पितो यस्यायं स एनं गृह्णातु इति ।१४८।

तमालोक्य सर्वयादवानां साधुसाध्विति विस्मितमनसां वाचोऽश्रूयन्त ।१४९। तमालोक्यातीव बलभद्रो ममायमच्युतेनैव मामान्यस्समन्वीप्सित इति कृतस्पृहोऽभूत् ।१५०। ममैवायं पितृधनमित्यतीव च सत्यभामापि स्पृहयाञ्चकार ।१५१। बलसत्यावलोकनात्कृष्णोऽप्यात्मानं गोचक्रान्तरावस्थितमिव मेने ।१५२। सकलयादवसमक्षं चाक्रूरमाह ।१५३।

यह कह कर अक्रूरजी ने अपने कटिवसन में छिपी हुई एक छोटी सी स्वर्ण-पिटारी में रखी हुई उस स्यमन्तक मणि को निकाल कर यदुवंशियों के समाज में रख दिया ॥१४५-१४६॥ पिटारी से निकलते ही उस मणि की कांति से वह सम्पूर्ण स्थान अत्यन्त प्रकाशमान हो उठा ॥१४७॥ फिर अक्रूरजी बोले कि यह मणि मुझे शतधन्वा से प्राप्त हुई थी, जिसकी यह हो, वह इसे ग्रहण करले ॥१४८॥ मणि को देखते ही सब यादवगण विस्मय पूर्वक 'साधु' 'साधु' शब्द कहने लगे ॥१४९॥ उसे देखकर इस पर कृष्ण के समान ही मेरा भी अधिकार है, यह सोचते हुए बलदेवजी अधिक स्पृहावान् हुए ॥१५०॥ सत्यभामा ने भी उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर अपनी अधिक उत्कंठा प्रकट की ॥१५१॥ बलदेव और सत्यभामा की अभिलाषा को देखकर श्रीकृष्ण ने अपने को रथ के बैल और पहिये के मध्य पड़े हुये जन्तु के समान संकटग्रस्त पाया ॥१५२॥ तब उन्होंने सब यादवों की उपस्थिति में अक्रूरजी से कहा ॥१५३॥

एतद्धि मणिरत्नमात्मसंशोधनाय एतेषां यदूनां मया दर्शितम् एतच्च मम बलभद्रस्य च सामान्यं पितृधनं चैतत्सत्यभामाया नान्यस्यैतत् ।१५४। एतच्च सर्वकालं शुचिना ब्रह्मचर्यादिगुणवता ध्रियमाणमशेषराष्ट्रस्योपकारकमशुचिना ध्रियमाणमाधारमेव हन्ति ।१५५। अतोऽहमस्य षोडशस्त्रीसहस्रपरिग्रहादसमर्थो धारणे कथमेतत्सत्यभामा स्वीकरोति ।१५६। आर्यबलभद्रेणापि

मदिरापानाद्यशेषोपभोगपरित्याग कार्य. ।१५७। तदलं यदुलोकोऽय बलभद्र अह च त्वा दानपते प्रार्थयाम ।१५८। तद्भवानेव धारयितु समर्थ: ।१५६। त्वद्धृत चास्य राष्ट्रस्योपकारक तद्भवानशेषराष्ट्रनिमित्त-मे तत्पूर्ववद्धारयत्वन्यन्न वक्तव्यमित्युक्तो दानपतिस्तथेत्याह जग्राह च तन्महारत्नम् ।१६०। तत प्रभृत्यक्रूर. प्रकटेनैव तेनातिजाज्वल्यमाने-नात्मकण्ठावसक्तेनादित्य इवाशुमाली चचार ।१६१।

इत्येतद्भगवतो मिथ्याभिशस्तिक्षालन य स्मरति न तस्य कदाचिदल्पापि मिथ्याभिशस्तिर्भवति अव्याहतास्विलेन्द्रियश्चाखिल-पापमोक्षमवाप्नोति ।१६२।

इस मणि को अपने ऊपर लगे आरोप को दूर करने के विचार से ही मैंने सबके सामने निकलवाया है। इस पर मेरा और बलदेवजी का तो समान अधिकार है ही, साथ ही सत्यभामा का यह पितृधन है, इनके अतिरिक्त किसी अन्य का अधिकार इस पर नहीं है ॥१५४॥ सदा पवित्र और ब्रह्मचर्यादि धारण पूर्वक रहने से यह मणि सम्पूर्ण राष्ट्र का हित करने वाली होती है, परन्तु अप-वित्र अवस्था धारण करने पर यह अपने आश्रयदाता के लिए घातक सिद्ध होती है ॥१५५॥ मेरे सोलह हजार रानियां होने के कारण इसे धारण करने मे मैं तो असमर्थ हूँ ही साथ ही सत्यभामा भी इसमे समर्थ नहीं है ॥१५६॥ यदि आर्य बलरामजी इसे अपने पास रखते हैं तो उन्हे अपने मदिरापान आदि सभी भोगो को छोडना पडेगा ॥१५७॥ इसलिये हे दानपते! यह बलरामजी, यह सभी यादवगण, यह सत्यभामा और मैं—सभी यह मानते हैं कि इस मणि के धारण करने की सामर्थ्य आप मे ही है ॥१५८॥ यदि आप इसे धारण करेंगे तो यह सम्पूर्ण राष्ट्र का हित-साधन करने वाली होगी, इसलिये सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याणार्थ आप ही इसे पहिले के समान धारण करते रहिए, अब इस विषय मे आप कुछ अन्यथा वचन न कहें। श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर दानपति अक्रूरने उस महामणि को ग्रहण कर लिया। उस समय से अक्रूरजी उस अत्यन्त प्रका-शयुक्त रूपी मणि को अपने कण्ठ मे धारण कर भगवान् आदित्य के समान रश्मियो से युक्त हुए सबके सामने विचरण करने लगे ॥१६०-१६१॥ भगवान्

श्रीकृष्ण के मिथ्या-कलंक को शुद्ध करने वाले इस प्रसंग को जो मनुष्य स्मरण करेगा, उसे कभी किंचित् भी मिथ्या-कलंक नहीं लगेगा, उसकी सब इन्द्रियाँ सशक्त रहेंगी तथा वह सभी पापों से छूट जायगा ॥१६०॥



चौदहवाँ अध्याय

अनमित्रय पुनः शिनिर्नामाभवत् ।१। तस्यापि सत्यकः सत्यकात्सात्यकिर्युयुधानापरनामा ।२। तस्मादपि सञ्जय तत्पुनश्च कुणि कुणेर्युगन्धर ।३। इत्येते शैनेया ।४।

अनमित्रस्यान्वये पृश्नस्तस्मात् श्वफल्क तत्प्रभावः कथित एव ।५। श्वफल्कस्यान्या कनीयाश्चित्रको नाम भ्राता ।६। श्वफल्कादक्रूरो गान्दिन्यामभवत् ।७। तथोपमद्गुर्मृदामृदविश्वारिमेजयगिरिक्षत्रोपक्षत्र-शतघ्नारिमर्दनधर्मदृग्दृष्टधर्मगन्धमोजवाहप्रतिवाहाख्या पुत्रा ।८। सुताराख्या कन्या च ।९। देववानुपदेवश्चाक्रूपुत्रौ ।१०। पृथुविपृथुप्रमुखाश्चित्रकस्य पुत्रा बहवो बभूवु ।११।

श्री पराशरजी ने कहा—अनमित्र का पुत्र शिनि हुआ, शिनि का पुत्र सत्यक और सत्यक का पुत्र सात्यकि हुआ, इसको युयुधान भी कहते थे ॥१-२॥ सात्यकि का पुत्र सञ्जय, सञ्जय का कुणि और कुणि का पुत्र युगन्धर हुआ। यह सभी शैनेय नाम से प्रसिद्ध थे ॥३-४॥

अनमित्र के वंश में ही पृश्नि उत्पन्न हुआ। पृश्नि का ही पुत्र श्वफल्क हुआ, जिसके विषय में पहिले कह चुके हैं। श्वफल्क का एक छोटा भाई चित्रक था ॥५-६॥ गान्दिनी के गर्भ से श्वफल्क ने अक्रूर को जन्म दिया ॥७॥ फिर उपमद्गु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन, धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम की

एक कन्या हुई ।।८-९।। अक्रूर के देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र हुए ।१०। चित्रथ के पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुये थे ।।११।।

कुकुरभजमानशुचिकम्बलवर्हिपाख्यास्तथान्धकस्य चत्वारः पुत्राः ।१२। कुकुराद्धृष्टः तस्मात्र कपोतरोमा ततश्च विलोमा तस्मादपि तुम्बुरुसखाऽभवदनुसंज्ञश्च ।१३। अनोरानकदुन्दुभिः ततश्चाभिजित् अभिजितः पुनर्वसुः ।१४। तस्याप्याहुक आहुकी च कन्या ।१५। आहुकस्य देवकोग्रसेनौ द्वौ पुत्रौ ।१६। देववानुपदेवः सहदेवो देवरक्षितो च देवकस्य चत्वारः पुत्राः ।१७। तेषां वृकदेवोपदेवा देवरक्षिता श्रीदेवा शान्तिदेवा सहदेवा देवकी च सप्त भगिन्यः ।१८। ताश्च सर्वा वसुदेव उमयेमे ।१९। उग्रसेनस्यापि कंसन्यग्रोधसुनामानकाह्वशंकुसभूमिराष्ट्रपालयुद्धतुष्टिसुतुष्टिमत्संज्ञाः पुत्रा बभूवुः ।२०। कंसाकंसवतीसुतनुराष्ट्रपालिकाह्वाश्चोग्रसेनस्य तनूजाः कन्याः ।२१।

अन्धक के चार पुत्र थे—कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष ।१२। कुकुर का पुत्र धृष्ट हुआ, धृष्ट का पुत्र कपोतरोमा, कपोतरोमा का विलोमा और विलोमा का पुत्र अनु हुआ, जो तुम्बरु का मित्र था ।।१३।। अनु का पुत्र आनकदुन्दुभि, उसका पुत्र अभिजित्, उसका पुत्र पुनर्वसु और उसका पुत्र आहुक तथा पुत्री का नाम आहुकी हुआ ।।१४-१५।। आहुक के दो पुत्र हुये देवक और उग्रसेन ।।१६।। देवक के चार पुत्र हुये, जिनके नाम देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित थे ।।१७।। इन चारों पुत्रों की सात बहिनें हुईं, जिनके नाम वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी हुये ।।१८।। इन सबका विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था ।।१९। उग्रसेन के नौ पुत्र कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्व, शंकु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् हुये और कंसा, कंसवती, सुतनु एवं राष्ट्रपालिका नाम की पुत्रियाँ हुईं ।।२०-२१।।

स्यापि शूरः ।२५। शूरस्यापि मारिषा नाम पत्न्यभवत् ।२६। तस्या चासौ दशपुत्रानजनमद्वसुदेवपूर्वान ।२७। वसुदेवस्यातमात्र स्यैव तद्गृहे भगवदशावतारमव्याहतदृष्ट्या पश्यद्भिर्देवैर्दिव्यानकदुन्दुभयो वादिता ।२८। ततश्चासावानकदुन्दुभिसंज्ञामवाप ।२९। तस्य च देवभागदेवश्रवोऽष्टककुकुत्क्रवत्सधारकसृञ्जयश्यामशमिकगण्डूषसंज्ञा नव भ्रातरोऽभवन् ।३०। पृथा श्रुतकीर्तिः श्रुरश्रवा राजाधिदेवी च वसुदेवादीना पञ्च भगिन्योऽभवत् ।३१।

भजमान का पुत्र विदूरथ हुआ। विदूरथ का पुत्र शूर, शूर का शमी, शमी का प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्र का स्वयभोज और स्वयभोज का पुत्र हृदिक हुआ ।।२२-२३।। हृदिक के कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह तथा देवगर्भ आदि अनेक पुत्र हुए ।।२४।। देवगर्भ का पुत्र शूरसेन हुआ ।।२५।। शूरसेन की पत्नी मारिषा हुई, उसके गर्भ से वसुदेवादि दस पुत्रों ने जन्म लिया ।।२६-२७।। वसुदेव के उत्पन्न होते ही देवताओं ने यह जानकर कि इनके पुत्र रूप से भगवान् श्रीहरि का अंशावतार होगा, आनक और दुंदुभि और आदि वाद्यों को बजाया ।।२८।। इसीलिये इन वसुदेवजी को आनक और दुंदुभि भी कहा गया ।।२९।। इनके नौ भाई थे, जिनके नाम देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुच्चक्र, वत्सधारक, सृञ्जय, श्याम, शमिक और गडूष थे ।।३०।। तथा इन सब की पाँच बहिनें थीं, जिनके पृथा, श्रुतादेवा, श्रुतकीर्ती, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम थे ।।३१।।

शूरस्य कुन्तिर्नाम सखाभवत् ।३२। तस्मै चापुत्राय पृथामात्मजा विधिना शूरो दत्तवान् ।३३। ता च पाण्डुरुवाह ।३४। तस्या च धर्मानिलेन्द्रै युधिष्ठिरभीमसेनार्जुनाख्याख्य पुत्रास्समुत्पादिता. ।३५। पूर्वमेवानूढायाश्च भगवता भास्वता कानीन कर्णो नाम पुत्रोजन्यत ।३६। तस्याश्च सपत्नी माद्री नामाभूत् ।३७। तस्या च नासत्यदस्राभ्या नकुलसहदेवौ पाण्डो. पुत्रौ जनितौ ।३८।

शूरसेन का कुन्ति नामक एक मित्र हुआ ।।३२।। उसके सन्तान-हीन होने के कारण शूरसेन ने अपनी पृथा नाम की कन्या उन्हें दत्तक-विधि से प्रदान कर दी ।।३३।। उसी पृथा का विवाह राजा पाण्डु के साथ हुआ ।।३४।। धर्म, वायु

और इन्द्र के द्वारा उसके युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥३५॥ इसी पृथा को कन्यावस्था मे, विवाह से पहिले सूर्य के द्वारा कर्ण नामक पुत्र पहिले ही उत्पन्न हो चुका था ॥३६॥ माद्री नाम की इसकी एक सौत थी ॥३७॥ उसके गर्भ से अश्विनीकुमारो द्वारा नकुल और सहदेव की उत्पत्ति हुई। यह सभी पाण्डु पुत्र कहलाये ॥३८॥

श्रुतदेवा तु वृद्धधर्मा नाम कारूष उपयेमे ।३९। तस्या च दन्तवक्रो नाम महासुरो जज्ञे ।४०। श्रुतकीर्तिमपि केकयराज उपयेमे ।४१। तस्या च सन्तर्दनादय कैकेया पञ्च पुत्रा बभूवु ।४२। राजाधिदेव्यामावन्त्यौ विन्दानुविन्दौ जज्ञाते ।४३। श्रुतश्रवसमपि चेदिराजो दमघोषनामोपयेमे ।४४। तस्या च शिशुपालमुत्पादयामास ।४५। स वा पूर्वमप्युदारविक्रमो दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुरभवत् ।४६। यश्च भगवता सकललोकगुरुणा नरसिंहेन घातित ।४७। पुनरपि अक्षयवीर्यशौर्यसम्पत्पराक्रमगुणस्समाक्रान्तसकलत्रैलोक्येश्वरप्रभावो दशाननो नामाभूत् ।४८।

शूरसेन की दूसरी पुत्री श्रुतदेवा कारूष नरेश वृद्धधर्मा को विवाही गई ॥३९॥ उससे दन्तक नामक एक महादैत्य की उत्पत्ति हुई ॥४०॥ श्रुतकीर्ति का विवाह कैकयराज के साथ हुआ ॥४१॥ उससे कैकयराज ने सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुये ॥४२॥ अवन्तिनरेश को ब्याही गई राजाधिदेवी से विन्द और अनुविन्द की उत्पत्ति हुई ॥४३॥ चेदिराज दमघोष के श्रुतश्रवा का विवाह हुआ, जिससे शिशुपाल उत्पन्न हुआ ॥४४ ४५। यही शिशुपाल अपने पूर्व जन्म मे हिरण्यकशिपु नामक दैत्यराज था, जिसका वध लोकगुरु नृसिंह भगवान ने किया था ॥४६ ४७॥ फिर यही अक्षयवीर्य, शौर्य, वैभव और पराक्रम आदि से युक्त और त्रैलोक्यपति इन्द्र के प्रभाव को फीका करने वाला दशशिर का रावण हुआ ॥४८॥

बहुकालोपभुक्तभगवत्सकाशावाप्तशरीरपातोद्भवपुण्यफलो भगवता राघवरूपिणा सोऽपि निधनमुपपादित ।४९। पुनश्चेदिराजस्य दमघोषस्यात्मजश्शिशुपालनामाभवत् ।५०। शिशुपालत्वेऽपि भगवतो

भूभारावतारणायावतीर्णांशस्य पुण्डरीकनयनाख्यस्योपरि द्वेषानुबन्धमतितराञ्चकार ।५१। भगवता च स निधनमुपनीतस्तत्रैव परमात्मभूते मनस एकाग्रतया सायुज्यमवाप ।५२। भगवान् यदि प्रसन्नो यथाभिलषितं ददाति तथा अप्रसन्नोऽपि निघ्नन् दिव्यमनुमम स्थानं प्रयच्छति ।५३।

स्वय भगवान् के द्वारा मारे जाने के पुण्य रूपी फल से बहुत काल तक अनेक भोगो को भोग कर अन्त मे भगवान् राम के हाथ से ही मारा गया ॥४६॥ फिर यह चेदिराज दमघोष के यहाँ शिशुपाल नाम से उत्पन्न हुआ ॥५०॥ इस जन्म मे भी वह पृथिवी का भार हरण करने के लिये प्रकट हुये भगवान् पुण्डरीकाक्ष के प्रति वैर-भाव रखने लगा ।५१। अन्त मे उन परमात्मा के ही हाथ से मारा जाने के कारण और उन्ही मे तन्मय चित्त होने के कारण उसे सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति हुई ॥५२॥ प्रसन्न हुये भगवान् जिस प्रकार अभीष्ट फल प्रदान करते हैं, उसी प्रकार अप्रसन्न होकर वध करते हुये भी वे अपने दिव्यलोक को प्राप्त कराते हैं ॥५३॥



पंद्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुत्वे च रावणत्वे च विष्णुना ।
अवाप निहतो भोगानप्राप्यानमरैरपि ।१।
न लयं तत्र तेनैव निहतः स कथं पुनः ।
सम्प्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ ।२।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वधर्मभृतां वर ।
कौतूहलपरेणैतत्पृष्टो मे वक्तुमर्हसि ।३।

दैत्येश्वरस्य वधायाखिललोकोत्पत्तिस्थितिविनाशकारिणा पूर्वं तनुग्रहणं कुर्वता नृसिंहरूपमाविष्कृतम् ।४। तत्र च हिरण्यकशि-

पोविष्णुरयमित्येतन्न मनस्यभूत् ।५। निरतिशयपुण्यसमुद्भूतमेतत्सत्त्वजातमिति ।६। रजउद्रेकप्रेरितैकाग्रमतिस्तद्भावनायोगात्ततोऽवाप्तवधहेतुकी निरतिशयामेवाखिलत्रैलोक्याधिक्यधारिणी दशाननत्वे भोगसम्पदमवाप ।७। न तु स तस्मिन्ननादिनिधने परब्रह्मभूते भगवत्यनालम्बिनि कृके मनसस्तल्लयमवाप ।८।

श्रीमैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! पहिले हिरण्यकशिपु और फिर रावण होने पर यह भगवान् विष्णु द्वारा मारा जाकर देवताओं को भी दुर्लभ भोगों को तो प्राप्त हुआ, परन्तु उनमे लीन नही हो सका। परन्तु इस जन्म मे शिशुपाल होकर उन्ही भगवान् के द्वारा मारा जाकर वह सायुज्य मोक्ष को किस प्रकार प्राप्त हुआ ॥१-२॥ हे सभी धर्मज्ञो मे श्रेष्ठ मुने ! इस विषय मे मुझे जिज्ञासा हुई है और अत्यन्त कुतूहल के वशीभूत होकर ही मैंने इस विषय मे आपसे पूछा है, कृपया मुझे बताइये ॥३॥ श्रीपराशरजी ने कहा—पूर्व जन्म मे इसके हिरण्यकशिपु नामक दैत्य शरीर का संहार करने के लिये, सब लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने वाले भगवान् नृसिंह रूप से प्रकट हुये थे ॥४॥ उस समय हिरण्यकशिपु के चित्त मे उनके भगवान् विष्णु होने का भाव उत्पन्न नही हुआ था। ५॥ उसने केवल यही समझा कि यह कोई निरतिशय पुण्यो से उत्पन्न जीव है ॥६॥ रजोगुण के उद्रेक की प्रेरणा वाली उसकी मति दृढ़ होने से उसके हृदय मे ईश्वरीय-भाव का योग नही था, इसलिये केवल भगवान् के हाथ से मारे जाने के पुण्य से ही उसने रावण होकर सब से अधिक भोगों को प्राप्त किया ।.७॥ और उन आद्यन्त-रहित भगवान् मे तन्मय चित्त न होने के कारण वह उनमे लीन नही हो सका ॥८॥

एव दशाननत्वेऽप्यनङ्गपराधीनतया जानकीसमासक्तचेतसा भगवता दाशरथिरूपधारिणा हतस्य तद्रूपदर्शनमेवासीत् नायमच्युत इत्यासक्तिर्विपद्यतोऽन्त करणे मानुषबुद्धिरेव केवलमस्याभूत् ।९।

पुनरप्यच्युतविनिपातमात्रफलमखिलभूमण्डलश्लाघ्यचेदिराजकुले जन्म अव्याहतैश्वर्यं शिशुपालत्वेऽप्यवाप ।१०। तत्र त्वखिलानामेव स भगवन्नाम्ना त्वङ्कारकारणमभवत् ।११। ततश्च तत्कालकृताना

तेषामशेषाणामेवाच्युतनाम्नामनवरतमनेकजन्मसु वर्धितविद्वेषानुबन्धि-
चित्तो विनिन्दनसन्तर्जनादिपूच्चारणमकरोत् ।१२। तच्चरूपमुत्फुल्लप-
द्मदलामलाक्षमत्युज्ज्वलपीतवस्त्रधार्यमलकिरीटकेयूरहारकटकादिशोभि-
तमुदारचतुर्बाहुशङ्खचक्रगदाधरमतिप्ररूढवैरानुभावादटनभोजनस्नानास-
नशयनादिष्वशेषावस्थान्तरेषु नान्यत्रोपययावस्य चेतसः ।१३।

इसी प्रकार जब वह रावण हुआ, तब जानकीजी के प्रति उसके चित्त मे कामासक्ति थी और जब वह राम रूप धारी भगवान् के हाथ से मारा गया, तब केवल उनके रूप को ही देख सका था और उनमे अच्युत-भाव का अभाव तथा केवल मनुष्य-भाव ही रहा आया ।९। परन्तु, भगवान् के हाथ से मारा जाने के कारण ही उसने पृथिवी पर प्रशसित चेदिराज के वश मे शिशुपाल रूप से उत्पन्न होकर अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त किया ॥१०॥ इस जन्म मे उसने भगवान् के प्रत्येक नाम मे तुच्छ भाव ही रखा और क्योंकि उसका हृदय अनेक जन्मो मे उनके प्रति द्वेपयुक्त था, इसलिये वह उनके तिरस्कार पूर्वक उनकी निन्दा करता हुआ निरन्तर उनका नामोच्चारण करता रहता था ।।११-१२।। विकसित कमल दल के समान स्वच्छ नेत्र वाले, शुभ्र पीताम्बर, निर्मल किरीट, केयूर, हार तथा कटकादि धारण किये, चार दीर्घबाहु वाले, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् का वह दिव्य स्वरूप घूमते, स्नान करते, भोजन करते, बैठते और सोते—आदि सभी अवस्थाओ मे उसके चित्त से कभी भी अलग नही होता था ॥१३॥

ततस्तमेवाक्रोशेषूच्चारयंस्तमेव हृदयेन धारयन्नात्मवधाय
यावद्भगवद्धस्तचक्रांशुमालोज्ज्वलमक्षयतेजस्स्वरूपं ब्रह्मभूतमपगतद्वे-
षादिदोष भगवन्तमद्राक्षीत् ।१४। तावच्च भगवच्चक्रेणाशु
व्यापादितस्तत्स्मरणदग्धाखिलाघसञ्चयो भगवतान्तमुपनीतस्तस्मिन्नेव
लयमुपययौ ।१५। एतत्तवाखिलमयाभिहितम् ।१६। अय हि भगवान्
कीर्तितश्च संस्मृतश्च द्वेषानुबन्धेनापि अखिलसुरासुरादिदुर्लभं फलं
प्रयच्छति किमुत सम्यग्भक्तिमतामिति ।१७।

जब वह उन्हे गाली देता, तब उन्ही के नाम का उच्चारण और हृदय मे उन्ही का ध्यान करता हुआ संहार हेतु हाथ मे चक्र धारण किये, अक्षय तेजस्वी, द्वेषादि दोषो से रहित उन ब्रह्मभूत भगवान् का दर्शन कर रहा था ॥१४॥ ऐसी ही अवस्था मे वह भगवान् के चक्र से मारा गया। भगवान् के स्मरण से उसके सभी पाप समूह भस्म हो गये थे। इस प्रकार जैसे ही उसकी मृत्यु हुई वैसे ही यह भगवान् में लीन हो गया ॥१५॥ यह सम्पूर्ण रहस्य मैंने तुम्हे यथार्थ रूप से बता दिया है ॥१६॥ वे भगवान् तो ऐसे दयालु है कि द्वेष का नाता रखकर कीर्तन और स्मरण करने पर भी सभी दैत्यो और देवताओ को दुर्लभ फल प्रदान करते है, फिर भले प्रकार भक्तियय पुरुषो का तो कहना ही क्या है ? ॥१७॥

वसुदेवस्य त्वानकदुन्दुभे. पौरवीरोहिणीमदिराभद्रादेवकीप्रमुखा बह्व्यः पत्न्योऽभवन् ।१८। बलभद्रशठसारणदुर्मदादीन्पुत्रान्रोहिण्यामानकदुन्दुभिरुत्पादयामास ।१९। बलदेवोऽपि रेवत्या विशठोल्मुकौ पुत्रावजनयत् ।२०। सार्ष्टिमार्ष्टिशिशुसत्यधृतिप्रमुखा सारणात्मजाः ।२१। भद्राश्वभद्रबाहुदुर्दमभूताद्या रोहिण्या. कुलजाः ।२२। नन्दोपनन्दकृतकाद्या मदिरायास्तनयाः ।२३। भद्रायाश्चोपनिधिगदाद्याः ।२४। वैशाल्यां च कौशिकमेकमेवाजनयत् ।२५।

आनकदुन्दुभेर्देवक्यामपि कीर्तिमत्सुषेणोदायुभद्रसेनऋजुदासभद्रदेवाख्याः षट् पुत्रा जज्ञिरे ।२६। तांश्च सर्वानेव कंसो घातितवान् ।२७।

आनक दुंदुभि नाम वाले वसुदेवजी की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा, देवकी नाम की अनेक पत्नियाँ थी ॥१८॥ उनमे रोहिणी से बलभद्र, शठ, सारण, दुर्मद आदि अनेक पुत्र हुये ॥१९॥ बलभद्रजी की पत्नी रेवती विशठ उल्मुक नामक दो पुत्रो को जन्म दिया ।२०॥ सारण के पुत्र सार्ष्टि, मार्ष्टि, शिशु, सत्य, धृति आदि हुए ॥२१॥ रोहिणी के भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्दम और भूतादि के नाम से और भी सन्तानें हुईं थी ॥२२॥ मदिरा के पुत्र नन्द, उपनन्द और कृतक आदि हुये तथा भद्रा ने उपनिधि और गद आदि अनेक पुत्रो को जन्म दिया ॥२३-२४॥ वैशाली के गर्भ से एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम

कौशिक था ।।२५।। देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए कीतिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव नामक छः पुत्रों को कंस ने मार डाला ।२६-२७।

अनन्तर च सप्तम गर्भमर्द्धरात्रे भगवत्प्रहिता योगनिद्रा रोहिण्या जठरमाकृष्य नीतवती ।२८। कर्षणाच्चासावपि सङ्कर्षणाख्यामगमत् ।२९। ततश्च सकलजगन्महातरुमूलभूतो भूतभविष्यदादिसकलसुरासुरमुनिजनमनसामप्यगोचरोऽब्जभवप्रमुखैरनलमुखैः प्रणम्यावनिभारहरणाय प्रसादितो भगवाननादिमध्यनिधनो देवकीगर्भमवततार वासुदेवः ।३०। तत्प्रसादविवर्द्धमानोरुमहिमा च योगनिद्रा नन्दगोपपत्न्या यशोदाया गर्भमधिष्ठितवती ।३१। सुप्रसन्नादित्यचन्द्रादिग्रहमव्यालादिभयं स्वस्थमानसमखिलमेवैतज्जगदपास्ताधर्ममभवत्तस्मिंश्च पुण्डरीकनयने जायमाने ।३२। जातेन च तेनाखिलमेवैतत्सन्मार्गवर्ति जगदक्रियत ।३३।

फिर भगवान् द्वारा प्रेरित योगमाया ने अर्द्ध रात्रि के समय देवकी के सातवें गर्भ को खींच कर रोहिणी की कोख में स्थापित कर दिया ।।२८।। इस गर्भ का आकर्षण होने के कारण ही सकर्षण नाम पड़ा ।।२९।। फिर इस संसार वृक्ष के मूल, भूत भविष्यत वर्तमान के सभी देवताओं दैत्यों और मुनियों की बुद्धि के लिये अगम्य, ब्रह्मा और अग्नि आदि देवताओं द्वारा पृथिवी का भार हरण करने के लिए प्रसन्न किए हुए तथा जिनका आदि, अन्त, मध्य कुछ भी नहीं है ऐसे भगवान् विष्णु ने देवकी के गर्भ से वसुदेव रूप में अवतार धारण किया और उन्हीं के प्रभाव से महिती महिमामयी योगनिद्रा नन्द पत्नी यशोदा के गर्भ में अवस्थित हुई ।।३० ३१।। जब वे पद्मनाकर भगवान् प्रकट हुये, तब यह सम्पूर्ण विश्व प्रसन्न हुये आदित्य और चन्द्रमा आदि ग्रहों से परिपूर्ण, सर्पादि के भय से रहित, अधर्मादि दोषों से शून्य तथा स्वस्थ हृदय हो गया ।।३२।। उन्होंने अवतीर्ण होकर इस सम्पूर्ण विश्व को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी ।।३३।।

भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्येकोत्तरशताधिकानि भार्याणामभवन् ।३४। तासां च रुक्मिणीसत्यभामाजाम्बवतीचारु-

हासिनीप्रमुखा ह्यष्टौ पत्न्य प्रधाना बभूवु ।३५। तासु चाष्टावयुतानि लक्ष च पुत्राणा भगवानखिलमूर्तिरनादिमानजनयत् ।३६। तेषा च प्रद्युम्नचारुदेष्णसाम्बादय नयोदश प्रधाना ।३७। प्रद्युम्नोऽपि रुक्मिणस्तनया रुक्मवती नामोपयेमे ।३८। तस्यामनिरुद्धो जज्ञे ।३९। अनिरुद्धोऽपि रुक्मिण एव पौत्री सुभद्रा नामोपयेमे ।४०। तस्यामस्य वज्रो जज्ञे ।४१। वज्रस्ल प्रतिवाहुस्तस्यापि सुचारु ।४२। एवमनेकशतसहस्रपुरुषसख्यस्य यदुकुलस्य पुनसख्या वर्षशतैरपि वक्तु न शक्यते ।४३। यतो हि श्लोकाविमावत्र चरितार्थौ ॥४४॥

इस मृत्यु लोक मे प्रकट हुए भगवान् वासुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुई ॥३४॥ उनमे रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, चारुहासिनी आदि आठ रानियाँ प्रमुख थी ॥३५॥ उन सब रानियो के उदर से भगवान् ने एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥३६॥ उनमे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रमुख माने जाते थे ॥३७॥ प्रद्युम्न का विवाह रुक्मी-तनया रुक्मवती से हुआ था ॥३८॥ रुक्मवती से अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ ॥३९॥ अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी की पौत्री सुभद्रा से हुआ ॥४०॥ उससे वज्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ वज्र का पुत्र प्रतिबाहु और उसका पुत्र सुचारु हुआ ॥४२॥ इस प्रकार यह यदुवंश सैकड़ो हजार पुरुष सख्यक था, जिसकी गणना सौ वर्षों मे भी पूर्ण नही हो सकती ॥४३॥ इस विषय मे यह दो श्लोक कहे जाते हैं ॥४४॥

तिस्र कोठ्यस्सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।
कुमाराणा गृहाचार्याश्चापयोगेषु ये रता ।४५।
सख्यान यादवाना क करिष्यति महात्मनाम् ।
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते सदाहुक ।४७।
देवासुरे हता ये तु दैतेयास्सुमहाबला. ।
उत्पन्नास्ते मनुष्येषु जनोपद्रवकारिण ।४७।
तेषामुत्सादनार्थाय भुवि देवा यदो कुले ।
अवतीर्णा कुलशत यत्रैकाभ्यधिक द्विज ।४८।

विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः ।
निदेशस्थायिनस्तस्य ववृधुस्सर्वयादवाः ।।४९।।
इति प्रसूतिं वृष्णीनां यश्शृणोति नरः सदा ।
स सर्वैः पातकैर्मुक्तो विष्णुलोकं प्रपद्यते ।।५०।।

यादव कुमारों को धनुर्विद्या सिखाने वाले गुरुाचार्य तीन करोड़ अट्ठासी लाख थे, तो फिर उन यादवों की गणना करने में कौन समर्थ हो सकता है, जिन लाखों करोड़ों के सहित उग्रसेन सदा स्थित रहते थे ।।४५-४६।। देवासुर युद्ध में जिन महाबली दैत्यों का हनन हुआ था, वे मर्त्यलोक में उत्पन्न होकर सभी उपद्रवकारी राजागण हुये ।।४७।। उनका संहार करने के लिये देवताओं ने एक सौ एक वंश वाले यदुकुल में जन्म धारण किया ।।४८।। उनका स्वामित्व और व्यवस्था के अधिकार पर भगवान् विष्णु ही अधिष्ठित हुये और उन्हीं की आज्ञा से चलते हुए वे समस्त यादवगण सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त हुये ।४९। इस प्रकार से वृष्णिवंश की उत्पत्ति के वृत्तान्त को जो मनुष्य सदैव श्रवण करता है, वह अवश्य ही सब पापों से छूट जाता है, और उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ।।५०।।



सोलहवाँ अध्याय

इत्येष समासतस्ते यदोर्वंशः कथितः ।१। अथ दुर्वसोर्वंशमवधारय ।२। दुर्वसोर्वह्निरात्मजः वह्नेर्भार्गो भार्गाद्भानुस्ततश्च त्रयीसानुस्तस्माच्च करन्दमस्तस्यापि मरुत्तः ।३। सोऽनपत्योऽभवत् ।४। ततश्च पौरवं दुष्यन्तं पुत्रमकल्पयत् ।५। एवं ययातिशापात्तद्वंशः पौरवमेव वंशं समाश्रितवान् ।६।

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार संक्षिप्त रूप से मैंने तुम्हें यदुवंश का वृत्तान्त सुनाया ।।१।। अब दुर्वसु के वंश का श्रवण करो ।।२।। दुर्वसु का

पुत्र नहिं हुआ, उसका पुत्र भार्ग और भार्ग का भानु हुआ। भानु का पुत्र त्रयीमान्, उसका पुत्र करन्दम और करन्दम का पुत्र मरुत्त हुआ ॥३॥ मरुत्त के कोई संतान नहीं थी, इसलिये उसने पुरुवंशोत्पन्न दुष्यन्त को पुत्र रूप से रखा ॥४-५॥ इस प्रकार ययाति के शाप के फल रूप में दुर्वसु के वंश, पुरुवंश के रूप में चला ॥६॥



सत्रहवाँ अध्याय

द्रुह्योस्तु तनयो बभ्रुः ।१। बभ्रोस्सेतुः ।२। सेतुपुत्र आरब्धनामा ।३। आरब्धस्यात्मजो गान्धारो गान्धारस्य धर्मो धर्माद् घृतः घृताद् दुर्दमस्ततः प्रचेताः ।४। प्रचेतसः पुत्रश्शतधर्मो बहुलानां म्लेच्छानामुदीच्यानामाधिपत्यमकरोत् ।५।

श्री पराशरजी ने कहा—द्रुह्यु का पुत्र बभ्रु हुआ और बभ्रु का पुत्र सेतु था। १-२॥ सेतु का आरब्ध, आरब्ध का गाधार, गाधार का धर्म, धर्म का घृत, घृत का दुर्दम और उसका पुत्र प्रचेता हुआ ॥३-४॥ प्रचेता का पुत्र शतधर्म हुआ, जो कि बाद में होने वाले म्लेच्छों का अधिपति हो गया ॥५॥



अठारहवाँ अध्याय

ययातेश्चतुर्थपुत्रस्यानोस्सभानलचक्षुः परमेषुसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।१। सभानलपुत्रः कालानलः ।२। कालानलात्सृञ्जयः ।३। सृञ्जयात् पुरञ्जयः ।४। पुरञ्जयाज्जनमेजयः ।५। तस्मान्महाशालः ।६। तस्माच्च महामनाः ।७। तस्मादुशीनरतितिक्षूद्वौ पुत्रावुत्पन्नौ ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—ययाति का जो चौथा पुत्र अनु था, उसके तीन पुत्र हुये—सभानल, चक्षु और परमेषु। सभानल का पुत्र कालानल हुआ ॥ १-२॥ कालानल का पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का पुरञ्जय पुरञ्जय का जनमेजय, जनमेजय का महाशाल, महाशाल का महामना और महामना के दो पुत्र हुये—उशीनर और तितिक्षु ॥ ३-८॥

उशीनरस्यापि शिविनृगनरकृमिवर्माख्याः पञ्च पुत्रा बभूवु ।६। पृषदर्भसुवीरकेकयमद्रकाश्चत्वारश्शिविपुत्राः ।१०। तितिक्षोरपि रुशद्रथः पुत्रोऽभूत् ।११। तस्यापि हेमो हेमस्यापि सुतपाः सुतपसश्च बलिः ।१२। यस्य क्षेत्रे दीर्घतमसाङ्गवङ्गकलिङ्गसुह्मपौण्ड्राख्यं बालेयं क्षत्रमजन्यत ।१३। तन्नामसन्ततिसंज्ञाश्च पञ्चविषया बभूवुः ।१४। अङ्गादनपानस्ततो दिविरथस्तस्माद्धर्मरथः ।१५। ततश्चित्ररथो रोमपादसंज्ञ ।१६। यस्य दशरथो मित्रं जज्ञे ।१७। यस्याजपुत्रो दशरथश्शान्तां नाम कन्यामनपत्यस्य दुहितृत्वे युयोज ।१८।

उशीनर के पाँच पुत्र हुये, जिनके नाम शिवि, नृग, नर, कृमि और वर्म थे ॥६॥ शिवि के पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक नामक चार पुत्र हुये ॥१०॥ तितिक्षु का पुत्र रुशद्रथ हुआ, उसका हेम नामक पुत्र हुआ। हेम का सुतपा और सुतपा का पुत्र बलि हुआ ॥११-१२॥ इस बलि की रानी के उदर में दीर्घतमा नामक मुनि ने गर्भ स्थापित कर अङ्ग, वङ्ग, कलिंग, सुह्म और पौण्ड्र नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥१३॥ इनके नामों पर पाँच देशों का वैसा ही नाम पड़ा ॥१४॥ अंग का पुत्र अनपान हुआ, अनपान का दिविरथ और दिविरथ का पुत्र धर्मरथ हुआ ॥१५॥ धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ हुआ, जिसको रोमपाद भी कहा गया ॥१६॥ इस रोमपाद के मित्र अज-पुत्र दशरथ हुये, जिन्होंने रोमपाद के नि:संतान होने के कारण उसे अपनी कन्या शान्ता गोद दे दी थी ॥१७-१८॥

रोमपादाच्चतुरङ्गस्तस्मात्पृथुलाक्षः ।१६। ततश्चम्पो यश्चम्पां निवेशयामास ।२०। चम्पस्य हर्यङ्गोनामात्मजोऽभूत् ।२१। हर्यङ्गाद्भद्ररथो भद्ररथाद्वृहद्रथो बृहद्रथाद्बृहत्कर्मा बृहत्कर्मणश्च बृहद्भानुस्तस्माच्च

बृहन्मना बृहन्मनसो जयद्रथ ।२२। जयद्रथो ब्रह्मक्षत्रान्तरालसम्भूत्या पत्न्या विजय नाम पुत्रमजीजनत् ।२३। विजयश्च धृति पुत्रमवाप ।२४। तस्यापि धृतव्रत पुत्रोऽभूत् ।२५। धृतव्रतात्सत्यकर्मा ।२६। सत्यकर्मणस्त्वतिरथ ।२७। यो गङ्गाङ्गतो मञ्जूषागत पृथापविद्ध कर्णं पुत्रमवाप ।२८। कर्णाद्वृषसेन इत्येतदन्ता अङ्गवश्या ।२९। अतश्च पुरुवश श्रोतुमर्हसि ।३०।

फिर रोमपाद का पुत्र चतुरंग और उसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ ॥१९॥ पृथुलाक्ष का पुत्र चम्प हुआ, जिसने चम्पापुरी को बसाया ॥२०॥ चम्प का पुत्र हर्यंग हुआ। हर्यंग का भद्ररथ, भद्ररथ का बृहद्रथ, बृहद्रथ का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का बृहद्भानु, बृहद्भानु का बृहन्मना और बृहन्मना का पुत्र जयद्रथ हुआ ॥२१-२२॥ जयद्रथ की उत्पत्ति ब्राह्मण और क्षत्रिय के ससर्ग से हुई ॥२३॥ विजय का पुत्र धृति था, उसका पुत्र धृतव्रत हुआ ॥२४-२५॥ धृतव्रत का पुत्र सत्यकर्मा और सत्यकर्मा का पुत्र अतिरथ हुआ, जिसने पृथा द्वारा प्रवाहित किये कर्ण को गंगा स्नान के समय पुत्र रूप मे प्राप्त किया था। इस कर्ण का पुत्र वृषसेन हुआ। अगवश का वर्णन यहा पूर्ण हो गया। अब पुरुवश का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥२६-३०॥



उन्नीसवाँ अध्याय

पुरोर्जनमेजयस्तस्यापि प्रचिन्वान् प्रचिन्वत प्रवीर प्रवीरान्मनस्युर्मनस्योश्चाभयदस्तस्यापि सुद्यु स्सुद्योर्बहुगतस्तस्यापि सयातिस्सयातेरहयातिस्ततो रौद्राश्व ।१।

ऋतेपुकक्षेपुस्थण्डिलेपुकृतेपुजलेपुधर्मेपुधृतेपुस्थलेपुसन्नतेपुवनेपुनामानो रौद्राश्वस्य दश पुत्रा बभूवु ।२। ऋतेपोरन्तिनार पुत्रोऽभूत् ।३। सुमतिमप्रतिरथ ध्रु व चाप्यन्तिनार पुत्रानवाप ।४। अप्रतिरथस्य

कण्व. पुत्रोऽभूत् ।५। तस्यापि मेधातिथि ।६। यत काण्वायना द्विजा बभूवु ।७। अप्रतिरथस्यापर पुत्रोऽभूदैलीन ।८। ऐलीनस्य दुष्यन्ताद्याश्चत्वार पुत्रा बभूवु ।९। दुष्यन्ताच्चक्रवर्ती भरतोऽभूत् ।१०। यन्नामहेतुर्देवैश्श्लोको गीयते ।११।

माता भस्त्रा पितु. पुत्रो येन जात स एव स. ।
भरस्व पुत्र दुष्यन्त मावमस्थाश्शकुन्तलाम् ।१२।
रेतोधा पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्व चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।१३।

श्री पराशरजी ने कहा—पुरु का पुत्र जनमेजय हुआ। जनमेजय का पुत्र प्रचिन्वान् और उसका पुत्र प्रवीर हुआ। प्रवीर का मनस्यु, मनस्यु का अभयद, अभयद का सुद्यु और सुद्यु का बहुगत हुआ। बहुगत से सयाति की उत्पत्ति हुई तथा सयाति से अहयाति और अहयाति से रौद्राश्व का जन्म हुआ ॥१॥ रौद्राश्व के दस पुत्र हुये—ऋतेपु, कक्षेपु, स्थण्डिलेपु, कृतेपु जलेपु, धर्मेपु, धृतेपु, स्थलेपु सन्नतेपु और वनेपु उनके नाम थे ॥२॥ ऋतेपु के पुत्र का नाम अन्तिनार और अन्तिनार के सुमति अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्र हुये। ॥३ ४॥ इनमे से अप्रतिरथ के पुत्र का नाम कण्व था, जिससे मेधातिथि उत्पन्न हुआ। इसी की सन्तान काण्वायन नामक ब्राह्मण हुये ॥५-७॥ अप्रतिरथ का द्वितीय पुत्र ऐलीन हुआ, जिसके दुष्यन्तादि चार पुत्र उत्पन्न हुये ॥८ ९॥ दुष्यन्त का पुत्र भरत हुआ, यह चक्रवर्ती राजा था, जिसके विषय मे देवताओ ने गाया था ॥१०-११॥ माता के चर्म धौंकनी के समान होने के कारण पुत्र पर पिता का ही अधिकार होता है। पुत्र जिसके द्वारा जन्म पाता है उसी पिता का रूप होता है। हे दुष्यन्त! शकुन्तला का तिरस्कार न कर इस पुत्र का पालन करो। क्योंकि अपने वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र ही अपने पिता का यमालय से निकालता है। शकुन्तला का यह कथन सत्य है कि इस पुत्र का आधान तुम्ही ने किया है ॥१२-१३॥

भरतस्य पत्नीत्रये नव पुत्रा बभूवु ।१४। नैते ममानुरूपा इत्यभिहितास्तन्मातर परित्यागभयात्तत्पुत्राञ्जघ्नु ।१५। ततोऽस्य

वितथे पुत्रजन्मनि पुत्रार्थिनो मरुत्सोमयाजिनो दीर्घतमसः पार्ष्ण्यपास्ताद्बृहस्पतिवीर्यादुतथ्यपत्न्यां ममतायां समुत्पन्नो भरद्वाजाख्यः पुत्रो मरुद्भिर्दत्तः ।१६। तस्यापि नामनिर्वचनश्लोकः पठ्यते ।१७।

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ।१८।

भरत की तीन भार्याऐं थी, उन्होने नौ पुत्र उत्पन्न किये ।।१४।। भरत ने जब उन्हे अपने अनुरूप न बताया तो उनकी माताओ ने अपने परित्याग किये जाने की आशंका से, उन पुत्रो की हत्या कर दी ।।१५।। इस प्रकार पुत्रोत्पत्ति के व्यर्थ होने पर पुत्रकामी भरत ने मरुत्सोम नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ की समाप्ति पर मरुद्गण ने भरत को भरद्वाज नामक एक शिशु प्रदान किया। यह बालक बृहस्पतिजी के वीर्य से उतथ्य-पत्नी ममता के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ।१६। उसके नामकरणके विषय मे एक श्लोक प्रचलित है ।१७। हे मूढे ! यह पुत्र द्वाज अर्थात् हम दोनो मे उत्पन्न हुआ है, इसलिए तू इसका भरण कर। इसके उत्तर मे ममता ने कहा था हे बृहस्पते ! यह पुत्र द्वाज है, इसका भरण तुम करो। इस प्रकार विवाद करते हुए माता-पिताओ के चले जाने पर भरण और द्वाज शब्दो से उसका नाम भरद्वाज हुआ ।।१८।।

भरद्वाजस्स वितथे पुत्रजन्मनि मरुद्भिर्दत्त. ततो वितथसंज्ञामवाप ।१६। वितथस्यापि मन्युः पुत्रोऽभवत् ।२०। बृहत्क्षत्रमहावीर्यनरगर्गा ह्यभवन्मन्युपुत्राः ।२१। नरस्यसङ्कृतिस्सङ्कृतेर्गुरुप्रीतिरन्तिदेवौ ।२२। गर्गाच्छिनि. ततश्च गार्ग्याश्शैन्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो बभूवुः ।२३। महावीर्याच्च दुरुक्षयो नाम पुत्रोऽभवत् ।२४। तस्य त्र्य्यारुणिः पुष्करिण्यो कपिश्च पुत्रत्रयमभूत् ।२५। तच्च पुत्रत्रितयमपि पश्चाद्विप्रतामुपजगाम ।२६। बृहत्क्षत्रस्य सुहोत्रः ।२७। सुहोत्राद्धस्ती य इदं हस्तिनापुरमावासयामास ।२८।

पुत्रोत्पत्ति के वितथ (निष्फल) होने पर मरुद्गण ने भरत को भरद्वाज प्रदान किया था, इसलिये उसे वितथ भी कहा गया ।।१६।। वितथ के

पुत्र का नाम मन्यु था, जिसके बृहत्क्षत्र, महावीर्य नर और गर्गादि अनेक पुत्र हुये ॥२०-२१॥ नर का पुत्र सकृति हुआ, सकृति के दो पुत्र गुरुप्रीति और रन्तिदेव हुये ॥२२॥ गर्ग से शिनि हुआ, उससे गार्ग्य और शैन्य नामक प्रसिद्ध क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥२३॥ महावीर्य के पुत्र का नाम दुरुक्षय हुआ ॥२४॥ दुरुक्षय के त्रय्यारुणि पुष्करिण्य और कपि नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥२५॥ कालान्तर मे यह तीनो पुत्र ब्राह्मण हो गये ॥२६॥ बृहत्क्षत्र का पुत्र सुहोत्र हुआ । सुहोत्र के पुत्र हस्ती ने ही हस्तिनापुर नाम का नगर बसाया ॥२७-८॥

अजमीढद्विजमीढपुरुमीढास्त्रयो हस्तिनस्तनयाः ।२९। अजमीढाकण्व ।३०। कण्वान्मेधातिथि ।३१। यत काण्वायना द्विजाः ।३२। अजमीढस्यान्य पुत्रो बृहदिषु ।३३। बृहदिषोर्बृहद्धनुर्बृहद्धनुपश्च बृहत्वर्मा ततश्च जयद्रथ स्तस्मादपि विश्वजित् ।३४। ततश्च सेनजित् ।३५। रुचिराश्वकाश्यदृढहनुवत्सहनुसंज्ञासेनजित पुत्रा ।३६। रुचिराश्वपुत्र पृथुसेन पृथुसेनात्पार ।३७। पारान्नील ।३८। तस्यैकशत पुत्राणाम् ।३९। तेषा प्रधान काम्पिल्याधिपतिस्समर ।४०। समरस्यापि पारसुपारसदश्वाख्य पुत्रा ।४१। सुपारात्पृथु पृथोस्सुकृतिस्ततो विभ्राज ।४२। तस्माच्चाणुह ।४३। यश्शुकदुहितर कीर्ति नामोपयेमे ।४४। अणुहाद्ब्रह्मदत्त ।४५। ततश्च विष्वक्सेनस्तस्मादुदक्सेन ।४६। भल्लाभस्तस्य चात्मज ।४७।

हस्ती के अजमीढ, द्विजमीढ और पुरुमीढ नामक तीन पुत्र हुए । अजमीढ का पुत्र कण्व और कण्व का पुत्र मेधातिथि हुआ, जिसके काण्वायन ब्राह्मणो की उत्पत्ति हुई ॥२९-३२॥ अजमीढ का द्वितीय पुत्र बृहदिषु हुआ ॥३३॥ उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ, बृहद्धनु का बृहत्कर्मा तथा बृहत्कर्मा का जयद्रथ था । जयद्रथ से विश्वजित् और विश्वजित् सेनजित् हुआ । सेनजित् के चार पुत्र हुए जिनके नाम रुचिराश्व, काश्य, दृढहनु और वत्सहनु थे ॥३४-३६॥ रुचिराश्व का पृथुसेन, पृथुसेन का पार और पार का पुत्र नील हुआ । इसी नील के सौ पुत्र हुये थे जिनमे से एक काम्पिल्याधिपति समर प्रमुख था ॥३७-४०॥ समर के तीन

पुत्र थे—पार, सुपार और सदश्व ॥४१॥ सुपार का पुत्र पृथु, पृथु का सुकृति, सुकृति का विभ्राज और विभ्राज का अणुह नामक जो पुत्र हुआ, उसने शुक-पुत्री कीर्ति का पाणिग्रहण किया था ॥४२-४४॥ अणुह का पुत्र ब्रह्मदत्त हुआ, जिससे विष्वक्सेन, विष्वक्सेन से उदक्सेन हुआ। उदक्सेन का पुत्र भल्लाभ हुआ ॥४५-४७॥

द्विजमीढस्य तु यवीनरसंज्ञः पुत्रः ।४८। तस्यापि धृतिमांस्तस्माच्च सत्यधृतिस्ततश्च दृढनेमिस्तस्माच्च सुपार्श्वस्ततस्सुमतिस्ततश्च सन्नतिमान् ।४९। सन्नतिमतः कृतः पुत्रोऽभूत् ।५०। यं हिरण्यनाभो योगमध्यापयामास ।५१। यश्चतुर्विंशति प्राच्यसामगानां संहिताश्चकार ।५२। कृताच्चोग्रायुधः ।५३। येन प्राचुर्येण नीपक्षयः कृतः ।५४। उग्रायुधात्क्षेम्यः क्षेम्यात्सुधीरस्तस्माद्रिपुञ्जयस्तस्माच्च बहुरथ इत्येते पौरवाः ।५५।

अजमीढस्य नलिनी नाम पत्नी तस्यां नीलसंज्ञः पुत्रोऽभवत् ।५६। तस्मादपि शान्तिः शान्तेस्सुशान्तिस्सुशान्तेः पुरञ्जयस्तस्माच्च ऋक्षः ।५७। ततश्च हर्यश्वः ।५८। तस्मान्मुद्गलसृञ्जयबृहदिषुयवीनरकाम्पिल्यसंज्ञाः पञ्चानामेव तेषां विषयाणां रक्षणायालमेते मत्पुत्रा इति पित्राभिहिताः पाञ्चालाः ।५९।

द्विजमीढ का पुत्र यवीनर हुआ ॥४८॥ उसका पुत्र धृतिमान्, धृतिमान् का सत्यधृति, सत्यधृति का दृढनेमि, दृढनेमि का सुपार्श्व, सुपार्श्व का सुमति, सुमति का सन्नतिमान् और सन्नतिमान् का पुत्र कृत हुआ। हिरण्यनाभ ने इस कृत को योग विद्या सिखाई और फिर इसने प्राच्य सामग श्रुतियों की चौबीस संहिताओं की रचना की ॥४९-५२॥ कृत का पुत्र उग्रायुध हुआ, जिसने अनेकों नीपवंशीय क्षत्रियों का संहार किया था ॥५३-५४॥ उग्रायुध का पुत्र क्षेम्य हुआ, क्षेम्य का सुधीर, सुधीर का रिपुञ्जय और रिपुञ्जय का बहुरथ हुआ। यह सब राजाएँ पुरुवंशीय हुए ॥५५॥ अजमीढ की नलिनी नाम की पत्नी से नील नामक एक पुत्र हुआ ॥५६॥ नील का पुत्र शान्ति, शान्ति का सुशान्ति, सुशान्ति का पुरञ्जय, पुरञ्जय का ऋक्ष और ऋक्ष का पुत्र हर्यश्व हुआ ।५७-५८। हर्यश्व

के पाँच पुत्र हुए उनके नाम मुद्गल, सृञ्जय बृहदिषु, यवीनर और काम्पिल्य थे। पिता ने अपने उन पुत्रो को अपने आधीन पाँचों देशो की रक्षा मे समर्थ बताया, इसलिए वे 'पाञ्चाल' कहे जाने लगे ॥५६॥

मुद्गलाच्च मौद्गल्या. क्षत्रोपेता द्विजातयो वभूवु. ।६०। मुद्गलाद्बृहदश्वः ।६१। बृहदश्वाद्दिवोदासोऽहल्या च मिथुनमभूत् ।६२। शरद्वतश्चाहल्याया शतानन्दोऽभवत् ।६३। शतानन्दात्सत्यधृतिर्धनुर्वेदान्तगो जज्ञे ।६४। सत्यधृतेर्वराप्सरसमुर्वशी दृष्ट्वा रेतस्कन्नञ्शरस्तम्बे पपात ।६५। तच्च द्विधागतमपत्यद्वय कुमार. कन्या चाभवत् ।६६। तौ च मृगयामुपयातश्शान्तनुर्दृष्ट्वा कृपया जग्राह ।६७। ततः कुमार. कृपः कन्या चाश्वत्थाम्नो जननी कृपी द्रोणाचार्यस्य पत्न्यभवत् ।६८।

मुद्गल से मौद्गल नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥६०॥ मुद्गल का बृहदश्व नामक जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उससे देवोदास नामक एक पुत्र और अहिल्या नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई ॥६१-६२॥ उसी अहिल्या के गर्भ से गौतम द्वारा शतानन्द उत्पन्न हुआ ॥६३॥ उस शतानन्द का पुत्र धनुर्वेद का पारदर्शी सत्यधृति नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ एक बार सत्यधृति ने अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी को देखा तो उसके प्रति कामासक्त होने से उसका वीर्य स्खलित होकर सरकण्डे पर जा गिरा ॥६५। उसके वहाँ दो भागो मे विभक्त होने पर पुत्र-पुत्री रूप दो संतानें उत्पन्न हो गई ॥६६॥ राजा शान्तनु जब मृगया के लिए वन मे गये थे, तब उन्हे अनाथावस्था मे देखकर कृपा-पूर्वक अपने घर ले आये, इससे पुत्र का नाम 'कृप' और कन्या का नाम 'कृपी' रखा गया, वही बाद मे अश्वत्थामा को जन्म देने वाली द्रोणाचार्य की भार्या हुई ॥६७-६८।

दिवोदासस्य पुत्रो मित्रायु ।६९। मित्रायोश्च्यवनो नाम राजा ।७०। च्यवनात्सुदास सुदासात्सौदास. सौदासात्सहदेवस्तस्यापि सोमकः ।७१। सोमकाज्जन्तु· पुत्रशतज्येष्ठोऽभवत् ।७२। तेषा यवीयान् पृषत. पृषताद्द्रुपदस्तस्माच्च धृष्टद्युम्नस्ततो धृष्टकेतु ।७३।
अजमीढस्यान्य ऋक्षनामा पुत्रोऽभवत् ।७४। तस्य संवरणः ।७५। संवरणात्कुरु ।७६। य इद धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र चकार ।७७। सुधनुर्जह्नु परीक्षित्प्र-

मुखाः कुरोः पुत्रा बभूवुः ।७८। सुधनुषः पुत्रस्सुहोत्रस्तस्माच्च्यवनश्च्य-
वनात् कृतकः ।७६। ततश्चोपरिचरो वसुः ।८०। बृहद्रथप्रत्यग्रकुशाम्बुकु-
चेलामात्स्यप्रमुखा वसो. पुत्रास्सप्ताजायन्त ।८१। बृहद्रथात्कुशाग्रः
कुशाग्राद्वृषभो वृषभात् पुष्पवान् तस्मात्सत्यहितस्तस्मात्सुधन्वा तस्य
च जतुः ।८२। बृहद्रथाच्चान्यश्शकलद्वयजन्मा जरया संहितो जरासन्ध-
नामा ।८३। तस्मात्सहदेवस्सहदेवात्सोमपस्ततश्च श्रुतिश्रवाः ।८४।
इत्येते मया मागधा भूपाला कथिताः ।८५।

दिवोदास का पुत्र मित्रायु था, जिसका पुत्र राजा च्यवन हुआ ॥६६-७०॥ च्यवन का पुत्र सुदाम, सुदास का सौदास, सौदास का सहदेव, और सहदेव का सोमक हुआ। इस सोमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुये, जिनमे ज्येष्ठ पुत्र का नाम जन्तु और सबसे छोटे पुत्र का नाम पृषत था। पृषत का पुत्र द्रुपद हुआ। द्रुपद का धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु हुआ ॥७१-७३॥ आजमीढ के ऋक्ष नामक तीसरे पुत्र का संवरण नामक तनय हुआ। संवरण का पुत्र कुरु हुआ, जिसने धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र स्थापित किया ॥७४-७७॥ कुरु के सुधनु, जह्नु और परीक्षित आदि अनेक पुत्र हुये ॥७८॥ सुधनु का पुत्र सुहोत्र हुआ। सुहोत्र का च्यवन, उसका कृतक और उसका पुत्र उपरिचर वसु हुआ ॥७९-८०॥ वसु के बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाम्बु, कुचेल, मात्स्य आदि सात पुत्र हुये ॥८१॥ इनमे से बृहद्रथ का कुशाग्र हुआ। कुशाग्र का वृषभ, वृषभ का पुष्पवान्, पुष्पवान् का सत्यहित, सत्यहित का सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र जतु हुआ ॥८२॥ उसी बृहद्रथ के एक पुत्र और हुआ था जो दो खण्डों मे था तथा जरा द्वारा जोड देने पर वह जरासन्ध के नाम मे प्रसिद्ध हुआ ॥८३॥ उस जरासन्ध का पुत्र सहदेव हुआ, सहदेव का सोमप और सोमप का पुत्र श्रुतिश्रवा हुआ ॥८४॥ इस प्रकार मागध भूपालों का यह वृतान्त मैंने तुमसे कह दिया है ॥८५॥



बीसवाँ अध्याय

परीक्षितो जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेनाश्चत्वारःपुत्राः ।१। जह्नोस्तु सुरथो नामात्मजो बभूव ।२। तस्यापि विदूरथ. ।३। तस्मात्सार्वभौमस्सार्वभौमाज्जयत्सेनस्तस्मादाराधितस्ततश्चायुतायुरयुतायोरक्रोधनः ।४। तस्माद्देवातिथिः ।५। ततश्च ऋक्षोऽन्योऽभवत ।६। ऋक्षाद्भीमसेनस्ततश्च दिलीपः ।७। दिलीपात् प्रतीपः ।८।

तस्यापि देवापिशान्तनुबाह्लीकसञ्ज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।९। देवापिर्बाल एवारण्यं विवेश ।१०। शान्तनुस्तु महीपालोऽभूत् ।११। अयं च तस्य श्लोकः पृथिव्यां गीयते ।१२।

य यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ।
शान्तिं चाप्नोति येनाग्र्यां कर्मणा तेन शान्तनुः ।१३।

श्री पराशरजी ने कहा—परीक्षित के चार पुत्र हुए, जिनके नाम जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन थे ॥१॥ जन्हु के सुरथ नाम का एक ही पुत्र था ॥२॥ सुरथ का पुत्र विदूरथ हुआ। विदूरथ का पुत्र सार्वभौम, सार्वभौम का जयत्सेन, जयत्सेन का आराधित, आराधित का अयुतायु और अयुतायु का पुत्र अक्रोधन हुआ ॥३-४॥ अक्रोधन का पुत्र देवातिथि और देवातिथि का पुत्र द्वितीय ऋक्ष था ॥५-६॥ ऋक्ष का पुत्र भीमसेन, भीमसेन का दिलीप और दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ ॥७-८॥ प्रतीप के तीन पुत्र देवापि, शान्तनु और बाह्लीक हुए ॥९॥ इनमे से देवापि के बाल्यकाल मे वनवासी हो जाने के कारण शान्तनु राजा हुआ ॥१०-११॥ उसके विषय मे पृथिवी पर यह श्लोक गाया जाता है—यह जिस जिसको छू लेते वही-वही वृद्ध पुरुष भी युवावस्था को प्राप्त हो जाते थे और अन्य सभी प्राणी उनके स्पर्श को पाकर महान् शान्ति को प्राप्त होते थे, इसीलिए वे 'शान्तनु' नाम से विख्यात हुये थे ॥१२-१३॥

तस्य च शान्तनो राष्ट्रे द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष ।१४। ततश्चाशेषराष्ट्रविनाशमवेक्ष्यासौ राजा ब्राह्मणानपृच्छत् कस्मादस्माकं राष्ट्रे देवो न वर्षति को ममापराध इति ।१५। ततश्च तमूचुर्ब्राह्मणाः ।१६। अग्रजस्य ते हीयमवनिस्त्वया सम्भुज्यते अतः परिवेत्तात्वमित्युक्तस्स राजा पुनस्तानपृच्छत् ।१७। किं मयात्र विधेयमिति ।१८।

ततस्ते पुनरप्यूचुः ।१६। यावद्देवापिर्न पतनादिभिर्दोषैरभिभूयते तावदेतत्तस्याहं राज्यम् ।२०। तदलमेतेन तु तस्मै दीयतामित्युक्ते तस्य मन्त्रिप्रवरेणाश्मसारिणा तत्रारण्ये तपस्विनो वेदवादविरोधवक्तारः प्रयुक्ताः ।२१। तैरस्याप्यतिऋजुमतेर्महीपतिपुत्रस्य बुद्धिर्वेदवादविरोधमार्गानुसारिण्यक्रियत ।२२।

शान्तनु के शासन काल मे एक समय बारह साल पर्यन्त बरसात नही हुई ॥१४॥ तब अपने समस्त राज्य को समाप्त होता देखकर नृप शान्तनु ने विप्रो से पूछा, "मेरे देश में वर्षा का अभाव क्यों हैं? इसमे मेरी क्या त्रुटि है? ॥१५॥ ब्राह्मण बोले—"जिस राज्य को आप भोग रहे हैं, वह आपके ज्येष्ठ भ्राता का है, इसलिए आप तो केवल सरक्षक मात्र हैं।" यह सुन कर शान्तनु ने पुनः पूछा—"इस परिस्थिति मे अब मुझे क्या करना अभीष्ट है? ॥१६-१८॥ ब्राह्मणो ने उत्तर दिया—"आपके ज्येष्ठ भ्राता देवापि किसी प्रकार पतित या अनाचारी होकर राज्य से पदच्युत होने योग्य न हो, तब तक इस राज्य के अधिकारी वही हैं ॥१९-२०॥ इसलिये आप इस राज्य को अपने भाई को ही सौंप दें, आपका इससे कोई सम्बन्ध नही। ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर महाराज शान्तनु के मन्त्री अश्मसारी ने वेदवाद के विरोधी तपस्वियों को वन मे भेज दिया ॥२१॥ जिन्होंने वन मे पहुँचकर महान् सरल हृदय राजकुमार देवापि की बुद्धि को भी वेदवाद के विरुद्ध आकृष्ट किया ॥२२॥

राजा च शान्तनुर्द्विजवचनोत्पन्नपरिदेवनशोकस्तान् ब्राह्मणानग्रतः कृत्वाग्रजस्य प्रदानायारण्यं जगाम ।२३। तदाश्रममुपगताश्च तमवनतमवनीपतिपुत्रं देवापिमुपतस्थुः ।२४। ते ब्राह्मणा वेदवादानुबन्धीनि वचांसि राज्यमग्रजेन कर्त्तव्यमित्यर्थवन्ति तमूचुः ।२५। असावपि देवापिर्वेदवाद विरोधयुक्तिदूषितमनेकप्रकारं

तानाह ।२६। ततस्ते ब्राह्मणाश्शान्तनुमूचुः ।२७। आगच्छ हे राजन्नलमत्रातिनिर्बन्धेन प्रशान्त एवासावनावृष्टिदोषः पतितोऽयमनादिकालमहितवेदवचनदूषणोच्चारणात् ।२८। पतिते चाग्रजे नैव ते परिवेत्तृत्वं भवतीत्युक्तश्शान्तनुस्स्वपुरमागम्य राज्यमकरोत् ।२९। वेदवादविरोधवचनोच्चारणदूषिते च तस्मिन्देवापौ तिष्ठत्यपि ज्येष्ठभ्रातर्यखिलसस्यनिष्पत्तये ववर्ष भगवान्पर्जन्यः ।३०।

दूसरी ओर ब्राह्मणों के वचन सुनकर दुखित एवं शोकाकुल राजा शान्तनु ब्राह्मणों को सङ्ग लेकर अपने ज्येष्ठ भ्राता को राज्य सौंपने वन को गये ।।२३।। वे सभी सरलमति विनीत व्यवहारी राजकुमार देवापि के आश्रम पर पहुँचे । जहा ब्राह्मण उन्हें समझाते रहे और "ज्येष्ठ भ्राता को ही राज्य करना चाहिये ।" आदि वेदों के अनुसार नीति एवं उपदेशपूर्ण वचन कहने लगे ।।२४-२५।। लेकिन देवापि ने वेदनीति के विरुद्ध उनसे अनेक प्रकार से दूषित वचन कहे ।।२६।। जिन्हे सुनकर शान्तनु से उन ब्राह्मणों ने कहा—हे नृप ! चलिये, अब अधिक आग्रह करने की आवश्यकता नही है । आदि काल से आराध्य वेद वाक्यों के विरुद्ध दूषित वचन कहने से देवापि पतित हो गये हैं । अब आप चलें अनावृष्टि का दोष समाप्त होकर आपके राज्य में वर्षा प्रारम्भ हो गई है ।।२७।। चूंकि बडा भाई इस प्रकार पतित हो चुके हैं, इस कारण अब आप सरक्षक या परिवेत्ता मात्र नहीं हैं । फिर शान्तनु अपने राज्य को लौट आये और शासन करने लगे ।।२८।। वेदवाद के विरोध मे दूषित वचनों के प्रयोग करने के कारण देवापि पतित हो गये और इस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता के रहते हुये भी छोटे भाई के शासन मे खाद्यान्न उत्पादन हेतु बादल बरसने लगे ।।३०।।

वाह्लीकात्सोमदत्तः पुत्रोऽभूत् ।३१। सोमदत्तस्यापि भूरिभूरिश्रवः शल्यसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।३२। शान्तनोरप्यमरनद्यां जाह्नव्यामुदारकीर्तिरशेषशास्त्रार्थविद्भीष्मः पुत्रोऽभूत् ।३३। सत्यवत्यां च चित्राङ्गदविचित्रवीर्यौ द्वौ पुत्रावुत्पादयामास शान्तनुः ।३४। चित्राङ्गदस्तु बाल एव चित्राङ्गदेनैव गन्धर्वेणाहवे निहतः ।३५। विचित्रवीर्योऽपि काशिराजतनये अम्बिकाम्बालिके उपयेमे ।३६। तदुपभोगाति-

खेदाच्च यक्ष्मणा गृहीतः स पञ्चत्वमगमत् ।३७। सत्यवतीनियोगाच्च मत्पुत्रः कृष्णद्वैपायनो मातुर्वचनमनतिक्रमणीयमिति कृत्वा विचित्रवीर्यक्षेत्रे धृतराष्ट्रपाण्डू तत्प्रहितभुजिष्यायां विदुरं चोत्पादयामास ।३८।

बाह्लीक का पुत्र सोमदत्त था और सोमदत्त के भूरि, भूरिश्रवा एवं शल्य तीन पुत्र हुये ।।३१-३२।। शान्तनु का एक पुत्र भीष्म, जो कि अत्यन्त कीर्तिशाली एवं समस्त शास्त्रों का विद्वान् था और गंगाजी से उत्पन्न हुआ था ।।३३।। शान्तनु के दो अन्य पुत्र चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य सत्यवती से उत्पन्न हुये ।।३४।। शान्तनु के पुत्र चित्रांगद को बाल्यकाल में ही चित्रांगद नामक एक गन्धर्व ने मार डाला था ।।३५।। विचित्रवीर्य ने काशी नरेश की अम्बिका व अम्बालिका नामक कन्याओं से विवाह किया ।।३६।। किन्तु पत्नियों अत्यधिक समर्ग में लग्नशील रहने के कारण विचित्रवीर्य यक्ष्मा से पीड़ित होकर अकाल ही मृत्यु को प्राप्त हो गया ।।३७।। पाराशर जी बोले—इसके पश्चात् मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने सत्यवती एवं अपनी माता के निर्देशानुसार विचित्रवीर्य की पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्रों को जन्म दिया एवं उनकी दासी से विदुर नामक पुत्र उत्पन्न किया ।।३८।।

धृतराष्ट्रोऽपि गान्धार्यां दुर्योधनदुश्शासनप्रधानं पुत्रशतमुत्पादयामास ।३९। पाण्डोरप्यरण्ये मृगयायामृषिशापोपहतप्रजाजननसामर्थ्यस्य धर्मवायुशक्रैर्युधिष्ठिरभीमसेनार्जुनाः कुन्त्यां नकुलसहदेवौ चाश्विभ्यां माद्र्यां पञ्चपुत्रास्समुत्पादिताः ।४०। तेषां च द्रौपद्यां पञ्चैव पुत्रा बभूवुः ।४१। युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यः भीमसेनाच्छ्रुतसेनः श्रुतकीर्तिरर्जुनाच्छ्रुतानीको नकुलाच्छ्रुतकर्मा सहदेवात् ।४२।

अन्ये च पाण्डवानामात्मजास्तद्यथा ।४३। यौधेयी युधिष्ठिराद्देवकं पुत्रमवाप ।४४। हिडिम्बा घटोत्कचं भीमसेनात्पुत्रं लेभे ।४५। काशी च भीमसेनादेव सर्वगं सुतमवाप ।४६। सहदेवाच्च विजया सुहोत्रं पुत्रमवाप ।४७। रेणुमत्यां च नकुलोऽपि निरमित्रमजीजनत् ।४८।

धृतराष्ट्र द्वारा गान्धारी से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।।३९।। वन में शिकार करते हुये एक बार एक ऋषि के शाप के कारण

पाण्डु सतानोत्पत्ति के अयोग्य हो गये थे, तब उनकी पत्नी कुन्ती से धर्म, वायु व इन्द्र द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम व अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए एवं उनकी दूसरी पत्नी माद्री से दोनो अश्विनी कुमारो द्वारा नकुल व सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये और इस तरह पाण्डु के पाच पुत्र उत्पन्न हुये ॥४०॥ द्रोपदी से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव द्वारा पाँच पुत्र उत्पन्न हुये ॥४१॥ युधिष्ठिर द्वारा प्रतिविन्ध्य, भीमसेन द्वारा श्रुतसेन, अर्जुन द्वारा श्रुतकीर्ति, नकुल द्वारा श्रुतानीक एवं सहदेव द्वारा श्रुतकर्मा ने जन्म लिया ॥४२॥ उपरोक्त पुत्रों के अतिरिक्त भी पाण्डु-पुत्र पांडवो के अन्य अनेक पुत्रों ने जन्म लिया ॥४३॥ युधिष्ठिर द्वारा द्रोपदी के गर्भ से देवक नामक पुत्र, हिडिम्बा से भीमसेन द्वारा घटोत्कच व काशी से सवर्ग नामक पुत्र, रेणुमती से नकुल द्वारा निरमित्र उत्पन्न हुआ ॥४४-४८॥

अर्जुनस्याप्युलूप्यां नागकन्यायामिरावान्नामपुत्रोऽभवत् ।४९। मणिपुरपतिपुत्र्यां पुत्रिकाधर्मेण बभ्रुवाहनं नाम पुत्रमर्जुनोऽजनयत् ।५०। सुभद्रायां चार्भकत्वेऽपि योऽसावतिबलपराक्रमस्समस्तारातिरथजेता सोऽभिमन्युरजायत ।५१। अभिमन्योरुत्तरायां परिक्षीणेषु कुरुष्वश्वत्थामप्रयुक्तब्रह्मास्त्रेण गर्भ एव भस्मीकृतो भगवतस्सकलसुरासुरवन्दितचरणयुगलस्यात्मेच्छया कारणमानुषरूपधारिणोऽनुभावात्पुनर्जीवितमवाप्य परीक्षिज्जज्ञे ।५२। योऽयं साम्प्रतमेतद्भूमण्डलमखण्डितायतिधर्मेण पालयतीति ।५३।

अर्जुन द्वारा उनकी उप पत्नी नागकन्या उलूपी से इरावान् उत्पन्न हुआ ॥४६॥ मणिपुरनरेश की पुत्री से अर्जुन द्वारा पुत्रिका धर्म के अनुसार बभ्रुवाहन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५०॥ अर्जुन द्वारा ही सुभद्रा से अभिमन्यु का जन्म हुआ जो कि महापराक्रमी और वीर्यवान् था ॥५१॥ इसके पश्चात अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र प्रहार से जो परीक्षित गर्भ मे ही भस्मीभूत हो गये थे कुरुकुल के क्षीण हो जाने पर अपनी इच्छा से ही मायारूपी मानव देह धारण करने वाले सम्पूर्ण सुर-असुरो द्वारा चरण वन्दित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रभाव से परीक्षित पुनः जीवित हुआ और उस काल उसने उत्तरा के गर्भ से

अभिमन्यु द्वारा जन्म प्राप्त किया, जो कि इस प्रकार अब धर्मानुराग सहित समस्त भूमण्डल पर राज्य कर रहा है, जिससे कि भविष्य में भी उसका वैभव वैसा ही बना रहे ॥५२-५३॥

इक्कीसवाँ अध्याय

अतः परं भविष्यानहं भूपालान्कीर्तयिष्यामि ।१। योऽयं साम्प्रतमवनीपतिः परीक्षित्तस्यापि जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेनाश्चत्वारः पुत्रा भविष्यन्ति ।२। जनमेजयस्यापि शतानीको भविष्यति ।३। योऽसौ याज्ञवल्क्याद्वेदमधीत्य कृपादस्त्राण्यवाप्य विषमविषयविरक्तचित्तवृत्तिश्च शौनकोपदेशदात्मज्ञानप्रवीणः परं निर्वाणमवाप्स्यति ।४। शतानीकादश्वमेधदत्तो भविता ।५। तस्मादप्यधिसीमकृष्णः ।६। अधिसीमकृष्णान्निचक्नु. ।७। यो गङ्गयापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यति ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—अब मैं आपसे भविष्य में होने वाले राजाओं के विषय में वर्णन करूँगा ॥१॥ इस काल राज्य करने वाले महाराज परीक्षित के चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन होंगे ॥२॥ जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र हुआ, जिसने याज्ञवल्क मुनि से वेद-शिक्षा प्राप्त कर और कृप से शस्त्रास्त्र विद्या प्राप्त करके महर्षि शौनक द्वारा आत्म ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेगा ॥३-४॥ शतानीक का अश्वमेधदत्त नामक पुत्र होगा॥५॥ अश्वमेधदत्त का पुत्र अधिसीम कृष्ण और अधिसीमकृष्ण का पुत्र निचक्नु होगा, निचक्नु गंगाजी द्वारा हस्तिनापुर बहा ले जाने पर कौशाम्बी में निवास करेगा ॥६-८॥

तस्याप्युष्णः पुत्रो भविता ।९। उष्णाद्विचित्ररथः ।१०। ततः शुचिरथः ।११। तस्माद्वृष्णिमांस्ततस्सुषेणस्तस्यापि सुनीथस्सुनीथा-

नृपचक्षुस्तस्मादपि सुखावलस्तस्य च पारिप्लवस्ततश्च सुनयस्तस्यापि मेधावी ।१२। मेधाविनो रिपुञ्जयस्ततो मृदुस्तस्माच्च तिग्मस्तस्माद्वृहद्रथो वृहद्रथाद्वसुदानः ।१३। ततोऽपरश्शतानीकः ।१४। तस्माच्चोदयन उदयनादहीनरस्ततश्च दण्डपाणिस्ततो निरमित्रः ।१५। तस्माच्च क्षेमकः ।१६। अत्राय श्लोकः ।१७।

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो राजर्षिसत्कृतः ।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थानं प्राप्स्यते कलौ ।१८।

निचक्नु का पुत्र उष्ण, उष्ण का विचित्ररथ, विचित्ररथ से शुचिरथ, शुचिरथ से वृष्णिमान्, वृष्णिमान् से सुषेण, सुषेण से सुनीथ, सुनीथ से नृप, नृप से चक्षु, चक्षु से सुखावल, सुखावल से पारिप्लव, पारिप्लव से सुनय, सुनय से मेधावी, मेधावी से रिपुञ्जय, रिपुञ्जय से मृदु, मृदु से तिग्म तिग्म से वृहद्रथ, वृहद्रथ से वसुदान, वसुदान से द्वितीय शतानीक, शतानीक से उदयन, उदयन से अहीनर, अहीनर से दण्डपाणि, दण्डपाणि से निरमित्र एवं निरमित्र का पुत्र क्षेमक होगा । इस बारे मे एक प्रसिद्ध श्लोक है—॥६-१७॥ वह वंश, जो कि ब्राह्मण और क्षत्रियों की उत्पत्ति का कारण तथा विभिन्न राजर्षियों से जिसकी सभा शोभायमान रही है, कलियुग मे राजा क्षेमक की उत्पत्ति के समय वह वंश नष्ट हो जायगा ॥१८॥



बाईसवाँ अध्याय

अतश्चेक्ष्वाकवो भविष्या. पार्थिवाः कथ्यन्ते ।१। वृहद्बलस्य पुत्रो वृहत्क्षणः ।२। तस्मादुरुक्षयस्तस्माच्च वत्सव्यूहस्ततश्च प्रतिव्योमस्तस्मादपि दिवाकरः ।३। तस्मात्सहदेवः सहदेवाद्वृहदश्वस्तत्सूनुर्भानुरथस्तस्य च प्रतीताश्वस्तस्यापि सुप्रतीकस्ततश्च मरुदेवस्ततः सुनक्षत्रस्तस्मात्किन्नरः ।४। किन्नरादन्तरिक्षस्तस्मात्सुपर्णस्ततश्चामित्रजित्

।५। ततश्च बृहद्राजस्तस्यापि धर्मी धर्मिणः कृतञ्जयः ।६। कृतञ्जयाद्रणञ्जयः ।७। रणञ्जयात्सञ्जयस्तस्माच्छाक्यश्शाक्याच्छुद्धोदनस्तस्माद्राहुलस्ततः प्रसेनजित् ।८। ततश्च क्षुद्रकस्ततश्च कुण्डकस्तस्मादपि सुरथः ।९। तत्पुत्रश्च सुमित्रः ।१०। इत्येते चेक्ष्वाकवो बृहद्बलान्वयाः ।११।

अत्रानुवंशश्लोकः ।१२।
इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।१३।

पराशरजी ने कहा—हे भूपते ! मैं अब भविष्य में आने वाले इक्ष्वाकु वंशज राजाओं के विषय में कहता हूँ ।।१।। बृहद्बल का पुत्र बृहत्क्षण, बृहत्क्षण का उरुक्षय, उरुक्षय का वत्सव्यूह, वत्सव्यूह का प्रतिव्योम, प्रतिव्योम का दिवाकर, दिवाकर का सहदेव, सहदेव का बृहदश्व, बृहदश्व का भानुरथ, भानुरथ का प्रतीताश्व, प्रतीताश्व का सुप्रतीक सुप्रतीक का मरुदेव, मरुदेव का सुनक्षत्र, सुनक्षत्र का किन्नर, किन्नर का अंतरिक्ष, अंतरिक्ष का सुपर्ण, सुपर्ण का अमित्रजित्, अमित्रजित् का बृहद्राज, बृहद्राज का धर्मी, धर्मी का कृतञ्जय, कृतञ्जय का रणञ्जय, रणञ्जय का सञ्जय, सञ्जय का शाक्य, शाक्य का शुद्धोदन, शुद्धोदन का राहुल, राहुल का प्रसेनजित्, प्रसेनजित् का क्षुद्रक, क्षुद्रक का कुण्डक, कुण्डक का सुरथ, एवं सुरथ का सुमित्र नामक पुत्र होगा। इक्ष्वाकु वंश में यह सभी नृप बृहद्बल की सतानें होंगे ।.२-११।। इक्ष्वाकु वंश के लिये एक श्लोक प्रसिद्ध है—"इक्ष्वाकु वंश का राज्य कलियुग में सुमित्र तक रहेगा, सुमित्र के जन्म के पश्चात् यह वंश समाप्त हो जायगा ।।१२-१३।।



तेईसवाँ अध्याय

मागधानां बार्हद्रथानां भाविनामनुक्रमं कथयिष्यामि ।१। अत्र हि वंशे महाबलपराक्रमा जरासन्धप्रधाना बभूवुः ।२।

जरासन्धस्य पुत्रः सहदेवः ।३। सहदेवात्सोमापि स्तस्य श्रुतश्रवास्तस्याप्ययुतायुस्ततश्च निरमित्रस्तत्तनयस्सुनेत्रस्तस्मादपि बृहत्कर्मा ।४। ततश्च सेनजित्ततश्च श्रुतयज्ञस्ततो विप्रस्तस्य च पुत्रश्शुचिनामा भविष्यति ।५। तस्यापि क्षेम्यस्ततश्च सुव्रतस्सुव्रताद्धर्मस्ततस्सुश्रवाः ।६। ततो दृढसेनः ।७। तस्मात्सुवलः ।८। सुबलात्सुनीतो भविता ।९। ततस्सत्यजित् ।१०। तस्माद्विश्वजित् ।११। तस्यापि रिपुञ्जयः ।१२। इत्येते बार्हद्रथा भूपतयो वर्षसहस्रमेकं भविष्यन्ति ।१३।

पराशर जी ने कहा—हे भूपते ! अब मैं आपसे मगधवश के प्रवर्तक बृहद्रथ की भावी सन्तानो के विषय मे कहता हूँ ।।१।। इस वश के महापराक्रमी और तेजस्वी राजाओ मे जरासन्ध वगैरह राजागण प्रधान थे ।।२।। जरासन्ध का पुत्र सहदेव, सहदेव का सोमापि, सोमापि का श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा का अयुतायु, अयुतायु का निरमित्र, निरमित्र का सुनेत्र, सुनेत्र का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का सेनजित, सेनजित् का श्रुतञ्जय, श्रुतञ्जय का विप्र, विप्र का शुचि नाम का पुत्र होगा ।।४-५।। फिर शुचि का क्षेम्य, क्षेम्य का सुव्रत, सुव्रत का धर्म, धर्म का सुश्रवा, सुश्रवा का दृढसेन, दृढसेन का सुवल, सुवल का सुनीत, सुनीत का सत्यजित सत्यजित् का विश्वजित् एवं विश्वजित् का पुत्र रिपुञ्जय होगा ।।६-१२।। यह बृहद्रथ वशीय राजा मगध मे एक हजार वर्ष तक राज्य करेंगे ।।१३।।



चौबीसवाँ अध्याय

योऽयं रिपुञ्जयो नाम बार्हद्रथोऽन्त्यस्तस्यामात्यो सुनिको नाम भविष्यति ।१। स चैनं स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतनामानमभिषेक्ष्यति ।२। तस्यापि वलाकनामा पुत्रो भविता ।३। ततश्च विशाखयूपः ।४।

तत्पुत्रो जनकः ।५। तस्य च नन्दिवर्द्धनः ।६। ततो नन्दी ।७। इत्येतेऽष्टत्रिंशदुत्तरमब्दशतं पञ्च प्रद्योताः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।८।

ततश्च शिशुनाभः ।९। तत्पुत्रः काकवर्णो भविता ।१०। तस्य च पुत्रः क्षेमधर्मा ।११। तस्यापि क्षतौजाः ।१२। तत्पुत्रो विधिसारः ।१३। ततश्चाजातशत्रुः ।१४। तस्मादर्भकः ।१५। तस्माच्चोदयनः ।१६। तस्मादपि नन्दिवर्द्धनः ।१७। ततो महानन्दी ।१८। इत्येते शैशुनाभा भूपालास्त्रीणि वर्षशतानि द्विषष्ट्यधिकानि भविष्यन्ति ।१९।

श्री पराशरजी ने कहा—वृहद्रथ के वंश का अन्तिम राजा रिपुञ्जय होगा, जिसके मन्त्री का नाम सुनिक होगा ॥१॥ वह अपने स्वामी की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनावेगा ॥२॥ प्रद्योत का पुत्र बलाक और बलाक का पुत्र विशाखयूप होगा ॥३-४॥ विशाखयूप का पुत्र जनक, जनक का नन्दिवर्द्धन और उसका पुत्र नन्दी होगा ॥५-७॥ प्रद्योत वंश के यह पाँच राजा एक सौ अड़तालीस वर्ष तक पृथिवी का राज भोगेंगे ॥८॥ नन्दी का पुत्र शिशुनाभ, शिशुनाभ का काकवर्ण और उसका पुत्र क्षेमधर्मा होगा ॥९-११॥ क्षेमधर्मा का पुत्र क्षतौजा, उसका पुत्र विधिसार, उसका अजातशत्रु और उसका अर्भक होगा ॥१२-१५॥ अर्भक का पुत्र उदयन, उदयन का नन्दिवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धन का महानन्दी होगा ॥१६-१८॥ यह सब राजा शिशुनाभ वंश के कहे जायेंगे और तीन सौ बासठ वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥१९॥

महानन्दिनस्ततश्शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धोऽतिबलो महापद्मनामा नन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविष्यति ।२०। ततः प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति ।२१। स चैकच्छत्रामनुल्लङ्घितशासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यते ।२२। तस्याप्यष्टौ सुतास्सुमाल्याद्या भवितारः ।२३। तस्य महापद्मस्यानु पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।२४। महापद्मपुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति ।२५। ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति ।२६। तेषामभावे मौर्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।२७। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति ।२८।

तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति ।२९। तस्याप्यशोकवर्द्धन-

स्ततस्सुयशास्ततश्च दशरथस्ततश्च संयुतस्ततश्शालिशूकस्तस्मात्सोमशर्मा तस्यापि सोमशर्मणश्शतधन्वा ।३०। तस्यापि बृहद्रथनामा भविता ।३१। एवमेते मौर्या दश भूपतयो भविष्यन्ति अब्दशतं सप्तत्रिंशदुत्तरम् ।३२।

महानन्दी का पुत्र महापद्म शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न होकर परशुरामजी के समान सब क्षत्रियों का अन्त करने वाला होगा ।।२०।। उस समय से उसके जैसे शूद्र राजा पृथिवी पर राज्य करेंगे । वह महापद्म इस सम्पूर्ण पृथिवी को बिना किसी प्रकार की बाधा के एक छत्र भोगेगा ।।२१-२२।। उसके सुमाली आदि आठ पुत्र उत्पन्न होंगे जो उसकी मृत्यु होने पर शासन करेंगे ।।२३-२४।। महापद्म और उसके पुत्रों का शासन-काल सौ वर्ष होगा । फिर एक कौटिल्य नामक ब्राह्मण इन नन्दों का अन्त कर देगा । उनके पश्चात् मौर्य नामक राजागण राज्य करेंगे ।।२५-२७।। वही कौटिल्य ब्राह्मण चन्द्रगुप्त को राज्य पर अभिषिक्त करेगा ।।२८।। चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार होगा । बिन्दुसार का अशोकवर्द्धन और अशोकवर्द्धन का सुयशा, सुयशा का दशरथ, दशरथ का संयुक्त, संयुक्त का शालिशूक, शालिशूक का सोमशर्मा और सोमशर्मा का पुत्र शतधन्वा होगा ।।२९-३०।। शतधन्वा का पुत्र बृहद्रथ होगा । इस प्रकार मौर्यवंश के यह दस राजा एक सौ तिहत्तर वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ।।३१-३२।।

तेषामन्ते पृथिवी दश शुङ्गा भोक्ष्यन्ति ।३३। पुष्यमित्रस्सेनापतिस्स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति तस्यात्मजोऽग्निमित्रः ।३४। तस्मात्सुज्येष्ठस्ततो वसुमित्रस्तस्मादप्युदङ्कस्ततः पुलिन्दकस्ततो घोषवसुस्तस्मादपि वज्रमित्रस्ततो भागवत- ।३५। तस्माद्देवभूतिः ।३६। इत्येते शुङ्गा द्वादशोत्तरं वर्षशत पृथिवी भोक्ष्यन्ति ।३७।

ततः कण्वानेषा भूर्यास्यति ।३८। देवभूति तु शुङ्गराजानं व्यसनिनं तस्यैवामात्यः काण्वो वसुदेवनामा तं निहत्य स्वयमवनी भोक्ष्यति ।३९। तस्य पुत्रो भूमित्रस्तस्यापि नारायणः ।४०। नारायणात्मजस्सुशर्मा ।४१। एते काण्वायनाश्चत्वारः पञ्चचत्वारिंशद्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ।४२।

उनका अन्त होने पर पृथिवी पर दस शुङ्गवंशीय राजा राज्य करेंगे। पुष्यमित्र नामक सेनापति अपने स्वामी की हत्या करके राज्य-शासन करेगा। उसके पुत्र का नाम अग्निमित्र होगा। अग्निमित्र का पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठ का पुत्र वसुमित्र, वसुमित्र का उदक, उदक का पुलिन्दक पुलिन्दकका घोषवसु, घोषवसु का वज्रमित्र, वज्रमित्र का भागवत और भागवत का देवभूति होगा। यह सभी शुङ्ग राजागण पृथिवी पर एक सौ बारह वर्ष राज्य करेंगे ॥३३-३७॥ शुङ्ग-वंश के पश्चात् कण्व नरेशों का राज्य होगा। शुंगवंश के व्यसनों में आसक्त राजा देवभूति का कण्ववंशीय वसुदेव नामक मन्त्री, उसकी हत्या करके स्वयं राज्य करेगा ॥३८-३९॥ वसुदेव का पुत्र भूमित्र, भूमित्र का नारायण और नारायण का पुत्र सुशर्मा होगा। कण्व वंश के यह चारों राजा पैंतालीस वर्ष पृथिवी पर राज्य करेंगे। ४०-४२॥

सुशर्माणं तु काण्वं तद्भृत्यो बलिपुच्छकनामा हत्वान्ध्रजातीयो वसुधां भोक्ष्यति ।४३। ततश्च कृष्णनामा तद्भ्राता पृथिवीपतिर्भविष्यति ।४४। तस्यापि पुत्रः शान्तकर्णिस्तस्यापि पूर्णोत्सङ्गस्तत्पुत्रश्शातकर्णिस्तस्माच्च लम्बोदरस्तस्माच्च पिलकस्ततो मेघस्वातिस्ततः पटुमान् ।४५। ततश्चारिष्टकर्मा ततो हालाहलः ।४६। हालाहलात्पललकस्ततः पुलिन्दसेनस्ततः सुन्दरस्ततश्शातकर्णिस्ततश्शिवस्वातिस्ततश्च गोमतिपुत्रस्तत्पुत्रोऽलिमान् ।४७। तस्यापि शान्तकर्णिस्ततः शिवश्रितस्ततश्च शिवस्कन्धस्तस्मादपि यज्ञश्रीस्ततो द्वियज्ञस्तस्माच्चन्द्रश्री. ।४८। तस्मात्पुलोमाचिः ।४९। एवमेते त्रिंशच्चत्वार्यब्दशतानि षट् पञ्चाशदधिकानि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति आन्ध्रभृत्याः ।५०। सप्ताभीरप्रभृतयो दश गर्दभिलाश्च भूभुजो भविष्यन्ति ।५१। ततष्षोडश शका भूपतयो भवितारः ।५२। ततश्चाष्टौ यवनाश्चतुर्दश तुरुष्काराः मुण्डाश्च त्रयोदश एकादश मौना एते वै पृथिवीपतयः पृथिवीं दशवर्षशतानि नवत्यधिकानि भोक्ष्यन्ति ।५३। ततश्च एकादश भूपतयोऽब्दशतानि त्रीणि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।५४।

कण्ववंश के राजा सुशर्मा को उसका बलिपुच्छक नामक आन्ध्रजातीय

भृत्य हत्या करके स्वयं पृथिवी का राज्य भोगेगा ॥४३॥ उसके पश्चात् उसका कृष्ण नामक भाई पृथिवी का शासक होगा ॥४४॥ कृष्ण का पुत्र शान्तकर्णि होगा। उसका पुत्र पूर्णोत्सग, पूर्णोत्सग का पुत्र शातकर्णि, शातकर्णि का लम्बोदर, लम्बोदर का पिलक, पिलक का मेघ स्वाति मेघस्वाति का पटुमान्, पटुमान् का पुत्र अरिष्टकर्मा और उसका पुत्र हालाहल होगा ॥४५-४६॥ हालाहल का पुत्र पललक, उसका पुलिन्दसेन, उसका पुत्र सुन्दर, सुन्दर का शातकर्णि, शातकर्णि का शिवस्वाति, उसका पुत्र गोमति पुत्र और गोमति का पुत्र अलिमान् होगा ।४७। अलिमान् का पुत्र शान्तकर्णि, शान्तकर्णि का शिवश्रित, शिवश्रित का शिवस्कंध, शिवस्कंध का यज्ञश्री यज्ञश्री का द्वियज्ञ, द्वियज्ञ का पुत्र चन्द्रश्री और चन्द्रश्री का पुत्र पुलोमाचि होगा ॥४८-४९॥ इस प्रकार तीस आन्ध्रभृत्य राजा होंगे जो चार सौ छप्पन वर्ष पृथिवी पर राज्य करेंगे।।५०।। उनके पश्चात् सात आभीर तथा गर्दभिल भू-भोगी नरेश होंगे। तदनन्तर सोलह शक राजा राज्य करेंगे। फिर आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुरुड और ग्यारह मौन राजा होंगे। यह सब एक हजार नब्बे वर्ष पृथिवी का राज्य भोगेंगे ॥५१-५३॥ इनमे से मौन राजाओं का राज्य-काल तीन सौ वर्ष तक रहेगा ॥५४॥

तेषूत्सन्नेषु कैङ्किला यवना भूपतयो भविष्यन्त्यमूर्द्धाभिषिक्ताः ।५५। तेषामपत्यं विन्ध्यशक्तिस्ततः पुरञ्जयस्तस्माद्रामचन्द्रस्तस्माद्धर्मवर्मा ततो वङ्गस्ततोऽभून्नन्दनस्ततस्सुनन्दी तद्भ्राता नन्दियशाश्शुक्रः प्रवीर एते वर्षशतं षड् वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ।५६। ततस्तत्पुत्रास्त्रयोदशैतेबाह्लिकाश्च त्रयः ।५७। ततः पुष्पमित्राः पटुमित्रास्त्रयोदशैकलाश्च सप्तान्ध्राः ।५८। ततश्च कोशलायां तु नव चैव भूपतयो भविष्यन्ति ।५९। नैषधास्तु त एव ।६०।

मगधायां तु विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति ।६१। कैवर्त्तबटुपुलिन्दब्राह्मणान्राज्ये स्थापयिष्यति ।६२। उत्साद्याखिलक्षत्रजातिं नव नागाः पद्मावत्यां नाम पुर्यामनुगङ्गाप्रयागं गयायाश्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति ।६३। कोशलान्ध्रपुण्ड्रताम्रलिप्तसमुद्रतटपुरीं च देवरक्षितो रक्षिता ।६४। कलिङ्गमाहिषमहेन्द्रभौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति

।६५। नैषधनैमिषककालकोशकाञ्जनपदान्मणिधान्यकवंशा भोक्ष्यन्ति ।६६। त्रैराज्यमुषिकजनपदान्कनकाह्वयो भोक्ष्यति ।६७। सौराष्ट्रावन्तिशूद्राभीरान्नर्मदामरुभूविषयांश्च व्रात्यद्विजाभीरशूद्राद्या भोक्ष्यन्ति ।६८। सिन्धुतटदाविकोर्वीचन्द्रभागाकाश्मीरविषयांश्च व्रात्यम्लेच्छशूद्रादयो भोक्ष्यन्ति ।६९।

इनका अन्त होने पर कैंकिल नामक यवन अभिषेकहीन राजा होंगे ॥५५॥ उनकी सन्तान मे विन्ध्यशक्ति राजा होगा। उसका पुत्र पुरञ्जय, पुरञ्जय का रामचन्द्र, रामचन्द्र का धर्मवर्मा, धर्मवर्मा का बग, बग का नन्द और नन्द का सुनन्दी होगा। सुनन्दी के तीन भाई होंगे—नन्दियशा, शुक्र और प्रवीर। इन सब का राज्य-काल एक सौ छः वर्ष रहेगा ॥५६॥ तत्पश्चात् इन्ही के वंश के तेरह राजा और होंगे फिर तीन बाह्लिक राजा होंगे। तदनन्तर पुष्पमित्र और पटुमित्र आदि तेरह राजागण होंगे, फिर सात आन्ध्र राजा होंगे ॥५७-५८॥ फिर कोशल देश मे सात राजा होंगे जो निषध देश का भी राज्य करेंगे ॥५९-६०॥ विश्वस्फटिक नामक मगध देश का राजा अन्य वर्णों का प्रवर्त्तक होगा ॥६१॥ यह कैवर्त्त, बटु, पुलिन्द और ब्राह्मणों को राज्य देगा ॥६२॥ सब क्षत्रियों को नष्ट कर पद्मावतीपुरी मे नाग और गंगा के समीपवर्ती प्रदेश प्रयाग और गया मे मागध तथा गुप्त राजागण राज्य करेंगे ॥६३॥ कोसल, आन्ध्र, पुण्ड्र, ताम्रलिप्त और समुद्र-किनारे पर स्थित पुरी का रक्षक देवरक्षित नामक एक राजा होगा ॥६४॥ कलिंग, माहिष, महेन्द्र और भौमादि देशों का राज्य गुह नामक राजा करेंगे। ६५। नैषध, नैमिषक और कालकोशक आदि जनपदों का राज्य मणिधान्यक-वंश के राजा करेंगे ॥६६॥ त्रैराज्य और मुषिक देशों पर कनक नामक राजागण राज्य करेंगे ॥६७॥ सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र, आभीर, और नर्मदा नदी के समीप की मरुभूमि पर व्रात्य, द्विज, आभीर और शूद्रादि का राज्य होगा ॥६८॥ समुद्र के किनारे के क्षेत्र दाविकोर्वि, चन्द्रभागा और काश्मीर आदि पर व्रात्य, म्लेच्छ और शूद्रादि राजाओं का राज्य शासन होगा ॥६९॥

एते च तुल्यकालास्सर्वे पृथिव्यां भूभुजो भविष्यन्ति ।७०। अल्पप्रसादा बृहत्कोपास्सर्वकालमनृताधर्मरुचयः स्त्रीबालगोवधकर्त्तारः पर स्वादानरुचयोऽल्पसारास्तमिस्रप्राया उदितास्तमितप्राया अल्पायुषो महेच्छा ह्यल्पधर्मा लुब्धाश्च भविष्यन्ति ।७१। तैश्च विमिश्रा जनपदास्तच्छीलानुवर्तिनो राजाश्रयशुष्मिणो म्लेच्छाश्चार्याश्च विपर्ययेण वर्त्तमानाः प्रजा क्षपयिष्यन्ति ।७२।

ततश्चानुदिनमल्पाल्पह्रासव्यवच्छेदाद्धर्मार्थयोर्जगतस्सङ्क्षयो भविष्यति ।७३। ततश्चार्थ एवाभिजनहेतुः ।७४। बलमेवाशेषधर्महेतुः ।७५। अभिरुचिरेव दाम्पत्यसम्बन्धहेतुः ।७६। स्त्रीत्वमेवोपभोगहेतुः ।७७। अनृतमेव व्यवहारजयहेतुः ।७८। उन्नताम्बुतैव पृथिवीहेतुः ।७९। ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः ।८०। रत्नधातुतैव श्लाघ्यताहेतुः ।८१। लिङ्गधारणमेवाश्रमहेतुः ।८२। अन्याय एव वृत्तिहेतुः ।८३। दौर्बल्यमेवावृत्तिहेतुः ।८४। अभयप्रगल्भोच्चारणमेव पाण्डित्यहेतुः ।८५। अनाढ्यतैव साधुत्वहेतुः ।८६। स्नानमेव प्रसाधनहेतुः ।८७। दानमेव धर्महेतुः ।८८। स्वीकरणमेव विवाहहेतुः ।८९। सद्वेषधार्येव पात्रम् ।९०। दूरायतनोदकमेव तीर्थहेतुः ।९१। कपटवेषधारणमेव महत्त्वहेतुः ।९२। इत्येवमनेकदोषोत्तरे तु भूमण्डले सर्ववर्णेष्वेव यो यो बलवान्स स भूपतिर्भविष्यति ।९३।

यह सभी राजा एक ही काल मे पृथिवी पर होगे ।।७०।। यह अल्प प्रसन्नता वाले, अधिक क्रोध वाले, अधर्म और असत्यभाषण मे रुचि वाले, स्त्री, बालक और गौओं का वध करने वाले, पर-धन-हारी, न्यून शक्ति वाले, तमयुक्त, विकसित होते ही पतन को प्राप्त होने वाले, अल्पायु, अल्प पुण्य, बडी अभिलाषा वाले और महान् लोभी होगे ।।७१।। यह सब देशों को परस्पर मे एक कर देने वाले होंगे। इन राजाओं के आश्रय में रहने वाले बलवान् म्लेच्छ और अनार्य व्यक्ति, उनके स्वभाव के अनुसार आचरण करते हुये सम्पूर्ण प्रजा का ही नष्ट कर डालेंगे ।।७२।। इससे दिनो दिन धर्म और अर्थ की धीरे-धीरे करके हानि होती जायगी और जब यह क्षीण हो जायेंगे तो सम्पूर्ण विश्व ही नष्ट हो

जायगा ॥७३॥ उस समय धन ही कुलीनता का सूचक होगा, बल ही सब धर्मों का चिह्न होगा, परस्पर की चाहना ही दाम्पत्य-सम्बन्ध को करने वाली होगी, स्त्रीत्व ही भोग साधन होगा ॥७४-७७॥ झूठ ही व्यवहार में जीत कराने वाला होगा, जलवायु की श्रेष्ठता ही पृथिवी की श्रेष्ठता का लक्षण होगा, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्व का कारण होगा, रत्नादि धारण की श्लाघा का हेतु होगा, बाह्य-चिह्न ही आश्रमों के सूचक होंगे, अन्याय ही वृत्ति का साधन होगा, दुर्बलता ही जीविका से वंचित रहेगी, निर्भयता और धृष्टता पूर्वक भाषण ही पाण्डित्य होगा, निर्धनता ही साधुत्व का कारण समझा जायगा। स्नान साधन का हेतु, दान धर्म का हेतु और स्वीकृति ही विवाह का हेतु होगा ॥७८-८९। सजधज कर रहना ही सुपात्रता का द्योतक होगा, दूर देश का जल ही तीर्थ-जल होगा, छद्मवेश ही गौरव होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल में नाना प्रकार के दोषों के फैलने से सब वर्णों में जो-जो बली होंगे, वही-वही राजा राज्य को हथिया लेंगे ॥९०-९३॥

एवं चातिलुब्धकराजासहाश्शैलानामन्तरद्रोणीः प्रजास्संश्रयिष्यन्ति ।९४। मधुशाकमूलफलपत्रपुष्पाद्याहाराश्च भविष्यन्ति ।९५। तरुवल्कलपर्णचीरप्रावरणाश्चातिबहुप्रजाश्शीतवातातपवर्षसहाश्च भविष्यन्ति ।९६। न च कश्चित्त्रयोविंशतिवर्षाणि जीविष्यति अनवरतं चात्र कलियुगे क्षयमायात्यखिल एवैष जनः ।९७। श्रौते स्मार्त्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरगुरोरादिमध्यान्तरहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्यांशश्शम्बलग्रामप्रधानब्राह्मणस्य विष्णुयशसो गृहेऽष्टगुणर्द्धिसमन्वित कल्किरूपी जगत्यत्रावतीर्य सकलम्लेच्छदस्युदुष्टाचरणचेतसामशेषाणामपरिच्छिन्नशक्तिमाहात्म्यः क्षयं करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलमेव संस्थापयिष्यति ।९८। अनन्तरं चाशेषकलेरवसाने निशावसाने विबुद्धानामिव तेषामेव जनपदानाममलस्फटिकविशुद्धा मतयो भविष्यन्ति ।९९। तेषां च बीजभूतानामशेषमनुष्याणां परिणतानामपि तत्कालकृतापत्यप्रसूतिर्भ-

विष्यति ।१००। तानि च तदपत्यानि कृतयुगानुसारीण्येव भवि-
ष्यन्ति ।१०१।

इस प्रकार अत्यन्त लोभी राजाओं के कर-भार से दबी हुई प्रजा, उससे बचने के लिए पर्वतों की गुफाओं में जाकर रहने लगेगी और मधु, शाक, मूल, फल, पत्ते और पुष्पादि का भक्षण करती हुई जीवन का समय व्यतीत करेगी। वृक्षों के पत्तों और वल्कल वस्त्रों को पहिने-ओढ़ेगी। उनकी अधिक सन्तानें होंगी और सभी को शीत, वायु, धूप, वर्षा आदि के कष्ट सहन करने होंगे ॥९४ ९६॥ तेईस वर्ष से अधिक आयु किसी की भी न होगी। इस प्रकार कलियुग में सभी मनुष्य क्षीणता को प्राप्त होते रहेंगे ॥९७॥ जब श्रौत और स्मार्त धर्म की अत्यन्त हानि हो जायगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा तभी शम्बल ग्राम के रहने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णुयशा के यहाँ सम्पूर्ण विश्व के कारण, चराचर के गुरु, आदि-मध्य-अन्त से हीन, ब्रह्ममय एवं आत्मस्वरूप भगवान् अपने अन्श से अष्टगुण युक्त कल्कि रूप से अवतार धारण करेंगे। वही अपनी असीम शक्ति और महिमा से सम्पन्न होकर सब म्लेच्छों, दस्युओं, दुष्टहृदयों और दुराचारियों को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म में स्थापित करेंगे ॥९८॥ फिर सब कलियुग का नितान्त क्षय हो जायगा, तब रात्रि के अवसान होने पर जागने वालों के समान सब प्राणियों की बुद्धि स्फटिक मणि के समान स्वच्छ हो जायगी ॥९९॥ वे सब बीजभूत मनुष्य अधिक आयु वाले होकर भी सन्तानोत्पादन में समर्थ होंगे ॥१००॥ उनकी सन्तानें भी सत्ययुग के समान ही धर्माचरण में प्रवृत्त होने वाली होंगी ॥१०१॥

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यो बृहस्पतिः ।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवतिवै कृतम् ।१०२।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।
एते वंशेषु भूपालाः कथिता मुनिसत्तम ।१०३।
यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतो- रम् ।१०४।

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ।१०५।
तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते तु पारीक्षिते काले मघास्वासन्द्विजोत्तम ।१०६।
तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ।१०७।
यदैव भगवान्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज ।
वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैवात्रागतः कलिः ।१०८।
यावत्स पादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम् ।
तावत्पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत्कलिः ।१०९।
गते सनातनस्यांशे विष्णोस्तत्र भुवो दिवम् ।
तत्याज सानुजो राज्यं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।११०।
विपरीतानि दृष्ट्वा च निमित्तानि हि पाण्डवः ।
याते कृष्णे चकाराथ सोऽभिषेकं परीक्षितः ।१११।
प्रयास्यन्ति तदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष गतिवृद्धिं गमिष्यति ।११२।
यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे ।११३।

इस विषय में ऐसा कहते हैं कि जब चन्द्र सूर्य और बृहस्पति पुष्यनक्षत्र में स्थित होकर एक साथ ही एक राशि पर आवेंगे तभी सत्ययुग का प्रारम्भ हो जायगा ।।१०२।। हे मुनिवर ! इस प्रकार यह सभी वंशों के भूत, भविष्यद्, और वर्तमान कालीन सब राजाओं का वर्णन मैंने तुम से कर दिया है ।।१०३।। परीक्षित् के जन्म-काल से नन्द के अभिषेक पर्यंत का समय डेढ़ हजार वर्ष का समझो ।।१०४।। सप्तर्षियों में से जो दो नक्षत्र आकाश में पहिले दीखते हैं, उनके मध्य में रात्रिकाल में जो नक्षत्र समदेश में स्थित रहते हैं, उनमें से प्रत्येक नक्षत्र पर एक-एक सौ वर्ष तक सप्तर्षियों का निवास रहता है । हे द्विजश्रेष्ठ ! परीक्षित-काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे, उसी समय बारह सौ वर्ष प्रमाण के कलि-युग का प्रारम्भ हुआ था । १०५।। जब भगवान् विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण अपने धामको चले गये, तभी स पृथिवी पर कलियुग आ गया ।।१०६-१०८।। जब

तक वह अपने चरण कमलों के पुण्य स्पर्श से इस पृथिवी को पवित्र किये रहे, तब तक पृथिवी का संग करने में कलियुग समर्थ नहीं हो सका ॥१०९॥ जब सनातन पुरुष भगवान् विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण देवलोक चले गये तब महाराज युधिष्ठिर ने भाइयों सहित अपने राज्य का त्याग कर दिया ॥११०॥ भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान होने पर जब पाण्डवों को विरुद्ध लक्षण दिखाई दिये, तब उन्होंने परीक्षित का राज्याभिषेक कर दिया ॥१११॥ जब पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर सप्तर्षियों का गमन होगा, तब राजानन्द के शासन-काल में कलियुग की बल-वृद्धि होगी ॥११२॥ जब श्री कृष्ण अपने धाम को चले गये थे, तभी से कलियुग आ गया था, अब उस कलियुग की वर्ष गणना श्रवण करो ।११३॥

त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां द्विज मानुष्यसंख्यया ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि भविष्यत्येष वै कलिः ।११४।
शतानि तानि दिव्यानां सप्त पञ्च च संख्यया ।
निश्शेषेण गते तस्मिन् भविष्यति पुनः कृतम् ।११५।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
युगे युगे महात्मानः समतीतास्सहस्रशः ।११६।
बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले ।
पौनरुक्त्याद्धि साम्याच्च न मया परिकीर्तिता ।११७।
देवापिः पौरवो राजा मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
महायोगबलोपेतौ कलापग्रामसंश्रितौ ।११८।
कृते युगे त्विहागम्य क्षत्रप्रवर्त्तकौ हि तौ ।
भविष्यतो मनोर्वंशबीजभूतौ व्यवस्थितौ ।११९।
एतेन क्रमयोगेन मनुपुत्रैर्वसुन्धरा ।
कृतत्रेताद्वापराणि युगानि त्रीणि भुज्यते ।१२०।
कलौ ते बीजभूता वै केचित्तिष्ठन्ति वै मुने ।
यथैव देवापिमरू साम्प्रतं समधिष्ठितौ ।१२१।

मनुष्यों के वर्ष के अनुसार कलियुग की आयु तीन लाख साठ हजार व .की होगी ॥११४॥ तदनन्तर बारह सौ दिव्य वर्षों के व्यतीत होने तक सत्ययु

उपस्थित रहेगा ॥११५॥ हे विप्रश्रेष्ठ ! प्रत्येक युग मे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारो वर्णों के हजारो सत महात्मा हो गये हैं ॥११६॥ उनके अति-संख्यक होने तथा कर्म मे समानता होने के कारण, वश-वर्णन मे कही पुनरोक्ति न हो जाय, इस भय से उन सब के नाम यहाँ नहीं कहे है ॥११७॥ पुरुवश के राजा देवापि और इक्ष्वाकु वश के राजा मरु—यह दोनो ही महान् योगबल से युक्त हुये, कलापग्राम मे निवास करते हैं ॥११८॥ जब सत्ययुग प्रारम्भ हो जायेगा, तब यह पुन. मर्त्यलोक मे जन्म लेकर क्षत्रिय वश के प्रवर्त्तक होगे। यही भविष्य मे होने वाले मनुवश के बीज स्वरूप हैं ॥११९॥ सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में भी मनु पुत्र पृथिवी का इसी प्रकार उपभोग करते हैं ॥१२०॥ उन्ही मे से कोई-कोई कलियुग में होने वाली मनु-सन्तान के बीज रूप मे देवापि और मरु के समान ही स्थित रहते हैं ॥१२१॥

एष तूद्देशतो वशस्तवोक्तो भूभुजा मया ।
निखिलो गदितुं शक्यो नैष वर्षशतैरपि ।१२२।
एते चान्ये च भूपाला यैरत्र क्षितिमण्डले ।
कृत ममत्व मोहान्धैर्नित्य हेयकलेवरे ।१२३।
कथ ममेयमचला मत्पुत्रस्य कथ मही ।
मद्वशस्येति चिन्तार्त्ता जग्मुरन्तमिमे नृपाः ।१२४।
तेभ्य पूर्वतराश्चान्ये तेभ्यस्तेभ्यस्तथा परे ।
भविष्याश्चैव यास्यन्ति तेषामन्ये च येऽप्यनु ।१२५।
विलोक्यात्मजयोद्योग यात्राव्यग्रान्नराधिपान् ।
पुष्पप्रहासैश्शरदि हसन्तीव वसुन्धरा ।१२६।
मैत्रेय पृथिवीगीताञ्छ्लोकाश्चात्र निबोध मे ।
यानाह धर्मध्वजिने जनकायासितो मुनिः ।१२७।

इस प्रकार मैंने तुम से सब राजवशों का सक्षेप में वर्णन कर दिया है, इनका पूर्ण वृत्तान्त तो सौ वर्षों मे भी नही कहा जा सकता ॥१२२॥ इस हेय कलेवर के मोह मे अन्धे और इस पृथिवी में ममता करने वाले यह तथा अन्य अनेक राजा गए हुए हैं ॥१२३॥ यह पृथिवी मेरी, मेरी पुत्र अथवा वंश के

अधिकार में स्थायी रूप से किस प्रकार रहेगी ? इस प्रकार की चिन्ता करते-करते ही यह सब राजा मरण को प्राप्त हो गये ॥१२४॥ ऐसी ही चिन्ता में निमग्न रह कर इन सब राजाओं के पूर्व-पुरुखे और उनके भी पुरखे इस संसार से कूँच कर गये और इसी चिन्ता में मग्न रह कर भविष्य में होने वाले राजा-गण भी काल के गाल में समा जायेंगे ॥ यह वसुधरा भी अपने पर विजय प्राप्त करने के उद्योग में पृथक रूप से लगे हुए राजाओं को देख कर जैसे उन पर हँसती है ॥१२६॥ हे मैत्रेयजी ! अब तुम पृथिवी द्वारा कहे हुए कुछ श्लोकों को श्रवण करो । यह श्लोक पूर्वकाल में असित मुनि ने धर्मध्वज रूप राजा जनक के प्रति कहे थे ॥१२७॥

कथमेष नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामपि ।
येन फेनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतसः ।१२८।
पूर्वमात्मजय कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मन्त्रिणः ।
ततो भृत्यांश्च पौरांश्च जिगीषन्ते तथा रिपून् ।१२९।
क्रमेणानेन जेष्यामो वयं पृथ्वी ससागराम् ।
इत्यासक्तधियो मृत्यु न पश्यन्त्यविदूरगम् ।१३०।
समुद्रावरणं याति भूमण्डलमथो वशम् ।
कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ।१३१।
उत्सृज्य पूर्वजा याता यां नादाय गतः पिता ।
तां मामतीवमूढत्वाज्जेतमिच्छन्ति पार्थिवाः ।१३२।
मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायतेऽत्यन्तमोहेन ममत्वादृतचेतसाम् ।१३३।
पृथ्वी ममेयं सकला ममैषा मदन्वयस्यापि च शाश्वतीयम् ।
यो यो मृतो ह्यत्र बभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य ॥

पृथिवी का कहना है—अहो, यह राजागण बुद्धिमान् होकर भी कैसे मोहित हो रहे हैं, जिसके कारण यह अपनी क्षणभंगुरता को भूलकर अपने स्थायी होने का विश्वास किये बैठे हैं ॥१२८॥ पहिले यह अपने विजय प्राप्त करते फिर मन्त्रियों को वश में कर लेते हैं और इसके पश्चात् भृत्यों, पुर-

वासियो और शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करना चाहते हैं ।।१२९।। इसी प्रकार इस सम्पूर्ण पृथिवी को हम समुद्र तक अपने वश मे कर लेंगे, ऐसी ही आसक्ति मे भ्रमित हुए यह राजागण निकट भविष्य मे ही प्राप्त होने वाली मृत्यु को नही देख पाते ।।१३०।। यदि समुद्र के आवरण वाले इस सम्पूर्ण पृथिवी मडल पर विजय प्राप्त भी हो जाय, तो भी मन को जीतने के समान इसका फल नही हो सकता, क्योकि मोक्ष की प्राप्ति तो मन के जीतने पर ही सभव है ।।१३१।। इनके पूर्वक और पिता भी जिसे साथ लिये बिना ही चले गये और जो यहीं ही स्थिर रूप से रही आई, उस मुक्त पृथिवी को महामूर्ख बने हुये राजागण जीत लेना चाहते हैं ।।१३२।। अत्यन्त ममत्व वाले पिता पुत्र, भ्राता आदि मे भी मोह के वशीभूत होकर मेरे ही कारण विग्रह उपस्थित होता है ।।१३३।। यहाँ जितने भी राजा हुये हैं, वे सभी इस कुबुद्धि से ओतप्रोत रहे हैं कि यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी है और फिर यह सदैव मेरे वशधरो की रहेगी ।।१३४।।

दृष्ट्वा ममत्वाद्दृतचित्तमेक विहाय मा मृत्युवश व्रजन्तम् ।
तस्यानु यस्तस्य कथ ममत्व हृद्यास्पद मत्प्रभव करोति ।१३५।
पृथ्वी ममैषाशु परित्यजैना वदन्ति ये दूतमुखैस्स्वशत्रून् ।
नराधिपास्तेषु ममातिहास पुनश्च मूढेषु दयाभ्युपैति ।१३६।
इत्येते धरणीगीताश्श्लोका मैत्रेय यैश्श्रुता ।
ममत्व विलय याति तपत्यर्के यथा हिमम् ।१३७।
इत्येष कथित सम्यङ् मनोर्वंशो मया तव ।
यत्र स्थितिप्रवृत्तस्य विष्णोरशाशका नृपा ।१३८।
शृणोति य इम भक्त्या मनोर्वंशमनुक्रमात् ।
तस्य पापमशेष वै प्रणश्यत्यमलात्मन ।१३९।
धनधान्यर्द्धिमतुला प्राप्नोत्यव्याहतेन्द्रिय ।
श्रुत्वैवमखिल वश प्रशस्त शशिसूर्ययो ।१४०।
इक्ष्वाकुजह्नुमान्धातृसगराविक्षिताग्रघून् ।
ययातिनहुषाद्याश्च ज्ञात्वा निष्टामुपागतान् ।१४१।

महाबलान्महावीर्याननन्तधनसञ्चयान् ।
कृतान्कालेन बलिना कथाशेषान्नराधिपान् ।१४२।
श्रुत्वा न पुत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा ।
द्रव्यादौ वा कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ।१४३।

इस प्रकार मुझ में ममता करने वाले एक राजा को मुझे यहीं छोड कर मरता हुआ देख कर भी उसका वंशज न जाने क्यों अपने चित्त में मेरे प्रति इतनी ममता रखे रहता है ? ।।१३५।। जो भूपाल अपने शत्रु को दूत द्वारा यह संदेश देते हैं कि यह वसुंधरा मेरी है, तुम इसे छोडकर तुरन्त हट जाओ, उन मूर्खों की उस बात पर मुझे अत्यन्त हँसी तथा दया आने लगती है ।।१३६।। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! पृथिवी द्वारा गाये हुये इन श्लोकों को सुनने वाले पुरुष की ममता सूर्य-ताप से पिघल जाने वाले वर्फ के समान नष्ट हो जायगी ।।१३७।। इस प्रकार उस मनु-वंश का मैंने तुम से वर्णन कर दिया, जिसमें उत्पन्न हुये राजागण भगवान् विष्णु के ही अंश थे ।।१३८।। इस मनु-वंश के क्रम पूर्वक श्रवण करने वाले मनुष्य के सभी पापों का पूर्ण क्षय होता है ।।१३९।। इन्द्रियों को वश में करके जो पुरुष इन सूर्य, चन्द्र वंशों का पूर्ण वृत्तान्त सुनता है, उसे असीमित धन धान्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।।१४०।। अत्यन्त बली, महावीर्यवान्, अनन्त धनी और परम निष्ठा-सम्पन्न इक्ष्वाकु, जन्हु, मान्धाता, सगर, मरुत्त, रघुकुल में उत्पन्न राजागण, नहुष तथा ययाति आदि के जो चरित्र काल के कारण कथा मात्र ही शेष हैं उनको सुनकर बुद्धिमान पुरुष पुत्र, स्त्री, घर, खेत तथा धन आदि में ममत्व न रखेगा ।।१४१-१४३।।

तप्तं तपो यैःपुरुषप्रवीरैरुद्बाहुभिर्वर्षगणाननकान् ।
इष्ट्वासुयज्ञैर्बलिनोऽतिवीर्याः कृता नु कालेन कथावशेषाः ।१४४।
पृथुस्समस्तान्विचचार लोका-
नव्याहतो यो विजितारिचक्रः ।
स कालवाताभिहतः प्रणष्टः
क्षिप्तं यथा शाल्मलितूलमग्नौ ।१४५।

यः कीर्तवीर्यो बुभुजे समस्ता-
न्द्वीपान्समाक्रम्य हतारिचक्रः ।
कथाप्रसंगेष्वमिधीयमान-
स्स एव सङ्कल्पविकल्पहेतुः ।१४६।

दशाननाविक्षितराघवाणामैश्वर्यमुद्भासितदिङ्मुखानाम् ।
भस्मापि शिष्टं न कथं क्षणेन भ्रूभङ्गपातेन धिगन्तकस्य ।१४७।
कथाशरीरत्वमवाप यद्वै मान्धातृनामा भुवि चक्रवर्ती ।
श्रुत्वापि तत्को हि करोति साधुर्ममत्वमात्मन्यपि मन्दचेताः ।१४८।
भगीरथाद्यास्सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणौ च ।
युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं न मिथ्या क नु ते न विद्मः ।१४९।
ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः प्रोक्ता मया विप्रवरोग्रवीर्याः ।
एते तथान्ये च तथाभिधेयाः सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वे ।१५०।
एतद्विदित्वा न नरेण कार्यं ममत्वमात्मन्यपि पण्डितेन ।
तिष्ठन्तु तावत्तनयात्मजाद्याः क्षेत्रादयो ये च शरीरिणोऽन्ये ।१५१।

ऊर्ध्वबाहु होकर जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने बहुत वर्षों तक घोर तप और अनेकों यज्ञ किये थे, उन अत्यन्त बली और वीर्यशाली राजाओं की कथा मात्र ही काल के प्रभाव से शेष बची है ।।१४४।। जो राजा पृथु अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर स्वच्छन्द गति से सभी लोकों में विचरण करता था, वही अग्नि में गिर कर भस्म हुई रुई के समान ही विलीन हो गया ।।१४५।। जिस कार्तवीर्य ने अपने सब वैरियों को मारकर सब द्वीपों को जीता और उनका भोग किया था, वही आज ऐसा प्रतीत होता है कि कभी हुआ था या नहीं ? ।।१४६।। सभी दिशाओं को प्रकाशमान् करने वाले रावण, मरुत्त तथा रघुवंशियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ, क्योंकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं बची ।।१४७।। जो मान्धाता सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा था, उसकी भी कथा ही रह गई है। इस सब को सुनकर

महाबलान्महावीर्याननन्तधनसञ्चयान् ।
कृतान्कालेन बलिना कथाशेषान्नराधिपान् ।१४२।
श्रुत्वा न पुत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा ।
द्रव्यादौ वा कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ।१४३।

इस प्रकार मुझ मे ममता करने वाले एक राजा को मुझे यही छोड कर मरता हुआ देख कर भी उसका वंशज न जाने क्यों अपने चित्त मे मेरे प्रति इतनी ममता रखे रहता है ? ।।१३५।। जो भूपाल अपने शत्रु को दूत द्वारा यह सदेश देते हैं कि यह वसुधरा मेरी है, तुम इसे छोडकर तुरन्त हट जाओ, उन मूर्खों की उस बात पर मुझे अत्यन्त हँसी तथा दया आने लगती है ।।१३६।। श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! पृथिवी द्वारा गाये हुये इन श्लोकों को सुनने वाले पुरुष की ममता सूर्य-ताप से पिघल जाने वाले वर्फ के समान नष्ट हो जायगी ।।१३७।। इस प्रकार उस मनु-वश का मैंने तुम से वर्णन कर दिया, जिसमे उत्पन्न हुये राजागण भगवान् विष्णु के ही अंश थे ।।१३८।। इस मनु-वश के क्रम पूर्वक श्रवण करने वाले मनुष्य के सभी पापो का पूर्ण क्षय होता है ।।१३९।। इन्द्रियो को वश मे करके जो पुरुष इन सूर्य, चन्द्र वशो का पूर्ण वृत्तान्त सुनता है, उसे असीमित धन धान्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।।१४०।। अत्यन्त बली, महावीर्यवान्, अनन्त धनी और परम निष्ठा-सम्पन्न इक्ष्वाकु, जन्हु, मान्धाता, सगर, मरुत्त, रघुकुल मे उत्पन्न राजागण, नहुष तथा ययाति आदि के जो चरित्र काल के कारण कथा मात्र ही शेष हैं उनको सुनकर बुद्धिमान पुरुष पुत्र, स्त्री, घर, खेत तथा धन आदि मे ममत्व न रखेगा ।।१४१-१४३।।

तप्त तपो यै.पुरुषप्रवीरैरुद्बाहुभिर्वर्षगणाननकान् ।
इष्टासुयज्ञैर्बलिनोऽतिवीर्या. कृता नु कालेन कथावशेषाः ।१४४।
पृथुस्समस्तान्विचचार लोका-
न्व्याहतो यो विजितारिचक्रः ।
स कालवाताभिहतः प्रणष्ट.
क्षिप्त यथा शाल्मलितूलमग्नौ ।१४५।

य: कीर्तवीर्योऽभुभुजे समस्ता-
न्द्वीपान्समाक्रम्य हतारिचक्र: ।
कथाप्रसंगेष्वमिधीयमान-
स्स एव सङ्कल्पविकल्पहेतु: ।१४६।

दशाननाविक्षितराघवाणामैश्वर्यमुद्भासितदिङमुखानाम् ।
भस्मापि शिष्टं न कथं क्षणेन भ्रूभङ्गपातेन धिगन्तकस्य ।१४७।
कथाशरीरत्वमवाप यद्वै मान्धातृनामा भुवि चक्रवर्ती ।
श्रुत्वापि तत्को हि करोति साधुर्ममत्वमात्मन्यपि मन्दचेता: ।१४८।
भगीरथाद्यास्सगर: ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणौ च ।
युधिष्ठराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं न मिथ्या क्व नु ते न विद्म: ।१४९।
ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्या: प्रोक्ता मया विप्रवरोग्रवीर्या: ।
एते तथान्ये च तथाभिधेया: सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वे ।१५०।
एतद्विदित्वा न नरेण कार्यं ममत्वमात्मन्यपि पण्डितेन ।
तिष्ठन्तु तावत्तनयात्मजाद्या: क्षेत्रादयो ये च शरीरिणोऽन्ये ।१५१।

ऊर्ध्वबाहु होकर जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने बहुत वर्षों तक घोर तप और अनेकों यज्ञ किये थे, उन अत्यन्त बली और वीर्यशाली राजाओं की कथा मात्र ही काल के प्रभाव से शेष बची है ॥१४४॥ जो राजा पृथु अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर स्वच्छन्द गति से सभी लोकों में विचरण करता था, वही अग्नि में गिर कर भस्म हुई रुई के समान ही विलीन हो गया ॥१४५॥ जिस कार्तवीर्य ने अपने सब वैरियों को मारकर सब द्वीपों को जीता और उनका भोग किया था, वही आज ऐसा प्रतीत होता है कि कभी हुआ था या नहीं? ॥१४६॥ सभी दिशाओं को प्रकाशमान् करने वाले रावण, मरुत्त तथा रघुवंशियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ, क्योंकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं बची ॥१४७॥ जो मान्धाता सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा था, उसकी भी कथा ही रह गई है। इस सब को सुनकर

भी अपने देह के प्रति कौन मन्द बुद्धि वाला ममता करेगा ? ॥१४८॥ भगीरथ सगर ककुत्स्थ, रावण, राम, लक्ष्मण, युधिष्ठिर आदि का होना नितान्त सत्य है, इसमे झूँठ किंचित् भी नही है, परन्तु अब वे सब कहाँ हैं, इसे न ी जानते ॥१४९॥ हे विप्रश्रेष्ठ ! वर्तमान अथवा आगे होने वाले जिन अत्यन्त वीर्यवान् राजाओ के विषय मे मैंने कहा है, तथा अन्य राजागण भी, पहिले कहे हुए राजाओंके समान कथा मात्र ही रहेंगे ॥१५०॥ इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को पुत्र, पुत्री, क्षेत्र तथा अ य प्राणी तो क्या, अपने देह मे भी ममता कभी नही करनी चाहिये ॥१५१॥



श्रीविष्णुपुराण

पञ्चम अंश

पहला अध्याय

नृपाणां कथितस्सर्वो भवता वंशविस्तरः ।
वंशानुचरितं चैव यथावदनुवर्णितम् ।१।
अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः ।
विष्णोस्तं विस्तरेणाहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।२।
चकार यानि कर्माणि भगवान्पुरुषोत्तमः ।
अंशांशेनावतीर्योर्व्यां तत्र तानि मुने वद ।३।
मैत्रेय श्रूयतामेतद्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
विष्णोरंशांशसम्भूतिचरितं जगतो हितम् ।४।
देवकस्य सुतां पूर्वं वसुदेवो महामुने ।
उपयेमे महाभागां देवकीं देवतोपमाम् ।५।
कंसस्तयोर्वररथं चोदयामास सारथिः ।
वसुदेवस्य देवक्या संयोगे भोजनन्दनः ।६।
अथान्तरिक्षे वागुच्चैः कंसमाभाष्य सादरम् ।
मेघगम्भीरनिर्घोषं समाभाष्येदमब्रवीत् ।७।

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने सभी राजवंशों का विस्तार उनके चरित्रों को यथारूप कहा है ।।१।। हे ब्रह्मर्षि ! भगवान् विष्णु का जो अवतार यदुकुल में हुआ था, उसे ही अब मैं विस्तार सहित सुनना चाहता हूं

॥२॥ हे मुने ! भगवान् पुरुषोत्तम ने अपने अंशांशों सहित अवतार धारण करके जो कुछ किया, वही सब आप मुझे सुनाइये ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! भगवान् विष्णु के जिस अंशांश रूप के विषय मे तुमने पूछा है, उस संसार के हित मे हुए अवतार का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ पूर्व काल की बात है—देवक की अत्यन्त भाग्यवती एव देवी स्वरूपिणी पुत्री देवकी का विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था ॥५॥ वसुदेव-देवकी का विवाह होने के पश्चात् उनके माङ्गलिक रथ को भोजनन्दन कंस ने स्वयं चलाया ॥६॥ उसी अवसर पर मेघ के समान गम्भीर वाणी मे कस को उच्च स्वर से सबोधन करती हुई देवांगना ने कहा ॥७॥

यामेतां वहसे मूढ सह भर्त्रा रथे स्थिताम् ।
अस्यास्तवाष्टमो गर्भः प्राणानपहरिष्यति ।८।
इत्याकर्ण्य समुत्पाट्य खङ्गं कंसो महाबल. ।
देवकी हन्तुमारब्धो वसुदेवोऽब्रवीदिदम् ।९।
न हन्तव्या महाभाग देवकी भवतानघ ।
समर्पयिष्ये सकलान्गर्भानस्योदरोद्भवान् ।१०।
तथेत्याह ततः कंसो वसुदेवं द्विजोत्तम ।
न घातयामास च तां देवकी सत्यगौरवात् ।११।
एतस्मिन्नेव काले तु भूरिभारावपीडिता ।
जगाम धरणी मेरौ समाजं त्रिदिवौकसाम् ।१२।
सब्रह्मकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी ।
कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ।१३।

अरे मूर्ख तू अपने पति के साथ बैठी हुई जिस देवकी को पहुँचाने जा, रहा है, इसी का आठवाँ गर्भ तेरे प्राण का हरण करने वाला होगा ॥८॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह सुनते ही महाबली कंस ने तलवार खींच ली और जैसे ही देवकी को मारने के लिए उद्यत हुआ, वैसे ही वसुदेवजी ने उसे रोकते हुए कहा ॥९॥ हे महाभाग ! हे निष्पाप ! इस देवकी को मत मारिये, मैं इसके सभी गर्भों को, उत्पन्न होते ही आपको समर्पित कर दूँगा ॥१०॥ पराशरजी ने

कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! यह सुन कर कंस ने सत्य के गौरव से प्रभावित होकर वसुदेवजी की बात मान ली और देवकी को छोड़ दिया ॥११॥ इसी अवसर बोझ से अत्यन्त पीड़ित हुई पृथिवी सुमेरु पर्वत स्थित देवताओं की सभा में पहुँची ॥१२॥ वहाँ जाकर उसने ब्रह्माजी सहित सब देवताओं को प्रणाम किया और खेद तथा करुणा भरे स्वर में उसने अपना सब कष्ट उन्हें कह सुनाया ॥१३॥

अग्निस्सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यं परो गुरुः ।
ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरुः ।।१४।
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
कलाकाष्ठानिमेषात्मा कालश्चाव्यक्तमूर्त्तिमान् ।।१५।
तदंशभूतस्सर्वेषां समूहो वस्सुरोत्तमाः ।
आदित्या मरुतस्साध्या रुद्रावस्वश्विवह्नयः ।।१६।
पितरो ये च लोकानां स्रष्टारोऽत्रिपुरोगमाः ।
एते तस्याप्रमेयस्य विष्णो रूपं महात्मनः ।।१७।
यक्षराक्षसदैतेयपिशाचोरगदानवाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव रूपं विष्णोर्महात्मनः ।।१८।
ग्रहर्क्षतारकाचित्रगगनाग्निजलानिलाः ।
अहं च विषयाश्चैव सर्वं विष्णुमयं जगत् ।।१९।
तथाप्यनेकरूपस्य तस्य रूपाण्यहर्निशम् ।
बाध्यबाधकतां यान्ति कल्लोला इव सागरे ।।२०।

पृथिवी ने कहा—जैसे स्वर्ण का गुरु अग्नि और रश्मि-समूह का परम गुरु सूर्य है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व में गुरु भगवान् श्री नारायण मेरे गुरु हैं ।।१४। वही प्रजापतियों के पति तथा पूर्वजों के पूर्वज ब्रह्मा हैं और वही कला, काष्ठा और निमेष रूप वाला अव्यक्त रूप काल है ।।१५।। हे श्रेष्ठ देवताओ ! आप सब भी उन्हीं के अंशरूप हैं । सूर्य मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, अश्विनीद्वय, अग्नि, पितरगण और लोक सृष्टा अत्रि आदि प्रजापति—यह सब महात्मा उन्हीं भगवान् विष्णु के स्वरूप हैं ।।१६-१७।। यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, उरग,

दानव, गंधर्व और अप्सरा भी उन्ही महात्मा विष्णु के स्वरूप हैं ॥१८॥ ग्रह, नक्षत्र और तारागण वाला यह अद्भुत आकाश, अग्नि, जल, पवन, मैं तथा सम्पूर्ण विषय युक्त यह विश्व भी विष्णुमय ही है ॥१६॥ फिर भी उन अनेक रूपात्मक भगवान् विष्णु के यह रूप अहर्निश समुद्र की तरंगो के समान परस्पर टकराते रहते हैं ॥२०॥

तत्साम्प्रतममी दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः ।
मर्त्यलोकं समाक्रम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः ।२१।
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना ।
उग्रसेनसुतः कंसस्सम्भूतस्स महासुरः ।२२।
अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा ।
सुन्दोऽसुरस्तथात्युग्रो बाणश्चापि बलेस्सुतः ।२३।
तथान्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये ।
समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न संख्यातुमुत्सहे ।२४।
अक्षौहिण्योऽत्र बहुला दिव्यमूर्तिधरास्सुराः ।
महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि ।२५।
तद्भूरिभारपीडार्त्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः ।
बिभर्त्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः ।२६।
क्रियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम् ।
यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविह्वला ।२७।

इस समय मर्त्यलोक पर कालनेमि आदि दैत्यों ने अधिकार कर लिया है और वे दिन रात प्रजा को पीड़ित करते रहते हैं ॥२१॥ सर्व शक्तियंत भगवान् विष्णु ने जिस कालनेमि का संहार किया था, वही इस समय उग्रसेन के पुत्र रूप में कंस नाम से पृथिवी पर उत्पन्न हुआ है ॥२२॥ अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिपुत्र बाणासुर तथा अन्यान्य महावीर्यवाली दुरात्मा दैत्य पृथिवी पर राज-गृहों में उत्पन्न हुए हैं, जिनकी गणना करना भी संभव नहीं है ॥२३-२४॥ हे दिव्याकार देवगण ! इस समय महाबली और अहंकारी दैत्य राजाओं की अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ मुझे दबाये हुये हैं ॥२५॥ हे अमरे-

श्वरो ! मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि उनके अत्यन्त बोझ को न सहने के कारण अब मैं अपने को धारण करने में भी समर्थ नहीं हो रही हूँ ॥२६॥ इसलिये हे महाभाग वालो ! मेरे बोझ को दूर करिये, जिससे मैं अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक रसातल में धँसने से बच सकूँ ॥२७॥

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशेश्वरैः ।
भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह प्रचोदितः ।२८।
यथाह वसुधा सर्वं सत्यमेव सत्यमेव दिवौकसः ।
अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकाः ।२९।
विभूतयश्च यास्तस्य तासामेव परस्परम् ।
आधिक्य न्यूनता वाध्यवाधकत्वेन वर्तते ।३०।
तदागच्छत गच्छाम क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम् ।
तत्राराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ।३१।
सर्वथैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः ।
सत्वांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ।३२।
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः ।
समाहितमनाश्चैव तुष्टाव गरुडध्वजम् ।३३।
द्वे विद्ये त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा ।
त एव भवतो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो ।३४।
द्वे ब्रह्मणी त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन्सर्व सर्ववित् ।
शब्दब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यत् ।३५।

पृथिवी की बात सुनकर सब देवताओं की प्रेरणा से उसके बोझ को दूर करने विषयक वचनों को ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा ॥२८॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ ! पृथिवी का कथन सत्य है, मैं, शिवजी, आप सभी यथार्थ में तो नारायण के ही स्वरूप हैं ॥२६॥ उनकी विभूतियों की परस्परिक न्यूनता एवं अधिकता ही बाध्य-बाधक स्वरूप होती है ॥३०॥ इसलिये चलो, हम सब क्षीर सागर के किनारे चलकर भगवान् विष्णु का आराधन करें और उनको यह सब वृत्तान्त सुनावें ॥३१॥ क्योंकि वे विश्वरूप सर्वा-

रमा विश्व के हितार्थ ही अपने सत्वांश से उद्भूत होकर धर्म की सदैव स्थापना करते हैं ॥३२॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कह कर ब्रह्माजी ने सब देवताओ को साथ लियाग्रौर वहाँ जाकर एकाग्र मन से गरुडध्वज भगवान् को प्रसन्न करने लगे ॥३३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो ! आप वाणी से परे हैं। परा और अपरा नाम की दोनो विद्या आप ही हैं, क्योकि वे दोनों आपके ही मूर्त्त और अमूर्त्त रूप हैं ॥३४॥ हे अत्यन्त स्थूल एव सूक्ष्म ! हे सर्व ! हे सबके जानने वाले ! शब्द ब्रह्म और परब्रह्म आपका ही है ॥३५॥

ऋग्वेदस्त्वं यजुर्वेदस्सामवेदस्त्वथर्वणः ।
शिक्षाकल्पो निरुक्तं च च्छन्दो ज्योतिषमेव च ।३६।
इतिहासपुराणे च तथा व्याकरणं प्रभो ।
मीमांसा न्यायशास्त्रं च धर्मशास्त्राण्यधोक्षज ।३७।
आत्मात्मदेहगुणवद्विचाराचारि यद्वचः ।
तदप्याद्यपते नान्यदध्यात्मात्मस्वरूपवत् ।३८।
त्वमव्यक्तमनिर्देश्यमचिन्त्यानामवर्णवत् ।
अपाणिपादरूपं च शुद्धं नित्यं परात्परम् ।३९।
शृणोष्यकर्णः परिपश्यसि त्वमचक्षुरेको बहुरूपरूपः ।
अपादहस्तो जवनो ग्रहीता त्वं वेत्सि सर्वं न च सर्ववेद्यः ।४०।
अणोरणीयांसमसत्स्वरूपं त्वां पश्यतोऽज्ञाननिवृत्तिरग्र्या ।
धीरस्य धीरस्य बिभर्ति नान्यद्वरेण्यरूपात्परतः परात्मन् ।४१।
त्वं विश्वनाभिर्भुवनस्य गोप्ता सर्वाणि भूतानि तवान्तराणि ।
यद्भूतभव्यं यदणोरणीयः पुमांस्त्वमेकः प्रकृतेः परस्तात् ।४२।

आप ही, ऋक्, यजु, साम और अथर्व रूप चारो वेद हैं और आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष शास्त्र भी हैं ॥३६॥ आप ही इतिहास पुराण और व्याकरण हैं तथा हे अधोक्षज ! मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र भी आप ही हैं ॥३७॥ हे आद्यपते ! जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल, सूक्ष्म, और उनका कारण अव्यक्त तथा उनके विचार वाला वेदान्त भी आपसे अभिन्न हो है ॥३८॥ आप ही अव्यक्त, अनिर्देश्य, अचिन्त्य, नाम-वर्ण से हीन, अंग तथा

रूपादि से रहित, शुद्ध सनातन और पर से भी पर हैं ॥३९॥ आप ही बिना श्रोत के सुनने वाले, बिना नेत्र देखने वाले, एक होकर भी अनेक दिखाई देने वाले, अपरहित होकर भी अत्यन्त वेग वाले और अवेद्य होकर भी सब के जानने वाले हैं ॥४२॥ हे परमात्मन्! जिस धीर पुरुष की मति आपके रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखती उस आपके अणु से भी सूक्ष्म रूप का दर्शन करने वाले का अज्ञान नितान्त रूप से नष्ट हो जाता है ॥४१॥ आप ही विश्व की नाभि और तीनों लोकों के रक्षक हैं, सब प्राणियों की स्थिति भी आप में ही है तथा विगत और आगमी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जो कुछ भी है, वह सब आपकी प्रकृत्यातीत एक मात्र परमपुरुष हैं ॥४२॥

एकश्चतुर्द्धा भगवान्हुताशो वर्चोविभूतिं जगतो ददासि ।
त्वं विश्वतश्चक्षुरनन्तमूर्ते त्रेधा पदं त्वं निदधासि धातः ।४३।
यथाग्निरेको बहुधा समिध्यते विकारभेदैरविकाररूपः ।
तथा भवान्सर्वगतैकरूपी रूपाण्यशेषाण्यनुपुष्यतीश ।४४।
एकं त्वमग्र्यं परमं पदं यत्पश्यन्ति त्वां सूरयो ज्ञानदृश्यम् ।
त्वत्तो नान्यत्किञ्चिदस्ति स्वरूपं यद्वा भूतं यच्च भव्यं परात्मन्
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं समष्टिव्यष्टिरूपवान् ।
सर्वज्ञस्सर्ववित्सर्वशक्तिज्ञानबलर्द्धिमान् ।४६।
अन्यूनश्चाप्यवृद्धिश्च स्वाधीनो नादिमान्वशी ।
क्लमतन्द्राभयक्रोधकामादिभिरसंयुतः ।४७।

आप ही चार प्रकार के अग्नि रूप से विश्व को तेज रूप विभूति प्रदान करते हैं। हे अनन्तमूर्ते! आपके चक्षु सब ओर विद्यमान हैं तथा आप ही त्रैलोक्य को तीन पग में नापते हैं ॥४३॥ हे ईश्वर! जैसे एक ही अग्नि विकार भेद से अनेक रूप वाला होता है वैसे एक मात्र आप सर्वगत रूप से सभी रूपों को धारण करते हैं। ४४॥ आप ही एक मात्र श्रेष्ठ परमपद हैं आप ही ज्ञान-दृष्टि के द्वारा दर्शनीय हैं, इसलिए ज्ञानी पुरुष आपको ही देखा करते हैं। हे परात्मन्! भूत-भविष्यत् स्वरूप जो कुछ भी है, वह आपसे भिन्न नहीं है ॥४५॥ आप ही व्यक्त रूप तथा आप ही अव्यक्त रूप हैं, समष्टि और व्यष्टि रूप भी आप ही हैं,

अवसर पर महर्षि नारद ने कंस के पास जाकर कहा कि देवकी के आठवें गर्भ के रूप में भगवान् विष्णु अवतीर्ण होंगे ॥६६॥ नारद जी की बात सुन कर कंस अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने वसुदेव तथा देवकी को कारागार में डाल दिया ॥६७॥

वसुदेवेन कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा ।
तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान्द्विजः ॥६८
हिरण्यकशिपोः पुत्राष्पड्गर्भा इति विश्रुताः ।
विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भानयोजयत् ॥६९
योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहितं यया ।
अविद्यया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हरिः ॥७०
निद्रे गच्छ ममादेशात्पातालतलसंश्रयान् ।
एकैकत्वेन पड्गर्भान्देवकीजठरं नय ॥७१
हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्योंऽशस्ततो मम ।
अंशांशेनोदरे तस्यास्सप्तमः सम्भविष्यति ॥७२
गोकुले वसुदेवस्य भार्यान्या रोहिणी स्थिता ।
तस्यास्स सम्भूतिसमं देवि नेयस्त्वयोदरम् ॥७३
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधतः ।
देवक्याः पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥७४
गर्भसङ्कर्पणात्सोऽथ लोके सङ्कर्पणेति वै ।
सज्ञामवाप्स्यते वीरश्श्वेताद्रिशिखरोपमः ॥७५

हे प्रिय ! वसुदेव जी ने अपने पूर्व वचनों के अनुसार, अपने प्रत्येक पुत्र को कंस के लिये अर्पित कर दिया ॥६८॥ सुनते हैं कि देवकी के प्रथम छः गर्भ हिरण्यकशिपु के पुत्र थे, विष्णु भगवान् द्वारा प्रेरित योगनिद्रा उन्हें गर्भ में स्थापित करती रही थी ॥६९॥ जिस अविद्या स्वरूपिणी योगमाया से सम्पूर्ण विश्व मोहित है, वही भगवान् की माया है, उससे भगवान् विष्णु ने कहा ॥७०॥ श्री भगवान् बोले—हे निद्रे ! तू यहाँ से जाकर पाताल में स्थित छः गर्भों को एक-एक करके देवकी के गर्भ में स्थापित कर ॥७१॥ जब कंस उन सब का

वध कर डालेगा, तब मेरा अंश रूप शेष अपने अंशांशों के सहित देवकी का सातवाँ गर्भ होगा ।।७२।। वसुदेव जी की एक दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल में निवास करती है, उस सातवें गर्भ को लेजाकर तू उसी की कोख में स्थापित कर देना, जिससे कि वह उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ प्रतीत हो ।।७३।। उस गर्भ के विषय में सब लोग यही समझेंगे कि कारागृह में पडी हुई देवकी का सातवाँ गर्भ कंस के भय से गिर गया ।।७४।। जिसमे शुभ्र पर्वत शिखर के समान वीर पुरुष का गर्भ से आकर्षण होने के कारण 'संकर्षण' नाम पडेगा ।।७५।।

ततोऽहं सम्भविष्यामि देवकीजठरे शुभे ।
गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ।।७६
प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि ।
उत्पत्स्यामि नवम्यां तु प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ।।७७
यशोदाशयने मां तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते ।
मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ।।७८
कंसश्च त्वामुपादाय देवि शैलशिलातले ।
प्रक्षेप्स्यत्यन्तरिक्षे च संस्थानं त्वमवाप्स्यसि ।।७९
ततस्त्वां शतदृक्छक्रः प्रणम्य मम गौरवात् ।
प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ।।८०
त्वं च शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ।
स्थानैरनेकैः पृथिवीमशेषां मण्डयिष्यसि ।।८१
त्वं भूतिः सन्नतिः क्षान्तिः कान्तिर्द्यौः पृथिवी धृतिः ।
लज्जा पुष्टिरुषा या तु काचिदन्या त्वमेव सा ।।८२

हे शुभे ! फिर मैं देवकी के उदर में आठवाँ गर्भ होऊँगा उस समय तू भी यशोदा के गर्भ में स्थित हो जाना ।।७६।। वर्षा ऋतु के भादों मास की कृष्णाष्टमी को रात्रिकाल में मैं अवतीर्ण होऊँगा और तुझे नवमी के प्राप्त होने पर जन्म लेना है ।।७७।। उस समय मेरी प्रेरणा से वसुदेव जी की मति ऐसी हो जायगी, जिससे वह मुझे यशोदा के शयनागार में पहुँचा कर तुझे देवकी के पास ले जायँगे ।।७८।। हे देवि ! फिर कंस तुझे पत्थर की शिला पर दे मारेगा

और तू पछाड़ी जाते ही अन्तरिक्ष में चली जायगी ॥७६॥ उस समय हजार नेत्र वाला इन्द्र मेरी महिमा से तुझे बहिन मानता हुआ प्रणाम करेगा ॥८०॥ तू भी शुम्भ, निशुम्भादि हजारों दैत्यों का वध करती हुई अपने अनेक स्थान बनाकर पृथिवी को अलंकृत करेगी ॥८१॥ तू भूति, सन्नति, क्षान्ति, कान्ति, आकाश और पृथिवी है तथा तू ही धृति, लज्जा एवं उषा है अथवा इनके अतिरिक्त भी जो कोई शक्ति है, वह सब कुछ तू ही है ॥८२॥

ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भाम्बिकेति च ।
भद्रेति भद्रकालीति क्षेमदा भाग्यदेति च ॥८३
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः ।
तेषां हि प्रार्थितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥८४
सुरामांसोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता ।
नृणामशेषकामांस्त्वं प्रसन्ना सम्प्रदास्यसि ॥८५
ते सर्वे सर्वदा भद्रे मत्प्रसादादसंशयम् ।
असन्दिग्धा भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम् ॥८६

प्रातःकाल और अपराह्ण काल में जो मनुष्य तेरी स्तुति करते हुए विनम्रता से तुझे आर्ये ! दुर्गे ! वेदगर्भे ! अम्बिके ! भद्रे ! भद्रकाली ! कल्याण दायिनी, भाग्य प्रदायिनी ! आदि कह पुकारेंगे, उनकी सभी अभिलाषाएँ मेरी कृपा से पूर्ण हो जायँगी ॥८३-८४॥ भोज्य-भक्ष्य पदार्थों द्वारा पूजन किये जाने पर प्रसन्न हुई तू सब मनुष्यों की कामनाएँ सिद्ध करेगी ॥८५॥ तेरे द्वारा प्रदत्त वे सभी काम्य-फल मेरी कृपा से अवश्य ही सिद्ध होंगे। इसलिये, हे देवि ! तू मेरे द्वारा निर्दिष्ट स्थान को गमन कर ॥८६॥

दूसरा अध्याय

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै तथा ।
षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम् ॥१

सप्तमे रोहिणी गर्भे प्राप्ते गर्भं ततो हरिः ।
लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश ह ॥२
योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव तथा दिने ।
सम्भूता जठरे तद्वद्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥३
ततो ग्रहगणस्सम्यक्प्रचचार दिवि द्विज ।
विष्णोरंशे भुवं याते ऋतवश्चावभुश्शुभाः ॥४
न सेहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितेजसा ।
जाज्वल्यमानां तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोभमाययुः ॥५
अदृष्टाः पुरुषैस्स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणाः ।
बिभ्राणां वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहर्निशम् ॥६

श्री पराशर जी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! देवाधि देव भगवान् विष्णु के आदेशानुसार जगद्धात्री योगमाया ने देवकी के गर्भ में छः गर्भ स्थित किये और सातवें गर्भ को खींच लिया ॥१॥ इस प्रकार जब सातवाँ गर्भ खिंच कर रोहिणी के उदर में स्थापित हो गया तब भगवान् तीनों लोकों की हित-कामना से देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए ॥२॥ भगवान् विष्णु के कथनानुसार ही योग माया ने भी उसी दिन यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया ॥३॥ हे द्विज ! जब भगवान् का वह अंश पृथिवी पर अवस्थित हुआ, तभी से आकाशस्थ ग्रहों की गति नियमित हो गई और ऋतुएँ भी मंगलमयी होकर सुशोभित होने लगीं ॥४॥ उस समय देवकी इतनी तेजोमयी हो गई थी, उनकी ओर देख सकना भी कठिन था, उन्हें देख कर मनों में क्षोभ होता था ॥५॥ उस समय देवगण किसी स्त्री-पुरुष को दिखायी न दे सकें, इस प्रकार अप्रकट रह कर दिन-रात देवकी की स्तुति करने लगे ॥६॥

प्रकृतिस्त्वं परा सूक्ष्मा ब्रह्मगर्भाभवः पुरा ।
ततो वाणी जगद्धातुर्वेदगर्भासि शोभने ॥७
सृज्यस्वरूपगर्भासि सृष्टिभूता सनातने ।
बीजभूता तु सर्वस्य यज्ञभूताभवस्त्रयी ॥८

फलगर्भा त्वमेवेज्या वह्निगर्भा तथारणि ।
अदितिर्देवगर्भा त्व दैत्यगर्भा तथा दिति ॥६
ज्योत्स्ना वासरगर्भा त्व ज्ञानगर्भासि सन्नतिः ।
नयगर्भा परा नीतिर्लज्जा त्व प्रश्रयोद्वहा ॥१०
कामगर्भा तथेच्छा त्व तुष्टि सन्तोषगर्भिणी ।
मेधा च बोधगर्भासि धैर्यगर्भोद्वहा धृति ॥११

देवगण ने कहा—हे शोभने ! पहिले तू ब्रह्म प्रतिबिम्ब को धारण करने वाली मूल प्रकृति थी, विश्वसृष्टा की वेदगर्भा वाणी हुई ॥७॥ हे सनातने ! तू ही उत्पन्न होने योग्य पदार्थो की कारण रूपा और सृष्टि रुपा है, तू ही सब की बीजभूता, यज्ञमयी और वेदत्रयी है ॥८॥ तू ही फल को उत्पन्न करने वाली यज्ञ क्रिया तथा अग्नि की उत्पादिका अरणि है । तू ही देवमाता अदिति और दैत्य-जननी दिति है ॥९॥ तू ही दिन को प्रकट करने वाली ज्योत्स्ना, ज्ञान को उत्पन्न करने वाली गुरु-सुश्रूषा, न्यायगर्भा परमनीति और विनय को उत्पन्न करने वाली लज्जा हैं ॥१०॥ तू ही काम को उत्पन्न करने वाली इच्छा, सन्तोष को उत्पन्न करने तुष्टि, बोध दायिनी मेधा और धैर्यगर्भा धृति है ॥११॥

ग्रहर्क्षतारकागर्भा द्यौरस्याखिलहैतुकी ।
एता विभूतयो देवि तथान्याश्च सहस्रश ॥१२
तथासख्या जगद्धात्रि साम्प्रत जठरे तव ।
समुद्राद्रिनदीद्वीपवनपत्तनभूषणा ॥१३
ग्रामखर्वटखेटाढ्या समस्ता पृथिवी शुभे ।
समस्तवह्न्योऽम्भासि सकलाश्च समीरणा ॥१४
ग्रहर्क्षतारकाचित्र विमानशतसकुलम् ।
अवकाशमशेषस्य यद्ददाति नभ स्थलम् ॥१५
भूर्लोकश्च भुवर्लोकस्स्वर्लोकोऽथ महर्जनः ।
तपश्च ब्रह्मलोकश्च ब्रह्माण्डमखिल शुभे ॥१६
तदन्तरे स्थिता देवा दैत्यगन्धर्वचारणा ।
महोरगास्तथा यक्षा राक्षसा प्रेतगुह्यका ॥१७

मनुष्याः पशवश्चान्ये ये च जीवा यशस्विनि ।
तैरन्तःस्थैरनन्तोऽसौ सर्वगः सर्वभावनः ॥१८
रूपकर्मस्वरूपाणि न परिच्छेदगोचरे ।
यस्याखिलप्रमाणानि स विष्णुर्गर्भगस्तव ॥१९
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा विद्या सुधा त्वं ज्योतिरम्बरे ।
त्वं सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥२०
प्रसीद देवि सर्वस्य जगतश्शं शुभे कुरु ।
प्रीत्या तं धारयेशानं धृतं येनाखिल जगत् ॥२१

तू ही ग्रहो, नक्षत्रो, और तारो को धारण करने वाला आकाश है। यह तथा अन्यान्य हजारो विभूतियाँ तेरे जठर मे स्थित हैं। समुद्र, पर्वत, नदी, द्वीप, वन और नगर, ग्राम, खर्वट, खेटादि से सुशोभित सम्पूर्ण पृथिवी, सभी अग्नियाँ, जल, सब पवन, ग्रह-नक्षत्र और तारों से चित्रित हुआ, सैकडो विमानो से परिपूर्ण और सब को अवकाश देने वाला आकाश, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, मह, जन, तप और ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमे स्थित देवता, दैत्य, गधर्व, चारण, नाग, यक्ष, राक्षस, प्रेत, गुह्यक, मनुष्य, पशु तथा अन्यान्य प्राणियो के कारण रूप जो सर्वत्र गमनशील और सर्व भावन श्री अनन्त भगवान् हैं तथा जिनके रूप, कर्म, स्वभाव और समस्त परिणाम परिच्छेद से परे हैं वही भगवान् विष्णु तेरे गर्भ मे प्रतिष्ठित हैं ॥१२-१९॥ स्वाहा, स्वधा, विद्या, सुधा और आकाश मे स्थित ज्योति तू ही है तथा तू सभी लोको की रक्षा के लिये ही पृथिवी पर अवतीर्ण हुई है ॥२०॥ हे देवि ! तू प्रसन्न होकर सम्पूर्ण विश्व का मगल कर। जिस भगवान् ने इस सम्पूर्ण विश्व को धारण किया हुआ है, उसे तू भी प्रीति सहित धारण कर ॥२१॥



तीसरा अध्याय

एवं संस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत् ।
गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतस्त्राणकारणम् ॥१

ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना ।
देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना ॥२
तज्जन्मदिनमत्यर्थमाह्लादयमलदिङ्मुखम् ।
बभूव सर्वलोकस्य कौमुदी शशिनो यथा ॥३
सन्तस्सन्तोषमधिकं प्रशमं चण्डमारुता ।
प्रसादं निम्नगा याता जायमाने जनार्दने ॥४
सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥५
ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगाः ।
जज्वलुश्चाग्नयश्शान्ता जायमाने जनार्दने ॥६
मन्दं जगर्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुचो द्विज ।
अर्द्धरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने ॥७

श्री पराशर जी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुत हुई देवकी ने जगत् की रक्षा के निमित्त भगवान् को अपने गर्भ में धारण किया ॥१॥ फिर सम्पूर्ण विश्व रूप कमल के विकासार्थ देवकी रूपिणी सन्ध्या में भगवान् अच्युत रूप भास्कर प्रकट हुए ॥२॥ भगवान् का वह जन्म-दिवस चन्द्रमा की चाँदनी के समान सम्पूर्ण विश्व को आनन्दित करने वाला हुआ तथा उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ अत्यंत स्वच्छ होगईं ॥३॥ भगवान् का जन्म होने पर साधुजनों को अत्यंत प्रसन्नता हुई, प्रचण्ड पवन शान्त हो गया और सभी नदियाँ निर्मल होगईं ॥४॥ समुद्र का शब्द भी मनोहर बाजों का घोष बन गया, गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥५॥ भगवान् के उत्पन्न होने पर आकाश में गमन करने वाले देवता पुष्प वृष्टि करने लगे और शान्त यज्ञाग्नि पुन प्रज्वलित हो उठी ॥६॥ उस आधी रात के समय प्रकट हुए जनार्दन पर पुष्प वृष्टि करते हुए मेघ मन्द घोष करने लगे ॥७॥

फुल्लेन्दीवरपत्राभं चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम् ।
श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥८

अभिष्टूय च तं वाग्भि- प्रसन्नाभिर्महामतिः ।
विज्ञापयामास तदा कंसाद्भीतो द्विजोत्तम ॥६
जातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दिव्यरूपमिद देव प्रसादेनोपसंहर ॥१०
अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम घातनम् ।
अवतीर्ण इति ज्ञात्वा त्वदस्मिन्मम मन्दिरे ॥११
योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो ।
गर्भेऽपि लोकान्वपुषा बिभर्ति ।
प्रसीदतामेष स देवदेवो ।
यो माययाविष्कृतबालरूपः ॥१२
उपसहर सर्वात्मन्रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।
जानातु मावतार ते कसोऽय दितिजन्मज ॥१३
स्तुतोऽह यत्त्वया पूर्व पुत्रार्थिन्या तदद्य ते ।
सफल देवि सञ्जात जातोऽह यत्तवोदरात् ॥१४

विकसित कमल-दल जैसी कान्ति वाले, चार भुजाओं और हृदय में श्री वत्स चिह्न वाले भगवान् को उत्पन्न हुआ देखकर वसुदेवजी उनकी स्तुति करने लगे ॥८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! महामति वसुदेवजी ने प्रसन्न करने वाली वाणी से स्तुति करते हुए कस के भय के कारण इस प्रकार कहा ॥६॥ वसुदेवजी बोले—हे देवदेवेश ! यद्यपि आप उत्पन्न हुए हैं, फिर भी अपने इस शंख-चक्र-गदा युक्त दिव्य स्वरूप को छुपा लीजिये ॥१०॥ हे प्रभो ! आपके मेरे घर में उत्पन्न होने की सूचना प्राप्त होते ही कंस मेरे विनाश मे तत्पर होगा ॥११॥ देवकीजी ने कहा—जो अखिल विश्वेश्वर अनन्त रूप मेरे गर्भ मे स्थित होकर भी सब लोकों के धारण-करने वाले हैं और जिन्होंने अपनी ही माया से यह बाल रूप धारण किया है, वह देवदेवेश्वर भगवान् हम पर प्रसन्न हो ॥१२॥ हे सर्वात्मन् ! अपने इस चतुर्भुज रूप को छुपा लीजिये, जिससे दैत्यवंश कंस को आपके इस अवतार का ज्ञान न हो सके ॥१३॥ श्री भगवान् ने कहा—

हे देवि ! पूर्व जन्म में मुझ से पुत्र का मनोरथ करने के कारण ही मैं तेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ ॥१४॥

इत्युक्त्वा भगवांस्तूष्णीं बभूव मुनिसत्तम ।
वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहिः ॥१५
मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया ।
मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥१६
वर्षतां जलदानां च तोयमत्युल्बणं निशि ।
संवृत्यानुययौ शेषः फणैरानकदुन्दुभिम् ॥१७
यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्त्तशताकुलाम् ।
वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ ॥१८
कंसस्य करदानाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे ।
नन्दादीन् गोपवृद्धांश्च यमुनायां ददर्श सः ॥१९
तस्मिन्काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया ।
तामेव कन्यां मैत्रेय प्रसूता मोहिते जने ॥२०
वसुदेवो हि विन्यस्य बालमादाय दारिकाम् ।
यशोदा शयनात्तूर्णमाजगामामितद्युतिः ॥२१
ददृशे च प्रबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ ॥२२

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुनिसत्तम ! यह कहकर भगवान् चुप हो गये और उस रात्रिकाल में ही वसुदेवजी उन्हें लेकर बाहर चल दिये ॥१५॥ जिस समय वसुदेवजी जारहे थे उस समय कारागार-रक्षक और मथुरापुरी के द्वार-रक्षक योगनिद्रा के वशीभूत होकर चेतना-हीन होगये ॥१६॥ भगवान् शेष उस रात्रि काल में वर्षा करते हुए मेघों के जल को रोकने के लिये अपने फण को उनके ऊपर करके पीछे-पीछे गये॥१७॥ भगवान् को लेजाते हुए वसुदेवजी ने विविध प्रकार की भँवरों से परिपूर्ण यमुन जी को जिस समय पार किया, उस समय उनके घुटनों तक ही जल रह गया ॥१८॥ उसी समय कंस के लिये कर देने के निमित्त आये हुए नन्दादि वृद्ध गोपों को भी उन्होंने यमुनाजी के किनारे

पर देखा ॥१६॥ हे मैत्रेय जी ! उस काल योगनिद्रा के प्रभाव से सभी मनुष्य मोहित होगये थे, जिससे मोहित हुई यशोदा ने भी कन्या उत्पन्न की ॥२०॥ तब अत्यन्त तेजस्वी वसुदेवजी ने अपने बालक को वहाँ शयन कराकर उस कन्या को उठाया और शयनागार से बाहर निकल आये ॥२१॥ जब यशोदा की नींद खुली तब उसने एक श्याम वर्ण वाले पुत्र को उत्पन्न हुआ देखा, जिससे उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥२२॥

आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरे ।
देवकीशयने न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२३
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणोऽस्सहसोत्थिताः ।
कंसायावेदयामासुर्देवकीप्रसवं द्विज ॥२४
कंसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह बालिकाम् ।
मुञ्च मुञ्चेति देवक्या सन्नकण्ठया निवारितः ॥२५
चिक्षेप च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थिता ।
अवाप रूपं सुमहत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥२६
प्रजहास तथैवोच्चैः कंस च रुषितात्रवीत् ।
किं मया क्षितया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति ॥२७
सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्यु पुरा च ते ।
तदेतत्सम्प्रधार्याशु क्रियतां हितमात्मनः ॥२८
इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्रग्गन्धभूषणा ।
पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसा ॥२६

इधर कन्या को लेकर आये हुए वसुदेवजी ने उसे देवकी के शयनागार में शयन करा दिया और फिर पहिले के समान ही स्थित होगये ॥२३॥ फिर बालक रुदन सुनकर कारागार रक्षक सचेत होगये और उन्होंने तुरन्त ही देवकी के सन्तान उत्पन्न होने की कंस को सूचना दी ॥२४॥ यह सुनते ही कंस ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ जाकर उस कन्या को पकड लिया और देवकी के रोकने पर भी उसे शिला पर पछाड दिया। उसके ऐसा करते ही वह कन्या आकाश में जाकर शस्त्रास्त्र युक्त अष्ट भुज रूप से स्थित होगई ॥२५-२६॥ फिर उसने

भीषण अट्टहास करते हुए क्रोध पूर्वक कंस से कहा—अरे कंस ! मुझे पछाड़ने से तेरा क्या-क्या बना ? तुझे मारने वाला तो उत्पन्न हो चुका है ॥२७॥ तेरे पूर्व जन्म में भी वही देवताओं के सर्वस्व भगवान् विष्णु तेरे लिये मृत्यु रूप थे, यह बात जानकर अब तू अपनी रक्षा का उपाय कर ॥२८॥ वह दिव्यमाला और मलयादि से विभूषिता तथा सिद्धों द्वारा स्तुत देवी यह कहकर, कंस के देखते-देखते ही आकाश मार्ग में अन्तर्धान होगई ॥२९॥

चौथा अध्याय

कंसस्तदोद्विग्नमना प्राह सर्वान्महासुरान् ।
प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुङ्गवान् ॥१
हे प्रलम्ब महाबाहो केशिन् धेनुक पूतने ।
अरिष्टाद्यास्तथैवान्ये श्रूयतां वचनं मम ॥२
मां हन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मभिः ।
मद्वीर्यतापितान्वीरो न त्वेतान्गणयाम्यहम् ॥३
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण किं हरेणैकचारिणा ।
हरिणा वापि किं साध्यं छिद्रेष्वसुरघातिना ॥४
किमादित्यैः किं वसुभिरल्पवीर्यैः किमग्निभिः ।
किं वान्यैरमरैः सर्वैर्मद्बाहुबलनिर्जितैः ॥५
किं न दृष्टोऽमरपतिर्मया संयुगमेत्य सः ।
पृष्ठेनैव वहन्बाणानपागच्छन्न वक्षसा ॥६
मद्राष्ट्रे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किं तदा ।
मद्बाणभिन्नैर्जलदैर्नापो मुक्ता यथेप्सिताः ॥७
किमुर्व्यामवनीपाला मद्बाहुबलभीरवः ।
न सर्वे सन्नतिं याता जरासन्धमृते गुरुम् ॥८
अमरेषु ममावज्ञा जायते दैत्यपुङ्गवाः ।
हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥९

श्री पराशरजी ने कहा—फिर खिन्न चित्त हुए कंस ने प्रलम्ब और केशी आदि अपने सभी प्रमुख असुरों को बुला कर उनसे कहा—॥१॥ हे प्रलम्ब ! हे केशिन् ! हे धेनुक ! हे पूतने ! हे अरिष्ट ! तथा अन्यान्य वीरो ! मेरी बात सुनो ॥२॥ यह चर्चा फैल रही है कि दुष्ट देवताओं ने मेरा संहार करने की कोई योजना बनाई है। परन्तु मैं वीर पुरुष हूं, इसलिये इन्हें कुछ भी नहीं समझता ॥३॥ अल्प वीर्य इन्द्र, एकाकी विचरण करने वाले रुद्र या छिद्र खोजकर असुरों को मारने वाले विष्णु उनके किस प्रयोजन को सिद्ध कर सकते हैं ? ॥४॥ मेरे भुजबल से पीड़ित हुए आदित्यों, अल्प वीर्य वसुओं, अग्नियों और सब देवताओं के सम्मिलित प्रयत्न से भी मेरा क्या बिगड़ सकता है ? ॥५॥ क्या तुम सबने यह नहीं देखा कि मुझ से युद्ध करता हुआ इन्द्र रण-भूमि में पीठ दिखाकर और बाणों के आघात सह कर भाग गया था ॥६॥ इन्द्र ने जब मेरे राज्य में वर्षा करना रोक दिया था, तब क्या मेरे बाणों से बिंधे हुए बादलों ने वृष्टि नहीं की थी ? ॥७॥ मेरे बड़े जरासन्ध के अतिरिक्त क्या अन्य सभी भूपाल गण मेरे भुजबल से डर कर मेरे सामने मस्तक नहीं झुकाते ? ॥८॥ हे दैत्य पुङ्गवो ! देवताओं के प्रति मेरे हृदय में तिरस्कार भर रहा है और उन्हें मेरी हिंसा का उपाय करते हुए देखकर तो मुझे हँसी आ रही है ॥९॥

तथापि खलु दुष्टाना तेषामप्यधिक मया ।
अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीय दुरात्मनाम् ॥१०
तद्ये यशस्विन केचित्पृथिव्या ये च याजका ।
कार्यो देवापकाराय तेषा सर्वात्मना वध ॥११
उत्पन्नश्चापि मे मृत्युर्भूतपूर्वस्स वै किल ।
इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥१२
तस्माद्बालेषु च परो यत्नः कार्यो महीतले ।
यत्रोद्रिक्त बल बाले स हन्तव्य प्रयत्नत ॥१३
इत्याज्ञाप्यासुरान्कंस प्रविश्याशु गृह ततः ।
मुमोच वसुदेव च देवकी च निरोधत ॥१४

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाधुना ।
कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥१५

तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते ।
अर्भका युवयोर्दोषान्नायुषो यद्वियोजिताः ॥१६

इत्याश्वास्य विमुक्त्वा च कंसस्तौ परिशङ्कितः ।
अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश ततः स्वकम् ॥१७

फिर भी हे दैत्य श्रेष्ठो ! उन दुष्ट दुरात्मा देवगण का अहित करने के लिये अब मुझे अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥१०॥ इसलिये पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हो, उन्हे देवताओ के अहित के निमित्त मार डालना चाहिये ॥११॥ देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि मेरी पूर्व जन्म की मृत्यु उत्पन्न हो चुकी है ॥१२॥ इसलिये पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालको पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक बलवान बालक प्रतीत हो, उसका वध कर देना चाहिये ॥१३॥ कंस ने असुरों को इस प्रकार की आज्ञा दी और कारागार मे जाकर वसुदेव-देवकी को बन्धन-मुक्त कर दिया ॥१४॥ उस समय कंस ने कहा—आपके बालकों को अब तक मैंने व्यर्थ ही मारा, क्योंकि मेरा मारने वाला तो कोई अन्य बालक उत्पन्न हो चुका है ॥१५॥ परन्तु, उन बालको का ऐसा ही भविष्य था, यह मानकर आप दुःखी न हो । आपका प्रारब्ध दोष भी उन बालको की मृत्यु का कारण हुआ है ॥१६॥ श्री पराशर जी ने कहा—हे द्विजवर ! कंस ने उन दोनों को इस प्रकार धैर्य बंधाया और कारागार से छोड़ कर स्वयं शंकाकुल होते हुए अपने अन्तर्गृह मे पहुचा ॥१७॥

श्री पराशरजी ने कहा—फिर खिन्न चित्त हुए कंस ने प्रलम्ब और केशी आदि अपने सभी प्रमुख असुरों को बुला कर उनसे कहा—॥१॥ हे प्रलम्ब ! हे केशिन् ! हे धेनुक ! हे पूतने ! हे अरिष्ट ! तथा अन्यान्य वीरो ! मेरी बात सुनो ॥२॥ यह चर्चा फैल रही है कि दुष्ट देवताओं ने मेरा संहार करने की कोई योजना बनाई है। परन्तु मैं वीर पुरुष हू, इसलिये इन्हें कुछ भी नहीं समझता ॥३॥ अल्प वीर्य इन्द्र, एकाकी विचरण करने वाले रुद्र या छिद्र खोजकर असुरों को मारने वाले विष्णु उनके किस प्रयोजन को सिद्ध कर सकते है ? ॥४॥ मेरे भुजबल से पीड़ित हुए आदित्यों, अल्प वीर्य वसुओ, अग्नियो और सब देवताओं के सम्मिलित प्रयत्न से भी मेरा क्या बिगड़ सकता है ? ॥५॥ क्या तुम सबने यह नहीं देखा कि मुझ से युद्ध करता हुआ इन्द्र रण-भूमि मे पीठ दिखाकर और बाणों के आघात सह कर भाग गया था ॥६॥ इन्द्र ने जब मेरे राज्य मे वर्षा करना रोक दिया था, तब क्या मेरे बाणों से बिंधे हुए बादलो ने वृष्टि नहीं की थी ? ॥७॥ मेरे बड़े जरासन्ध के अतिरिक्त क्या अन्य सभी भूपाल गण मेरे भुजबल से डर कर मेरे सामने मस्तक नहीं झुकाते ? ॥८॥ हे दैत्य पुङ्गवो ! देवताओं के प्रति मेरे हृदय मे तिरस्कार भर रहा है और उन्हें मेरी हिंसा का उपाय करते हुए देखकर तो मुझे हँसी आ रही है ॥९॥

तथापि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया।
अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥१०
तद्ये यशस्विनः केचित्पृथिव्यां ये च याजकाः।
कार्यो देवापकाराय तेषां सर्वात्मना वध. ॥११
उत्पन्नश्चापि मे मृत्युर्भूतपूर्वस्स वै किल।
इत्येतद्दारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥१२
तस्माद्बालेषु च परो यत्नः कार्यो महीतले।
यत्रोद्रिक्तं बलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नत. ॥१३
इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसः प्रविश्याशु गृहं तत.।
मुमोच वसुदेवं च देवकीं च निरोधतः ॥१४

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाधुना ।
कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥१५
तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते ।
अर्भका युवयोर्दोषान्नायुषो यद्वियोजिताः ॥१६
इत्याश्वास्य विमुक्त्वा च कंसस्तौ परिशङ्कितः ।
अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश ततः स्वकम् ॥१७

फिर भी हे दैत्य श्रेष्ठो ! उन दुष्ट दुरात्मा देवगण का अहित करने के लिये अब मुझे अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥१०॥ इसलिये पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हो, उन्हे देवताओ के अहित के निमित्त मार डालना चाहिये ॥११॥ देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि मेरी पूर्व जन्म की मृत्यु उत्पन्न हो चुकी है ॥१२॥ इसलिये पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालको पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक बलवान् बालक प्रतीत हो, उसका वध कर देना चाहिये ॥१३॥ कंस ने असुरो को इस प्रकार की आज्ञा दी और कारागार मे जाकर वसुदेव–देवकी को बन्धन-मुक्त कर दिया ॥१४॥ उस समय कंस ने कहा—आपके बालको को अब तक मैने व्यर्थ ही मारा, क्योकि मेरा मारने वाला तो कोई अन्य बालक उत्पन्न हो चुका है ॥१५॥ परन्तु, उन बालको का ऐसा ही भविष्य था, यह मानकर आप दु.खी न हो । आपका प्रारब्ध दोष भी उन बालको की मृत्यु का कारण हुआ है ॥१६॥ श्री पराशर जी ने कहा–हे द्विजवर ! कंस ने उन दोनो को इस प्रकार धैर्य बँधाया और कारागार से छोड कर स्वयं शंकाकुल होते हुए अपने अन्तर्गृह मे पहुचा ॥१७॥

पाँचवाँ अध्याय

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः ।
प्रहृष्टं दृष्टवानन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥१

वसुदेवोऽपि त प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् ।
वार्द्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽय तवाधुना । २
दत्तो हि वार्षिकस्सर्वो भवद्भिर्नृपते कर ।
यदर्थमागतास्तस्मान्नात्र स्थेय महाधनै ॥३
यदर्थमागता कार्यं तन्निष्पन्न किमास्यते ।
भवद्भिर्गम्यता नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रभवो हि य. ।
स रक्षणीयो भवता यथाय तनयो निज ॥५
इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमा ।
शकटारोपितैर्भाण्डै कर दत्त्वा महाबला ॥६
वसता गोकुले तेषा पूतना बालघातिनी ।
सुप्त कृष्णमुपादाय रात्रौ तस्मै स्तन ददौ ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—कारागार से मुक्त होते ही वसुदेवजी ने नन्दजी के पास जाकर उन्हे पुत्र-जन्म वाले समाचार से प्रसन्न होते हुए देखा ॥१॥ इस पर वसुदेवजी ने उनसे कहा कि आपके वृद्धावस्था मे पुत्र उत्पन्न हुआ, यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात हुई ॥२॥ आप लोग राजा का वार्षिक कर देने के लिए यहाँ आये थे, वह दे चुके हैं, इसलिये आप जैसे धनिक को अब यहाँ अधिक ठहरना उचित नही है ॥३॥ जिस लिये आप यहाँ आये थे, जब वह कार्य हो ही चुका तो सब यहाँ किसलिए रुके हुए है ? हे नन्दजी ! अब आप अपने गोकुल को शीघ्र ही गमन कीजिये ॥४॥ वहा आप रोहिणी से उत्पन्न हुए मेरे पुत्र की भी अपने इस बालक के समान ही रक्षा करते रहना ॥५॥ छकडो मे भर कर लाये गये बर्तनो मे से कर का धन चुका कर निश्चित हुए नन्दादि महाबली गोप वसुदेवजी की बात सुनकर वहाँ से चले गये ॥६॥ उनके गोकुल मे निवास करते हुए भी बालको का घात करने वाली पूतना ने रात्रि के समय सोते हुए कृष्ण को गोद मे उठाया और उन्हे अपना स्तन पान कराने लगी ॥७॥

यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति ।
तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ॥८
कृष्णस्तु तत्स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम् ।
गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ क्रोधसमन्वितः ॥६
सातिमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना ।
पपात पूतना भूमौ म्रियमाणातिभीषणा ॥१०
तन्नादश्रुतिसन्त्रस्ताः प्रबुद्धास्ते व्रजौकसः ।
ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं तां च निपातिताम् ११
आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि द्विजोत्तम ।
गोपुच्छभ्रामणेनाथ बालदोषमपाकरोत् ॥१२
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।
कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वंश्चैतदुदीरयन् ॥१३

वह पूतना रात्रि काल मे जिस बालक के मुख मे अपना स्तन देती थी, वह बालक उसी समय मर जाता था ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके स्तन को क्रोध पूर्वक अपने हाथो से दबाया और उसके प्राण सहित ही स्तन-पान मे तत्पर हुए ॥६॥ इससे पूतना के सभी स्नायु-बन्धन शिथिल होगये और अत्यंत भयङ्कर रूप वाली होकर घोर शब्द करती हुई धराशायिनी हुई ॥१०॥ उसके घोर चीत्कार को सुनकर भय के कारण व्याकुल हुए व्रजवासी उठ पडे और उन्होने देखा कि मरी हुई पूतना की गोद मे श्रीकृष्ण स्थित है ॥११॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! भय से त्रस्त हुई यशोदा ने तुरन्त ही कृष्ण को गोद मे उठाया और उन पर गौ की पूँछ से झाड़ा देकर ग्रह-दोष को शान्त किया ॥१२॥ नन्द ने भी विधि पूर्वक रक्षा-स्तोत्र पढते हुए, बालक के मस्तक पर गोबर लगाया ॥१३॥

रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।
यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवज्जगत् ॥१४
येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनिर्जगत् ।
वराहरूपधृग्देवस्स त्वां रक्षतु केशवः ॥१५

नखाङ्कुरविनिर्भिन्नवैरिवक्षस्थलो विभु ।
नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वा जनार्दन ॥१६
वामनो रक्षतु सदा भवन्त य क्षणादभूत् ।
त्रिविक्रम क्रमाक्रान्तत्रैलोक्य स्फुरदायुध ॥१७
शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशवः ।
गुह्य च च जठर विष्णुर्जङ्घे पादौ जनार्दन
मुख बाहू प्रबाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च ।
रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्यय ॥१६
शार्ङ्गचक्रगदापाणेशङ्खनादहता- क्षयम् ।
गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डराक्षसा ये तवाहिता ॥२०
त्वा पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदन ।
हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥२१
एव कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालक ।
शायितश्शकटस्याधो बालपर्याङ्किकातले ॥२२
ते च गोपा महद् दृष्ट्वा पूतनाया- कलेवरम् ।
मृताया परम त्रास विस्मय च तदा ययु ॥२३

नन्दजी ने कहा—जिनके नाभि-कमल मे यह सम्पूर्ण ससार प्रकट हुआ है वे सभी भूतो के कर्त्ता भगवान् हरि तेरी रक्षा करे ॥१४॥ जिनकी दाढ़ो के अगले भाग पर स्थित हुई पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व को धारण करती है, वे वराह रूपी श्री केशव भगवान् तेरी रक्षा करे ॥१५॥ जिन्होंने अपने नखाग्र से ही शत्रु का वक्ष स्थल चीर दिया था वे नृसिंह रूप धारी भगवान् जनार्दन तेरी सब ओर से रक्षा करे ॥१६॥ जिन्होने क्षणमात्र मे शस्त्रास्त्र युक्त त्रिविक्रम रूप धारण कर अपने तीन पगों मे ही तीनो लोको को नाप लिया था, वे श्री व मन भगवान् तेरी सदा रक्षा करे ॥१७॥ तेरे शिर की रक्षा गोविन्द करें, कण्ठ की रक्षा केशव करे, गुह्य और जठर की विष्णु तथा जाघो और पाँवो की रक्षा जनार्दन करे ॥१८॥ तेरे मुख, बाहु, प्रबाहु, मन तथा सब इन्द्रियों को रक्षा अखण्ड ऐश्वर्यशाली एव अव्यय भगवान् श्री नारायण करे ॥१६॥ तेरे अनिष्ट

कर्त्ता प्रेत, कूष्माण्ड, राक्षसादि जो हों वे सब शार्ङ्ग चक्रपाणि भगवान् विष्णु के शंखनाद से नाश को प्राप्त हों ।।२०। दिशाओं में भगवान् वैकुण्ठ रक्षा करें, विदिशाओं में मधुसूदन, आकाश में हृषीकेश और पृथिवी में महीधर श्री शेष भगवान् तेरी रक्षा करें ।।२१।।

श्री पराशरजी ने कहा—नन्दजी ने इस प्रकार बालक का स्वस्तिवाचन किया और फिर उसे एक छकड़े के नीचे स्थित खटोले पर शयन करा दिया ।।२२।। मरण को प्राप्त हुई उस पूतना के विशाल शरीर को देख कर उन सब गोपों को अत्यन्त भय और आश्चर्य हुआ ।।२३।।

छठा अध्याय

कदाचिच्छकटस्याधश्शयानो मधुसूदनः ।
चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थी प्ररुरोद ह ।।१

तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम् ।
विध्वस्तकुम्भभाण्डं तद्विपरीतं पपात वै ।।२

ततो हाहाकृतः सर्वो गोपगोपीजनो द्विज ।
आजगामाथ ददृशे बालमुत्तानशायिनम् ।।३

गोपाः केनेति केनेदं शकटं परिवर्तितम् ।
तत्रैव बालकाः प्रोचुर्बालेनानेन पातितम् ।।४

रुदता दृष्टमस्माभिः पादविक्षेपपातितम् ।
शकटं परिवृत्तं वै नैतदन्यस्य चेष्टितम् ।।५

ततः पुनरतीवासन्गोपा विस्मयचेतसः ।
नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मितः ।।६

यशोदा शकटारूढभग्नभाण्डकपालिकाः ।
शकटं चार्चयामास दधिपुष्पफलाक्षतैः ।।७

श्री पराशरजी ने कहा—एक समय छकडे के नीचे शयन करते हुए बालक मधुसूदन ने स्तन-पान की इच्छा से रोते रोते ऊपर की ओर पैर मारा ॥१॥ उनके पैर के लगते ही छकडा उलटा होगया और उसमे रखे हुए घडे आदि फूट गए तथा वह एक ओर को औधा गिर पडा ॥२॥ हे द्विज। उससे सब ओर हाहाकार मच उठा, सभी गोप-गोपियो ने वहा आकर बालक को सीधा शयन करते हुए देखा ॥३॥ तब गोपो ने पूछा कि इस छकडे को किसने औंधा कर दिया ? इस पर वहा पहले से ही खेलते हुये बालको ने उत्तर दिया कि इसी बालक ने लात मार कर गिराया है ॥४॥ हमने स्वय देखा है कि इस ने रोते-रोते ही छकडे मे लात मार दी, जिससे यह औधा होकर गिर गया, और किसी ने भी यह कार्य नही किया है ॥५॥ यह सुन कर गोपो को बडा आश्चर्य हुआ और नन्द ने विस्मय पूर्वक श्रीकृष्ण को उठा लिया ॥६॥ फिर यशोदा ने उस छकडे का तथा छकडे मे रखे हुए फूटे बर्तनो का दही, पुष्प फल और अक्षत से पूजन किया ॥७॥

गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदित ।
प्रच्छन्न एव गोपाना सस्कारानकरोत् तयो ॥८
ज्येष्ठ च राममित्याह कृष्ण चैव तथावरम् ।
गर्गो मतिमता श्रेष्ठो नाम कुर्वन्महामति ॥९
स्वल्पेनैव तु कालेन रिङ्गिणौ तौ तदा व्रजे ।
घृष्टजानुकरौ विप्र बभूवतुरुभावपि ॥१०
करीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्तत ।
न निवारयितु शेके यशोदा तौ न रोहिणी ॥११
गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाट गतौ पुन ।
तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ॥१२

तभी वासुदेवजी द्वारा प्रार्थना करने पर गर्गाचार्यजी ने गोकुल मे आ कर उन दोनो बालकों का नामकरण सस्कार किया ॥८॥ उन दोनो का नाम करण करते हुए गर्गाचार्यजी ने बडे बालक का नाम राम और छोटे बालक का कृष्ण रखा ॥९॥ कुछ दिनों मे ही वे दोनो बालक गौओ के गोष्ठ मे

घिसटते हुए घुटनो से चलने लगे ॥१०॥ जब वे गोबर और धूल मे लथपथ होकर इधर-उधर घूमते थे, तब उन्हे यशोदा और रोहिणी भी नही रोक पाती ॥११॥ वे कभी गौओ के गोष्ठ मे और कभी बछडो के बीच मे चले जाते तथा नवजात बछडो की पूँछ पकड कर खीचने लगते ॥१२॥

यदा यशोदा तौ बालवेकस्थानचरावुभौ ।
शशाक नो वारयितु क्रीडन्तावतिचञ्चलौ ॥१३
दाम्ना मध्ये ततो बद्ध्वा बबन्ध तमुलूखले ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह चेदममर्षिता ॥१४
यदि शक्तोपि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित ।
इत्युक्त्वाथ निज धर्म सा चकार कुटुम्बिनी ॥१५
व्यग्रायामथ तस्या स कर्षमाण उलूखलम् ।
यमलार्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षण ॥१६
कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यग्यतमुलूखलम् ।
भग्नावुत्तुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ ॥१७
तत कटकटाशब्दसमाकर्णनतत्पर ।
आजगाम व्रजजनो ददर्श च महाद्रुमौ ॥१८
नवोद्गताल्पदन्तांशुसितहास च बालकम् ।
तयोर्मध्यगत दाम्ना बद्ध गाढ तथोदरे ॥१९
ततश्च दामोदरता स ययौ दामबन्धनात् ॥२०

एक दिन की बात है—जब यशोदाजी उन एक साथ क्रीडा करने वाले बालको को रोकने मे असमर्थ रही तो उन्होने निष्पाप कर्म वाले कृष्ण के कटि भाग को रस्सी से जकड कर उलूखल से बाँध दिया और क्रोध सहित बोली ॥१३-१४॥ अरे चञ्चल ! अब तू इससे छूट सके तो छूट जा, यह कह कर यशोदाजी अपने अन्य कार्य म व्यस्त हो गई ॥१५॥ जब वह गृह कार्य मे लग गई, तब पद्मलोचन श्रीकृष्ण उस उलूखल को खीचते हुए यमलार्जुन वृक्षो के मध्य मे ले गये ॥१६॥ तथा उन दोनो वृक्षो के मध्य से तिरछे फँसे हुए उलूखल को खीचते हुए उन्होने उच्च शाखाओ वाले यमलार्जुन वृक्ष को उखाड़

कर गिरा दिया ॥१९॥ तब उनके उखड कर गिरने के शब्द को सुनकर आये हुए व्रजवासियो ने गिरे हुए उन दोनो विशाल वृक्षो की ओर उनके मध्य मे कटि मे रस्सी से बँधे हुये बालक कृष्ण को अपने छोटे-छोटे दाँतो से मृदु हास करते हुए देखा। दाम के उदर मे बँधने के कारण तभी से उस बालक का नाम दामोदर होगया ॥१८ १९-२०॥

गोपवृद्धास्तत सर्वे नन्दगोपपुरोगमा ।
म न्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरव ॥२१
स्थानेनेहनन कार्यं व्रजामोऽन्यन्महावनम् ।
उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतव. ॥२२
पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्यय ।
विना वाताद्दिदोषेण द्रुमयोः पतन तथा ॥२३
वृन्दावनमित स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ।
यावद्भौममहोत्पातदोषो नाभिभवेद्व्रजम् ॥२४
इति कृत्वा मति सर्वे गमने ते व्रजौकस ।
ऊचुस्स्वस्व कुल शीघ्र गम्यता मा विलम्बथ ॥२५
तत क्षणेन प्रययु शकटैर्गोधनैस्तथा ।
यूथशो वत्सपालाश्च कालयन्तो व्रजौकस ॥२६
द्रव्यावयवनिर्धूत क्षणमात्रेण तत्तथा ।
काकभाससमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद्द्विज ॥२७

तब नन्दादि सब वृद्ध गोपो ने उन महान् उत्पातो से डर कर परस्पर मे परामर्श किया ॥२१॥ अब इस स्थान से हमें कोई कार्य नही है, हम किसी अन्य महावन मे चलें। क्यों कि यहाँ विनाश की कारण रूपा पूतना का आना, शकट का औंधा होना, आँधी आदि के न होने पर भी वृक्षादि का गिर जाना आदि अनेको उत्पात देखे गये हैं ॥२२-२३॥ इस लिये किसी भूमि सम्बन्धी महा उत्पात से इस व्रज के नष्ट होने से पहिले ही हम यहाँ से वृन्दावन के लिये प्रस्थान कर दें ॥२४॥ इस प्रकार चलने का विचार स्थिर कर के सभी व्रज-वासी अपने २ कुटुम्बियो को शीघ्र ही चलने और विलम्ब न करने की बात

कहने लगे ॥२५॥ फिर वे व्रजवासीगण समूहबद्ध होकर क्षणभर मे ही गौओ और छकडो को साथ लेकर वहाँ से चल पडे ॥२६॥ हे द्विज ! उनके जाने पर वहाँ अवशिष्ट पड़ी हुई वस्तुओ वाली वह व्रज भूमि क्षणभर मे ही कौए और और मासादि पक्षियो से युक्त होगई ॥२७॥

वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
शुभेन मनसा ध्यातं गवा सिद्धिमभीप्सता ॥२८
ततस्तत्रातिरूक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तम ।
प्रावृट्काल इवोद्भूत नवशष्प समन्ततः ॥२९
स समावासितः सर्वो व्रजो वृन्दावने तत ।
शकटीवाटपर्यन्तश्चन्द्रार्द्धाकारसस्थिति ॥३०
वत्सपालौ च सवृत्तौ रामदामोदरौ ततः ।
एकस्थानस्थितौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया ॥३१
बर्हिपत्रकृतापीडौ वन्यपुष्पावतसकौ ।
गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ ॥३२
काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकी ।
हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतु स्म महावनम् ॥३३
क्वचिद्धहन्तावन्योन्य क्रीडमानौ तथा परं ।
गोपपुत्रैस्सम वत्साश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥३४
कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षौ महाव्रजे ।
सर्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ बभूवतु ॥३५

फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने गौओ की प्रसन्नता के लिये अपने शुद्ध चित्त से वृन्दावन का ध्यान किया ॥२८॥ हे द्विजोत्तम ! उनके ऐसा करने से अत्यन्त रूखे ग्रीष्म काल मे वर्षाकाल के समान ही नवीन घास वहा उत्पन्न होने लगी ॥२९॥ तब चारो ओर से अर्द्ध चन्द्राकार मे छकडो की पंक्ति लगाकर बसाया गया वह समस्त व्रजवासियो से सुशोभित हो गया ॥३०॥ इसके पश्चात् राम और कृष्ण भी बछड़ो के पालनकर्त्ता हो कर एक स्थान मे स्थित हुए गौओ के गोष्ठ मे बाल क्रीड़ा करने लगे ॥३१॥ सिर पर मोर पंख का मुकुट और

कानो मे वन के पुष्पों के कुंडल धारण कर ग्वालोचित वंशी आदि की ध्वनि करते और पत्तो के बाजे बजाते हुए, स्कंध के कुमारो के समान हास-परिहास करते हुए वे दोनो बालक उस महावन मे क्रीडा करने लगे ॥३२-३३॥ वे दोनो कभी तो परस्पर ही एक दूसरे पर चढ जाते और कभी अन्य गोप-बालको के साथ खेलते और कभी बछडो को चराते हुए विचरण करते रहते थे ॥३४॥ इस प्रकार उस महाव्रज मे निवास करते हुए उन्हें कुछ काल व्यतीत हो गया और वे सम्पूर्ण लोको के पालक वत्सपाल रूप मे सात वर्ष की आयु के हो गये ॥३५॥

प्रावृट्कालस्ततोऽतीवमेघौघस्थगिताम्बरः ।
बभूव वारिधाराभिरैक्यं कुर्वन्दिशामिव ॥३६
प्ररूढनवशष्पाढ्या शक्रगोपाचितामही ।
तथा मारकतीवासीत्पद्मरागविभूषिता ॥३७
ऊहुरुन्मार्गवाहीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः ।
मनांसि दुर्विनीताना प्राप्य लक्ष्मी नवामिव ॥३८॥
न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निर्मलो मलिनैर्वनैः ।
सद्वादिवादो मूर्खाणा प्रगल्भाभिरिवोक्तिभि ॥३९
निर्गुणेनापि चापेन शक्रस्य गगने पदम् ।
अवाप्यताविवेकस्य नृपस्येव परिग्रहे ॥४०
मेघपृष्ठे वलाकाना रराज विमला तति. ।
दुर्वृत्ते वृत्तचेष्टेव कुलीनस्यातिशोभना ॥४१
न वबन्धाम्बरे स्थैर्यं विद्युदत्यन्तचञ्चला ।
मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता ॥४२
मार्गा बभूवुरस्पष्टास्तृणशष्पचयावृता ।
अर्थान्तरमनुप्राप्ताः प्रजडानामिवोक्तयः ॥४३

फिर मेघों से आकाश को ढकता हुआ और अत्यन्त जलधारो की वर्षा से दिशाओ को एक समान करता हुआ वर्षाकाल आ उपस्थित हुआ ॥३६॥ उस दूब के अधिक बढ़ने और बीरबहूटियो से व्याप्त होने के कारण व्रज वसु-

न्धरा पद्मराग से सुसज्जित तथा मरकतमयी-सी प्रतीत होने लगी ॥३७॥ जैसे नवीन ऐश्वर्य को प्राप्त हुए दुष्ट पुरुष उच्छृङ्खल हो जाते हैं, वैसे ही नदियों का जल वृद्धि को प्राप्त होकर सर्वत्र प्रवाहित होने लगा ॥३८॥ जैसे मूर्खों के भ्रष्ट वचनों के सामने श्रेष्ठ वक्ता की वाणी भी फीकी हो जाती है, वैसे ही मलीन मेघों से स्वच्छ चन्द्रमा की कान्ति भी फीकी पड़ गई ॥३९॥ जैसे अविवेकी राजा की संगति को प्राप्त कर गुणहीन मनुष्य भी प्रतिष्ठित हो जाता है, वैसे ही आकाश में गुणहीन इन्द्र धनुष प्रतिष्ठित हो गया ॥४०॥ जैसे दुराचारियों के मध्य स्थित हुआ कुलीन पुरुष शोभा पाता है, वैसे ही अस्वच्छ मेघ मण्डल में स्थित हुए बगुलों की स्वच्छ पंक्ति सुशोभित हुई ॥४१॥ जैसे श्रेष्ठ पुरुष किसी दुर्जन से हुई मित्रता स्थायी नहीं होती, वैसे ही अत्यन्त चञ्चला विद्युत् की स्थिरता स्पष्ट होने लगी ॥४२॥ जैसे महामूर्खों की उक्तियाँ स्पष्ट नहीं होतीं, वैसे ही तिनके और दूब से ढक कर मार्ग की स्पष्टता नष्ट हो गई ॥४३॥

उन्मत्तशिखिसारङ्गे तस्मिन्काले महावने ।
कृष्णरामौ मुदा युक्तौ गोपालैश्चेरतुस्सह ॥४४
क्वचिद्गोभिस्समं रम्यं गेयतानरतावुभौ ।
चेरतुः क्वचिदत्यर्थं शीतवृक्षतलाश्रितौ ॥४५
क्वचित्कदम्बस्रक्चित्रौ मयूरस्रग्विराजितौ ।
विलिप्तौ क्वचिदासातां विविधैर्गिरिधातुभिः ॥४६
पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरैषिणौ ।
क्वचिद्गर्जति जीमूते हाहाकाररवाकुलौ ॥४७
गायतामन्यगोपानां प्रशंसापरमौ क्वचित् ।
मयूरकेकानुगतौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥४८
इति नानाविधैर्भावैरुत्तमप्रीतिसंयुतौ ।
क्रीडन्तौ तौ वने तस्मिंश्चेरतुस्तुष्टमानसौ ॥४९
विकाले च समं गोभिर्गोपवृन्दसमन्वितौ ।
विहृत्याथ यथायोगं व्रजमेत्य महाबलौ ॥५०

गोपैस्समानैस्सहितौ क्रीडन्तावमराविव ।
एवं तावूपतुस्तत्र रामकृष्णौ महाद्युती ॥५१

ऐसे उस मोरो और चातकों से सुशोभित हुए महावन में गोप-बालकों के साथ राम और कृष्ण घूमने लगे ॥४४॥ वे कभी गीत गाते, कभी ध्वनि निकालते, कभी वृक्ष के नीचे बैठते और कभी विचरण करते थे ॥४५॥ कभी कदम्ब के फूलों के हार धारण कर अद्भुत वेश बनाते और कभी मोरपखों की माला बना कर पहिनते और कभी विभिन्न प्रकार की पर्वतीय धातुओं से अपने देह को सजाते ॥४६॥ कभी नींद लेने की इच्छा से पत्तों पर लेट कर झपकी लेते और कभी मेघों का गर्जन सुन कर कोलाहल करने लगते ॥४७॥ कभी अन्य ग्वालों के गाने सुनकर उनकी प्रशंसा करते, कभी गोपों के समान वंशी बजाते और कभी मोरों की सी बोली बोलते थे ॥४८॥ इस प्रकार परस्पर में अत्यंत प्रीति रखते हुए वे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते और वन में घूमते थे ॥४९॥ सायंकाल होने पर वे अत्यंत बलवान् बालक वन में विहार करके गौओं और गोप-बालकों के साथ व्रज में लौट आते ॥५०॥ इस प्रकार अपनी समान आयु के ग्वाल-बालों के साथ खेलते हुए वे महान् तेज वाले राम और कृष्ण वहाँ निवास करने लगे ॥५१॥

सातवाँ अध्याय

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ ।
विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वलः ॥१
स जगामाथ कालिन्दीं लोलकल्लोलशालिनीम् ।
तीरसंलग्नफेनौघैर्हसन्तीमिव सर्वतः ॥२
तस्याञ्चातिमहाभीमं विषाग्निश्रितवारिकम् ।
ह्रदं कालियनागस्य ददर्शातिविभीषणम् ॥३
विषाग्निना प्रसरता दग्धतीरमहीरुहम् ।
वाताहताम्बुविक्षेपस्पर्शदग्धविहङ्गमम् ॥४

तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम् ।
विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदन. ॥५
अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालियोऽसौ विषायुध ।
यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्ट' पयोनिधिम् ॥६
तेनेय दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा ।
न नरैर्गोधनैश्चापि तृषार्तैरुपभुज्यते ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—एक दिन राम को छोड कर कृष्ण अकेले ही वृन्दावन मे चले गये और वहाँ वन के पुष्पो की मालाओ को धारण कर गोपो के साथ घूमने लगे ॥१॥ इस प्रकार घूमते हुए वे चचल तरगो वाली कालिन्दी के किनारे जा निकले। उस समय तटो पर एकत्रित हुए फेन से ऐसा प्रतीत होता था जैसे यमुनाजी हँस रही हो ॥२॥ उसी यमुना मे उन्होने विषाग्नि से उत्तप्त कालियनाग के एक भयकर कुण्ड को देखा ॥३॥ उसकी विषाग्नि इतनी तीव्र थी कि उससे तट के वृक्ष जल गये थे तथा वायु के आघ त से उछलती हुई जल-बिन्दुओ के स्पर्श से पक्षी भी जब तभी जल जाते थे ॥४॥ जैसे मृत्यु का दूसरा मुख हो, उस प्रकार का अत्यत भयकर कुण्ड देख कर भगवान् श्रीकृष्ण विचार करने लगे ॥५॥ इसमे दुरात्मा कालियनाग निवास करता है, इसका विष भी शस्त्र के समान है। यह दुष्ट पहिले मुझसे हार कर समुद्र से चला आया है ॥६॥ इसने समुद्र मे जाने वाली पूरी यमुना को ही दूषित कर रखा है। इसी के कारण यह यमुना जल पिपासु मनुष्यो और गौओ के असेवनीय है ॥७॥

तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया ।
निस्त्रासास्तु सुख येन चरेयुर्व्रजवासिन' ॥८
एतदर्थं तु लोकेऽस्मिन्नवतार कृतो मया ।
यदेषामुत्पथस्थाना कार्याशान्तिदुरात्मनाम् ॥९
तदेत नातिदूरस्थ कदम्बमुरुशाखिनम् ।
अधिरुह्य पतिष्यामिह्रदेऽस्मिन्ननिलाशिन ॥१०
इत्थ विचिन्त्य बध्वा च गाढ परिकर तत ।
निपपात ह्रदे तत्र नागराजस्य वेगतः ॥११

तेनातिपतता तत्र क्षोभितस्य महाह्रदः ।
अत्यर्थं दूरजातास्तु समसिञ्चन्महीरुहान् ॥१२
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः ।
जज्वलुः पादपास्सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ॥१३

इस लिये इस नागराज का निग्रह करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा होने पर ही व्रजवासीगण भय-रहित और सुख से निवास कर सकेंगे ॥८॥ ऐसे दुरात्माओं का दमन करना आवश्यक है और इसीलिए मैं इस लोक में अवतीर्ण हुआ हूँ ॥९॥ इस लिये अब इस उच्च शाखावाले विशाल कदम्ब पर चढ़ कर मैं उस वायु का भक्षण करने वाले नागराज के कुण्ड में कूद पड़ूँगा ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कटि को कसा और सवेग उस कालिय कुंड में कूद गये ॥११॥ उनके कूदने के कारण क्षुब्ध हुए उस महान् कुंड ने दूर पर खड़े हुए वृक्षों को भी भिगो दिया ॥१२॥ नाग के भयानक विष की अग्नि से उष्ण हुए उस जल से भींग कर वे वृक्ष दग्ध होने लगे और उनसे निकलती हुई ज्वालाओं से सभी दिशाएँ भर उठीं ॥१३॥

आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदे भुजम् ।
तच्छब्दश्रवणाच्चाशु नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४
आताम्रनयनः कोपाद्विषज्वालाकुलैर्मुखैः ।
वृतो महाविषैश्चान्यैरुरगैरनिलाशनैः ॥१५
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः ।
प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः ॥१६
ततः प्रवेष्टितस्सर्पैस्स कृष्णो भोगबन्धनैः ।
ददशुस्तेऽपि तं कृष्णं विषज्वालाकुलैर्मुखैः ॥१७
तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगैर्निपीडितम् ।
गोपा व्रजमुपागम्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१८
एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालियह्रदे ।
भक्ष्यते नागराजेन तमागच्छत पश्यत ॥१९

तच्छ्रु त्वा तत्र ते गोपा वज्रपातोपम वच ।
गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा ह्रदम् ॥२०

उस कालिय कुंड मे पहुच कर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओ को ठोक कर शब्द किया, जिसे सुनकर वह नागराज तुरन्त ही उनके सामने आया ।१४। क्रोध के कारण उसके नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और मुख से ज्वाला की लपटे निकल रही थी । उस समय वह अत्यन्त विषैले वायुभक्षी अन्य नागो से घिर रहा था ॥१५॥ तथा मनोहर हारो और हिलते हुए कुडलो की कान्ति से सुशोभित हो रही सैकडो नाग पत्नियाँ भी उसके साथ थी ॥१६॥ उन नागो ने कुडलाकार हो कर श्रीकृष्ण को अपनी देह मे बाध कर विषाग्नि युक्त मुखो से दशित करना आरम्भ किया ॥१७॥ इसके अनन्तर जब गोपो ने श्रीकृष्ण को उस नाग कुड मे गिरे हुए और नागो के फणो से काटे जाते हुए देखा तो वह शोक से अत्यन्त व्याकुल हो कर रोते हुए ब्रज मे लौट आये ॥१८॥ उन गोपो ने कहा— अरे, चल कर देखो कालीदह मे गिर कर कृष्ण अचेत पडा है और नागराज उसका भक्षण किये जा रहा है ॥१९॥ उनके इस अमङ्गल सूचक वचनो को वज्रपात के समान समझ कर सभी गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ उसी समय कालीदह की ओर शीघ्रता से दौड पडी ॥२०॥

हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वल ।
यशोदया सम भ्रान्तो द्रुतप्रस्खलित ययौ ॥२१
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रम ।
त्वरित यमुना जग्मु कृष्णदर्शनलालसा ॥२२
ददृशुश्चापि ये तत्र सर्पराजवशङ्गतम् ।
निष्प्रयत्नीकृत कृष्ण सर्पभोगविवेष्टितम् ॥२३
नन्दगोपोऽपि निश्चेष्टो न्यस्य पुत्रमुखे दृशम् ।
यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तम ॥२४
गोप्यस्त्वन्या रुदन्त्यश्चददृशुः शोककातरा ।
प्राचुश्च केशव प्रीत्या भयकातर्यगद्गदम् ॥२५

तेनातिपतता तत्र शोभितस्य महाह्रदः ।
अत्यर्थं दूरजातांस्तु समसिञ्चन्महीरुहान् ॥१२
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः ।
जज्वलुः पादपास्सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ॥१३

इस लिये इस नागराज का निग्रह करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा होने पर ही व्रजवासीगण भय-रहित और सुख से निवास कर सकेंगे ॥८॥ ऐसे दुरात्माओं का दमन करना आवश्यक है और इसीलिए मैं इस लोक में अवतीर्ण हुआ हूँ ॥९॥ इस लिये अब इस उच्च शाखावाले विशाल कदम्ब पर चढ़ कर मैं उस वायु का भक्षण करने वाले नागराज के कुण्ड में कूद पड़ूँगा ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कटि को कसा और सवेग उस कालिय कुंड में कूद गये ॥११॥ उनके कूदने के कारण क्षुब्ध हुए उस महान् कुंड ने दूर पर खड़े हुए वृक्षों को भी भिगो दिया ॥१२॥ नाग के भयानक विष की अग्नि से उष्ण हुए उस जल से भीग कर वे वृक्ष दग्ध होने लगे और उनसे निकलती हुई ज्वालाओं से सभी दिशाएँ भर उठीं ॥१३॥

आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदे भुजम् ।
तच्छब्दश्रवणाच्चाशु नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४
आताम्रनयनः कोपाद्विषज्वालाकुलैर्मुखैः ।
वृतो महाविषैश्चान्यैरुरगैरनिलाशनैः ॥१५
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः ।
प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः ॥१६
ततः प्रवेष्टितस्सर्पैस्स कृष्णो भोगबन्धनैः ।
ददशुस्तेऽपि तं कृष्णं विषज्वालाकुलैर्मुखैः ॥१७
तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगैर्निपीडितम् ।
गोपा व्रजमुपागम्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१८
एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालियह्रदे ।
भक्ष्यते नागराजेन तमागच्छत पश्यत ॥१९

तच्छ्रुत्वा तत्र ते गोपा वज्रपातोपमं वच ।
गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा ह्रदम् ॥२०

उस कालिय कुंड मे पहुंच कर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओ को ठोक कर शब्द किया, जिसे सुनकर वह नागराज तुरन्त ही उनके सामने आया ।१४। क्रोध के कारण उसके नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और मुख मे ज्वाला की लपटें निकल रही थी । उस समय वह अत्यन्त विषैले वायुभक्षी अन्य नागों से घिर रहा था ॥१५॥ तथा मनोहर हारों और हिलते हुए कुंडलों की कान्ति से सुशोभित हो रही सैकड़ो नाग पत्नियाँ भी उसके साथ थीं ॥१६॥ उन नागों ने कुंडलाकार हो कर श्रीकृष्ण को अपनी देह मे बांध कर विषाग्नि युक्त मुखों से दंशित करना आरम्भ किया ॥१७॥ इसके अनन्तर जब गोपों ने श्रीकृष्ण को उस नाग कुंड मे गिरे हुए और नागो के फणो से काटे जाते हुए देखा तो वह शोक से अत्यन्त व्याकुल हो कर रोते हुए व्रज मे लौट आये ॥१८॥ उन गोपो ने कहा— अरे, चल कर देखो, कालीदह मे गिर कर कृष्ण अचेत पड़ा है और नागराज उसका भक्षण किये जा रहा है ॥१९॥ उनके इस वज्रपात सूचक वचनो को वज्रपात के समान समझ कर सभी गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ उसी समय कालीदह की ओर शीघ्रता से दौड़ पड़ीं ॥२०॥

हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वल. ।
यशोदया सम भ्रान्तो द्रुतप्रस्खलित ययौ ॥२१
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रम. ।
त्वरित यमुना जग्मु कृष्णादर्शनलालसा ॥२२
ददृशुश्चापि ये तत्र सर्पराजवशङ्गतम् ।
निष्प्रयत्नीकृत कृष्ण सर्पभोगविवेष्टितम् ॥२३
नन्दगोपोऽपि निश्चेष्टो न्यस्य पुत्रमुखे दृशम् ।
यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तम ॥२४
गोप्यस्त्वन्या रुदन्त्यश्च ददृशु शोककातरा ।
प्राचुश्च केशव प्रीत्या भयकातरगद्गदम् ॥२५

उस समय वे सभी गोपियाँ 'हाय, कृष्ण कहाँ है ?' कहती हुई व्याकुलता से रुदन करती और गिरती पड़ती हुई वहाँ गईं ॥२१॥ सभी गोपों को साथ लिये हुए अद्भुत बल वाले बलरामजी भी श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से तुरन्त ही यमुना के किनारे जा पहुंचे ॥२२॥ वहाँ पहुंच कर उन्होंने श्रीकृष्ण को नागराज के वश मे पड़े हुए तथा उसके लिपटने से निष्प्रयत्न हुए देखा ॥२३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय नन्द और यशोदा भी उनके मुख को एकटक देखते हुए अचेत हो गये ॥२४॥ अन्य गोपियो ने भी श्रीकृष्ण की ऐसी दशा देखी तो शोक से व्याकुल हो कर रुदन करने लगी और भय-कम्पित वाणी मे गद्गद कण्ठ मे प्रीति पूर्वक बोली ॥२५॥

सर्वा यशोदया सार्द्धं विशामोऽत्र महाह्रदम् ।
सर्पराजस्य नो गन्तुमस्माभिर्युज्यते व्रजम् ॥२६
दिवस को विना सूर्य विना चन्द्रेण का निशा ।
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रज. ॥२७
विनाकृता न यास्याम कृष्णेनानेन गोकुलम् ।
अरम्य नातिसेव्य च वारिहीन यथा सर ॥२८
यत्र नेन्दीवरदलश्यामकान्तिरय हरि ।
तेनापि मातुर्वासेन रतिरस्तीति विस्मय ॥२९
उत्फुल्लपङ्कजदलस्पष्टकान्तिविलोचनम् ।
अपश्यन्त्यो हरिं दीना कथं गोष्ठे भविष्यथ ॥३०
अत्यन्तमधुरालापहृताशेषमनोरथम् ।
न विना पुण्डरीकाक्ष यास्यामो नन्दगोकुलम् ॥३१
भोगेनाविष्टितस्यापि सर्पराजस्य पश्यत ।
स्मितशोभि मुख गोप्य कृष्णस्यास्मद्विलोकने ॥३२

गोपियो ने कहा—अब यशोदाजी के साथ हम सभी सर्पराज के इस कुंड मे डूबेंगी, व्रज मे कदापि नहीं जायेंगी ॥२६॥ सूर्य ही नहीं तो दिन कैसा? चन्द्रमा नहीं तो रात ही क्या ? बैल नहीं तो गाय कैसी ? इसी प्रकार कृष्ण ही नहीं तो व्रज कैसा ? ॥२७॥ कृष्ण को साथ लिये बिना हम गोकुल के लिये

कभी नही जा सकती, क्यो कि कृष्णहीन गोकुल तो जलहीन सरोवर के समान ही निरर्थक है ।।२८।। जहाँ नील कमल की-सी कान्ति वाले कृष्ण नही, उस मातृगेह से प्रीति होना भी विस्मय की बात होगी ।।२६।। अरी गोपियो ! विक-सित कमल के समान आभा वाले जिनके नेत्र है, ऐसे श्री हरि के दर्शन बिना दीनता को प्राप्त हुई तुम अपने गोष्ठ मे कैसे रहोगी ? ।।३०।। जिन्होने अपने मधुर आलाप से हमारी सब कामनाओं को अपने ही वश मे कर लिया है, उन पुण्डरीकाक्ष के बिना नन्दजी के गोकुल को हम कदापि नही जा सकती ।।३१।। हे गोपियो ! सर्पराज के फण से ढक कर भी श्रीकृष्ण का मुख हमे देख-देख कर मुसकान युक्त हो गया है ।।३२।।

इति गोपीवच श्रुत्वा रौहिणेयो महाबल. ।
गोपांश्च त्रासविधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणान् ।।३३
नन्द च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टि सुतानने ।
मूर्च्छाकुला यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसज्ञया ।।३४
किमिद देवदेवेश भावोऽयं मानुपस्त्वया ।
व्यज्यतेऽत्यन्तमात्मान किमनन्त न वेत्सि यत् ।।३५
त्वमेव जगतो नाभिरराणामिव संश्रयः ।
कर्त्तापहर्त्ता पाता च त्रैलोक्य त्वं त्रयीमयः ।।३६
सेन्द्रै रुद्राग्निवसुभिरादित्यैर्मरुदश्विभि ।
चिन्त्यसे त्वमचिन्त्यात्मन् समस्तैश्चैव योगिभिः ।।३७
जगत्यर्थं जगन्नाथ भारावतरणेच्छया ।
अवतीर्णोऽसि मर्त्येषु तवांशश्चाहमग्रज ।।३८
मनुष्यलीलां भगवन् भजता भवता सुराः ।
विडम्बयन्तस्त्वल्लीलां सर्व एव सहासते ।।३६

श्रीपराशरजी ने कहा—गोपियो का इस प्रकार कथन सुन कर रोहिणी पुत्र बलरामजी ने सन्तप्त नेत्र वाले गोपो, अपने पुत्र को एकटक देखते हुए नन्द और मूर्छा से आकुल हुई यशोदा को देखकर श्रीकृष्ण ने सकेत मे कहा ।।३३-३४।। हे देवदेवेश ! आप यह मनुष्य भाव किस लिये प्रकट कर रहे हो ? क्या

अपने को अनन्त नही जान पाते ? ॥३५॥ जैसे चक्र-नाभि ही अरो का आधार होती है, वैसे ही आप इस ससार के आधार, कर्त्ता, अपहर्त्ता और रक्षा करने वाले है। आप ही त्रैलोक्य रूप तथा वेदत्रयात्मक हैं ॥३६॥ हे अचिन्त्यात्मन् ! इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वसु, आदित्य, मरुद्गण, अश्विद्वय तथा सभी योगीजन आपका ही ध्यान किया करते हैं ॥३७॥ हे जगन्नाथ ! जगत् का कल्याण करने और भू भार हरने की इच्छा से ही आप मृत्यु लोक मे अवतीर्ण हुए हैं और आपका मैं अग्रज भी आपका अंश रूप ही हूँ ॥३८॥ हे भगवन् ! जब आप मनुष्य रूप मे लीला करते हैं, तब यह सभी देवता आपकी लीलाओ के अनुकरण मे सदा आपके साथ रहते हैं ॥३९॥

अवतार्य भवान्पूर्वं गोकुले तु सुराङ्गना ।
क्रीडार्थमात्मन पश्चादवतीर्णोऽसि शाश्वत ॥४०
अत्रावतीर्णयो कृष्ण गोपा एव हि बान्धवा ।
गोप्यश्च सीदतः कस्मादेतान्बन्धूनुपेक्षसे ॥४१
दर्शितो मानुषो भावो दर्शित बालचापलम् ।
तदय दम्यता कृष्ण दुष्टात्मा दशनायुध ॥४२
इति सस्मारित कृष्ण स्मितभिन्नोष्ठसम्पुट ।
आस्फोट्य मोचयामास स्वदेह भोगिबन्धनात् ॥४३
आनम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्या मध्यम शिर ।
आरुह्याभुग्नशिरस प्रणनर्त्तोरुविक्रम ॥४४
प्राणा फणेऽभवश्चास्य कृष्णस्याङ्घ्रिनिकुट्टनै ।
यत्रोन्नतिं च कुरुते ननामास्य ततश्शिर ॥४५
मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नाग कृष्णस्य रेचकै ।
दण्डपातनिपातेन ववाम रुधिर बहु ॥४६
त विभुग्नशिरोग्रीवमास्येभ्यस्स्रुतशोणितम् ।
विलोक्य करुण जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥४७

हे शाश्वत ब्रह्म ! आपने क्रीडा करने के लिये पहले देवनारियो को गोकुल मे प्रकट किया और फिर स्वय अवतीर्ण हुए हैं ॥४०॥ हे कृष्ण ! यहा

पर उत्पन्न हुए हम दोनो के बांधवगण तो यह गोप गोपियाँ ही हैं, फिर आप इन दुखियो की उपेक्षा क्यो कर रहे है ? ।४१।। हे कृष्ण ! यह मानुष-भाव और बाल-चपलता तो आपने बहुत दिखा दी, अब तो इस दाँत रूप शस्त्रधारी दुरात्मा नाग का दमन करिये ।।४२।। श्री पराशरजी ने कहा—बलरामजी द्वारा इस प्रकार याद दिलाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सम्पुट को खोल कर मधुर मुसकान फैलाते हुए, अकस्मात् उछल कर अपने को सर्प के बन्धन से मुक्त किया ।।४३।। फिर उन्होंने अपने दोनो हाथो से उसके मध्य फण को झुकाया और स्वय उस पर चढ कर नृत्य करने लगे ।।४४।। श्रीकृष्ण के पदाघात से उसके प्राण मुख पर आगये । वह अपने जिस फण को ऊँचा करता, उसी पर ठोकर मार कर नीचे झुका देते ।।४५।। श्रीकृष्ण की भ्रान्ति, रेचक और दण्डपात के आघात से वह नाग मूर्छित हो गया और बहुत-सा रक्त वमन करने लगा ।।४६।। इस पर उसके शिर और ग्रीवाओ को भग्न तथा मुखो से रक्त गिरता देख कर नाग-पत्नियाँ करुणा पूर्ण वाणी मे श्रीकृष्ण से बोली ।।४७।।

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वज्ञस्त्वमनुत्तम ।
परं ज्योतिरचिन्त्यं यत्तदंश परमेश्वर ।।४८

न समर्था सुरास्स्तोतु यमनन्यभव विभुम्
स्वरूपवर्णन तस्य कथं योपित्करिष्यति ।।४९

यस्याखिलमहीव्योमजलाग्निपवनात्मकम् ।
ब्रह्माडमल्पकाल्पाश स्तोष्यामस्तं कथ वयम् ।।५०

यतन्तो न विदुर्नित्य यत्स्वरूप हि योगिन ।
परमार्थमणोरल्प स्थूलात्स्थूल नता स्म तम् ।।५१

न यस्य जन्मने धाता यस्य चान्ताय नान्तक ।
स्थितिकर्त्ता न चान्योऽस्ति यस्य तस्मै नमस्सदा ।।५२
कोप स्वल्पोऽपि ते नास्ति स्थितिपालनमेव ते ।
कारण कालियस्यास्य दमने श्रूयता वचः ।।५३

स्त्रियोऽनुकम्प्यास्साधूना मूढा दीनाश्च जन्तव ।
यतस्ततोऽस्य दीनस्य क्षम्यता क्षमता वर ॥५४
समस्तजगदाधारो भवानल्पबल फणी ।
त्वत्पादपीडितो जह्यान्मुहूर्त्तार्द्धेन जीवितम् ॥५५

नाग पत्नियो ने कहा—हे देवदेवेश । अब हम आपको जान गई, आप सर्वश्रेष्ठ सर्वज्ञ एव अचिन्त्य परमज्योति के अ श रूप परमेश्वर ही है ॥४८॥ जिन स्वयम्भू भगवान् की स्तुति करने का सामर्थ्य देवताओ मे भी नही है, उन के रूप का वर्णन हम नारियां किस प्रकार कर सकती है ? ॥४९॥ पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और पवन रूप यह ब्रह्माड जिनका अल्पतम अ श है, हम उनकी स्तुति किस प्रकार करें ॥५०॥ जिनके नित्य रूप को योगीजन यत्न पूर्वक भी नही जान सकते और जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल हैं, उन परमार्थ स्वरूप को हम नमस्कार करते है ॥५१॥ जिन्हें विधाता जन्म नही देता और काल जिनका अन्त नही कर सकता तथा जिनका स्थिति कर्त्ता भी कोई दूसरा नही है, उन प्रभु को हमारा नमस्कार है ॥५२॥ आपने इस कालियनाग का दमन क्रोध से नही, किन्तु ससार की स्थिति और पालन के लिये ही किया है, इसलिये हमारे वचन सुनिये ॥५३॥ हे क्षमाशील श्रेष्ठ । साधुजन को स्त्रियो, मूर्खों और दीन जन्तुओ पर अनुकम्पा ही करनी चाहिये, इसलिये आप भी इस दीन के अपराध को क्षमा करिये ॥५४॥ आप सम्पूर्ण विश्व के आधार है और यह नाग अल्प बल वाला है । फिर यह आपके चरण प्रहार से पीडित होगया तो आधे मुहूर्त्त तक ही जीवित रह सकता है ॥५५॥

क्व पन्नगोऽल्पवीर्योऽय क्व भवान्भुवनाश्रय ।
प्रीतिद्वेषौ समोत्कृष्टगोचरौ भवतोऽव्यय ॥५६
तत कुरु जगत्स्वामिन्प्रसादमवसीदत ।
प्राणास्त्यजति नागोऽय भर्तृ भिक्षा प्रदीयताम् ॥५७
भुवनेश जगन्नाथ महापुरुष पूर्वज ।
प्राणास्त्यजति नागोऽय भर्तृ भिक्षा प्रयच्छ न ॥५८

वेदान्तवेद्य देवेश दुष्टदैत्यनिवर्हण ।
प्राणास्त्यजति नागोऽयं भर्तृ भिक्षा प्रदीयताम् ॥५९
इत्युक्ते ताभिराश्वस्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नग ।
प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैं शनैं ॥६०

हे अव्यय ! प्रीति अपने समान से और वैर अपने से श्रेष्ठ से होती देखते है, तो कहाँ यह अल्पवीर्य वाला नाग और कहाँ आप सब लोकों के आश्रय ? ॥५६॥ इसलिये हे जगन्नाथ ! इस दीन पर कृपा करिये। यह नाग अपने प्राणों का त्याग करने वाला है, इसलिये हमें हमारे भर्तार को भिक्षा रूप में प्रदान करिये ॥५७॥ हे भुवनेश ! हे जगन्नाथ ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! इस नाग के प्राण जाना ही चाहते है, इसलिये आप हमें हमारे पति की भिक्षा दीजिये ॥५८॥ हे वेदान्त से जानने योग्य देवेश ! हे दुष्टों और दैत्यों के विनाशक ! अब यह नाग अपना प्राण त्याग करने वाला है, हमें पति की भिक्षा दीजिये ॥५६॥ श्री पराशर जी ने कहा—नागिनी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर क्लान्त शरीर वाले नाग को भी कुछ धैर्य हुआ और वह मन्द स्वर में कहने लगा—हे देव देवेश्वर ! प्रसन्न हो जाइये ॥६०॥

तवाष्टगुणमैश्वर्यं नाथ स्वाभाविकं परम् ।
निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥६१
त्वं परस्त्वं परस्याद्य परं त्वत्त परात्मक ।
परस्मात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥६२
यस्माद्ब्रह्मा च रुद्रश्च चन्द्रेन्द्रमरुदश्विन ।
वसवश्च सहादित्यैस्तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥६३
एकावयवसूक्ष्मांशो यस्यैतदखिलं जगत् ।
कल्पनावयवस्यांशस्तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥६४
सदसद्रूपिणो यस्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वरा ।
परमार्थं न जानन्ति तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥६५
ब्रह्माद्यैं रर्चितो यस्तु गन्धपुष्पानुलेपनैं ।
नन्दनादिसमुद्भूतैस्सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६६

यस्यावताररूपाणि देवराजस्सदार्चति ।
न वेत्ति परमं रूपं सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६७

कालिय नाग ने कहा—हे नाथ ! आपका अष्ट गुण विशिष्ट परम ऐश्वर्य स्वाभाविक एवं समता–रहित है, इसलिये मैं आपकी स्तुति किस प्रकार कर सकता हूँ ? ॥६१॥ आप पर तथा पर के भी आदि कारण हैं, और हे परात्मक ! पर की प्रवृत्ति भी आपके द्वारा ही हुई है। इसलिये आप पर से परे की स्तुति मैं किस प्रकार करूँ ? ॥६२॥ जिनसे ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुत्, अश्विनी, वसु और आदित्यों की उत्पत्ति हुई है, उन आपकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥६३॥ यह विश्व जिनके काल्पनिक अवयव का एक सूक्ष्म अंश है, ऐसे आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ ? ॥६४॥ जिन सत्–असत् रूप के यथार्थ स्वरूप को ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जानने में समर्थ नहीं हैं, उन आपकी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकूँगा ? ॥६५॥ ब्रह्मा आदि देवता नन्दन कानन के पुष्पों, गन्ध और अनुलेपन आदि के द्वारा जिनका पूजन करते हैं, उन आपका पूजन मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥६६॥ जिनके अवतार रूपों का पूजन करते हुए देवराज इन्द्र भी वास्तविक रूप को नहीं जान पाते, उन आपका पूजन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ॥६७॥

विषयेभ्यस्समावृत्य सर्वाक्षाणि च योगिनः ।
यमर्चयन्ति ध्यानेन सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६८
हृदि सङ्कल्प्य यद्रूपं ध्यानेनार्चन्ति योगिनः ।
भावपुष्पादिना नाथः सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६९
सोऽहं ते देवदेवेश नार्चनादौ स्तुतौ न च ।
सामर्थ्यवान् कृपामात्रमनोवृत्तिः प्रसीद मे ॥७०
सर्पजातिरियं क्रूरा यस्यां जातोऽस्मि केशव ।
तत्स्वभावोऽयमत्रास्ति नापराधो ममाच्युत ॥७१
सृज्यते भवता सर्वं तथा संह्रियते जगत् ।
जातिरूपस्वभावाश्च सृज्यन्ते सृजता त्वया ॥७२

यथाहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वर ।
स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मया ॥७३

यद्यन्यथा प्रवर्तेय देवदेव ततो मयि ।
न्याय्यो दण्डनिपातो वै तवैव वचनं यथा ॥७४

तथाप्यज्ञे जगत्स्वामिन्दण्डं पातितवान्मयि ।
स श्लाघ्योऽयं परो दण्डस्त्वत्तो मे नान्यतो वरः ॥७५

हृतवीर्यो हृतविषो दमितोऽहं त्वयाच्युत ।
जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम् ॥७६

अपनी इन्द्रियों को सम्पूर्ण विषयों से हटा कर योगीजन जिनका चिंतन और पूजन करते हैं, उन आपका पूजन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ? ॥६८॥ चित्त में जिनके रूप का सङ्कल्प करके योगीजन जिनका ध्यान करते हुए भावमय पुष्पादि से पूजन करते हैं, मैं उनका पूजन किस प्रकार कर सकता हूँ ॥६९॥ हे देव देवेश ! मैं आपके पूजन अथवा स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ, मैं तो आपकी कृपामात्र का अभिलाषी हूं, इसलिये आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥७०॥ हे केशव ! मैं जिस सर्प जाति में उत्पन्न हुआ हूं, वह अत्यन्त क्रूर होती है, इसलिये मेरा जातीय स्वभाव होने के कारण मेरा इसमें कोई अपराध मत मानिये ॥७१॥ इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि और प्रलय करने वाले आप ही हैं और आप ही सृष्टि–रचना के समय सब जातियों के रूप और स्वभाव को भी स्वयं रचते हैं ॥७२॥ हे प्रभो ! आपने मुझे जिस जाति, रूप और स्वभाव से युक्त किया है, उसी के अनुरूप मेरी चेष्टा हुई है ॥७३॥ हे देव देव ! यदि मैंने उसके विपरीत कोई आचरण किया हो तो मैं अवश्य ही दण्ड के योग्य हो सकता हूँ ॥७४॥ फिर भी आपने मुझ अज्ञानी को जो दण्ड दिया है, वह भी मेरी भलाई के लिये ही हो सकता है। परन्तु हे जगदीश्वर ! किसी अन्य से प्राप्त वर भी मेरे लिये ठीक नहीं होता ॥७५॥ हे अच्युत ! आपने मेरे वीर्य और विष का भले प्रकार दमन कर दिया है, इसलिये अब तो आप मुझे प्राण-दान दीजिये और अब मुझे क्या करना है, यह निर्देश करिये ॥७६॥

नात्र स्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले ।
सपुत्रपरिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज ।।७७
मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्द्ध नि सागरे ।
गरुड पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ।।७८
इत्युक्त्वा सर्पराजं तं मुमोच भगवान्हरिः ।
प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसां निधिम् ।।७९
पश्यतां सर्वभूतानां सभृत्यसुतबान्धवः ।
समस्तभार्यासहितः परित्यज्य स्वकं ह्रदम् ।।८०
गते सर्पे परिष्वज्य मृतं पुनरिवागतम् ।
गोपा मूर्द्ध नि हार्देन सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ।।८१
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः ।
तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा शिवजलां नदीम् ।।८२
गीयमानः स गोपीभिश्चरितैस्साधुचेष्टितैः ।
संस्तूयमानो गोपैश्च कृष्णो व्रजमुपागमत् ।।८३

श्री भगवान् ने कहा—हे नाग ! अब इस यमुना जल में तेरा निवास उचित नहीं है । इसलिये, तू अपने पुत्रादि कुटुम्ब के सहित समुद्र के लिये प्रस्थान कर ।।७७।। तेरे शिर पर मेरे चरण-चिह्न बन गये हैं, उन्हें देखकर सर्पों का वैरी गरुड तुझे नहीं सतायेगा ।।७८।। श्री पराशरजी ने कहा—सर्पराज के प्रति ऐसा कहकर भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया और वह भी उन्हें प्रणाम करके सब जीवों के देखते ही अपने भृत्य, पुत्र, बांधव और सब स्त्रियों के सहित उस कुण्ड का त्याग कर समुद्र में रहने के लिये चल दिया ।।७९-८०।। सर्प के वहाँ चले जाने पर मर कर जी उठने वाले मनुष्य के समान श्री कृष्ण को प्राप्त करके गोपों ने प्रीति पूर्वक उनका आलिंगन किया और अपने आँसुओं से उनके मस्तक को भिगोने लगे ।।८१।। यमुनाजी को स्वच्छ जल से युक्त देखकर कुछ अन्य गोपगण प्रसन्न चित्त होकर श्रीकृष्ण की आश्चर्य पूर्वक स्तुति करने लगे ।।८२।। फिर अपने श्रेष्ठ चरित्र के कारण

गोपियों की गीतमय प्रशंसा और गोपों द्वारा स्तुतियों को प्राप्त होते हुए श्रीकृष्ण व्रज में लौट आये ॥८३

आठवाँ अध्याय

गा पालयन्तौ च पुनः सहितौ बलकेशवौ ।
भ्रममाणौ वने तस्मिन्रम्यं तालवनं गतौ ॥१
तत्तु तालवनं दिव्यं धेनुको नाम दानवः ।
मृगमांसकृताहारः सदाध्यास्ते खराकृतिः ॥२
तत्तु तालवनं पक्वफलसम्पत्समन्वितम् ।
दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपा फलादानेऽब्रुवन्वचः ॥३
हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैष रक्ष्यते ।
भूप्रदेशो यतस्तस्मात्पक्वानीमानि सन्ति वै ॥४
फलानि पश्य तालानां गन्धामोदितदीशि वै ।
वयमेतान्यभोप्साम पात्यन्तां यदि रोचते ॥५

श्री पराशरजी ने कहा—एक दिन बलरामजी के सहित भगवान् केशव गौएँ चराते हुए अत्यन्त रमणीक तालवन में जा पहुँचे ॥१॥ उस दिव्य वन में गदभाकार धेनुकासुर मृगमांस का आहार करता हुआ निवास करता था ॥२॥ वह तालवन पके फलों से सम्पन्न था, जिन्हें तोड़ने की इच्छा करते हुए गोपों ने कहा ॥३॥ गोपगण बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! इस भू प्रदेश का रक्षक धेनुकासुर है इसीलिये यहाँ पके हुए फलों की भरमार है ॥४॥ यह तालफल अपनी गंध से सब दिशाओं में आमोद उत्पन्न कर रहे हैं, हम भी इनके खाने की इच्छा कर रहे हैं, यदि तुम्हारी भी रुचि हो तो इनमें से कुछ फल गिरा लो ॥५॥

इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा सङ्कर्षणो वचः ।
एतत्कर्त्तव्यमित्युक्त्वा पातयामास तानि वै ।
कृष्णश्च पातयामास भुवि तानि फलानि वै ॥६

फलानां पततां शब्दमाकर्ण्य सुदुरासद ।
आजगाम स दुष्टात्मा कोपाद् दैतेयगर्दभ ॥७
पद्भ्यामुभाभ्याम तदा पश्चिमाभ्या बल बली ।
जघानोरसि ताभ्या च स च तेनाभ्यगृह्यत ॥८
गृहीत्वा भ्रामयामास सोऽम्बरे गतजीवितम् ।
तस्मिन्नेव स चिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९
तत फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्खर' ।
पृथिव्या पातयामास महावातो घनानिव ॥१०
अन्यानथ सजातीयानागतान्दैत्यगर्दभान् ।
कृष्णश्चिक्षेप तालाग्र बलभद्रश्च लीलया ॥११
क्षणेनालङ्कृता पृथ्वी पक्वैस्तालफलैस्तदा ।
दैत्यगर्दभदेहैश्च मैत्रेय शुशुभेऽधिकम् ॥१२
ततो गावो निराबाधास्तस्मिंस्तालवने द्विज ।
नवशष्प सुख चेरुर्यन्न भुक्तमभूत्पुरा ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—ग्वाल-बालो के ऐसे वचन सुनकर बलरामजी ने भी उनका अनुमोदन किया और कुछ फल गिराये फिर श्रीकृष्ण ने भी कुछ फल झाड दिये ॥६॥ फलो के गिरने का शब्द सुनकर वह दुर्द्धर्ष, दुरात्मा गर्दभ रूपी असुर क्रोध करता हुआ वहाँ आगया ॥७॥ उस महाबली असुर ने अपने पीछे के दो पाँवो से बलरामजी के हृदय पर आघात किया तब उन्होंने उसके दोनो पाँव पकड लिये ॥८॥ फिर उसे आकाश मे घुमाने लगे और जब वह निष्प्राण होगया तब उन्होने अत्यन्त वेग पूर्वक उसे ताल वृक्ष पर ही पछाड दिया ॥९॥ उस गर्दभ के गिरने से ताल वृक्ष के फल इस प्रकार झड गये,जैसे प्रचण्ड पवन से मेघ झडने लगते है ॥१०॥ उसके अन्य सजातीय बाधव भी जब क्रोध पूर्वक वहाँ आये, तब उन्हें भी उठा उठा कर बलराम और कृष्ण ने ताल वृक्षों पर ही दे मारा ॥११॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार एक क्षण मे ही ताल के पके हुए फलो और गधे रूपी असुरो के शरीरो से अलकृत हुई पृथिवी अत्यन्त शोभा पाने लगी ॥१२॥ हे द्विज ! उस समय से ही उस ताल वन में

निर्भय हुई गौएं सुख पूर्वक चरने लगी, जिसे पहिले कभी चरने का सौभाग्य उनके प्राप्त नहीं हुआ था ॥१३॥

नवाँ अध्याय

सस्मिन्रासभदैतेये सानुगे विनिपातिते ।
सौम्यं तद्गोपगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥१
ततस्तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।
हत्वा धेनुकदैतेयं भाण्डीरवटमागतौ ॥२
क्ष्वेलमानौ प्रगायन्तौ विचिन्वन्तौ च पादपान् ।
चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च च नामभि ॥३
निर्योगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ।
शुशुभाते महात्मानौ बालश्रृङ्गाविवर्षभौ ॥४
सुवर्णाञ्जनचूर्णाभ्या तौ तदा रुपिताम्बरौ ।
महेन्द्रायुधसयुक्तौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥५
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम् ।
समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥६
मनुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम् ।
तज्जातिगुणयुक्ताभि क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥७
ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च नियुद्धैश्च महाबलौ ।

श्री पराशरजी ने कहा—जब वह गर्दभ रूपी असुर अपने अनुचरों सहित मारा गया, तब वह रमणीक तालवन गोपो और गोपियो के लिये सौम्य हो गया ॥१॥ फिर उस दैत्य को मार कर वे दोनों वसुदेव नन्दन हर्षित चित्त से भाण्डीर वट के पास आये ।२।तब गौओ को बाँधने की रस्सी को अपने कंधे पर लटकाये और वनमाला धारण किये वे दोनो बालक नाद करते, गाते, वृक्षो पर चढते-उतरते, गौओं को चराते हुए उनको पुकारते हुए नवीनोत्पन्न सींग वाले बछडो के समान शोभा पा रहे थे ॥३-४॥ उन दोनो के वस्त्र स्वर्णिम और

श्याम रङ्ग के होने के कारण वे दोनों इन्द्र धनुष पड़े हुए श्वेत और श्याम वर्ण के बादलों जैसे प्रतीत होते थे ॥५॥ वे सभी लोकपालों के स्वामी पृथिवी पर प्रकट होकर विभिन्न लौकिक क्रीडाएँ कर रहे थे ॥६॥ मानव धर्म का पालन करते और मानवी-क्रीडाएँ करते हुए वे वन में विचरण कर रहे थे ॥७॥

व्यायाम चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयस्तथाश्मभिः ॥८
तल्लिप्सुरसुरस्तत्र ह्युभयो रममाणयो ।
आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेषतिरोहित ॥९
सोऽवगाहत निश्शङ्कस्तेषां मध्यममानुष ।
मानुष वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तम ॥१०
तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरविसह्यममन्यत ।
कृष्ण ततो रौहिणेय हन्तु चक्रे मनोरथम् ॥११
हरिणाक्रीडन नाम बालक्रीडनक ततः ।
प्रकुर्वन्तो हि ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्थितौ ॥१२
श्रीदाम्ना सह गोविन्द प्रलम्बेन तथा बल ।
गोपालैरपरैश्चान्ये गोपाला पुप्लुवुस्तत ॥१३
श्रीदामान तत कृष्ण प्रलम्ब रोहिणीसुत ।
जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्ये पराजिता ॥१४

कभी झूले मे झूलते, कभी परस्पर मल्ल युद्ध करते और कभी पत्थर फेंक कर विभिन्न प्रकार का अभ्यास करते ॥८॥ ऐसे ही समय मे उन क्रीडा करते हुए दोनो बालको को उठा ले जाने की इच्छा करता हुआ प्रलम्ब नामक एक असुर गोप वेश धारण कर वहाँ आया ॥९॥ दानवो मे श्रेष्ठ प्रलम्बासुर मनुष्य न होते हुए भी मनुष्य वेश मे शङ्का रहित भाव से उन बालको मे जा मिला ॥१०॥ वे दोनो कब असावधान होते है, इसका अवसर देखते हुए उस असुर ने श्रीकृष्ण को वश मे न आने वाला समझ कर बलरामजी को ही मारने का विचार स्थिर किया ॥११॥ फिर वे सब ग्वाल-बालको ने हरिणाक्रीडन नामक खेल की इच्छा की और उनमे से दो-दो बालक एक साथ उठ-उठ कर चलने लगे ॥१२॥ उस समय श्रीदामा के साथ कृष्ण, प्रलम्ब के साथ बलराम

तथा अन्याय ग्वालो की दो-दो की जोडी इसी प्रकार हिरन की भाँति उछलती हुई चली ॥१३॥ अन्त मे कृष्ण से श्रीदामा, बलराम से प्रलम्ब और कृष्ण-पक्ष के अन्यान्य ग्वालो न अपन प्रति पक्षियो पर विजय प्राप्त करली ॥१४॥

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्य भाण्डीर वटमेत्य वै ।
पुनर्निववृतुस्सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१५
सङ्कर्षण तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानव ।
नभस्स्थल जगामाशु सचन्द्र इव वारिद ॥१६
असहन्रौहिणेयस्य स भार दानवोत्तम ।
ववृधे स महाकाय प्रावृषीव बलाहक. ॥१७
सङ्कर्षणस्तु त दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम् ।
स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१८
रौद्र शकटचक्राक्ष पादन्यासचलत्क्षितिम् ।
अभीतमनसा तेन रक्षसा रोहिणीसुत ।
ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत् ॥१९
कृष्ण कृष्ण ह्रिये ह्येष पर्वतोदग्रमूर्तिना ।
केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥२०
यदत्र साम्प्रत कार्य मया मधुनिषूदन ।
तत्कथ्यता प्रयात्येष दुरात्मातित्वरान्वित ॥२१

उस खेल मे जिन बालको की हार हुई वे अपने-अपने विजेताओ को कन्धो पर चढा कर भाण्डीर वट तक ले गये और लौट आये ॥१५॥ परन्तु प्रलम्बासुर बलरामजी को अपने कन्धे पर चढा कर जैसे चन्द्रमा युक्त मेघ होता है वैसी ही शोभा को प्राप्त होता हुआ अत्यन्त वेग-पूर्वक आकाश मे उड चला ॥१६॥ किन्तु वह दानवोत्तम प्रलम्ब बलरामजी के भार को न सह सका और वर्षाकाल मे बादल बढ जाता है, वैसे ही वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अत्यन्त स्थूल होगया ॥१७॥ उस समय मालादि आभूषणो से विभूषित, शिर पर मुकुट धारण किये, रथ चक्र के समान भयानक नेत्र वाले, अपनी चाल से भूमण्डल को कम्पित करने वाले तथा जले हुए पर्वत जैसे आकार वाले उस निशङ्क

संस्तूयमानो गोपैस्तु रामा दैत्ये निपातिते ।
प्रलम्वे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३८

हे अनन्त मूर्ते ! सम्पूर्ण चराचर जगत् को धारण करने वाली पृथिवी के आप ही धारण करने वाले हैं। आप ही अजन्मा निमेपादि काल रूप होकर सत्ययुग आदि के भेद से इस विश्व का स्वयं ही ग्रास कर लेते हैं ॥२६॥ जैसे बड़वानल का जलवायु के द्वारा हिमालय पर पहुँच कर बर्फ बन जाता है और सूर्य-रश्मियों के संयोग से पिघल कर पुनः जल रूप होता है, वैसे ही यह विश्व आपके द्वारा संहार को प्राप्त होकर आपके ही आश्रय में रहता है और जब आप पुन. सृष्टि करने मे तत्पर होते हैं, तब यह स्थूल विश्व रूप हो जाता है ॥३०-३१॥ हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों ही इस विश्व के अकेले कारण हैं और लोकहित के लिये ही हमने पृथक्-पृथक् रूप धारण किया है ॥३२॥ इसलिये आप अपने यथार्थ रूप को याद करिये और मानव-भाव के आश्रय में ही इस दैत्य का वध करके जनहित को सिद्ध कीजिये ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा—महात्मा श्रीकृष्ण ने जब उन्हें इस प्रकार याद दिलाई, तब महाबली बलरामजी ने हँसकर प्रलम्वासुर को पीडित करना आरम्भ किया ॥३४॥ उन्होंने क्रोध पूर्वक लोहित वर्ण के नेत्र करके उसके शिर पर मुष्टिका से प्रहार किया, जिससे आहत होने पर उसके दोनों नेत्र बाहर की ओर निकल पड़े ॥३५॥ फिर मस्तिष्क के फटने से वह महादैत्य रुधिर वमन करता हुआ धरती पर गिर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३६॥ अद्भुत कर्म वाले बलरामजी के द्वारा प्रलम्बासुर का वध हुआ देखकर सभी गोप उन्हें साधुवाद देने लगे ॥३७॥ प्रलम्बासुर के मरने पर गोपों द्वारा प्रशंसित होते हुए बलरामजी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोकुल में लौट आये ॥३८॥

दसवाँ अध्याय

तयोर्विहरतोरेवं रामकेशवयोर्व्रजे ।
प्रावृड् व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥१

अवापुस्तापमत्यर्थं शफर्यः पल्वलोदके।
पुत्रक्षेत्रादिसक्तेन ममत्वेन यथा गृही॥२
मयूरा मौनमातस्थु परित्यक्तमदा वने।
असारता परिज्ञाय संसारस्येव योगिनः॥३
उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलास्सितमूर्तयः।
तत्यजुश्चाम्बरं मेघा गृह विज्ञानिनो यथा॥४
शरत्सूर्यांशुतप्तानि ययुश्शोषं सरांसि च।
बह्वालम्बममत्वेन हृदयानीव देहिनाम्॥५
कुमुदैश्शारदम्भांसि योग्यतालक्षणं ययुः।
अवबोधैर्मनांसीव समत्वममलात्मनाम्॥६
तारकाविमले व्योम्नि रराजाखण्डमण्डलः।
चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साधुकुले यथा॥

संस्तूयमानो गोपैस्तु रामो दैत्ये निपातिते ।
प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३८

हे अनन्त मूर्ते ! सम्पूर्ण चराचर जगत् को धारण करने वाली पृथिवी के आप ही धारण करने वाले हैं। आप ही अजन्मा निमेषादि काल रूप होकर सत्ययुग आदि के भेद से इस विश्व का स्वयं ही ग्रास कर लेते हैं ॥२६॥ जैसे बड़वानल का जलवायु के द्वारा हिमालय पर पहुँच कर बर्फ बन जाता है और सूर्य-रश्मियों के संयोग से पिघल कर पुनः जल रूप होता है, वैसे ही यह विश्व आपके द्वारा संहार को प्राप्त होकर आपके ही आश्रय में रहता है और जब आप पुनः सृष्टि करने में तत्पर होते हैं, तब यह स्थूल विश्व रूप हो जाता है ॥३०-३१॥ हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों ही इस विश्व के अकेले कारण हैं और लोकहित के लिये ही हमने पृथक्-पृथक् रूप धारण किया है ॥३२॥ इसलिये आप अपने यथार्थ रूप को याद करिये और मानव-भाव के आश्रय से ही इस दैत्य का वध करके जनहित को सिद्ध कीजिये ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा—महात्मा श्रीकृष्ण ने जब उन्हें इस प्रकार याद दिलाई, तब महाबली बलरामजी ने हँसकर प्रलम्बासुर को पीडित करना आरम्भ किया ॥३४॥ उन्होंने क्रोध पूर्वक लोहित वर्ण के नेत्र करके उसके शिर पर मुष्टिका से प्रहार किया, जिसमें आहत होने पर उसके दोनों नेत्र बाहर की ओर निकल पड़े ॥३५॥ फिर मस्तिष्क के फटने से वह महादैत्य रुधिर वमन करता हुआ धरती पर गिर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३६॥ अद्भुत कर्म वाले बलरामजी के द्वारा प्रलम्बासुर का वध हुआ देखकर सभी गोप उन्हें साधुवाद देने लगे ॥३७॥ प्रलम्बासुर के मरने पर गोपों द्वारा प्रशंसित होते हुए बलरामजी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोकुल में लौट आये ॥३८॥

दसवाँ अध्याय

तयोर्विहरतोरेवं रामकेशवयोर्व्रजे ।
प्रावृड् व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥१

ययावुत्तापमत्यर्थं शफर्यः पल्वलोदके ।
पुत्रक्षेत्रादिसक्तेन ममत्वेन यथा गृही ॥२
मयूरा मौनमातस्थुः परित्यक्तमदा वने ।
असारतां परिज्ञाय संसारस्येव योगिनः ॥३
उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलाः सितमूर्तयः ।
तत्यजुश्चाम्बरं मेघा गृहं विज्ञानिनो यथा ॥४
शरत्सूर्यांशुतप्तानि ययुः शोषं सरांसि च ।
बह्वल्पममत्वेन हृदयानीव देहिनाम् ॥५
कुमुदैश्शरदम्भांसि योग्यतालक्षणं ययुः ।
अवबोधैर्मनांसीव समत्वममलात्मनाम् ॥६
तारकाविमले व्योम्नि रराजाखण्डमण्डलः ।
चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साधाले यथा ॥७

पूर्वं त्यक्तंस्सरोऽम्भोभिर्हंसा योगं पुनर्ययुः ।
क्लेशैः कुयोगिनोऽशेषैरन्तरायहता इव ॥९
निभृतोऽभवदत्यर्थं समुद्रः स्तिमितोदकः ।
क्रमावाप्तमहायोगो निश्चलात्मा यथा यतिः ॥१०
सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन् ।
ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनासीव सुमेधसाम् ॥११
बभूव निर्मलं व्योम शरदा ध्वस्ततोयदम् ।
योगाग्निदग्धक्लेशौघ योगिनामिव मानसम् ॥१२
सूर्यांशुजनितं ताप निन्ये तारापतिः शमम् ।
अहंमानोद्भव दु.खं विवेकः सुमहानिव ॥१३
नभसोऽब्द भुवः पङ्कं कालुष्यं चाम्भसश्शरत् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रत्याहार इवाहरत् ॥१४
प्राणायाम एवाम्भोभिस्सरसां कृतपूरकैः ।
अभ्यस्यतेऽनुदिवसं रेचकाकुम्भकादिभिः ॥१५

जैसे विवेकी पुरुष पुत्र और वैभव में बढ़ते हुए ममत्व को धीरे-धीरे छोड़ देते हैं, वैसे ही जलाशयों का जल भी अपने किनारों को धीरे-धीरे त्यागने लगा ॥८॥ जैसे विघ्नों से विचलित हुए कुयोगियों को क्लेशों की पुनः प्राप्ति होती है, वैसे ही पूर्व में त्यागे हुए सरोवर के जल से हंस पुनः मिल गये ॥९॥ जैसे महायोग की उपलब्धि पर यति निश्चलात्मा हो जाता है, वैसे ही जल की स्थिरता से समुद्र निश्चल हो गया ॥१०॥ जैसे भगवान् विष्णु का ज्ञान होने पर ज्ञानियों के चित्त स्वच्छ हो जाते हैं, वैसे ही शरद् ऋतु को प्राप्त होकर जलाशयों का जल स्वच्छ हो गया ॥११॥ जैसे योगाग्नि द्वारा नष्ट क्लेश योगियों के चित्त स्वच्छ हो जाते हैं. वैसे ही मेघों के न रहने से आकाश स्वच्छ हो गया ॥१२॥ जैसे अहंकार से उत्पन्न हुए दुःख की शान्ति विवेक से हो जाती है, वैसे ही चन्द्रमा से सूर्य रश्मियों से उत्पन्न ताप की शान्ति होगई ॥१३॥ जैसे इन्द्रियों के विषयों को प्रत्याहार दूर कर देता है. वैसे ही आकाश से बादलों को, पृथिवी से धूलि को और जल से मल को शरद् काल ने उपस्थित होकर दूर कर दिया

है ।।१४।। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि सरोवरों के जल पूरक करके अब कुम्भक और रेचक क्रिया करते हुए प्राणायाम के अभ्यास में लगे है ।।१५।।

विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते व्रजे ।
ददर्शेन्द्रमहारम्भायोद्यतास्तान्व्रजौकस ।।१६
कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् ।
कौतूहलादिद वाक्य प्राह वृद्धान्महामति ।।१७
कोऽय शक्रमखो नाम येन वो हर्ष आगत ।
प्राह त नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ।।१८
मेघाना पयसा चेशो देवराजश्शतक्रतु ।
तेन सञ्चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमय रसम् ।।१९
तद्वृष्टिजनित सस्य वयमन्ये च देहिन ।
वर्त्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवता ।।२०
क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृता ।
तेन सवर्द्धितैस्सस्यैस्तुष्टा पुष्टा भवन्ति वै ।।२१
नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जन ।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहका ।।२२
भौममेतत्पयो दुग्ध गोभि सूर्यस्य वारिदै ।
पर्जन्यस्सर्वलोकस्योद्भवाय भुवि वर्षति ।।२३
तस्मात्प्रावृषि राजानस्सर्वे शक्र मुदा युता ।
मखैस्सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवा ।।२४

इस प्रकार व्रजमण्डल में जब आकाश स्वच्छ हो गया और शरद् काल का आगमन हुआ तब श्रीकृष्ण ने सब व्रजवासियों को इन्द्रोत्सव की तैयारी में लगे हुए देखा ।।१६।। उन गोपों को उत्सव की उमंग में भरे हुए देख कर श्री कृष्ण ने अपने वृद्धजनों से कौतूहल पूर्वक पूछा ।।१७।। आप लोग जिसे करने के लिये इतने उत्साहित हैं, वह इन्द्रयज्ञ कैसा होगा ? आदर सहित ऐसा प्रश्न किये जाने पर नन्दजी ने उनसे कहा ।।१८।। नन्द गोप बोले—मेघ और जल दोनों के ही स्वामी इन्द्र है, उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जल रूप रस की वृष्टि

करते है ।।१६।। हम तथा अन्य प्राणी वर्षा से प्राप्त हुए अन्न का ही व्यवहार करते हैं। उसका स्वयं उपभोग करते और उसी से देवताओं को तृप्त करते हैं ।।२०।। वृष्टि-जल से वृद्धि को प्राप्त हुए तृण से ही यह गौएँ तृप्ति और पुष्टि को प्राप्त करती है। उसी से बछडो वाली और दुधारू होती हैं ।।२१।। जिस भूमि पर वर्षणशील बादल दिखाई देते हैं, वहाँ अन्न या घास की कमी नही होती जिससे वहाँ क्षुधा से किसी को भी पीडित नही होना होता है ।।२२।। यह इन्द्र ही सूर्य-रश्मियो के द्वारा पृथिवी के जल को खीचते और मेघो के द्वारा उसी जल को पुनः पृथिवी पर बरसाते हैं ।।२३।। इसीलिये सब राजा लोग, हम तथा अन्य सब मनुष्य यज्ञो के द्वारा इन्द्र का ही प्रसन्नता पूर्वक पूजन किया करते है ।।२४।।

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने ।
रोषाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ।।२५
न वयं कृषिकर्त्तारो वाणिज्याजीविनो न च ।
गावोऽस्मद्दैवतं तात वयं वनचरा यतः ।।२६
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्तादण्डनीतिस्तथा परा ।
विद्याचतुष्टयं चैतद्वार्त्तामात्रं शृणुष्व मे ।।२७
कृषिर्वणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम् ।
विद्या ह्येका महाभाग वार्त्ता वृत्तित्रयाश्रया ।।२८
कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् ।
अस्माकं गौः परा वृत्तिर्वार्त्ता भेदैरियं त्रिभि ।।२९
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं महत् ।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका ।।३०
यो यस्य फलमश्नन्वै पूजयत्यपरं नरः ।
इह च प्रेत्य चैवासौ न तदाप्नोति शोभनम् ।।३१
कृष्यान्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं च पुनर्वनम् ।
वनान्ता गिरयस्सर्वे ते चास्माकं परा गतिः ।।३२

न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा।
सुखिनस्त्वखिले लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥३३

श्री पराशरजी ने कहा—इन्द्र के पूजन विषयक यह विचार सुनकर भगवान् दामोदर ने इन्द्र को रुष्ट करने के विचार से ही नन्दजी के प्रति कहा ॥२५॥ हे तात ! हम न तो कृषि जीवी हैं, न वाणिज्य जीवी, हम वनचरो के देवता तो यह गौएँ ही है ॥२६॥ तर्क, कर्मकाण्ड, दण्डनीति और वार्त्ता—यह चार विद्याएँ कही जाती हैं, इनमें से केवल वार्त्ता के विषय में ही आप से कहता हूँ, उसे सुनिये ॥२७॥ हे महाभाग ! कृषि, वाणिज्य और पशु पालन रूप तीनो वृत्तियो की आश्रय भूता वार्त्ता नाम की विद्या ही है ॥२८॥ वार्त्ता के इन तीनो भेदो के कारण किसानो की वृत्ति कृषि, व्यापारियो की वृत्ति वाणिज्य और हमारी वृत्ति गोपालन है ॥२९॥ जो व्यक्ति जिस विद्या को वृत्ति को करता है, उसकी इष्ट देवता वही विद्या है, उसे अपनी उस परम उपकारिणी विद्या का ही पूजन करना चाहिये ॥३०॥ एक देवता से फल-लाभ करके दूसरे देवता का पूजन करने वाले मनुष्य के इहलोक और परलोक दोनो ही बिगड जाते हैं ॥३१॥ खेतो की समाप्ति पर सीमा आती है और सीमा के अन्त होने पर वन आता है और जब वन भी समाप्त हो जाता है, तब पर्वत आते हैं, इसलिये पर्वत ही हमारे लिये तो परमगति स्वरूप हैं ॥३२॥ हम न तो घर की भीत मे रहते हैं, न किवाड लगाते हैं और न घर या खेत वाले ही हैं, हम तो भ्रमणशील मुनियो के समान ही अपने जनो के समाज मे सुख से रहते हैं ॥३३॥

श्रूयन्ते गिरयश्चैव वनेऽस्मिन्कामरूपिणः।
तत्तद्रूप समास्थाय रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥३४
यदा चैतैः प्रबाध्यन्ते तेषा ये काननौकस.।
तदा सिंहादिरूपैस्तान्घातयन्ति महीधरा ॥३५
गिरियज्ञस्त्वय तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम्।
किमस्माकः महेन्द्रेण गावश्शैलाश्च देवताः ॥३६
मन्त्रयज्ञपरा विप्रास्सीरयज्ञाश्च कर्षकाः।
गिरिगोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रया. ॥३७

तस्माद्गोवर्धनश्शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः ।
अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यान्पशून्हत्वा विधानतः ॥३८
सर्वघोषस्य सन्दोहो गृह्यतां मा विचार्यताम् ।
भोज्यन्तां तेन वै विप्रास्तथा ये चाभिवाञ्छकाः ॥३९
तत्रार्चिते कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु ।
शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥४०
एतन्मम मतं गोपास्सम्प्रीत्या क्रियते यदि ।
ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥४१

सुनते हैं कि इस वन के पर्वत इच्छित रूप धारण करके अपने-अपने मस्तक पर विहार करते रहते हैं ॥३४॥ जब कोई वनवास इन पर्वत देवताओं के विहार में किसी प्रकार बाधक होते हैं, तब यह सिंहादि रूप को धारण करके उनकी हत्या कर डालते हैं ॥३५॥ इसलिये आज से गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञ करने की तैयारी करिये। हमारे देवता तो पर्वत और गौएँ ही हैं, इन्द्र से हमें क्या लेना है ? ॥३६॥ विप्रगण मंत्र यज्ञ और कृषकगण सीर यज्ञ करते हैं, इसलिये हम पर्वतों और वनों में निवास करने वालों के लिये तो गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञ करना ही श्रेयस्कर है ॥३७॥ इसलिये आप मेध्य बलि देकर विविध पदार्थों के द्वारा विधि पूर्वक गोवर्धन पर्वत का पूजन करिये ॥३८॥ आज ही आप व्रज भर का सब दूध इकट्ठा करके उससे ब्राह्मणों और भिखारियों को भोजन कराइये, इस विषय में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है ॥३९॥ गोवर्धन का पूजन, हवन और ब्राह्मण-भोजन की समाप्ति पर शरत्कालीन पुष्पों से सुशोभित मस्तक वाली गौएँ गोवर्धन की प्रदक्षिणा करें ॥४०॥ हे गोपो ! यदि आप मेरे इस मत का अनुसरण करेंगे तो मुझे, गोवर्धन पर्वत को और गौओं को इससे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी ॥४१॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजौकसः ।
प्रीत्युत्फुल्लमुखा गोपास्साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥४२
शोभनं ते मतं वत्स यदेतद्भवतोदितम् ।
तत्करिष्यामहे सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥४३

तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकसः ।
दधिपायसमांसाद्यै र्ददुश्शैलबलिं ततः ॥४४
द्विजांश्च भोजयामासुश्शतशोऽथ सहस्रशः ॥४५
गावश्शैलं ततश्चक्रुर्चितास्ताः प्रदक्षिणम् ।
वृषभाश्चातिनर्दन्तस्सतोया जलदा इव ॥४६
गिरिमूर्द्ध नि कृष्णोऽहमिति मूर्तिमान् ।
बुभुजेऽन्नं बहुतरं गोपवर्याहृतं द्विज ॥४७
स्वेनैव कृष्णो रूपेण गोपैस्सह गिरेश्शिरः ।
अधिरुह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम् ॥४८
अन्तर्द्धानं गते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ।
कृत्वा गिरिमखं गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः ॥४९

श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण ने ऐसे वचन सुनकर नन्दादि गोपों ने प्रसन्नता से प्रफुल्लित हुए मुख से उन्हें साधु वाद दिया ॥४२॥ वे कहने लगे–हे वत्स ! तुम्हारा विचार अत्युत्तम है, हम सब उसी के अनुसार करेंगे । अब हम गिरियज्ञ का प्रवर्त्तन करेंगे ॥४३॥ फिर उन सब व्रजवासियों ने गिरियज्ञ प्रारंभ किया और पर्वतराज गोवर्धन को दही, खीर आदि पदार्थों से बलि दी ॥४४॥ सैकड़ों हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् पुष्पादि से सजी हुई गौओं और जलयुक्त मेघों के समान गर्जनशील बैलों ने गिरि गोवर्धन की परिक्रमा की ॥४५-४६॥ हे द्विज ! उस समय गिरिराज के शिखर पर अन्य रूप से मूर्तिमान् हुए श्रीकृष्ण ने गोपों द्वारा अर्पित विविध भोजन सामग्री को ग्रहण किया ॥४७॥ गोपों के साथ गिरिराज के शिखर पर चढ़ कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने ही द्वितीय स्वरूप की पूजा की ॥४८॥ इस प्रकार गिरियज्ञ की समाप्ति पर उनसे अपना इच्छित वर प्राप्त करके सभी गोपगण उनके अन्तर्धान होने के पश्चात् अपने अपने गोष्ठों में चले गये ॥४९॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मखे प्रतिहते शक्रो मैत्रेयातिरुषान्वित ।
सवर्तक नाम गण तोयदानामथाब्रवीत् ॥१
भो भो मेघा निशम्यैतद्वचन गदतो मम ।
आज्ञानन्तरमेवाशु क्रियतामविचारितम् ॥
नन्दगोपस्सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैस्सहायवान् ।
कृष्णाश्रयबलाध्मातो मखभङ्गमचीकरत् ॥३
आजीवो या परस्तेषा गावस्तस्य च कारणम् ।
ता गावो वृष्टिवातेन पीड्यन्ता वचनान्मम ॥४
अहमप्यद्रिशृङ्गाभ तुङ्गमारुह्य वारणम् ।
साहाय्य व करिष्यामि वाय्वम्बूत्सर्गयोजितम् ॥५
इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन मुमुचुस्ते बलाहका ।
सातवर्षं महाभीममभावाय गवा द्विज ॥६
तत क्षणेन पृथिवी ककुभोऽम्बरमेव च ।
एक धारामहासारपूरणेनाभवन्मुने ॥७
विद्युल्लताकशाघातत्रस्तैरिव घनैर्घनम् ।
नादापूरितदिक्चक्रं धारासारमपात्यत । ८

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! अपने यज्ञ के इस प्रकार रुकने से इन्द्र को अत्यधिक क्रोध हुआ और सवर्तक नामक अपने मेघो से कहने लगा ॥१॥ हे मेघगण ! मेरा वचन सुन कर तुम मेरी आज्ञा पर बिना किसी प्रकार का सोच विचार करके तुरत उसका पालन करो ॥२॥ दुर्बुद्धि नन्द ने कृष्ण के अवलम्ब से अन्य सब गोपो के सहित मेरे यज्ञ को नष्ट कर दिया है ॥३॥ इस-लिय उनकी परम जीविका और गोपत्व के कारण रूप गौओ को वृष्टि और पवन के द्वारा उत्पीडित करो ॥४॥ मैं भी अपने पर्वताकार ऐरावत पर चढकर जल और पवन के प्रयोग के समय तुम्हारा सहायक होऊँगा ॥५॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज ! इन्द्र की आज्ञा प्राप्त करके उन मेघा ने गौओ का क्षय करने

के लिये वर्षा और वायु का प्रयोग किया ॥६॥ हे मुने ! मेघों द्वारा प्रयुक्त महान् जल धाराग्रों से यह पृथिवी, दिशाएँ और ग्राकाश क्षण भर में ही जल से परिपूर्ण दिखाई देने लगे ॥७॥ उस समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे विद्युत् रूपी लता का आघात होने के डर से भीत हुए मेघ अपने घोर गर्जन से सब दिशाओं को गुँजाते हुए घनघोर वृष्टि कर रहे हों ॥८॥

अन्धकारीकृते लोके वर्षद्भिरनिशं घनैं ।
ग्रधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च जगदाप्यमिवाभवत् ॥६
गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना ।
धूता ः प्राणाञ्जहुस्सन्नत्रिकसक्थिशिरोधरा ॥१०
क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्थुरन्या महामुने ।
गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥११
वत्साश्च दीनवदना वातकम्पितकन्धरा ।
त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूचुरिवातुरा ॥१२
ततस्तद्गाकुलं सर्वं गोगोपीगोपसंकुलम् ।
अतीवार्तं हरिर्दृष्ट्वा मंत्रयाचिन्तयत्तदा ॥१३
एतत्कृत महेन्द्रेण मखभङ्गविरोधिना ।
तदेतदखिलं गोष्ठं त्रातव्यमधुना मया ॥१४
इममद्रिमहं धैर्यादुत्पाट्योरुशिलाघनम् ।
धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥१५

इस प्रकार रात दिन निरंतर जल वृष्टि और विश्व के अंधकारमय हो जाने पर ऊपर, नीचे, इधर, उधर सर्वत्र ही यह सब लोक जल रूप ही होगया ॥९॥ घोर वर्षा और प्रचंड वायु के वेगपूर्वक चलने से गौओं के सर्वांग—कटि, जंघा, ग्रीवा आदि निश्चेष्ट होगये और वे कम्पायमान होती हुईं प्राण त्याग करती हुई सी प्रतीत होने लगीं ॥१०॥ हे महामुने ! किसी गौ ने तो अपने बछड़े को नीचे करके दब लिया और कोई-कोई जल के वेग के कारण अपने बछड़े से ही बिछुड़ गईं ॥११॥ दीन शरीर वाले बछड़े वायु के वेग से कम्पायमान होते हुए व्याकुलता पूर्वक 'त्राहि त्राहि' पुकारने लगे ॥१२॥ हे मैत्रेयजी !

उस समय गौओं, गोपियों और गोपों के सहित गोकुल को अत्यंत व्यग्रावस्था में देख कर भगवान् श्री हरि विचार करने लगे ॥१३॥ यज्ञ-भग होने के विरोध में इन्द्र ही यह सब कर्म कर रहा है, इसलिये मुझे भी इस व्रज की रक्षा का उपाय करना चाहिये ॥१४॥ अब मैं विशाल शिलाओं वाले इस महान् पर्वत को उखाड़ कर इससे एक बृहद् छत्र के समान व्रज को ढक लूँगा ॥१५॥

इति कृत्वा मतिं कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् ।
उत्पाट्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१६
गोपांश्चाह हसञ्छौरिस्समुत्पाटितभूधरः ।
विशध्वमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ॥१७
सुनिवातेषु देशेषु यथा जोषमिहास्यताम् ।
प्रविश्यतां न भेतव्यं गिरिपाताच्च निर्भयैः ॥१८
इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनैस्सह ।
शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चासारपीडिताः ॥१९
कृष्णोऽपि तं दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् ।
व्रजैकवासिभिर्हर्षविस्मिताक्षैर्निरीक्षितः ॥२०
गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः ।
संस्तूयमानचरितः कृष्णश्शैलमधारयत् ॥२१
सप्तरात्रं महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले ।
इन्द्रेण चोदिता विप्र गोपानां नाशकारिणा ॥२२
ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले ।
मिथ्याप्रतिज्ञो बलभिद्वारयामास तान्घनान् ॥२३
व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथात्मवचस्यथ ।
निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टं स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२४
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहाचलम् ।
स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैस्तु व्रजौकसैः ॥२५

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर लीला पूर्वक ही अपने एक हाथ पर रख लिया

।।१६।। पर्वत को उखाड़ लेने के पश्चात् उन्होंने सब गोपों से हँसते हुए कहा—आप सब लोग इस पर्वत के नीचे आ जाइये मैंने वर्षा से बचने के लिये ही यह उपाय किया है ।।१७।। इस निर्वात स्थान में निर्भय होकर घुस आओ और सुख पूर्वक बैठो। पर्वत के गिरने की आशंका न करो ।।१८।। श्रीकृष्ण की यह बात सुन कर जलधार में त्रस्त हुए गोप-गोपिकाएँ अपने बर्तनों को छकड़ों में लाद कर और गौओं को भी साथ लेकर पर्वत के नीचे आ गये ।।१९।। सभी व्रज-वासी श्रीकृष्ण को हर्ष और आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से एकटक देख रहे थे और वह भी निश्चल भाव से खड़े रह कर पर्वत को धारण किये रहे ।।२०।। पर्वत-धारण करते हुए श्रीकृष्ण प्रीति पूर्वक विस्फारित नेत्रों वाले हर्षित चित्त गोप-गोपियों से अपने चरित्र का स्तवन सुनते रहे ।।२१।। हे विप्र ! गोपों के नाश की कामना वाले इन्द्र की प्रेरणा से नन्द के गोकुल में सात रात तक घनघोर वर्षा होती रही ।।२२।। परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा गिरिराज के धारण किये जाने से जब उसने अपनी प्रतिज्ञा को भंग होते देखा तब उसने अपने मेघों को निवारण किया ।।२३।। जब आकाश बादलों से हीन एवं स्वच्छ हो गया, तब इन्द्र की प्रतिज्ञा के टूटने पर सभी गोकुल निवासी पर्वत से निकल कर सहर्ष अपने-अपने स्थान पर आये ।।२४।। फिर उन व्रजवासियों के आश्चर्य सहित देखते हुए श्रीकृष्ण ने उस महाचल गोवर्धन को उसके अपने स्थान पर स्थापित कर दिया ।।२५।।

बारहवाँ अध्याय

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले ।
रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ।।१
सोऽधिरुह्य महानागमैरावतममित्रजित् ।
गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ।।२
चारयन्तं महावीर्यं गास्तु गोपवपुर्धरम् ।
कृत्स्नस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः ।।३

उस समय गौओं, गोपियों और गोपों के सहित गोकुल को अत्यंत व्यग्रावस्था में देख कर भगवान् श्री हरि विचार करने लगे ॥१३॥ यज्ञ-भंग होने के विरोध में इन्द्र ही यह सब कर्म कर रहा है, इसलिये मुझे भी इस व्रज की रक्षा का उपाय करना चाहिये ॥१४॥ अब मैं विशाल शिलाओं वाले इस महान् पर्वत को उखाड़ कर इससे एक बृहद् छत्र के समान व्रज को ढक लूँगा ॥१५॥

इति कृत्वा मतिं कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् ।
उत्पाट्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१६
गोपांश्चाह हसञ्छौरिस्समुत्पाटितभूधरः ।
विशध्वमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ॥१७
सुनिवातेषु देशेषु यथा जोषमिहास्यताम् ।
प्रविश्यतां न भेतव्यं गिरिपातात्र निर्भयैः ॥१८
इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनैस्सह ।
शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चासारपीडिताः ॥१९
कृष्णोऽपि तं दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् ।
व्रजैकवासिभिर्हर्षविस्मिताक्षैर्निरीक्षितः ॥२०
गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः ।
संस्तूयमानचरितः कृष्णश्शैलमधारयत् ॥२१
सप्तरात्रं महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले ।
इन्द्रेण चोदिता विप्र गोपानां नाशकारिणा ॥२२
ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले ।
मिथ्याप्रतिज्ञो वलभिद्वारयामास तान्घनान् ॥२३
व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथात्मवचस्यथ ।
निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टं स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२४
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहाचलम् ।
स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैस्तु प्रजौकसैः ॥२५

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर लीला पूर्वक ही अपने एक हाथ पर रख लिया

॥१६॥ पर्वत को उखाड लेने के पश्चात् उन्होंने सब गोपो से हँसते हुए कहा—आप सब लोग इस पर्वत के नीचे आ जाइये मैंने वर्षा से बचने के लिये ही यह उपाय किया है ॥१७॥ इस निर्वात स्थान मे निर्भय होकर घुस आओ और सुख पूर्वक बैठो। पर्वत के गिरने की आशंका न करो ॥१८॥ श्रीकृष्ण की यह बात सुन कर जलधार मे त्रस्त हुए गोप-गोपिकाएँ अपने वर्तनो को छकडो मे लाद कर और गौओ को भी साथ लेकर पर्वत के नीचे आ गये ॥१९॥ सभी व्रजवासी श्रीकृष्ण को हर्ष और आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से एकटक देख रहे थे और वह भी निश्चल भाव से खडे रह कर पर्वत को धारण किये रहे ॥२०॥ पर्वत-धारण करते हुए श्रीकृष्ण प्रीति पूर्वक विस्फारित नेत्रो वाले हर्षित चित्त गोप-गोपियो से अपने चरित्र का स्तवन सुनते रहे ॥२१॥ हे विप्र! गोपो के नाश की कामना वाले इन्द्र की प्रेरणा से नन्द के गोकुल मे सात रात तक घनघोर वर्षा होती रही ॥२२॥ परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा गिरिराज के धारण किये जाने से जब उसने अपनी प्रतिज्ञा को भग होते देखा तब उसने अपने मेघो को निवारण किया ॥२३॥ जब आकाश बादलो से हीन एव स्वच्छ हो गया, तब इन्द्र की प्रतिज्ञा के टूटने पर सभी गोकुल निवासी पर्वत से निकल कर सहर्ष अपने-अपने स्थान पर आये ॥२४॥ फिर उन व्रजवासियो के आश्चर्य सहित देखते हुए श्रीकृष्ण ने उस महाचल गोवर्धन को उसके अपने स्थान पर स्थापित कर दिया ॥२५॥

बारहवाँ अध्याय

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले।
रोचयामास कृष्णस्य दर्शन पाकशासन ॥१
सोऽधिरुह्य महानागमैरावतममित्रजित्।
गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ॥२
चारयन्तं महावीर्यं गास्तु गोपवपुर्धरम्।
कृत्स्नस्य जगतो गोप वृतं गोपकुमारकैः ॥३

गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्द्धानगतं द्विज ।
कृतच्छायं हरेर्मूर्ध्नि पक्षाभ्या पक्षिपुङ्गवम् ॥४
अवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम् ।
शक्रस्सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्तारितेक्षणः ॥५

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार गोवर्धन पर्वत धारण पूर्वक गोकुल की रक्षा करने के कारण श्रीकृष्ण के दर्शन की इन्द्र ने इच्छा की ॥१॥ इसलिये शत्रुओं के विजेता इन्द्र अपने ऐरावत पर आरूढ होकर गिरि गोवर्धन पर आये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण को ग्वाल-बालों के साथ गोपवेश में गोचारण करते हुए देखा ॥२-३॥ उस समय उन्हें पक्षिराज गरुड अपने पखों से उनके ऊपर अदृश्य रूप से छाया करते हुए दिखाई दिये ॥४॥ फिर वे ऐरावत से नीचे उतर कर श्रीकृष्ण की ओर बढ़े और एकान्त में उनको प्रीति पूर्वक देखते हुए कहने लगे ॥५॥

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः ।
त्वत्समीप महाबाहो नैतच्चिन्त्य त्वयान्यथा ॥६
भारावतारणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतले ।
अवतीर्णोऽखिलाधार त्वमेव परमेश्वर ॥७
मखभङ्गविरोधेन मया गोकुलनाशकाः ।
समादिष्टा महोमेघास्तैश्चेद कदनं कृतम् ॥८
त्रातास्ताश्चत्वया गावस्समुत्पाट्य महोधरम् ।
तेनाहं तोषितो वीर कर्मणात्यद्भुतेन ते ॥९
साधितं कृष्ण देवानामहं मन्ये प्रयोजनम् ।
त्वयायमद्रिप्रवरः करेणैकेन यद्धृतः ॥१०
गोभिश्च चोदितः कृष्ण त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्सत्कारकारणात् ॥११
सत्वां कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवां वाक्यप्रचोदितः ।
उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्वं भविष्यसि ॥१२

इन्द्र ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! हे कृष्ण ! आपके पास मेरे आने का

कारण सुनिये । हे महाबाहो ! मेरे कथन को अन्यथा न मानें ॥६॥ हे अखिलेश्वर ! आप पृथिवी का भार उतारने के लिये इस भूतल पर अवतीर्ण हुए है ॥७॥ मेरे यज्ञ के नष्ट होने के विरोध में ही मैंने महामघों को गोकुल का नष्ट करने के लिये आज्ञा दी थी और इसीलिये उन्होंने यह जल रूप संहार उपस्थित किया था ॥८॥ परन्तु, आपने पर्वत को उखाड़ कर गौओं की रक्षा की, आपके इस अद्भुत पराक्रम को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं ॥९॥ हे कृष्ण ! आपने अपने एक ही हाथ पर पर्वत को साध लिया था । आपके इस कर्म को देखकर मैं देवताओं के उद्देश्य को सिद्ध हुआ समझता हूं ॥१०॥ आपके द्वारा रक्षित हुई गौओं की प्रेरणा से ही आपको विशेष रूप से सम्मानित करने के लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूं ॥११॥ हे कृष्ण ! गौओं के वचनों से प्रेरित हुआ मैं अब आपको उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त करूंगा । अब से आप गौओं के स्वामी का 'गोविन्द' नाम भी विख्यात होगा ॥१२॥

अथोपवाह्यादादाय घण्टामैरावताद् गजात् ।
अभिषेकं तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥१३
क्रियमाणेऽभिषेके तु गावः कृष्णस्य तत्क्षणात् ।
प्रस्रवोद्भूतदुग्धार्द्रां सद्यश्चक्रुर्वसुन्धराम् ॥१४
अभिषिच्य गवां वाक्यादुपेन्द्रं वै जनार्दनम् ।
प्रीत्या सप्रश्रयं वाक्यं पुनराह शचीपतिः ॥१५
गवामेतत्कृतं वाक्यं तथान्यदपि मे शृणु ।
यद्ब्रवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया ॥१६
ममांशः पुरुषव्याघ्र पृथिव्यां पृथिवीधर ।
अवतीर्णोऽर्जुनो नाम संरक्ष्यो भवता सदा ॥१७
भारावतरणे साह्यं स ते वीर करिष्यति ।
संरक्षणीयो भवता यथात्मा मधुसूदन ॥१८

श्री पराशरजी ने कहा—फिर अपने वाहन ऐरावत का घण्टा लेकर इन्द्र ने उसे पवित्र जल से परिपूर्ण किया और उससे श्रीकृष्ण का अभिषेक किया ॥१३॥ जिस समय श्रीकृष्ण का अभिषेक हो रहा था, उस समय गौओं

ने भी अपने स्तनों से स्रवित होने वाले दूध से पृथिवी का सिंचन किया ॥१४॥ इस प्रकार गौओं के वचनानुसार इन्द्र ने श्रीकृष्ण को उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त कर उनसे प्रीतिपूर्वक पुनः निवेदन किया ॥१५॥ हे महाभाग ! मैंने तो यह गौओं के वचनों का पालन किया है। अब भू-भार-हरण के अभिप्राय से मैं जो कुछ कहता हूं, उसे भी सुनिये ॥१६॥ हे भूधर ! हे पुरुष व्याघ्र ! अर्जुन नाम से मेरा एक अंश पृथिवी पर अवतरित हुआ है, आप उसके सदा रक्षक रहें ॥१७॥ हे मधुसूदन ! भूमि का भार उतारने में वह आपका सहायक होगा, इसलिये जैसे अपने शरीर की रक्षा की जाती है, वैसे ही आप उसकी रक्षा करें ॥१८॥

जानामि भारते वंशे जातं पार्थं तवांशतः ।
तमहं पालयिष्यामि यावत्स्थास्यामि भूतले ॥१९
यावन्महीतले शक्र स्यास्याम्यहमरिन्दम ।
न तावदर्जुनं कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥२०
कंसो नाम महाबाहुर्दैत्योऽरिष्टस्तथासुरः ।
केशी कुवलयापीडो नरकाद्यास्तथा परे ॥२१
हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः ।
तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम् ॥२२
स त्वं गच्छ न सन्तापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि ।
नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥२३
अर्जुनार्थे त्वहं सर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान् ।
निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्यै दास्याम्यविक्षतान् ॥२४
इत्युक्तः सम्परिष्वज्य देवराजो जनार्दनम् ।
आरुह्यैरावतं नागं पुनरेव दिवं ययौ ॥२५
कृष्णो हि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्व्रजम् ।
आजगामाथ गोपीनां दृष्टिपूतेन वर्त्मना ॥२६

श्री भगवान् ने कहा—मुझे यह ज्ञात है कि पृथा पुत्र अर्जुन तुम्हारे अंश से भरतवंश में अवतीर्ण हुआ है। जब तक मैं इस भूतल पर रहूंगा, तब

तक उसकी रक्षा करूँगा ॥१६॥ हे देवेन्द्र ! मेरे पृथिवी पर रहते हुए उस अर्जुन को कोई भी मनुष्य संग्राम में न हरा सकेगा ॥२०॥ महाबाहु कंस, अरिष्ट, केशी, कुवलयापीड और नरक आदि असुरों के मारे जाने के पश्चात् इस पृथिवी पर महाभारत नामक युद्ध होगा। हे सहस्राक्ष ! उसी युद्ध के द्वारा भू-भार उतरा हुआ समझो ॥२१-२२॥ तुम अपने पुत्र अर्जुन के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता न करते हुए प्रसन्न चित्त से गमन करो, मैं जब तक यहाँ हूँ, तब तक अर्जुन का कोई भी शत्रु सफल नहीं होगा ॥२३॥ अर्जुन के निमित्त ही मैं महाभारत युद्ध की समाप्ति पर सब पाण्डवों को सकुशल रूप में कुन्ती को सौंप दूँगा ॥२४॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण के द्वारा इस प्रकार कहा जाने पर इन्द्र ने उनका आलिंगन किया और ऐरावत पर चढ़कर अपने लोक को गये ॥२५॥ फिर श्रीकृष्ण भी ग्वाल बालकों और गौओं को साथ लिये व्रजाङ्गनाओं के देखने से पवित्र हुए मार्ग द्वारा व्रज में लौट आये ॥२६॥

तेरहवाँ अध्याय

गते शक्रे तु गोपालाः कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१
वयमस्मान्महाभाग भगवन्महतो भयात् ।
गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२
बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम् ।
दिव्यं च भवतः कर्म किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३
कालियो दमितस्तोये धेनुको विनिपातितः ।
धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनांसि नः ॥४
सत्यं सत्यं हरेः पादौ शपामोऽमितविक्रम ।
यथावद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५
प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य त्वयि केशव ।
कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥६

बालत्वं चातिवीर्यत्व जन्म चास्मास्वशोभनम् ।
चिन्त्यमानममेयात्मञ्छङ्का कृष्ण प्रयच्छति ॥७
देवो वा दानवो वा त्व यक्षो गन्धर्व एव वा ।
किमस्माक विचारेण बान्धवोऽसि नमोऽस्तु ते ॥८

श्रीपराशरजी ने कहा—जब इन्द्र चले गये, तब निर्दोष कर्म वाले श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण किये जाने के कारण गोपों ने उनसे प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥ हे भगवन् ! हे महाभाग ! आपने गिरिराज धारण का जो कर्म किया, उससे हमारी और गौओं की महान् भय से रक्षा हुई है ॥२॥ कहाँ यह उपमा रहित बालक्रीडा, कहाँ यह निन्दित गोपत्व और कहाँ यह दिव्य कर्म ? हे तात ! यह क्या लीला है, सो सब हमारे प्रति कहिये ॥३॥ आपने कालियनाग का मर्दन किया, धेनुकासुर का वध किया और फिर इस गिरि गोवर्धन को धारण कर लिया—आपके यह अद्भुत कर्म हमारे मन में शङ्का उत्पन्न कर रहे हैं ॥४॥ हे अमीमित्त विक्रम वाले ! भगवान् हरि के चरणों की शपथ पूर्वक हम आपसे कहते है कि आपके ऐसे सामर्थ्य को देखकर आपको मनुष्य नहीं माना जा सकता ॥५॥ स्त्री–बालकों के सहित सभी व्रजवासी आपको अत्यन्त प्रेम करते हैं। हे केशव ! आपके जैसा कर्म तो देवताओं के लिये भी सम्भव नहीं है ॥६॥ आपका यह बालकपन, यह अत्यन्त वीर्यत्व और हम जैसे अशोभन व्यक्तियों में जन्म,–इन सब बातों पर जब हम विचार करने लगते हैं तब हे अमेयात्मन् ! हम शङ्का में पड जाते हैं ॥७॥ आप देवता, दानव, यक्ष अथवा गन्धर्व—कोई भी हो, हमें इस पर विचार करने से क्या लाभ है ? हम तो आपको अपना बन्धु ही मानते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है ॥८॥

क्षण भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चत्प्रणयकोपवान् ।
इत्येवमुक्तस्तैर्गोपै कृष्णोऽप्याह महामतिः ॥९
मत्सम्बन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते ।
श्लाघ्यो वाहं तत किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०
यदि वोऽस्ति मयि प्रीति. श्लाघ्योऽहं भवता यदि ।
तदात्मबन्धुसदृशी बुद्धिर्वः क्रियतां मयि ॥११

नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः ।
अहं वो बान्धवो जातो नैतच्चिन्त्यमितोऽन्यथा ॥१२
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो वनम् ।
ययुर्गोपा महाभाग तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३
कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् ।
तदा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४
वनराजिं तथा कूजद्भृङ्गमालामनोहराम् ।
विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५

श्री पराशरजी ने कहा—गोपों के ऐसा कहने पर कुछ देर तक चुप रहने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने कुछ प्रणयात्मक क्रोध के साथ कहा ॥९॥ श्री भगवान् बोले—हे गोपो ! यदि मुझसे सम्बन्ध होने के कारण आपको किसी प्रकार से लज्जित न होना पड़ता हो तो मैं आप लोगों की प्रशंसा का पात्र हूं, ऐसा सोचने में ही क्या प्रयोजन है ॥१०॥ यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं और मुझे प्रशंसा के योग्य समझते हैं तो आप मुझे अपना बन्धु ही मानते रहें ॥११॥ मैं देवता नहीं हूं, गन्धर्व भी नहीं हूं, और न यक्ष अथवा दानव ही हूं। मैं तो आपका बांधव होकर ही उत्पन्न हुआ हूं, इसलिये इस विषय में अधिक विचार मत करो ॥१२॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् श्रीहरि की बात सुनकर उन्हें प्रणय-कोप में भरा देखकर वे सब गोप वन को चले गये ॥१३॥ फिर श्रीकृष्ण ने स्वच्छ आकाश, शरद् कालीन चन्द्रमा की चन्द्रिका, दिशाओं को सुगन्धित करने वाली कुमुदिनी और भौरों की मधुर गुञ्जार वाली वनखण्डों की मनोहरता को देखा तो गोपियों के साथ विहार करने की इच्छा की ॥१४-१५॥

विना रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् ।
जगौ कलपदं शौरिस्तारमन्द्रकृतक्रमम् ॥१६
रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा सन्त्यज्यावसथास्तदा ।
आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्रास्ते मधुसूदनः ॥१७
शनैःशनैर्जगौ गोपी काचित्तस्य लयानुगम् ।
दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसास्मरत् ॥१८

काचित्कृष्णेति कृष्णेति प्रोच्य लज्जामुपाययौ ।
ययौ च काचित्प्रेमान्धा तत्पार्श्वमविलम्बितम् ॥१६
काचिच्चावसथस्यान्ते स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम् ।
तन्मयत्वेन गोविन्द दध्यौ मीलितलोचना ॥२०
तच्चित्तविमलाह्लादक्षीणपुण्यचया तथा ।
तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका ॥२१
चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका ॥२२
गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम् ।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुक. ॥२३

उस समय बलरामजी नही थे। अकेले श्रीकृष्ण ही नारियो को प्रिय लगने वाला मधुर और मृदुल गीत उच्च तथा मन्द स्वर मे गाने लगे ॥१६॥ उनकी उस सुरम्य गीत–लहरी को सुनकर सभी गोपियाँ तुरन्त अपने घरों को त्याग कर भगवान् मधुसूदन के पास जा पहुची ॥१७॥ वहाँ पहुच कर उनमे से किसी ने तो उनके स्वर मे स्वर मिलाया और किसी ने मन ही मन उनका स्मरण किया ॥१८॥ कोई कृष्ण ! कृष्ण पुकारती हुई लज्जा और संकोच मे भर गई और कोई प्रेमोन्माद मे भर कर उनके पार्श्व मे खडी होगई ॥१६॥ जिस किसी गोपी ने बाहर गुरुजनो के होने के कारण घर को नही छोडा, वह वही श्री गोविन्द के ध्यान मे तन्मय होगई ॥२०॥ कोई गोपी विश्व कारण एव ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करते–करते ही मोक्ष को प्राप्त होगई, क्योंकि भगवान् के न मिलने के घोर दुःख से उसके सब पाप तथा उनके विमल आह्लाद से उसके सम्पूर्ण पुण्य क्षीण होगये थे ॥२१-२२॥ रासरूप रस के आरम्भ करने की उत्कण्ठा वाले श्रीकृष्ण ने गोपियो से आवृत होकर शरद के चन्द्रमा से सुशोभित उस रात्रि को सम्मान प्रदान किया ॥२३॥

गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्त्तयः ।
अन्यदेशं गते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम् ॥२४

कृष्णे निबद्धहृदया इदमूचु परस्परम् ॥२५
कृष्णोऽहमेष ललितं व्रजाम्यालोक्यतां गतिः ।
अन्या ब्रवीति कृष्णस्य मम गीतिर्निशम्यताम् ॥२६
दुष्टकालिय तिष्ठात्र कृष्णोऽहमिति चापरा ।
बाहुमास्फोट्य कृष्णस्य लीलया सर्वमाददे ॥२७
अन्या ब्रवीति भो गोपा निश्शङ्कैः स्थीयतामिति ।
अलं वृष्टिभयेनात्र धृतो गोवर्धनो मया ॥२८
धेनुकोऽयं मया क्षिप्तो विचरन्तु यथेच्छया ।
गावो ब्रवीति चैवान्या कृष्णलीलानुसारिणी ॥२९
एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तास्तदा ।
गोप्यो व्यग्राः समं चेरू रम्यं वृन्दावनान्तरम् ॥३०

(उस समय, श्रीकृष्ण जब कहीं चले गये, तब कृष्ण चेष्टा के वशीभूत हुई गोपियाँ दल बनाकर वृन्दावन में घूमने लगीं ॥२४॥ कृष्ण में निबद्ध हृदय वाली वे गोपियाँ परस्पर में इस प्रकार कहने लगीं ॥२५॥ एक ने कहा—मैं कृष्ण हूँ, मेरी चाल कितनी सुन्दर है, उसे देखो तो सही। इस पर दूसरी ने कहा—कृष्ण तो मैं हूँ, तुम मेरा गीत सुनो ॥२६॥ किसी अन्य गोपी ने ताल ठोक कर कहा—अरे दुष्ट कालियनाग! मैं कृष्ण हूँ जरा ठहर तो सही—इस प्रकार कह कर यह गोपी श्रीकृष्ण की सब लीलाओं को करने लगी ॥२७॥ हे गोपो! मैंने गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया है, तुम निःसकोच हो कर इसके नीचे आ बैठो, वृष्टि से भय मत करो ॥२८॥ किसी अन्य गोपी ने कृष्ण लीला का अनुसरण करते हुए कहा—मैंने धेनुकासुर का वध कर दिया, अब गौएँ यहाँ स्वच्छन्द विचरण करें ॥२९॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं में तन्मय हुई गोपियाँ उस अत्यन्त रमणीक वृन्दावन में साथ-साथ विचरण करने लगीं ॥३०॥)

विलोक्यैका भुवं प्राह गोपी गोपवराङ्गना ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी विकासिनयनोत्पला ॥३१

ध्वजवज्राङ्कुशाब्जाङ्करेखावन्त्यालि पश्यत ।
पदान्येतानि कृष्णस्य लीलाललितगामिनः ॥३२
कापि तेन समायाता कृतपुण्या मदालसा ।
पदानि तस्याश्चैतानि घनान्यल्पतनूनि च ॥३३
पुष्पापचयमत्रोच्चैश्चक्रे दामोदरो ध्रुवम् ।
येनाग्राक्रान्तमात्राणि पदान्यत्र महात्मनः ॥३४
अत्रोपविश्य वै तेन काचित्पुष्पैरलङ्कृता ।
अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितस्तया ॥३५
पुष्पबन्धनसम्मानकृतमानामपास्य ताम् ।
नन्दगोपसुतो यातो मार्गेणानेन पश्यत ॥३६
अनुयातैनमत्रान्या नितम्बभरमन्थरा ।
या गन्तव्ये द्रुतं याति निम्नपादाग्रसंस्थितिः ॥३७
हस्तन्यस्ताग्रहस्तेयं तेन याति तथा सखी ।
अनायत्तपदन्यासा लक्ष्यते पदपद्धतिः ॥३८

विकसित कमल जैसे लोचन वाली एक सुन्दर गोपी ने सर्वाङ्ग पुलकित होकर भूमि की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा ॥३१॥ हे सखी। लीलाललित-गामी श्रीकृष्ण के यह ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल आदि रेखाओ वाले चरण चिन्हो को तो देखो ॥३२॥ उनके साथ कोई मदमाती युवती भी गई है, देखो उस पुण्यवती के यह घने, पतले और छोटे पद चिह्न दिखाई पड रहे हैं ॥३३ उन्होने यहाँ कुछ ऊँचे उठ कर पुष्प इकट्ठे किये हैं, इसीलिए यहाँ उनके चरणो का अगला भाग ही दिखाई देता है ॥३४॥ यहाँ किसी सौभाग्यशालिनी को उन्होने अवश्य ही पुष्पो से सजाया जान पडता है कि उसने अपने पूर्वजन्म मे भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया होगा ॥३५॥ अरे, यह देखो। पुष्पो से शृङ्गार किये जाने के सम्मान मद मे भर कर उसने मान किया है, इसीलिए नन्दलाल उसे यही छोड़कर इस मार्ग से गये दिखाई देते हैं ॥३६॥ हे सखियो। यहाँ नितम्ब भार के कारण मन्द गति वाली कोई गोपी तीव्र गति से श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गई है, इसी कारण उसके पद चिह्नो के अगले भाग कुछ नीचे

हो गए है ।।३७।। इस स्थान पर सखी अपना हाथ उनके हाथ मे देती हुई गई है, इसीलिए उसके पद चिह्न कुछ परतंत्र से दिखाई दे रहे है ।।३८।।

हस्तसंस्पर्शमात्रेण धूर्तेनैषा विमानिता ।
नैराश्यान्मन्दगामिन्या निवृत्त लक्ष्यते पदम् ।।३९
नूनमुक्तात्वरामीति पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ।
तेन कृष्णेन येनैषा त्वरिता पदपद्धतिः ।।४०
प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते ।
निवर्तध्वं शशाङ्कस्य नैतद्दीधितिगोचरे ।।४१
निवृत्तास्तास्तदा गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने ।
यमुनातीरमासाद्य जगुस्तच्चरित तथा ।।४२
ततो ददृशुरायान्त विकासिमुखप कजम् ।
गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तार कृष्णमक्लिष्टचेष्टितम् ।।४३
काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहर्षिता ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राह नान्यदुदीरयत् ।।४४
काचिद्भ्रूभङ्गुर कृत्वा ललाटफलक हरिम् ।
विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्या पपौ तन्मुखपंकजम् ।।४५
काचिदालोक्य गोविन्द निमीलित विलोचना ।
तस्यैव रूप ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ।।४६

इन पद चिह्नो से ऐसा लगता है कि वह मन्द गति वाली गोपी निराश हो कर लौट पडी है, क्यो कि उस धूर्त ने केवल हाथ से स्पर्श करके ही उसका मान भङ्ग कर दिया है ।।३९।। इस स्थान पर कृष्ण ने उसके पास से शीघ्र ही जाने और पुनः लौट आने को कहा होगा, क्यो कि यहा उसके पद चिह्न द्रुतगति से जाने के दिखाई दे रहे है ।।४०।। इस स्थान पर उनके चरण चिह्नो के लोप हो जाने से प्रतीत होता है कि यहा से वह गहन वन मे प्रविष्ट होगये हैं। अब हम भी यहा से लौट चलें, क्यो कि यहा चन्द्रमा की किरणें भी दिखाई नही देती ।।४१।। इसके पश्चात् कृष्ण का दर्शन मिलने की आशा को त्याग वहा से लौट पडी और यमुनाजी के तीर पर आकर उनके चरित्रो को

गाने लगी ॥४२॥ फिर उन गोपियों ने प्रसन्न मुख कमल वाले सर्वलोक रक्षक धर्मात्मा श्रीकृष्ण को चारों ओर आते हुए देखा ॥४३॥ उस समय उनको आता देख कर कोई गोपी तो अत्यन्त उल्लास के कारण केवल कृष्ण ! कृष्ण ! ही कह सकी, उसके मुख से कोई अन्य शब्द नहीं निकल सके ॥४४॥ कोई गोपी अपने भ्रू-भंगिमा युक्त ललाट को सकुचित करके भगवान् श्रीहरि को देखती हुई अपने नेत्र रूपी भौंरों के द्वारा उनके मुख मकरन्द को पीने लगी ॥४५॥ कोई एक गोपी उन्हें देख कर अपने नेत्रों को बन्द करती हुई उनके चिन्तन में योगारूढ़-सी प्रतीत होने लगी ॥४६॥

ततः काश्चित्प्रियालापैः काश्चिद्भ्रूभङ्गवीक्षितैः ।
निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥४७
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिस्सह सादरम् ।
ररास रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥४८
रासमण्डलबन्धोऽपि कृष्णपार्श्वमनुज्झता ।
गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥४९
हस्तेन गृह्य चैकैकां गोपीनां रासमण्डलम् ।
चकार तत्करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः ॥५०
ततः प्रववृते रासश्चलद्वलयनिस्वनः ।
अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥५१
कृष्णश्शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम् ।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः ॥५२
परिवृत्तिश्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम् ।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः ॥५३
काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्ब तम् ।
गोपी गीतस्तुतिव्याजान्निपुणा मधुसूदनम् ॥५४

तब श्रीकृष्ण ने किसी से प्रिय अलाप, किसी पर भ्रूभंगी से दृष्टिपात और किसी के कर ग्रहण पूर्वक उन्हें मनाने का यत्न किया ॥४७॥ इसके पश्चात् उस उदारचेता ने उन प्रसन्न चित्त वाली गोपियों के साथ आदर पूर्वक

रास-विहार किया ॥४८॥ उस समय कोई भी गोपी कृष्णके स्पर्श से पृथक् नहीं होना चाहती थी, इस लिए एक ही स्थान पर उनके स्थिर रहने से रास-मण्डल न बन पाया ॥४९॥ तब भगवान् श्री हरि ने एक-एक गोपी का हाथ अपने हाथ मे लेकर रास मण्डल बनाया, उस समय उनके कर स्पर्श से गोपियो के नेत्र उन्मीलित हो गये ॥५०॥ इसके पश्चात् रासलीला का आरम्भ हुआ, जिसमे कङ्कणों के हिलने से झङ्कार होने लगी और शरद् वर्णन के गीत गाये जाने लगे ॥५१॥ उस समय श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा, कौमुदी और कुमुदवन विषयक गीत गाये और गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण के नाम का गान करने लगीं ॥५२॥ तभी एक गोपी नाचते-नाचते थक गई और उसने चञ्चल कङ्कण की झनकार करती हुई अपनी बाहुलता भगवान् के कण्ठ मे डाल दी ॥५३॥ किसी एक चतुर गोपी श्रीकृष्ण के गीत की प्रशंसा करने के मिस से अपने बाहुओ को पसार कर उनसे लिपट गई ॥५४॥

गोपीकपोलसंश्लेषमभिगम्य हरेर्भुजौ ।
पुलकोद्गमसस्याय स्वेदाम्बुघनतां गतौ ॥५५
रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः ।
साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः ॥५६
गतेऽनुगमनं चक्रुर्वलने सम्मुखं ययुः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥५७
स तथा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः ।
यथाब्दकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाभवत् ॥५८
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥५९
सोऽपि कैशोरकवयो मानयन्मधुसूदनः ।
रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥६०
तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः ।
आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्यापी वायुरिव स्थितः ॥६१

यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्नि पृथिवी जलम् ।
वायुश्चात्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ।।६२

गोपियो के कपोलो को स्पर्श करती हुई, श्रीकृष्ण की भुजाएँ उनमे पुलकावलि रूपी धान्य को उत्पन्न करने के निमित्त स्वेद रूपी मेघ हो गईं ।।५५।। भगवान् जितने ऊँचे स्वर मे रास-गीत का गान करते, उससे द्विगुण उच्च स्वर में गोपियाँ, 'श्रीकृष्ण धन्य है' 'श्रीकृष्ण धन्य हैं'—ऐसी रट लगा रही थी ।।५६।। जब वह आगे जाते तब गोपियाँ उनके पीछे २ चलती और जब वे पीछे लौटते तब वे सामने चलती थी। इस प्रकार वे गोपाङ्गनाएँ अनुलोम-प्रतिलोम गति से श्रीकृष्ण का अनुगमन कर रही थीं ।।५७।। वे भी उनके साथ इस प्रकार रास क्रीडा कर रहे थे, जिसके आनन्द के कारण, उनके बिना गोपियो को एक क्षण करोड वर्ष के समान लगता ।।५८।। वे रास-रस की रसिका गोपियाँ अपने पति, पिता, माता, भ्राता आदि के द्वारा रोकी जाने पर भी न रुकती और रात्रि मे कृष्ण के साथ रास-विहार करती थी ।।५९।। शत्रुओ के मारने वाले मधुसूदन भी अपनी कैशोरावस्था के मान मे रात्रिकाल मे उन गोपियो के साथ विहार करते थे ।।६०।। वे ही सर्वव्याप्त श्रीकृष्ण उन गोपियो, उनके पतियों और अन्य सब प्राणियो को आत्म रूप से प्रतिष्ठित थे ।।६१।। जैसे आकाश, अग्नि, पृथिवी, जल, वायु और आत्मा सभी प्राणियो मे व्याप्त है, वैसे ही वे भगवान् भी सब मे अवस्थित हैं ।।६२।

चौदहवां अध्याय

प्रदोषार्धे कदाचित्तु रसासक्ते जनार्दने ।
त्रासयन्समदो गोष्ठमरिष्टस्समुपागमत् ।।१
सतोयतोयदच्छायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचन ।
खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ।।२

लेलिहानस्सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः ।
सरम्भाविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३
उदग्रककुदाभोगप्रमाणो दुरतिक्रमः ।
विण्मूत्रलिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारक ॥४
प्रलम्बकण्ठोऽतिमुखस्तरुखाताङ्कितानन: ।
पातयन्स गवा गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५
सूदयस्तापसानुग्रो वनानटति यस्सदा ॥६

श्री पराशरजी ने कहा–जब एक दिन सायकाल के समय श्रीकृष्ण रास-क्रीड़ा में तन्मय हो रहे थे, तब अरिष्ट नामक एक असुर सब को भय से त्रस्त करता हुआ गोकुल मे आ पहुचा ॥१॥ उसकी सजल मेघ के समान कान्ति, अत्यन्त तीक्ष्ण सींग और सूर्य के समान तेजस्वी नेत्र थे तथा वह अपने खुरो के प्रहार से पृथिवी को विदीर्ण करता हुआ सा प्रतीत होता था ॥२॥ वह दांत पीसकर बारम्बार अपनी जिह्वा से ओठो को चाटता था, उसने क्रोध के कारण अपनी पूँछ को उठा रखा था, तथा उसके कन्धो के बन्धन दृढ थे ॥३॥ उसका ककुद और देह अत्यन्त ऊँचा और अपार था, पीछे का अंग मूत्र और गोबर मे सना हुआ था और सभी गौएँ उससे भयभीत हो रही थी ॥४॥ उसका कण्ठ अत्यन्त लम्बा तथा वृक्ष के खोखले के समान गभीर था। वह दैत्य बैल का रूप धारण करके गौओ के गर्भों को पतित करता और तपस्वियो को सताता हुआ सदा ही वन मे घूमता रहता था ॥५-६॥

ततस्तमतिघोराक्षमवेक्ष्यातिभयातुरा ।
गोपागोपस्त्रियश्चैव कृष्ण कृष्णेति चुक्रुशु ॥७
सिंहनाद ततश्चक्रे तलशब्द च केशव ।
तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुपाययौ ॥८
अग्रन्यस्तविषाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षण ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा कृष्ण वृषभदानव. ॥९
आयान्त दैत्यवृषभ दृष्ट्वा कृष्णो महाबलः ।
न चचाल तदा स्थानादवज्ञास्मितलीलया ॥१०

आसन्नं चैव जग्राह ग्रहवन्मधुसूदनः ।
जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम् ॥११

तस्य दर्पबलं भङ्क्त्वा गृहीतस्य विषाणयोः ।
अपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥१२

उत्पाटय शृङ्गमेकं तु तेनैवाताडयत्ततः ।
ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्वमन् ॥१३

तुष्टवुर्निहते तस्मिन्दैत्ये गोपा जनार्दनम् ।
जम्भे हते सहस्राक्षं पुरा देवगणा यथा ॥१४

उस अत्यन्त घोर नेत्रों वाले दैत्य को देख कर गोप और गोपियाँ 'कृष्ण ! कृष्ण' की पुकार मचाने लगीं ॥७॥ उनकी पुकार सुन कर भगवान् ने सिंहनाद करते हुए करतल ध्वनि की, जिसे सुनते ही वह दैत्य उनके पास पहुंचा ॥८॥ और श्रीकृष्ण की कुक्षि को ताकता हुआ वह दुरात्मा वृषभासुर सींगों को उनकी ओर करके दौड़ पड़ा ॥९॥ उस वृषभासुर को अपनी ओर तेजी से आता देख कर भी श्रीकृष्ण अविचल भाव से उसका तिरस्कार करते हुए मुसकराते रहे ॥१०॥ जब वह उनके समीप आया, तभी उन्होंने उसे इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे किसी क्षुद्र जीव को ग्राह पकड़ता है । फिर सींगों को पकड़ कर अपने घुटनों से उस दैत्य की कुक्षी में प्रहार किया ॥११॥ इस प्रकार सींग पकड़ कर उस दैत्य को अपने वश में करने वाले भगवान् ने उसके कण्ठ को इस प्रकार मरोड़ दिया, जैसे किसी गीले वस्त्र को निचोड़ते हैं ॥१२॥ फिर उसके एक सींग को उखाड़ कर उसी के द्वारा उस दैत्य पर प्रहार किया, जिस से वह मुख से रुधिर डालता हुआ समाप्त हो गया ॥१३॥ प्राचीन काल में जैसे जम्भ का वध करने पर देवताओं ने सहस्राक्ष इन्द्र की स्तुति की थी, वैसे ही इस दैत्य का संहार होने पर गोपगण भगवान् जनार्दन की स्तुति करने लगे ॥१४॥

पन्द्रहवां अध्याय

ककुद्मति हतेऽरिष्टे धेनुके विनिपातिते ।
प्रलम्बे निधन नीते धृते गोवर्धनाचले ॥१
दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये ।
हतायां पूतनायां च शकटे परिवर्तिते ॥२
कंसाय नारद प्राह यथावृत्तमनुक्रमात् ।
यशोदादेवकी गर्भपरिवृत्त्याद्यशेषत ॥३
श्रुत्वा तत्सकलं कंसो नारदाद्देव दर्शनात् ।
वसुदेव प्रति तदा कोप चक्रे सुदुर्मति ॥४
सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्वयादवसंसदि ।
जगर्ह यादवाश्चैव कार्यं चैतदचिन्तयत् ॥५
यावन्न बलमारूढौ रामकृष्णौ सुबालकौ ।
तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रूढयौवनौ ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—अरिष्ट, धेनुक और प्रलम्ब का निधन, गिरि गोवर्धन का धारण, कालियनाग का मदन, दो विशाल वृक्षों का उत्पाटन, पूतना का मरण और शकट का पतन आदि अनेक लीलाओं के पूर्ण होने पर नारदजी कंस के पास पहुचे और वहाँ यशोदा और देवकी के गर्भ परिवर्तन से लेकर अब तक का जो कुछ हुआ था वह सब वृत्तान्त उसे आद्योपान्त कह सुनाया ॥१-३॥ देवता जैसे दिखाई देने वाले नारदजी के मुख से इस प्रकार सुनकर कंस ने वसुदेवजी पर अपना अत्यन्त रोष प्रकट किया ॥४॥ वह यादवों की निन्दा करके सोचने लगा कि जब तक यह बालक राम और कृष्ण अपने बल से परिपूर्ण नहीं होजाते, तभी तक इनका वध कर डालना चाहिये, अन्यथा युवावस्था को प्राप्त होकर तो यह किसी प्रकार भी न जीते जा सकेंगे ॥५–६॥

चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबल ।
एताभ्यां मल्लयुद्धेन मारयिष्यामि दुर्मतौ ॥७

धनुर्महमहायोगव्याजेनानीय तौ व्रजात् ।
तथा तथा यतिष्यामि यास्येते सङ्क्षय यथा ॥८
श्वफल्कतनय शूरमक्रूर यदुपुङ्गवम् ।
तयोरानयनार्थाय प्रेषयिष्यामि गोकुलम् ॥९
वृन्दावनचर घोरमादेक्ष्यामि च केशिनम् ।
तत्रैवासावतिबलस्तावुभौ घातयिष्यति ॥१०
गज कुवलयापीडो मत्सकाशमिहागतौ ।
घातयिष्यति वा गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ॥११
इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कसो रामजनार्दनौ ।
हन्तु कृतमतिर्वीरावक्रूर वाक्यमब्रवीत् ॥१२

महावीयवान् चाणूर और अत्यत बलवान् मुष्टिक जैसे अपने मल्लो के साथ उन दोनो दुर्बुद्धि वालो को भिडा कर उनका वध करा दूंगा ।।७।। उन्हे धनुर्यज्ञ के बहाने से यहाँ बुला कर उन्हे मारने के लिये विविध उपाय करूंगा ।।८।। उन्हे व्रज से बुला लाने के लिये श्वफल्क पुत्र अक्रूर को गोकुल भेजूंगा ।।९।। इसके साथ ही वृन्दावन म घूमने वाले अपने घोर असुर केशी को उन्हे वही मार डालने की आज्ञा दूंगा ।।१०।। अथवा यदि व दोनो वसुदेव-पुत्र यहाँ तक आ ही पहुंचे तो मेरा कुवलयापीड हाथी ही उन्हे नष्ट कर डालेगा ।।११।। श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार निश्चय कर उस दुष्टात्मा कस ने राम-कृष्ण का वध करने की इच्छा से अक्रूरजी को बुला कर कहा ।।१२।।

भो भो दानपते वाक्य क्रियता प्रीतये मम ।
इत स्वयानमारुह्य गम्यता नन्दगोकुलम् ॥१३
वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरशसमुद्भवौ ।
नाशाय किल सम्भूतो मम दुष्टौ प्रवर्द्धत ॥१४
धनुर्महो ममाप्यत्र चतुर्दश्या भविष्यति ।
आनेयौ भवता गत्वा मल्लयुद्धाय तत्र तौ ॥१५
चाणूरमुष्टिकौ मल्लौ नियुद्धकुशलौ मम ।
ताभ्या सहानयोर्युद्ध सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१६

गजः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः ।
स वा हनिष्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१७

तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम् ।
हनिष्ये पितरं चैनमुग्रसेनं सुदुर्मतिम् ॥१८

ततस्समस्तगोपानां गोधनान्यखिलान्यहम् ।
वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषिणाम् ॥१९

कंस ने कहा—हे दानपते ! आप मेरी प्रसन्नता के लिये यह कार्य करिये कि रथ पर आरूढ़ होकर गोकुल के लिये प्रस्थान कीजिये ॥१३॥ वहाँ वसुदेवजी द्वारा उत्पन्न विष्णु-अंश रूप दो दुष्ट बालक मुझे मारने के लिये ही वहाँ पल रहे हैं ।१४॥ मेरे यहाँ आगामी चतुर्दशी के दिन ही धनुर्यज्ञ महोत्सव होने को है, इसलिये आप उन्हें मल्ल युद्ध के लिये यहाँ लिवा लाइये ॥१५॥ मेरे चाणूर और मुष्टिक नामक दो मल्ल मल्ल युद्ध में अत्यन्त चतुर हैं, इनका उन दोनों के साथ जो द्वन्द्व युद्ध हो, उसे सभी लोग यहाँ आकर देखें ॥१६॥ अथवा महावत की प्रेरणा से मेरा कुवलयापीड हाथी ही उन दोनों पापी वसुदेव पुत्रों को मार डालेगा ॥१७॥ इस प्रकार उन दुष्टों को मरवा कर इस दुर्बुद्धि वसुदेव, नन्द तथा कुबुद्धि वाले अपने पिता उग्रसेन का भी वध कर दूँगा ॥१८॥ फिर मेरे वध की कामना वाले इन सब दुष्ट गोपों के सम्पूर्ण गवादि धनों का भी हरण कर लूँगा ॥१९॥

त्वामृते यादवाश्चैते द्विषो दानपते मम ।
एतेषां च वधायाहं यतिष्येऽनुक्रमात्ततः ॥२०
तदा निष्कण्टकं सर्वं राज्यमेतदयादवम् ।
प्रसाधिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रीत्यै वीर गम्यताम् ॥२१
यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्यं वै ।
गोपास्समानयन्त्वाशु तथा वाच्यास्त्वया च ते ॥२२
इत्याज्ञप्तस्तदाक्रूरो महाभागवतो द्विज ।
प्रीतिमानभवत्कृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२३

तथेत्युक्त्वा च राजान रथमारुह्य शोभनम् ।
निश्चक्राम ततः पुर्या मधुराया मधुप्रियः ॥२४

हे दानपते ! आपके अतिरिक्त ये सभी यादव मुझसे द्वेष भाव रखते हैं, इसलिये मैं इन सभी को मार डालने का प्रयत्न करूँगा ॥२०॥ फिर आपको साथ लेकर इस यादव-विहीन राज्य का निष्कंटक रूप से उपभोग करूँगा । अब आप मेरी प्रसन्नता के लिये शीघ्र ही गमन कीजिये ॥२१॥ आप गोकुल मे जाकर उन गोपो से इस प्रकार बाते करे, जिससे वे भैंस के घी और दही आदि उपहारो को लेकर शीघ्र ही यहाँ चले आवें ॥२२॥ श्री पराशरजी ने कहा—कंस की आज्ञा सुनकर 'कल श्रीकृष्ण के दर्शन करूँगा' ऐसा सोच कर महा भागवत अक्रूरजी प्रसन्न हुए ॥२३॥ और राजा कंस से 'जो आज्ञा' कह कर श्रेष्ठ रथ पर आरूढ हुए और मथुरा नगरी से बाहर की ओर चल दिये ॥२४॥

सोलहवाँ अध्याय

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतप्रचोदितः ।
कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥१
स खुरक्षतभूपृष्ठस्सटाक्षेपधुताम्बुदः ।
द्रुतविक्रान्तचन्द्राकमार्गो गोपानुपाद्रवत् ॥२
तस्य ह्रेषितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः ।
गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥३
त्राहि त्राहीति गोविन्दः श्रुत्वा तेषां ततो वचः
सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥४
अलं त्रासेन गोपाला केशिनः किं भयातुरैः ।
भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥५
किमनेनाल्पसारेण ह्रेषिताटोपकारिणा ।
दैतेयबलवाह्येन वल्गता दुष्टवाजिना ॥६

एह्येहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक्
पातयिष्यामि दशनान्वदनादखिलांस्तव ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—इधर कंस के दूत ने महाबली केशी को कृष्ण की हत्या करने के लिये भेजा, जो इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये वृन्दावन में जा पहुँचा ॥१॥ यह अपने खुरों के द्वारा भूतल को कुरेदता, सट के द्वारा सब को छिन्न-भिन्न करता और अत्यंत वेग से सूर्य चन्द्रमा के मार्ग को लाँघता हुआ गोपों की ओर दौड़ पड़ा ॥२॥ उस घोड़े के रूप वाले दैत्य की हिनहिनाहट को सुनकर डरे हुए सब गोप-गोपियाँ भगवान् की शरण में गये ॥३॥ उनके 'रक्षा करो, रक्षा करो' पुकारने पर जलयुक्त बादल के समान गर्जन युक्त वाणी से श्रीकृष्ण ने कहा ॥४॥ हे गोपगण ! इस केशी से आप भयभीत न हो, आपने गोपजाति में होकर भी इस प्रकार डर कर अपने वीरोचित पुरुषार्थ को क्यों त्याग दिया है ? ॥५॥ यह अल्प बल वाला हिनहिनाहट से आतंकित करने और नाचने वाला तथा दैत्यों के लिये बल पूर्वक चढ़ने के लिये वाहन रूप यह अश्व आपका क्या अनिष्ट कर सकता है ? ॥६॥ फिर उन्होंने केशी को ललकारा—अरे दुष्ट ! तू इधर आ। जैसे धनुर्धारी वीरभद्र ने पूषा के दाँत तोड़ दिये थे वैसे ही मैं कृष्ण तेरे सभी दाँत उखाड़ फेंकूँगा ॥७॥

इत्युक्त्वास्फोट्य गोविन्दः केशिनस्सन्मुखं ययौ ।
विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैतेयाश्च उपाद्रवत् ॥८
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः ।
प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥९
केशिनो वदने तेन विशता कृष्णबाहुना ।
पातिता दशना पेतुः सिताभ्रावयवा इव ॥१०
कृष्णस्य ववृधे बाहुः केशिदेहगतो द्विज ।
विनाशाय यथा व्याधिरासम्भूतेरुपेक्षितः ॥११
विपाटितोष्ठो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन् ।
सोऽक्षिणी विवृते चक्रे निःश्लिष्टे मुक्तबन्धने ॥१२

जघान धरणी पादैश्शकृन्मूत्र समुत्सृजन् ।
स्वेदार्द्र गात्रश्श्रान्तश्च निर्यत्नश्चोऽभवत्तदा ॥१३
व्यादितास्यमहारन्ध्रस्सोऽसुर कृष्णबाहुना ।
निपातितो द्विधा भूमौ वैद्युतेन यथा द्रुम ॥१४
द्विपादे पृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके ।
केशिनस्ते द्विधाभूते शकले द्वे विरेजतु ॥१५

यह कह कर श्रीकृष्ण ने उछल कर केशी का सामना किया और अश्व रूप वाला वह दैत्य भी मुख खोल कर उन पर झपटा ॥८॥ तब श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा फैला कर दुष्ट के मुख मे घुसा दी ॥९॥ जैसे ही उसके मुख मे उनकी भुजा प्रविष्ट हुई, वैसे ही उससे टकराकर उस दैत्य के सब दाँत श्वेत मेघ खण्डो के समान टूट कर पृथिवी पर आ गिरे ॥१०॥ हे द्विज ! जैसे उत्पन्न होते ही रोग की चिकित्सा न होने पर उसकी वृद्धि होती रहती है, वैसे ही केशी के मुख मे घुसी हुई भगवान् की भुजा वृद्धि को प्राप्त होने लगी ॥११॥ अन्त मे उसका मुख फट गया और वह फेनयुक्त रक्त उलटने लगा। तभी स्नायु बधनो के शिथिल होने से उसके नेत्रो की ज्योति भी नष्ट होगई ॥१२॥ तब वह मल-मूत्र को त्यागता हुआ अपने पाँवाको पटकने लगा, उसका देह स्वेद से शीतल हो गया और उसे मूर्च्छा आ गई ॥१३। इस प्रकार श्रीकृष्ण की भुजा से फैलाये गये मुख के विशाल रन्ध्र के फटने से वज्रपात से पतित हुए वृक्ष के समान दो टूक होकर वह असुर धरती पर लेट गया ॥१४॥ केशी के देह के दोनो टुकडे दो पाँव, एक कान, एक नेत्र, आधी पीठ, आधी पूँछ और एक नासिका छिद्र के साथ शोभा पाने लगे ॥१५॥

हत्वा तु केशिनं कृष्णो गोपालैर्मुदितैर्वृत ।
अनायस्ततनुस्स्वस्थो हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥१६
ततो गोप्यश्च निहते केशिनि स्वति विस्मिता ।
तुष्टुवु पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥१७
अथाहान्तर्हितो विप्र नारदो जलदे स्थित ।
केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानस ॥१८

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत ।
निहतोऽयत्वया केशी क्लेशदस्त्रिदिवौकसाम् ॥१६
युद्धोत्सुकोऽहमत्यर्थं नरवाजिमहाहवम् ।
अभूतपूर्वमित्यत्र द्रष्टु स्वर्गादिहागत ॥२०
कर्माण्यत्रावतारे च ते कृतानि मधुसूदन ।
यानि तैर्विस्मित चेतस्तोषमेतेन मे गतम् ॥२१

इस प्रकार केशी-वध से प्रसन्न हुए ग्वाल स घिरे हुए श्रीकृष्ण बिना किसी प्रकार की थकान में स्वस्थ मन से खडे हुए हँसते रहे ॥१६॥ उस समय केशी के मारे जाने से आश्चर्य को प्राप्त हुए गोप-गोपियो ने उन कमल नयन एव मनोरम भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥१७॥ उस राक्षस को मरा हुआ देख कर बादलो की आड मे छिप कर खडे हुए नारदजी ने अत्यंत हर्ष पूर्वक उनसे कहा ॥१८॥ हे जगन्नाथ ! हे अच्युत ! आप धन्य है। आपने देवताओ को सतत करने वाले इस केशी को खेल-खेल मे ही मार डाला ॥१६॥ मैने मनुष्य और घोडे का युद्ध पहिले कभी नहीं देखा था, उसी को देखने के लिय यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥२०॥ हे मधुसूदन ! आपके द्वारा इस अवतार मे किये जाने वाले कर्मों को देखकर मेरा मन अत्यत आश्चर्य चकित और प्रसन्न हो रहा है ॥२१॥

तुरङ्गस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च बिभ्यति ।
धुतकेसरजालस्य ह्रेषतोऽभ्रावलोकिन ॥२२
यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हत केशी जनार्दन ।
तस्मात्केशवनाम्ना त्व लोके ख्यातो भविष्यसि ॥२३
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कसयुद्धेऽधुना पुन ।
परश्वोऽह समेष्यामि त्वया केशिनिषूदन ॥२४
उग्रसेनसुते कसे सानुगे विनिपातिते ।
भारावतारकर्ता त्व पृथिव्या पृथिवीधर ॥२५
तत्रानेकप्रकाराणि युद्धानि पृथिवीक्षिताम् ।
द्रष्टव्यानि मया युद्ध त्वत्प्रणीतानि जनार्दन ॥२६

सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम् ।
त्वयैव विदितं सर्वं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥२७
नारदे तु गते कृष्णस्सह गोपैरभाजितः ।
विवेश गोकुलं गोपीनेत्रपानैकभाजनम् ॥२८

हे कृष्ण ! अपने घोड़ों को नष्ट करने और हिनहिना कर आकाश की ओर देखने वाले इस अश्व से इन्द्रादि सब देवता भयभीत होते थे ॥२२॥ हे जनार्दन ! आपने इस दुष्ट केशी का वध किया है, इसलिये आप 'केशव' कहे जायेंगे ॥२३॥ हे केशी के मारने वाले प्रभो ! आपकी जय हो, अब मैं जा रहा हूँ, अब आपका कंस के साथ जो युद्ध होगा, उसे देखने के लिये पुनः उपस्थित हूँगा ॥२४॥ हे भूधर ! आप उग्रसेन-पुत्र कंस को उसके अनुगामियों सहित मार कर भू-भार का हरण करेंगे ॥२५॥ उस समय मैं भी वहाँ अनेक राजाओं के साथ आप अविनाशी पुरुष के युद्ध-कलाओं को देखूँगा ॥२६॥ हे गोविन्द ! मैं अब जा रहा हूँ। आपने देवताओं का अत्यन्त महत्व पूर्ण कार्य-साधन किया है। आप सर्वज्ञाता हैं, आपका कल्याण हो ॥२७॥ फिर नारदजी के चले जाने पर गोपों के द्वारा सम्मानित और गोपियों के नयनों के लिये एक मात्र पान करने योग्य श्रीकृष्ण गोपों के सहित गोकुल में प्रविष्ट हुए ॥२८॥

सत्रहवाँ अध्याय

अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य स्यन्दनेनाशुगामिना ।
कृष्णसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया ।
योऽहमंशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः ॥२
अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाताभवन्निशा ।
यदुन्निद्राब्जपत्राक्ष विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३
पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं सङ्कल्पनामयम् ।
तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥४

विनिर्जग्मुर्यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च ।
द्रक्ष्यामि तत्परं धाम धाम्नां भगवतो मुखम् ॥५
यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते योऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६
इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् ।
अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—इधर मथुरा पुरी से बाहर निकलते हुए अक्रूरजी अपने शीघ्रगामी रथ के द्वारा श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से नन्दजी के गोकुल को चले ॥१॥ उस समय अक्रूरजी विचार करने लगे कि आज मैं चक्रधारी भगवान् विष्णु के अंश रूप परमेश्वर का अपने नेत्रों से दर्शन करूँगा, इसलिये मेरे समान भाग्यशाली कोई नहीं है ॥२॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया है, यह रात्रि अवश्य ही श्रेष्ठ प्रातःकाल वाली है, जिसके कारण मैं उन विकसित पद्म के से नयन भगवान् के मुख को देखूँगा ॥३॥ भगवान् के जिस संकल्पात्मक मुख कमल के स्मरण मात्र से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी का मैं आज दर्शन करूँगा ॥४॥ सभी तेजस्वियों के परम आश्रय रूप जिस मुखारविन्द से वेद-वेदाङ्ग उत्पन्न हुए हैं आज मैं उसी मुख को देखूँगा ॥५॥ सभी पुरुष जिन यज्ञ पुरुष को यज्ञानुष्ठानों में यजन किया करते हैं, उन्हीं विश्वाश्रय विश्वेश्वर का आज मैं दर्शन करूँगा ॥६॥ जिनका सौ बार यजन करके ही इन्द्र को देवराज-पद की प्राप्ति हुई है, उन्हीं अनादि पुरुष अनन्त भगवान् का मैं दर्शन करूँगा ॥७॥

न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः ।
यस्य स्वरूपं जानन्ति प्रत्यक्षं याति मे हरिः ॥८
सर्वात्मा सर्ववित्सर्वः सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
यो ह्यचिन्त्योऽव्ययो व्यापी स वक्ष्यति मया सह ॥९
मत्स्यकूर्मवराहाश्वसिंहरूपादिभिः स्थितिम् ।
चकार जगतो योऽजःसोऽद्य मां प्रलपिष्यति ॥१०

साम्प्रत च जगत्स्वामी कार्यमात्महृदि स्थितम् ।
कर्तुं मनुष्यता प्राप्तस्स्वेच्छादेहधृगव्यय ॥११
योऽनन्तः पृथिवी धत्ते शेखरस्थितिसस्थिताम् ।
सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति ॥१२
पितृपुत्रसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम् ।
यन्माया नालमुत्तर्तुं जगत्तस्मै नमो नम. ॥१३
तरत्यविद्या वितता हृदि यस्मिन्निवेशिते ।
योगमायाममेयाय तस्मै विद्यात्मने नम ॥१४

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य और मरुद्गण भी जिनके स्वरूप को नही जानत, वे ही श्रीहरि मेरे नयनो के समक्ष प्रत्यक्ष होंगे ॥८॥ जो सर्वव्यापक भगवान् सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वरूप, सर्वभूतो मे अवस्थित, अचिन्त्य और अव्यय स्वरूप है, वे आज साक्षात् रूप म मुझसे सम्भाषण करेंगे ॥९॥ जिन अजन्मा प्रभु न मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव, नृसिंह आदि रूपो मे ससार की रक्षा की, आज वे ही भगवान् मरे साथ बाते करेंगे ॥१०॥ उन अव्ययात्मा जगत्स्वामी ने अपन इच्छित काय की पूर्ति के लिये ही मनुष्य रूप मे अवतार लिया है ॥११॥ अपन शिर पर पृथिवी को धारण करने वाले अनन्त भगवान् ने जगत्-कल्याण के लिये पृथिवी पर जन्म धारण किया है, वे ही आज मुझे अक्रूर कह कर वार्तालाप करेंगे ॥१२॥ पिता, पुत्र, सुहृद, भ्राता, माता और बन्धु रूप वाली माया के जो स्वामी हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१३॥ जिनमें चित्तवृत्ति लगा देन मे इस योगमाया रूपी घोर अविद्या को लाघा जा सकता है, उन विद्या रूप प्रभु को नमस्कार है ॥१४॥

यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतै ।
वेदान्तवेदिभिर्विष्णु प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५
यथा यत्र जगद्धाम्नि धातर्यतत्प्रतिष्ठितम् ।
सदसत्तेन सत्येन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६
स्मृते सकलकल्याणभाजन यत्र जायते ।
पुरुषस्तमज नित्य व्रजामि शरण हरिम् ॥१७

इत्थ सञ्चिन्तयन्विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानस. ।
अक्रूरो गोकुलं प्राप्त किञ्चित्सूर्ये विराजति ॥१७
स ददर्श तदा कृष्णमादावादोहने गवाम् ।
वत्समध्यगत फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१६
प्रफुल्लपद्मपत्राक्ष श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरःस्थलमुन्नसम् ॥२०
सविलासस्मिताधारं बिभ्राण मुखपङ्कजम् ।
तुङ्गरक्तनख पद्भ्या धरण्या सुप्रतिष्ठितम् ॥२१

याज्ञिक जिन्हे यज्ञ पुरुष, सात्वत जिन्हें वासुदेव और वेदान्त के जानने वाले जिन्हें विष्णु कहकर पुकारते है, उनको मेरा नमस्कार है ॥१५॥ जिस सत्य के बल से यह सत्–असत् रूप विश्व उसी विश्वाधार मे अवस्थित है, उसी के द्वारा वे मेरे प्रति सौम्य हो ॥१६॥ जिनका स्मरण करने से ही मनुष्य कल्याण भाजन हो जाता है, उन्ही अजन्मा भगवान् हरि की शरण मे, मैं जाता हूँ ॥१७॥ श्री पराशर जी ने कहा—भक्ति से विनम्रता को प्राप्त हुए अक्रूरजी इस प्रकार भगवान् विष्णु का हृदय मे चिन्तन करते–करते, सूर्य के अस्त होने से कुछ पहिले ही गोकुल मे जा पहुचे ॥१८॥ वहाँ पहुचने पर उन्हे विकसित नीलोत्पल जैसी कान्ति वाले श्रीकृष्ण गौओं के दोहन–स्थान मे बछड़ों के मध्य स्थित दिखाई दिये ॥१६॥ उनके विकसित कमल जैसे नेत्र थे। लम्बी भुजाएँ, श्रीवत्सांकित हृदय, विशाल और उन्नत वक्षस्थल तथा ऊँची नासिका थी ॥२०॥ जो सविलास मुसकान युक्त मनोहर मुखपंकज मे सुशोभित हो रहे थे तथा जो लाल वर्ण के नखो वाले ऊँचे चरणो से पृथिवी पर प्रतिष्ठित थे ॥२१॥

बिभ्राण वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम् ।
सेन्दुनीलाचलाभ त सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२
हंसकुन्देन्दुधवल नीलाम्बरधर द्विज ।
तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३
प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं स विकासिमुखपङ्कजम् ।
मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४

तौ दृष्ट्वा विकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाक्रूरोऽभवन्मुने ॥२५
तदेतत्परम धाम तदेतत्परमं पदम् ।
भगवद्वासुदेवांशो द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥२६
साफल्यमक्ष्णोर्युगमेतदत्र दृष्टे जगद्धातरि यातमुच्चैः ।
अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादा त्तदङ्गसङ्गे फलवन्मम स्यात् ॥२७

जो पीताम्बर और वन के पुष्पों से सुशोभित थे तथा जिनका श्याम शरीर श्वेत कमल के अलङ्कारों से सुसज्जित हुआ नीलाचल जैसा प्रतीत हो रहा था ॥२२॥ हे द्विज ! उन्हीं के पीछे हंस, कुन्द अथवा चन्द्रमा जैसे गौर वर्ण वाले तथा नीलाम्बर धारण किये हुए बलरामजी दिखाई दिये ॥२३॥ जो विशाल बाहुएँ, उन्नत कन्धे और विकसित मुख कमल से सुशोभित हुए मेघमाला से घिरे हुए द्वितीय कैलाश पर्वत जैसे प्रतीत होते थे ॥२४॥ हे मुने ! महामति अक्रूरजी ने उन बालकों को जैसे ही देखा, वैसे ही उनका मुखारविन्द खिल उठा और उनका सम्पूर्ण देह पुलकित होने लगा ॥२५॥ उन्होंने सोचा कि इन दो स्वरूपों में प्रकट हुआ भगवान् वासुदेव का अंश ही परमधाम तथा परम पद है ॥२६॥ संसार को उत्पन्न करने वाले इन बालकों के दर्शन से आज मेरे दोनों नेत्र सफल होगये, परन्तु क्या मैं इनके अङ्ग-अङ्ग के लाभ से भी धन्य हो सकूँगा ? ॥२७॥

अप्येष पृष्ठे मम हस्तपद्मं करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः ।
यस्याङ्गुलिस्पर्शहताखिलाघैं रवाप्यते सिद्धिरपास्तदोषा ॥२८
येनाग्निविद्युद्रविरश्मिमाला करालमत्युग्रमपेतचक्रम् ।
चक्रं घ्नता दैत्यपतेर्हृतानि दैत्याङ्गनानां नयनाञ्जनानि ॥२९
यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञा नवाप भोगान्वसुधातलस्थः ।
तथामरत्वं त्रिदशाधिपत्वं मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम् ॥३०
अप्येष मां कंसपरिग्रहेण दोषास्पदीभूतमदोषदुष्टम् ।
कर्तावमानोपहतं धिगस्तु तज्जन्म यत्साधुबहिष्कृतस्य ॥३१

ज्ञानात्मकस्यामलसत्त्वराशेरपेतदोषस्य सदा स्फुटस्य ।
किं वा जगत्यत्र समस्तपुं सामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ३२
तस्मादहं भक्तिविनम्रचेता व्रजामि सर्वेश्वरमीश्वराणाम् ।
ग्रंशावतारं पुरुषोत्तमस्य ह्यनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ।।३३

जिनकी ग्रँगुली का स्पर्श होने से ही सब पापो से शून्य हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाते है, क्या वे अनन्त मूर्ति अपने कर कमल को मेरी पीठ पर फेरेंगे ? ।।२८।। जिन्होने अपने अग्नि, विद्युत् और आदित्य की रश्मि माला के समान उग्र चक्र के प्रहार से दैत्यराज की सेना का संहार कर दैत्याङ्गनाग्रो के नयनाञ्जन को बहा दिया था ।।२९।। जिन्हे एक जल-बिन्दु देकर ही राजा बलि ने इस भूतल पर मनोज्ञ भोगो को प्राप्त कर एक मन्वन्तर पर्यन्त शत्रु-विहीन अमर इन्द्र पद का उपभोग किया था ।।३०।। क्या वे भगवान् मुझ दोष-रहित को कंस के साथ रहने के कारण दोषी मानकर मेरा तिरस्कार करेंगे ? यदि ऐसा हो तो साधु-जन द्वारा बहिष्कृत होने वाले मेरे जन्म को धिक्कार है ।।३१।। जगत् मे ऐसा कौन-सा विषय है जिसे वे न जानते हो क्योंकि वे तो ज्ञानरूप, निर्दोष, सत्त्वराशि, नित्यप्रकाश और सब जीवो के हृदयों मे स्थित रहते हैं ।।३२।। इसलिये मैं भक्ति-भाव पूवक उन ईश्वरो के भी ईश्वर, अनादि, अमध्य और अनन्त पुरुषोत्तम के ग्रंशावतार की शरण को प्राप्त होता हूँ ।।३३।।

अठारवाँ अध्याय

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव ।
अक्रूरोऽस्मीति चरणौ ननाम शिरसा हरः ।।१
सोऽप्येन ध्वजवज्राब्जकृतचिह्न न पाणिना ।
सस्पृश्याकृष्य च प्रीत्या सुगाढ परिषस्वजे ।।२
कृतसंवन्दनौ तेन यथावद्बलकेशवौ ।
तत. प्रविष्टौ संहृष्टौ तमादायात्ममन्दिरम् ।।३

सह ताभ्यां तदाक्रूरः कृतसवन्दनादिकः ।
भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचचक्षे ततस्तयोः ॥४
यथा निर्भर्त्सितस्तेन कंसेनानकदुन्दुभिः ।
यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥५
उग्रसेने यथा कंसस्स दुरात्मा च वर्त्तते ।
यं चैवार्थं समुद्दिश्य कंसेन तु विसर्जितः ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—यादव अक्रूरजी इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्री गोविन्द के पास गये और उनके चरणों मे मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए बोले कि "मैं अक्रूर हूं" ॥१॥ तब श्रीकृष्ण ने भी उन्हे अपने ध्वजा, वज्र, पद्म, चिह्न वाले हाथो से स्पर्श किया और प्रेम सहित अपनी ओर खीचकर दृढ़ आलिंगन किया ॥२॥ फिर अक्रूर द्वारा वन्दित हुए बलराम और कृष्ण अत्यन्त आनन्द पूर्वक उनके साथ अपने घर आये ॥३॥ तब अक्रूर का वहाँ सत्कार हुआ और उन्हें भोजनादि कराया गया । तदनन्तर अक्रूर ने उन्हे कंस का वसुदेव-देवकी को फटकारने अपने पिता उग्रसेनजी को सताने तथा अक्रूर को वृन्दावन भेजने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ॥४-६॥

तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्देवकीसुतः ।
उवाचाखिलमप्येतज्ज्ञातं दानपते मया ॥७
करिष्ये तन्महाभाग यदत्रौपयिकं मतम् ।
विचिन्त्य नान्यथैतत्ते विद्धि कंसं हतं मया ॥८
अहं रामश्च मथुरां श्वो यास्यावस्सह त्वया ।
गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति ह्यादायोपायनं बहु ॥९
निशेयं नीयतां वीर न चिन्तां कर्तुमर्हसि ।
त्रिरात्राभ्यन्तरे कंसं निहनिष्यामि सानुगम् ॥१०
समादिश्य ततो गोपानक्रूरोऽपि च केशवः ।
सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे ततः ॥११
ततः प्रभाते विमले कृष्णरामौ महाद्युती ।
अक्रूरेण समं गन्तुमुद्यतौ मथुरां पुरीम् ॥१२

दृष्ट्वा गोपीजनम्मास्र. श्लथद्वलयवाहुक ।
नि.शश्वासातिदु खार्त्तं प्राह चेद परस्परम् ॥१३

उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ने अक्रूर से कहा–हे दानपते ! मुझे यह सब बाते ज्ञात हो चुकी है ॥७॥ हे महाभाग ! अब जो मैं ठीक समझूंगा, वह करूँगा । तुम कस को मेरे द्वारा मारा गया ही समझो, इसमे कुछ अन्यथा नही है ॥८॥ मैं और बलरामजी तुम्हारे साथ कल ही मथुरा चलेंगे तथा अन्य वृद्ध गोपगण भी बहुत सा उपहार लेकर वहाँ जायगे ॥९॥ हे वीर ! आप चिन्ता को छोड कर सुख से रात्रि विश्राम करिये । मैं कस को उसके अनुगामियो के सहित तीन रात म ही नष्ट कर दूँगा ॥१०॥ श्री पराशर जी ने कहा—अक्रूर, केशव और बलरामजी ने सभी गोपो को कस का आदेश सुनाया और नन्द भवन मे जाकर शयन करने लगे ॥११॥ फिर प्रात-काल होन पर महातेजस्वी बलराम और कृष्ण अक्रूरजी के साथ मथुरा जाने को उद्यत हुए तब ढील हुए कंगण वाली गोपियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रो से दु खार्त्त होती हुई दीर्घ श्वास छोडने लगी और परस्पर म बोली ॥१२-१३॥

मथुरा प्राप्य गोविन्द कथ गोकुलमेष्यति ।
नगरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति ॥१४

विलासवाक्यपानेषु नागरीणा कृतास्पदम् ।
चित्तमस्य कथ भूया ग्राम्यगोपीषु यास्यति ॥१५

सार समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम् ।
प्रहृत गोपयोषित्सु निर्घृणेन दुरात्मना ॥१६

भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति ।
नागरीणामतीवैतत्कटाक्षेक्षितमेव च ॥१७

ग्राम्यो हरिरय तासा विलासनिगडैर्युत ।
भवतीना पुन पार्श्व कया युक्त्या समेष्यति ॥१८

एषैव रथमारुह्य मथुरा याति केशव ।
क्रूरेणाक्रूरकेणात्र निर्घृणेन प्रतारित ॥१९

किं वेत्ति नृशंसोऽयमनुरागपरं जनम् ।
येनैवमक्ष्णोराह्लाद नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥२०

एष रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिर्घृण ।
रथमारुह्य गोविन्दस्त्वर्यतामस्य वारणे ॥२१

जब गोविन्द मथुरा पहुँच जायगे तब गोकुल मे क्यो लौटेगे ? क्योंकि वहाँ इनके कानो को नगर की स्त्रियो का मधुरालाप रूपी रस उपलब्ध होगा ॥१४॥ नगर की स्त्रियो के विलास-वाक्यो मे रम जाने पर गँवारियो की ओर इनका मन क्यो रहेगा ? ॥१५॥ दुरात्मा विधाता भी कैसा निर्दयी है, जिसने सम्पूर्ण व्रज के सारभूत भगवान् श्रीहरि को छीन कर हम गोपाङ्गनाओ पर प्रहार किया है ॥१६॥ नगर की नारियो मे स्वभाव से ही भावमयी और मुसकानमयी वाणी, विलास–लालित्य तथा कटाक्षमयी चितवन की अधिकता होती है। उनके विलास–बन्धन को प्राप्त होकर यह ग्रामीण कृष्ण फिर किस प्रकार तुम्हारे पास आ सकेंगे ? ॥१७-१८॥ देखो, यह क्रूर अक्रूर कैसा निर्दयी है, जिसके बहकावे मे आकर यह केशव उसके रथ पर चढ कर मथुरा जा रहे हैं ? ॥१९॥ क्या यह नृशस अक्रूर अनुरागियो के हृदयगत भावो से अनजान है जो हमारे नेत्रो को सुख देने वाले हरि को यहां से अन्यत्र ले जारहा है ? ॥२०॥ अरी देखो, यह गोविन्द भी कैसे निष्ठुर होगये हैं जो बलरामजी के साथ रथारूढ होकर जा रहे हैं। इन्हें रोकने मे शीघ्रता करनी चाहिये ॥२१॥

गुरूणामग्रतो वक्तुं किं ब्रवीषि न न क्षमम् ।
गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना ॥२२

नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यताः ।
नोद्यमं कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३

सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोषिताम् ।
पास्यन्त्यच्युतवक्त्राब्ज यासा नेत्रालिपङ्क्तयः ॥२४

धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्त्यनिवारिता. ।
उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तस्स्वदेह पुलकाञ्चितम् ॥२५

मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः ।
गोविन्दावयवैर्दृष्टैरतीवाद्य भविष्यति ॥२६
को नु स्वप्नमभाग्याभिर्दृष्टस्ताभिरधोक्षजम् ।
विस्तारिकान्तिनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारिता ॥२७
अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम् ।
उत्कृत्ताम्यद्य नेत्राणि विधिनाकरुणात्मना ॥२८

अरी, तू यह क्या कहती है कि अपने बड़ों के सामने इस प्रकार कहने मे हम समर्थ नहीं हैं ? हम तो विरहाग्नि मे दग्ध हो चुकी है, बड़े अब हमारा क्या करेंगे ? ॥२२॥ देखो, यह नन्दादि गोप भी उनके साथ जाने को उद्यत है। इनमे से भी कोई गोविन्द को वहाँ जाने से नहीं रोकता ॥२३॥ मथुरा की स्त्रियों के लिये आज की रात सुखद प्रभात वाली हुई है, क्योंकि आज उनके नेत्र रूपी भ्रमर भगवान् अच्युत के मुख-मकरन्द का पान करेंगे ॥२३॥ श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाले ही धन्य है, क्योंकि वे उनका दर्शन-लाभ करते हुए ही अपने पुलकित देह को चलाते है ॥२४॥ श्री गोविन्द के अङ्गों को देखकर मथुरा निवासियो के नेत्र महोत्सव मनायेंगे ॥२६॥ आज मथुरा की कान्तिमय विशाल नेत्रो वाली सौभाग्यशालिनी नारियों ने ऐसा कौन-सा शुभ स्वप्न देखा है, जिसके फलस्वरूप वे स्वच्छन्दता पूर्वक श्री अधोक्षज का दर्शन करेंगी ॥२७॥ अरे, ये विधाता कितना निष्ठुर है, जिसने महानिधि दिखाकर ही हम गोपियो के नेत्र खीच लिये है ॥२८॥

अनुरागेण शैथिल्यमस्मासु व्रजिते हरौ ।
शैथिल्यमुपयान्त्याशु करेषु वलयान्यपि ॥२९
अक्रूर क्रूरहृदयश्शीघ्रं प्रेरयते हयान् ।
एवमार्त्तासु सुकृपा कस्यान्यथा न जायते ॥३०
एष कृष्णरथस्याच्चैश्चक्ररेणुर्निरीक्ष्यताम् ।
दूरीभूतो हरिर्येन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते ॥३१
इत्येवमतिहार्देन गोपीजननिरीक्षित. ।
तत्याज व्रजभूभाग सह रामेण केशव ॥३२

गच्छन्तौ जवनाश्वेन रथेन यमुनातटम् ।
प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दना. ॥३२
अथाह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम् ।
यावत्करोमि कालिन्द्या आह्निकार्हणमम्भसि ॥३४

देखो, भगवान् हरि का अनुराग भी हमारे प्रति शिथिल होगया है, इसी से तो हमारे हाथो के कगन ढीले होगये हैं ॥२६॥ देखो, यह अक्रूर कैसा क्रूर हृदय है जो अश्वो को शीघ्रता से हाँक रहा है, अन्यथा हमारे जैसी आर्त्त हुई नारियो पर कौन कृपा न करेगा ? ॥३०॥ देखो, अब कृष्ण के रथ की उड़ती हुई यह धूलि ही दिखाई दे रही है, परन्तु अब तो वे इतने दूर जा पहुँचे कि उस धूलि का दिखाई देना भी रुक गया ॥३१॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार गोपियो द्वारा अनुराग–पूर्वक देखते–देखते ही श्रीकृष्ण-बलराम व्रजभूमि को छोड़ कर आगे बढ गये ॥३२॥ फिर वे तीनो—बलराम, कृष्ण और अक्रूर शीघ्रगति वाले अश्वों से संयुक्त रथ मे चलते हुए मध्याह्न काल मे यमुना के निकट पहुँच गये ॥३३॥ वहाँ जाकर अक्रूर ने श्रीकृष्ण से कहा–"मैं मुना जी मे जाकर मध्याह्न काल की उपासना करूँगा । मेरे वहाँ से लौटने तक आप यहीं रहें ॥३४॥

तथेत्युक्तस्ततस्स्नातस्स्वाचान्तस्स महामति ।
दध्यौ ब्रह्म परं विप्र प्रविष्टो यमुनाजले ॥३५
फणासहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श स. ।
कुन्दमालाङ्गमुन्निद्रपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३६
वृतं वासुकिरम्भाद्यैर्महद्भिः पवनाशिभिः ।
संस्तूयमानमुद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७
दधानमसिते वस्त्रे चारुपद्मावतंसकम् ।
चारुकुण्डलिनं भान्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८
तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम् ।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ॥३९

पीते वसान वसने चित्रमाल्योपशोभितम् ।
शक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ।।४०
श्रीवत्सवक्षस चारु स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
ददर्श कृष्णमक्लिष्ट पुण्डरीकावतसकम् ।।४१
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्सिद्धयोगैरकल्मषैः ।
सञ्चिन्त्यमान तत्रस्थैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ।।४२

श्री पराशर जी ने कहा—हे विप्र ! भगवान् द्वारा सहमति प्रकट करने पर महामति अक्रूरजी ने यमुना-जल मे प्रवेश किया और आचमन आदि के पश्चात् परब्रह्म का चिन्तन करने लगे ।।३५।। उस समय उन्हे बलरामजी हजार फलो से युक्त दिखाई देने लगे । उनका देह कुन्दपुष्पो की माला के समान तथा नेत्र खिले हुए पद्म पत्र के समान प्रतीत हुआ ।।३६।। तथा वे वासुकि और रम्भ आदि महासर्पो से घिर कर स्तुत हो रहे है । उनके देह पर सुगन्धित वनमालाएँ शोभा पा रही है ।।३७।। उन श्याम वस्त्रधारी ने कमल पुष्पों के सुन्दर आभूषण धारण किये हुए हैं और वे कुण्डली लगा कर जल मे अवस्थित है ।।३८।। फिर उनकी गोद मे स्थित रमत्न विभूषित आनन्द-कन्द श्रीकृष्णचन्द्र को उन्होने देखा, जो बादल के समान श्याम देह, किंचित् लाल एव विशाल लोचन, मनोहर अङ्ग और उपागो तथा शख—चक्रादि आयुधो से शोभित चार भुजा, वनमाला और पीताम्बर से सुसज्जित तथा इन्द्रधनुष और विद्युन्माला युक्त मेघ जैसे प्रतीत हो रह थे । उनके वक्ष स्थल मे श्री वत्स का चिह्न और कानो मे मकराकार कुण्डल सुशोभित थे ।।३९-४०-४१।। तथा सनन्दनादि मुनि, दोषरहित सिद्ध और योगी उसी जल मे स्थित रहकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए श्रीकृष्ण का ही ध्यान कर रहे है ।।४२।।

बलकृष्णौ तथाक्रूर प्रत्यभिज्ञाय विस्मित ।
अचिन्तयद्रथाच्छीघ्र कथमनागताविति ।।४३
विवक्षो स्तम्भयामास वाच तस्य जनार्दनः ।
ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमभ्यागत पुनः ।।४४

ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपरि निष्ठितौ ।
रामकृष्णौ यथापूर्वं मनुष्यवपुषान्वितौ ॥४५
निमग्नश्च पुनस्तोये ददर्श च तथैव तौ ।
सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगैः ॥४६
ततो विज्ञातसद्भावस्स तु दानपतिस्तदा ।
तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७

इस प्रकार बलराम कृष्ण को वहाँ देखकर अक्रूरजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे सोचने लगे कि यह दोनो रथ से उतर कर इतनी जल्दी यहाँ कैसे आगये ? ॥४३॥ जब उन्होने कुछ कहने की इच्छा की तो उनकी वाणी ही रुक गई । तब उन्होने रथ के पास आकर बलराम–कृष्ण दोनों को ही पहिले के समान रथ पर बैठे देखा ॥४४-४५॥ इस पर अक्रूरजी पुनः यमुनाजी के जल मे घुसे तो उन्हें गन्धर्वों, सिद्धो, मुनियो और नागो से स्तुत होते हुए वे दोनो बालक उसी प्रकार दिखाई दिये ॥४६॥ तब तो अक्रूरजी उस यथार्थ रहस्य को समझ गये और सर्वविज्ञानात्मक अच्युत परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥४७॥

सन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने ।
व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः ॥४८
नमो विज्ञानपाराय पराय प्रकृते प्रभो ॥४९
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥५०
प्रसीद सर्व सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर ।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कल्पनाभिरुदीरित ॥५१
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येयप्रयोजन ।
अनाख्येयाभिधान त्वां नतोऽस्मि परमेश्वर ॥५२

अक्रूरजी ने कहा—सन्मात्र रूप, अचिन्त्य महिम, व्यापक, तथा अनेक रूप वाले उन परमात्म देव को नमस्कार है ॥४८॥ हे प्रभो ! आप अचिन्त्य एवं सर्वरूप हवि स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है । आप विज्ञान और

प्रकृति से परे को नमस्कार है ॥४९॥ आप एक ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और परमात्मा—इन पाँचो रूपो में स्थित है ॥५०॥ हे सर्व ! से सर्वात्मन् ! हे क्षर–अक्षरमय परमेश्वर ! आप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव रूप से कल्पित किये जाते है । हे प्रभो ! आप प्रसन्न हो ॥५१॥ हे परमेश्वर ! आपके नाम, रूप, प्रयोजन—सभी अकथनीय है। आपको मेरा नमस्कार है ॥५२॥

न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः ।
तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः ।
ततः कृष्णाच्युतानन्तविष्णुसंज्ञाभिरीड्यते ॥५४
सर्वार्थास्त्वमज विकल्पनाभिरेतै,
र्देवाद्यं भवति हि यैरनन्तविश्वम् ।
विश्वात्मा त्वमिति विकारहीनमेत-
त्सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत् ॥५५
त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता ।
धाता त्वं त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्निः ।
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको,
भिन्नार्थैर्जगदभिपासि शक्तिभेदैः ॥५६
विश्वं भवान्सृजति सूर्यगभस्तिरूपो,
विश्वेश ते गुणमयोऽयमतः प्रपञ्चः ।
रूपं परं सदिति वाचकमक्षरं य-
ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७
ॐ नमो वासुदेवाय नमस्संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥५८

हे नाथ ! आप नाम—जाति आदि कल्पनाओं से परे, नित्य, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्म हैं ॥५३॥ कल्पना के बिना किसी वस्तु का ज्ञान सम्भव न होने से ही कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामो मे आपकी आराधना

की जाती है ॥५४॥ हे अज ! जिन देवादि कल्पना वाले पदार्थों से यह अनन्त संसार उत्पन्न हुआ है, वह सब आप ही है। आप ही विकारहीन आत्म वस्तु होने सें विश्वात्मा है। इन सब मे आपसे भिन्न कोई भी पदार्थ नही है ॥५५॥ आप ही ब्रह्मा, पशुपति, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, समीर, अग्नि, वरुण, कुवेर और यम के रूप मे विभिन्न कार्य-भेद के द्वारा इस सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते है ॥५६॥ हे विश्वेश्वर ! आप ही सूर्य-रश्मियो के रूप मे होकर जगत् की सृष्टि करते है। इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण प्रपंच आपका ही स्वरूप है। जिसका वाचक सत् है, वह प्रणव आपका ही रूप है, इसलिये उस ज्ञानात्मक सत्स्वरूप को मैं प्रणाम करता हू ॥५७॥ वासुदेव, संकर्षण,प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूपो को मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥५८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

एवमन्तर्जले विष्णुमभिष्टूय स यादवः ।
अर्चयामास सर्वेशं धूपपुष्पैर्मनोमयैः ॥१
परित्यक्तान्यविषयो मनस्तत्र निवेश्य सः ।
ब्रह्मभूते चिरं स्थित्वा विरराम समाधितः ॥२
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामतिः ।
आजगाम रथं भूयो निर्गम्य यमुनाम्भसः ॥३
ददर्श रामकृष्णौ च यथापूर्वमवस्थितौ ।
स्मिताक्षस्तदाक्रूरस्तं च कृष्णोऽभ्यभाषत ॥४
नूनं ते दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले ।
विस्मयोत्फुल्लनयनो भवान्संलक्ष्यते यतः ॥५
अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्टं तत्र मयाच्युत ।
तदत्रापि हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम् ॥६
जगदेतन्महाश्चर्यरूपं यस्य महात्मनः ।
तेनाश्चर्यपरेणाहं भवता कृष्ण सङ्गत ॥७

तत्किमेतेन मथुरा यास्यामो मधुसूदन ।
बिभेमि कंसाद्धिग्जन्म परपिण्डोपजीविनाम् ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—यदुवंशी अक्रूरजी ने जल के भीतर भगवान् विष्णु की इस प्रकार स्तुति की और मनोभाव से ही धूप, दीपक, पुष्पादि से उनका पूजन किया ॥१॥ अन्य विषयों से चित्त को हटा कर उन्हीं में तन्मय करते हुए अक्रूरजी ने चिरकाल तक ध्यानावस्थित रहकर समाधि छोड़ दी ॥२॥ फिर अपने को धन्य मानते हुए यमुना-जल से निकल कर रथ के पास पहुँचे ॥३॥ वहाँ उन्होंने बलराम-कृष्ण को विस्मित नेत्रों से पहिले के समान ही रथ में बैठे हुए देखा । तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥४॥ श्रीकृष्ण बोले—हे अक्रूर ! आपने यमुनाजी के जल में अवश्य ही कोई विस्मय करने वाली वस्तु देखी है, यह बात आपके चकित नेत्रों से प्रतीत हो रही है ॥५॥ अक्रूर ने कहा—हे अच्युत ! यमुनाजी के जल में जो आश्चर्य मुझे दिखाई दिया था, उसे मैं इस समय भी अपने समक्ष देखता हूँ ॥६॥ हे कृष्ण ! जिसका स्वरूप यह आश्चर्यमय विश्व है, उन्हीं आप परम आश्चर्य रूप के साथ मेरा संग हुआ है ॥७॥ हे मधुसूदन ! अब उस आश्चर्य के विषय में क्या कहूँ ? अब हम शीघ्र ही मथुरा पहुँचना है, क्योंकि कंस से मैं अत्यन्त भयभीत हूँ । पराये अन्न के आधार पर जीवित रहने वालों का जीवन भी व्यर्थ है ॥८॥

इत्युक्त्वा चोदयामास स हयान् वातरंहस ।
सम्प्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम् ॥९
विलोक्य मथुरां कृष्णं रामं चाह स यादव ।
पद्भ्यां यातं महावीरौ रथेनैको विशाम्यहम् ॥१०
गन्तव्यं वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहम् ।
युवयोर्हि कृते वृद्धस्स कंसेन निरस्यते ॥११
इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम् ।
प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥१२
स्त्रीभिर्नरैश्च सानन्दं लोचनैरभिवीक्षितौ ।
जग्मतुर्लीलया वीरौ मत्तौ बालगजाविव ॥१३

यह कहकर अक्रूरजी ने वायुवेग वाले अपने अश्वों को चलाया और सायंकाल होने पर मथुरा पुरी में जा पहुँचे ॥९॥ उस मथुरा नगरी को देखकर बलराम-कृष्ण से अक्रूर ने कहा—हे महावीरो ! यहाँ से मैं अकेला ही रथ पर जाऊँगा, आप पैदल ही वहाँ आजाइये ॥१०॥ मथुरा में जाकर आप वसुदेवजी के घर में मत जाना, क्योंकि कंस उन वृद्ध वसुदेवजी का आपके कारण ही तिरस्कार किया करता है ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कहकर अक्रूरजी मथुरापुरी में प्रविष्ट होगये फिर बलराम और कृष्ण भी राज मार्ग के द्वारा पुरी में आगये ॥१२॥ मदमत्त तरुण हाथियों की-सी चाल चलते हुए उन दोनों वीरों को मथुरा के नर-नारी परम आनन्द पूर्वक देख रहे थे ॥१३॥

भ्रममाणौ ततो दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ।
अयाचेतां सुरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ ॥१४
कंसस्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविस्मयः ।
बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चै रामकेशवौ ॥१५
ततस्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः ।
पातयामास रोषेण रजकस्य शिरो भुवि ॥१६
हत्वादाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः ।
कृष्णरामौ मुदा युक्तौ मालाकारगृहं गतौ १७
विकासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविस्मतः ।
एतौ कस्य सुतौ यातौ मैत्रेयाचिन्तयत्तदा ॥१८
पीतनीलाम्बरधरौ तौ दृष्ट्वातिमनोहरौ ।
स तर्कयामास तदा भुवं देवावुपागतौ ॥१९
विकासिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः ।
भुवं विष्टभ्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम् ॥२०
प्रसादपरमौ नाथौ मम गेहमुपागतौ ।
धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीवनः ॥२१

मार्ग में उन्हें एक कपड़े रँगने वाला रजक दिखाई दिया, जिससे उन्होंने सुन्दर वस्त्रों की याचना की ॥१४॥ वह रजक कंस का कृपापात्र होने से अत्यंत

अहङ्कारी होगया था, इसलिये राम–कृष्ण द्वारा वस्त्र की याचना करने पर उसने विस्मय पूर्वक अनेक आक्षेप युक्त वचन कहे ॥१५॥ इस पर श्रीकृष्ण ने रुष्ट होकर अपनी हथेली के प्रहार से उस दुष्ट के मस्तक को पृथिवी पर गिरा दिया ॥१६॥ इस प्रकार उसका वध करके उन्होने उसके सब वस्त्रो को ले लिया और उन नीले–पीले वस्त्रो को पहिन कर हर्षित होते हुए एक माली के घर आये ॥१७॥ हे मैत्रेयजी ! उस माली ने जैसे ही उन्हें देखा वैसे ही उसके नेत्र हर्ष से विकसित होगये और वह विस्मय पूर्वक सोचने लगा कि यह किसके पुत्र, कहाँ से चले आ रहे हैं ? ॥१८॥ उन पीले–नीले वस्त्रो को धारण करने वाले मनोहर बालको को देखकर उसने दो देवताओ को पृथिवी पर आया हुआ समझा ॥१९॥ फिर उन खिले हुए मुखारविन्द वालो ने उससे पुष्पो की याचना की तब उसने अपने हाथो को टेक कर अपने शिर से भूमि को स्पर्श करते हुए कहा—हे नाथ ! आपने मेरे घर आकर बडी कृपा की है । मैं आज आपका पूजन करके धन्य हो जाऊँगा ॥२०-२१॥

तत. प्रहृष्टवदनस्तयो. पुष्पाणि कामत. ।
चारूण्येतान्यथैतानि प्रददौ स प्रलोभयन् ॥२२
पुनः पुन प्रणम्याभौ मालाकारो नरोत्तमौ ।
ददौ पुष्पाणि चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥२३
मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्न प्रददौ वरान् ।
श्रीस्त्वा मत्संश्रया भद्र न कदाचित्त्यजिष्यति ॥२४
बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा ।
यावद्दिनानि तावन्न नशिष्यति सन्ततिः ॥२५
भुक्त्वा च विपुलान्भोगास्त्वमन्ते मत्प्रसादतः ।
ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्य लोकमवाप्स्यसि ॥२६
धर्मे मनश्च ते भद्र सर्वकाल भविष्यति ।
युष्मत्सन्ततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥२७
नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्सन्ततिसम्भवः ।
अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥२८

इत्युक्त्वा तद्गृहात्कृष्णो बलदेवसहायवान् ।
निर्जगाम मुनिश्रेष्ठ मालाकारेण पूजितः ॥२९

फिर उस माली ने 'यह बहुत सुन्दर पुष्प हैं, यह अत्यन्त सुन्दर हैं' इस प्रकार प्रसन्न मुख से उन्हें आकर्षित कर-करके पुष्प प्रदान किये ॥२२॥ उसने उन दोनों को बारम्बार प्रणाम करते हुए अत्यन्त सुन्दर, सुगन्धित और मनोहर पुष्प दिये ॥२३॥ तब श्रीकृष्ण भी उस माली पर प्रसन्न होगये और उन्होंने उसे वर दिया कि मेरी आश्रिता लक्ष्मी कभी तेरा त्याग न करेगी ॥२४॥ हे सौम्य ! तेरा बल और धन कभी क्षीण नहीं होगा और जब तक दिनों का अस्तित्व रहेगा, तब तक तेरा वंश समाप्त न होगा ॥२५॥ तू भी अपने जीवन पर्यन्त विविध प्रकार के सुख-भोग करता हुआ, अन्त में मेरी कृपा से मेरा स्मरण करेगा, जिससे तुझे दिव्यलोक की प्राप्ति होगी ॥२६॥ हे भद्र ! तेरा चित्त सदा धर्म में लगा रहेगा और तेरे वंशज दीर्घ आयु वाले होंगे ॥२७॥ हे महाभाग ! संसार में सूर्य की स्थिति तक तेरे किसी भी वंशज को उपसर्ग दोष की प्राप्ति नहीं होगी ॥२८॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुनिवर ! यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने भ्राता बलरामजी सहित उस माली द्वारा पूजित होकर वहाँ से चल दिये ॥२९॥

बीसवाँ अध्याय

राजमार्गे ततः कृष्णस्सानुलेपनभाजनाम् ।
ददर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम् ॥१
तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम् ।
भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने ॥२
सकाममेव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति ।
प्राह सा ललितं कुब्जा तद्दर्शनबलात्कृता ॥३
कान्त कस्मान्न जानासि कंसेन विनियोजिताम् ।
नैकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ॥४

नान्यपिष्ट हि कंसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम् ।
भवाम्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम् ॥५

सुगन्धमेतद्राजार्हं रुचिरं रुचिरानने ।
आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने कुब्जा नाम की एक नवयौवना नारी को अनुलेपन का पात्र ग्रहण किये हुए राजमार्ग पर आते हुए देखा ॥१॥ तब उन्होंने उससे लालित्यपूर्ण वचनों में कहा—हे पद्मलोचने ! सत्य बता कि तू इस अनुलेपन को किस पुरुष के लिये ले जारही है ? ॥२॥ भगवान् द्वारा कामुक के समान ऐसा पूछा जाने पर अनुरागवती कुब्जा उनको देखकर आसक्त चित्त होगई और विलास पूर्वक कहने लगी ॥३॥ हे कान्त ! क्या तुम मुझे नहीं जानते ? राजा कंस द्वारा मैं अनुलेपन-कार्य में नियुक्त हूँ और मेरा नाम 'अनेकवक्रा' प्रसिद्ध है ॥४॥ राजा को मेरे द्वारा बनाया हुआ अनुलेपन ही अच्छा लगता है, इसीलिये मैं उनकी महती कृपापात्री हूँ ॥५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे सुन्दर मुखवाली ! यह सुन्दर सुगन्ध वाला उबटन तो राजा के योग्य ही है । यदि तुम्हारे पास कोई अनुलेपन हमारे देह के योग्य हो तो हमें देदो ॥६॥

श्रुत्वैतदाह सा कुब्जा गृह्यतामिति सादरम् ।
अनुलेपनं च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयोः ॥७

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
सेन्द्रचापौ व्यराजेतां सितकृष्णाविवाम्बुदौ ॥८
ततस्तां चिबुके शौरिरुल्लापनविधानवित् ।
उत्पाट्य तोलयामास द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना ॥९
चकर्ष पद्भ्यां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत् ।
ततस्सा ऋजुतां प्राप्ता योषितामभवद्वरा ॥१०
विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम् ।
वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं मम गेहं व्रजेति वै ॥११

एवमुक्तस्तया शौरी रामस्यालोक्य चाननम् ।
प्रहस्य कुब्जां तामाह नैकवक्रामनिन्दिताम् ॥१२
आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्रहसन्हरिः ।
विससर्ज जहासोच्चै रामस्यालोक्य चाननम् ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा सुन कर कुब्जा ने उनके शरीर पर लगाने योग्य अनुलेपनादि उन्हें प्रदान किये ॥७॥ तब वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ अनुलेपन-युक्त होकर इन्द्रधनुषमय श्याम और श्वेत बादलों के समान शोभा पाने लगे ॥८॥ फिर उल्लापन-विधान के ज्ञाता श्रीकृष्ण ने उसकी चिबुक को अपनी दो अँगुलियों मे उचका कर झटका दिया और अपने चरणों से उसके पाँव दबा लिये। इस प्रकार उन्होंने उसकी देह सीधी कर दी। इस प्रकार सीधी होकर कुब्जा सब स्त्रियों से सुन्दर प्रतीत होने लगी ॥९-१०॥ तब उसने भगवान् का वस्त्र पकड लिया और प्रेम गर्व से अलसाई हुई ललित वाणी मे कहने लगी कि 'मेरे घर पर पधारिये' ॥११॥ पहिले जिसके अनेक अङ्ग कुबड़े थे और जो अब सीधे अंग होने से सुन्दरी होगई थी, उस कुब्जा की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने बलरामजी के मुख की ओर देखते हुए हँस कर कहा—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा'। ऐसा कह कर उन्होंने कुब्जा को हँसते हुए विदा किया और बलरामजी के मुख की ओर देख कर उच्च हास करने लगे ॥१२-१३॥

भक्तिभेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीताम्बरौ तु तौ ।
धनुश्शाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१४
आयागं तद्धनूरत्नं ताभ्यां पृष्टैस्तु रक्षिभिः ।
आख्याते सहसा कृष्णो गृहीत्वापूरयद्धनुः ॥१५
ततः पूरयता तेन भज्यमानं बलाद्धनुः ।
चकार सुमहच्छब्दं मथुरा येन पूरिता ॥१६
अनुयुक्तौ ततस्तौ तु भग्ने धनुषि रक्षिभिः ।
रक्षिसैन्यं निहत्योभौ निष्क्रान्तौ कार्मुकालयात् ॥१७
अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य महद्धनुः ।
भग्नं श्रुत्वा च कंसोऽपि प्राह चाणूरमुष्टिकौ ॥१८

गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भ्या तु ममाग्रत ।
मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ ॥१९
नियुद्धे तद्विनाशेन भवद्भ्या तोषितो ह्यहम् ।
दास्याम्यभिमतान्कामान्नान्यथैतौ महाबलौ ॥२०
न्यायतोऽन्यायतो वापि भवद्भ्या तौ ममाहितौ ।
हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्य सामान्य वा भविष्यति ॥२१

फिर अनुलेपन और चित्र विचित्र मालाओ से विभूषित तथा क्रमश नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए बलराम और कृष्ण धनुर्यज्ञ के स्थान पर पहुँचे ॥१४॥ वहाँ जाकर उन्होने यज्ञीय धनुष के विषय मे यज्ञ रक्षको से पूछा और जब उन्होने बतलादिया तब श्रीकृष्ण ने उस धनुष को सहसा उठा लिया और उस पर प्रत्यचा चढाने लगे ॥१५॥ जब वह बल पूर्वक प्रत्यचा चढा रहे थे, तभी वह धनुष अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ टूट गया, जिससे सपूर्ण मथुरापुरी गूँज गई ॥१६॥ उस धनुष के टूटने पर उसके रक्षक उन्हे मारने को दौडे तब उन रक्षको की सेना को नष्ट करके उस यज्ञशाला से दोनो निकल आये ॥१७॥ इसके उपरान्त जब कस को अक्रूर के व्रज से लौट आने तथा उस महान् धनुष के भी टूटने का समाचार मिला तब उसने चाणूर मुष्टिक को बुलाकर कहा ॥१८॥ कस ने कहा—ये दोनो गोप-बालक यहाँ आगये और मेरे प्राणो का हरण करने के प्रयत्न मे हैं, इसलिये तुम उन्हे मल्लयुद्ध करके मार दो। यदि तुम उन्हे मार कर मुझे प्रसन्न करोगे तो मैं भी तुम्हारे मनोरथ पूर्ण कर दूँगा। मेरी इस बात को अन्यथा मत जानो ॥१९-२०॥ न्याय से अन्याय से, जिस प्रकार भी हो, मेरे इन महाबली शत्रुओ का वध कर डालो जब ये मारे जायेंगे तब यह सम्पूर्ण राज्य मेरा और तुम्हारा बराबर हो जायगा ॥२१॥

इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाहूय हस्तिपम् ।
प्रोवाचोच्चैस्त्वया मल्लसमाजद्वारि कुञ्जर ॥२२
स्थाप्य कुवलयापीडस्तेन तौ गोपदारकौ ।
घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥२३

तमप्याज्ञाप्य दृष्ट्वा च सर्वान्मञ्चानुपाकृतान् ।
आसन्नमरणः कंसः सूर्योदयमुदैक्षत ॥२४
ततः समस्तमञ्चेषु नागरस्स तदा जनः ।
राजमञ्चेषु चारूढास्सह भृत्यैर्नराधिपाः ॥२५
मल्लप्राश्निकवर्गश्च रङ्गमध्यसमीपगः ।
कृतः कंसेन कंसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थितः ॥२६
अन्तः पुराणां मञ्चाश्च तथान्ये परिकल्पिताः ।
अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नागरयोषिताम् ॥२७
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिताः ।
अक्रूरवसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥२८
नागरीयोषितां मध्ये देवकीपुत्रगर्धिनी ।
अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुखं स्थिता ॥२९

कंस ने अपने मल्लों को इस प्रकार कह कर अपने महावत को आज्ञा दी कि रंगभूमि के द्वार पर कुवलयापीड को खड़ा कर दो और जैसे ही वे गोप पुत्र यहाँ आवें, वैसे ही उस हाथी के द्वारा मरवा दो ॥२२-२३॥ महावत को इस प्रकार की आज्ञा देकर और सब मचों को यथा स्थान रखे देख कर आसन्न मृत्यु कंस सूर्य के उदित होने की बाट देखने लगा ॥२४॥ जब प्रातःकाल हुआ तब राजमंचों पर अपने अनुचरों सहित राजागण तथा सामान्य मंचों पर सभी नागरिक बैठ गये ॥२५॥ फिर रंगभूमि के बीच में युद्ध-निर्णायकों को स्थित कर एक उच्च सिंहासन पर कंस स्वयं बैठ गया ॥२६॥ वहाँ अन्तःपुर की महिलाओं, प्रमुख वरांगनाओं और नगर की प्रतिष्ठित नारियों के लिये पृथक् २ मंचों की रचना की गई थी ॥२७॥ कुछ अन्य मंचों पर नन्दादि गोपों को स्थान दिया गया, जिनके समीपस्थ मंचों पर अक्रूरजी और वसुदेवजी बैठे थे। ॥२८॥ नगर की महिलाओं के मध्य में ही बैठी हुई देवकीजी सोच रही थी कि अन्त समय में अपने पुत्र का मुख तो देख लूँगी ॥२९॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चापि वल्गति ।
हाहाकारपरे लोके ह्यास्फोटयति मुष्टिके ॥३०

इषद्धसन्तौ वीरौ बलभद्रजनार्दनौ ।
गोपवेषधरौ बालौ रङ्गद्वारमुपागतौ ॥३१
ततः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः ।
अभ्यधावत वेगेन हन्तुं गोपकुमारकौ ॥३२
हाहाकारो महाञ्जज्ञे रंगमध्ये द्विजोत्तम ।
बलदेवोऽनुजं दृष्ट्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३
हन्तव्यो हि महाभागनागोऽयं शत्रुचोदितः ॥३४

फिर तुहरी बज उठी, चाणूर अत्यन्त उछलने और मुष्टिक ताल ठोकने लगा। इससे लोगों में हाहाकार मचने लगा। उसी समय बलराम और कृष्ण भी कुछ हँसते हुए गोपवेष में रंगभूमि के द्वार पर आ पहुंचे ॥३०-३१॥ उनके आते ही महावत ने कुवलयापीड को प्रेरित किया, तब वह उनका वध करने के लिये वेग पूर्वक उनके ऊपर झपटा ॥३०॥ हे द्विजोत्तम ! उस समय रंगभूमि में घोर हाहाकार होने लगा, तब बलरामजी ने श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि करके उनसे कहा—हे महाभाग ! इस शत्रु द्वारा प्रेरित हाथी का वध कर देना ही उचित है ॥३३-३४॥

इत्युक्तस्सोऽग्रजेनाथ बलदेवेन वै द्विज ।
सिंहनादं ततश्चक्रे माधवः परवीरहा ॥३५
करेण करमाकृष्य तस्य केशिनिषूदनः ।
भ्रामयामास तं शौरिरैरावतसमं बले ॥३६
ईशोऽपि सर्वजगतां बाललीलानुसारतः ।
क्रीडित्वा सुचिरं कृष्णः करिदन्तपदान्तरे ॥३७
उत्पाट्य वामदन्तं तु दक्षिणेनैव पाणिना ।
ताडयामास यन्तारं तस्याशीच्छतधा शिरः ॥३८
दक्षिणं दन्तमुत्पाट्य बलभद्रोऽपि तत्क्षणात् ।
सगोपस्तेन पार्श्वस्थान् गजपालानपोथयत् ॥३९
ततस्सुत्प्लुत्य वेगेन रौहिणेयो महाबलः ।
जघान वामपादेन मस्तके हस्तिनं रुषा ॥४०

स पपात हतस्तेन बलभद्रेण लीलया।
सहस्राक्षेण वज्रेण ताडित पर्वतो यथा ॥४१

हे विप्र ! बड़े भाई बलरामजी के वचन सुन कर शत्रु संहारक भगवान् श्रीकृष्ण ने घोर सिंहनाद किया ॥३५॥ और उन केशी-हन्ता से ऐरावत के समान महाबली कुवलयापीड की सूँड को अपने हाथ में लेकर जोर से घुमाया ॥३६॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्व के ईश्वर है, फिर भी उन्होंने बाललीला का अनुसरण करके बहुत देर तक खेल करते हुए अपने दाये हाथ से हाथी का बाँया दाँत उखाड़ लिया और उसके द्वारा महावत पर आघात किया, जिससे महावत का शिर फट कर सैकड़ों खण्डों में विभक्त हो गया ॥३७-३८॥ उसी समय बलरामजी ने हाथी का दाया दात उखाड़ कर उसके निकटवर्ती महावतों का क्रोध पूर्वक वध कर डाला ॥३९॥ फिर उन महाबली रोहिणी पुत्र ने अत्यन्त वेग पूर्वक उछल कर कुवलयापीड के मस्तक पर अपने बाए पद से प्रहार किया ॥४०॥ इस प्रकार बलरामजी के द्वारा वह हाथी लीला पूर्वक ही अपनी जीवन लीला समाप्त करके जैसे इन्द्र वज्र के प्रहार से पर्वत गिर जाते हैं, वैसे ही पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४१॥

हत्वा कुवलयापीडं हस्त्यारोहप्रचोदितम् ।
मदासृगनुलिप्ताङ्गौ हस्तिदन्तवरायुधौ ॥४२
मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्वलीलावलोकिनौ ।
प्रविष्टौ सुमहारङ्गं बलभद्रजनार्दनौ ॥४३
हाहाकारो महाञ्जज्ञे महारङ्गे त्वनन्तरम् ।
कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मय ॥४४
सोऽयं येन हता घोरा पूतना बालघातिनी ।
क्षिप्तं तु शकटं येन भग्नौ तु यमलार्जुनौ ॥४५
सोऽयं यः कालियं नागं ममर्दारुह्य बालकः ।
धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्रं महागिरिः ॥४६
अरिष्टो धेनुकः केशी लीलयैव महात्मना ।
निहता येन दुर्वृत्ता दृश्यतामेष सोऽच्युत ॥४७

अथ चास्य महाबाहुर्बलभद्रोऽग्रतोऽग्रज ।
प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दन ॥४८
अय स कथ्यते प्राज्ञै पुराणार्थविशारदै. ।
गोपालो यादवं वंश मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥४९
अय हि सर्वलोकस्य विष्णोरखिलजन्मन ।
अवतीर्णो महीमशो नून भारहरो भुव. ॥५०

इस प्रकार महावत के द्वारा प्रेरित किये गये कुवलयापीड का वध करने से उसके मद और रुधिर मे सने हुए बलराम कृष्ण उनके दातो को पकडे हुए गर्व एव लीलामयी चितवन से देखते हुए मृगो के मध्य मे सिंह के निर्भयता पूर्वक चले आने के समान ही उस महान् रङ्गभूमि मे आ पहुचे ॥४२-४३॥ उस समय वहा अत्यन्त हाहाकार मचा हुआ था और उनके आते ही सब मे कृष्ण है, यह बलराम है, इस प्रकार विस्मय पूर्वक कहने लगे ॥४४॥ यह वही है जिसने बालको का घात करने वाली भयकरी पूतना का वध किया, छकडे को उलट दिया यमलार्जुन वृक्षो को उखाड दिया, कालिय नाग का दमन किया और सात रात्रि पर्यंत महान् पर्वत गोवर्धन को धारण किया था ॥४५-४६॥ यह वही अच्युत हैं, जिन्होने अरिष्ट, धेनुक और केशी आदि को खेल-खेल मे ही मार डाला था ॥४७॥ इनके आगे इनके ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी है, जो लीला पूर्वक चलने वाले तथा नेत्रो को अत्यन्त सुख देने वाले है ॥४८॥ पुराणार्थ के ज्ञाता विज्ञजनो का कथन है कि यही गोपाल यादवो का उद्धार करेंगे ॥४९॥ यह सर्वलोकात्मक एव सब कारण भगवान् विष्णु के ही अंशभूत हैं और यह भू-भार-हरण के निम ही पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥५०॥

इत्येव वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात् ।
उरस्तताप देवक्याः स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥५१
महोत्सवमिवासाद्य पुत्राननविलोकनात् ।
युवेव वसुदेवोऽभूद्विहायाभ्यागता जराम् ॥५२
विस्तारिताक्षियुगलो राजान्त पुरयोषिताम् ।
नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टु न विरराम तम् ॥५३

सख्य पश्यत कृष्णस्य मुखमत्यरुणेक्षणम् ।
गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाचितम् ॥५४
विकासिशरदम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् ।
परिभूय स्थित जन्म सफल क्रियता दृश ॥५५

जिस समय पुर वासीगण बलराम और कृष्ण के विषय में इस प्रकार कह रहे थे, उस समय स्नेहवश देवकी के स्तनो से दूध टपकने लगा और उस का हृदय अत्यन्त सन्तप्त हो उठा ॥५१॥ पुत्रो के मुख देखने के कारण उल्लसित मन वाले वसुदेवजी जैसे प्राप्त हुई वृद्धावस्था को त्याग कर पुन नवयौवन को प्राप्त हो गए हो ॥५२॥ राजा कस के अन्त पुर की महिलाए और नगर म निवास करने वाली स्त्रिया—सभी उन्हे टकटकी लगाकर देखने लगी ॥५३॥ उन्होंने कहा—हे सखियो कृष्ण का अरुण नेत्रो वाला श्रेष्ठ मुख तो देखो जो हाथी से युद्ध करने के श्रम के कारण स्वेद युक्त हो कर हिम-कणों के द्वारा सीचे गये शरत्कालीन विकसित कमल को भी फीका कर रहा है । इनक दर्शन से अपने नेत्रों को सफल बना लो ॥५४-५५॥

श्रीवत्साङ्क महद्धाम बालस्यैतद्विलोक्यताम् ।
विपक्षक्षपण वक्षो भुजयुग्म च भामिनि ॥५६
कि न पश्यसि दुग्धेन्दुमृणालधवलाकृतिम् ।
बलभद्रमिम नीलपरिधानमुपागतम् ॥५७
वल्गता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा सखि ।
क्रीडतो बलभद्रस्य हरेर्हास्य विलोक्यताम् ॥५८
सख्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमय हरि ।
समुपैति न सन्त्यत्र कि वृद्धा मुक्तकारिण ॥५९
क्व यौवनोन्मुखीभूतसुकुमारतनुर्हरि ।
क्व वज्रकठिनाभोगशरीरोऽय महासुर ॥६०
इमौ सुललितैरङ्गैर्वर्तेते नवयौवनौ ।
दैतेयमल्लाश्चाणूरप्रमुखास्त्वतिदारुणा ॥६१

नियुद्धप्राश्निकानां तु महानेष व्यतिक्रमः ।
यद्बालबलिनोर्युद्धं मध्यस्थैस्समुपेक्ष्यते ॥६२

हे भामिनि ! इस बालक के श्री वत्सांकित हृदय और शत्रुओं को हरा देने वाली दोनों भुजाओं को तो देखो ॥५६॥ इस पर किसी अन्य ने कहा—क्या तुम्हें कमलनाभ, दूध अथवा चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण वाले नीलाम्बरधारी बलराम दिखाई नहीं दे रहे हैं ? ॥५७॥ अरी सखियो ! देखो यह कृष्ण चाणूर के साथ युद्ध करने के लिये बढ़ रहे हैं। क्या कोई भी वृद्ध पुरुष इन्हें रोकने के लिये उद्यत नहीं होता ? ॥५७-५८॥ कहाँ तो युवावस्था में पैर रखने वाले यह सुकुमार देह वाले हरि और कहाँ यह वज्र के समान कठोर देह वाला यह घोर असुर ? ॥६०॥ यह दोनों नवयौवन सम्पन्न एवं अत्यंत कोमल शरीर वाले हैं तथा ये चाणूर आदि मल्ल-दैत्य अत्यन्त विकराल है ॥६१॥ मल्ल-युद्ध के निर्णायकों का यह अन्याय पूर्ण कार्य ही है कि जो मध्यस्थ होकर भी इस विषय में उपेक्षा करते हैं ॥६२॥

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदनश्चालयन्भुवम् ।
ववल्ग बद्धकक्ष्योऽन्तर्जनस्य भगवान्हरिः ॥६३
बलभद्रोऽपि चास्फोट्य ववल्ग ललितं तथा ।
पदे पदे तथा भूमिर्यन्न शीर्णा तदद्भुतम् ॥६४
चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः ।
नियुद्धकुशलो दैत्या बलभद्रेण मुष्टिकः ॥६५
सन्निपातावधूतैस्तु चाणूरेण समं हरिः ।
प्रक्षेपणैर्मुष्टिभिश्च कीलवज्रनिपातनैः ॥६६
पादोद्धूतैः प्रमृष्टैश्च तयोर्युद्धमभून्महत् ॥६७
अशस्त्रमतिघोरं तन्नयोर्युद्धं सुदारुणम् ।
बलप्राणविनिष्पाद्यं समाजोत्सवसन्निधौ ॥६८
यावद्यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह ।
प्राणहानिमवापाग्र्या तावत्तावल्लवाल्लवम् ॥६९

कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मय ।
खेदाच्चालयता कोपान्निजशेखरकेसरम् ॥७०

श्री पराशरजी ने कहा—नगर की महिलाएँ इस प्रकार वार्तालाप कर ही रही थी तभी भगवान् श्रीहरि ने अपनी कटि को कस लिया तथा पृथिवी को कम्पायमान करते हुए, सभी दर्शकों की उपस्थिति में, रंगभूमि में छलांग मारी ॥६३॥ अपने भुज दण्डों को ठोकते हुए बलरामजी भी उत्तेजना पूर्वक उछलने लगे। उस समय उनके पदाघात से पृथिवी विदीर्ण नहीं हुई—यही विस्मय की बात है ॥६४॥ फिर द्वन्द्व-युद्ध का प्रारंभ हुआ, जिसमें चाणूर से कृष्ण और मुष्टिक से बलरामजी भिड़ गये ॥६५॥ कृष्ण और चाणूर भिड़ कर, नीचे गिरा कर, मुष्टिका और कोहनी से प्रहार कर, पदाघात कर तथा परस्पर में अङ्ग से अङ्ग रगड़ कर युद्ध करने लगे। उस समय का वह युद्ध भयंकर हो उठा ॥६६-६७॥ इस प्रकार समाजोत्सव की सन्निधि में केवल बल और प्राण से ही सम्पन्न होने वाला बिना अस्त्र के ही अत्यन्त भयकर युद्ध होरहा था ।६८ चाणूर जैसे जैसे कृष्ण से अत्यन्त घोर भिड़न्त करने लगा, वैसे ही वैसे उसकी प्राण शक्ति का ह्रास होने लगा था ॥६९॥ उस समय जगन्मय भगवान् श्रीकृष्ण भी परिश्रम और क्रोध के कारण अपने पुष्पमय मुकुट की केशर को कम्पित करने वाले चाणूर से लीला पूर्वक ही युद्ध कर रहे थे ॥७०॥

बलक्षय विवृद्धि च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयो ।
वारयामास तूर्याणि कंस कोपपरायण ॥७१
मृदङ्गादिषु तूर्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्क्षणात् ।
खे सङ्गतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकश ॥७२
जय गोविन्द चाणूर जहि केशव दानवम् ।
अन्तर्द्धानगता देवास्तमूचुरतिहर्षिता ॥७३
चाणूरेण चिरं काल क्रीडित्वा मधुसूदन ।
उत्थाप्य भ्रामयामास तद्वधाय कृतोद्यम ॥७४
भ्रामयित्वा शतगुण दैत्यमल्लममित्रजित् ।
भूमावास्फोटयामास गगने गतजीवितम् ॥७५

भूमावास्फोटिनस्तेन चाणूर शतधाभवत् ।
रक्तस्रावमहापङ्कां चकार च तदा भुवम् ॥७६
बलदेवोऽपि तत्काल मुष्टिकेन महाबल ।
युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरि ॥७७
सोऽप्येन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ।
पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेष गतायुषम् ॥७८

उस समय चाणूर का बल घटता और श्रीकृष्ण का बल बढता हुआ देख कर कस भल्ला उठा और उसने बजते हुए सभी बाजे बद करा दिये ॥७१॥ परतु, रगभूमि मे बजते हुए तुरही आदि बाजो के बद होते ही आकाश मे अनको बाजे एक साथ ही बज उठे ॥७२॥ तभी देवताओ ने अप्रकट रूप से कहा—गोविन्द की जय ! हे केशव ! इस दानव चाणूर का वध कीजिये ॥७३॥ फिर उस चाणूर के साथ श्रीकृष्ण ने बहुत देर तक मल्लक्रीडा की और उसे मारने की इच्छा से उठा कर घुमाया ॥७४॥ शत्रुओ के जीतने वाले श्रीकृष्ण ने उस दैत्य को सैकडो बार आकाश मे फिराया और फिर पृथिवी पर डाल दिया ॥७५॥ इस प्रकार गिराये जाते ही उसके देह के सैकडो टूक हो गये और रक्त प्रवाहित होने से पृथिवी पर कीचड हो गई ॥७६॥ जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने चाणूर के साथ युद्ध किया था, उसी प्रकार महाबली बलरामजी भी मुष्टिक नामक मल्ल से भिड रहे थे ॥७७॥ मुष्टिक के मस्तक पर बलरामजी ने मुष्टिकाघात किया और वक्षस्थल पर अपने जानु से टक्कर मारी। फिर उस नि शेष आयु वाले दैत्य को पृथिवी पर पटक कर बुरी तरह मर्दित किया ॥७८॥

कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लराज महाबलम् ।
वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतले ॥७९
चाणूरे निहते मल्ले मुष्टिके विनिपातिते ।
नीते क्षय तोशलके सर्वे मल्ला प्रदुद्रुवु ॥८०
ववल्गतुस्ततो रङ्गे कृष्णसङ्कर्षणावुभौ ।
समानवयसो गोपान्बलादाकृष्य हर्षितौ ॥८१

कंसोऽपि कोपरक्ताक्षः प्राहोच्चैर्व्यायतान्नरान् ।
गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येतां बलादितः ॥८२
नन्दोऽपि गृह्यतां पापो निगलैरायसैरिह ।
अवृद्धार्हेण दण्डेन वसुदेवोऽपि वध्यताम् ॥८३
वल्गन्ति गोपाः कृष्णेन ये चेमे सहिताः पुरः ।
गावो निगृह्यतामेषां यच्चास्ति वसु किञ्चन ॥८४

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने महाबली तोशल पर बाँए हाथ की मुट्ठी से प्रहार किया और अन्त में धराशायी कर दिया ॥७९॥ चाणूर, मुष्टिक और तोशल जैसे महामल्लों के मरते ही सब मल्ल रंग भूमि से भाग गये ॥८०॥ उस समय कृष्ण और बलराम दोनों ही अपने समान आयु वाले गोपों से आलिंगन करते हुए हर्ष से उछलने लगे ॥८१॥ इस पर कंस के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उसने उपस्थित पुरुषों से कहा—अरे, कोई इन दोनों ग्वालों का इस समाज से निकाल बाहर करो ॥८२॥ पापात्मा नन्द को लोहे की जंजीरों में कस लो और वसुदेव को भी अवृद्धों जैसी कठोर यातना देकर मार डालो ॥८३॥ कृष्ण के साथ यह जितने भी ग्वाले उछल कूद कर रहे हैं, इन सब का संहार कर इनके गवादि धन को छीन लो ॥८४॥

एवमाज्ञापयन्तं तु प्रहस्य मधुसूदनः ।
उत्प्लुत्यारुह्य तं मञ्चं कंसं जग्राह वेगतः ॥८५
केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनीतले ।
स कंसं पातयामास तस्योपरि पपात च ॥८६
अशेषजगदाधारगुरुणा पततोपरि ।
कृष्णेन त्याजितः प्राणानुग्रसेनात्मजो नृपः ॥८७
मृतस्य केशेषु तदा गृहीत्वा मधुसूदनः ।
चकर्ष देहं कंसस्य रंगमध्ये महाबलः ॥८८
गौरवेणातिमहता परिखा तेन कृष्यता ।
कृता कंसस्य देहेन वेगेनेव महाम्भसः ॥८९

केशे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रुषा ।
सुमालो बलभद्रेण लीलयैव निपातितः ॥९०
ततो हाहाकृतं सर्वमासीत्तद्रंगमण्डलम् ।
अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम् ॥९१

राजा कंस इस प्रकार की आज्ञा दे ही रहा था, तभी श्रीकृष्ण हँसते-हँसते उसके सिंहासन पर उछल कर चढ़ गये और तुरंत ही उसे पकड़ लिया ॥८५॥ फिर उसके केश पकड़ कर खींचते हुए पृथिवी पर दे मारा और फिर स्वयं भी उसके ऊपर कूद पड़े। इस अवस्था में उसके सिर का मुकुट उतर कर पृथक् जा गिरा ॥८६॥ जगदाधार कृष्ण के ऊपर गिरते ही उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया ॥८७॥ फिर उन महाबली कृष्ण ने मरे हुए कंस के बालों को पकड़ कर उसके शरीर को पृथिवी पर घसीटा ॥८८॥ कंस का शरीर इतना भारी था कि उसके घसीटे जाने से जल-वेग से पड़ी हुई दरार के समान पृथिवी फट गई ॥८९॥ जब श्रीकृष्ण ने कंस के केश पकड़े थे, तभी उसके भाई सुमाली ने उन पर क्रोध पूर्वक आक्रमण किया, परंतु बलरामजी ने उसका लीला पूर्वक ही वध कर डाला ॥९०॥ इस प्रकार मथुरेश कंस को कृष्ण द्वारा मारा जाता हुआ देख कर सभी उपस्थित जन समाज हाहाकार कर उठा ॥९१॥

कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरः ।
देवक्याश्च महाबाहुर्बलदेवसहायवान् ॥९२
उत्थाप्य वसुदेवस्तं देवकी च जनार्दनम् ।
स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ ॥९३
प्रसीद सीदतां दत्तो देवानां यो वरः प्रभो ।
तथावयोः प्रसादेन कृतोद्धारस्स केशव ॥९४
आराधितो यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम ।
दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन नः पावितं कुलम् ॥९५
त्वमन्तः सर्वभूतानां सर्वभूतमयः स्थितः ।
प्रवर्तते समस्तात्मंस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥९६

यज्ञैस्त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत ।
त्वमेव यज्ञो यष्टा च यज्वना परमेश्वर ॥९७
समुद्भवस्समस्तस्य जगतस्त्वं जनार्दन ॥९८
सापह्नव मम मनो यदेतत्त्वयि जायते ।
देवक्याश्चात्मजप्रीत्या तदत्यन्तविडम्बना ॥९९
त्वं कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान् ।
त्वां मनुष्यस्य कस्यैषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति ॥१००

तभी महाबाहु श्रीकृष्ण ने बलरामजी के सहित आकर वसुदेव और देवकी के चरण पकडे ॥९२॥ उस समय उद्धव काल में कहे हुए भगवान् के वचनों को याद करके वसुदेव देवकी ने श्रीकृष्ण को पृथिवी से उठाया और स्वयं उनके समक्ष विनीत भाव से खडे होगये ॥९३॥ श्री वसुदेवजी ने कहा—हे प्रभो ! हे केशव ! हम पर प्रसन्न हूजिये। आपने देवताओं को जो वर प्रदान किया था उसे हम पर भी कृपा करते हुए पूर्ण कर दिया ॥९४॥ हे भगवन् ! मेरे द्वारा आराधन करने पर आपने दुष्टों के संहारार्थ मेरे यहाँ जन्म लेकर हमारे कुल को ही पवित्र कर दिया है ॥९५॥ आप सर्वभूतात्मक तथा सभी भूतों में अवस्थित हैं। हे सर्वात्मन् ! भूत, भविष्यत् की प्रवृत्ति भी आपसे ही है ॥९६॥ हे अचिन्त्य ! हे अच्युत ! हे सर्व देवात्मक देव ! सभी यज्ञों के द्वारा आपका ही यजन होता है तथा आप ही याज्ञिकों से याजक और यज्ञरूप हैं ।९७। हे जनार्दन ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता हैं, आपके प्रति आत्मज भाव होने से ही मेरा और देवकी का चित्त भ्रांत होगया है, यह कैसी विडम्बना है ॥९८-९९॥ आप ही सब भूतों के कर्त्ता, अनादि तथा अन्त–रहित है, फिर ऐसा कौन-सा मनुष्य होगा, जिसकी जिह्वा आपको पुत्र कहेगी ॥१००॥

जगदेतज्जगन्नाथ सम्भूतमखिलं यत ।
कया युक्त्या विना मायां सोऽस्मत्तः सम्भविष्यति ॥१०१
यस्मिन्प्रतिष्ठितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सकोष्ठोत्सङ्गशयनो मानुषो जायते कथम् ॥१०२

स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्व-
मशावतारकरणेन ममासि पुत्र.।
आब्रह्मपादपमिद जगदेतदीश
त्वत्ता विमोहयसि किं पुरुषोत्तमास्मान् ॥१०३

मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति
कसाद्भय कृतमपास्तभयातितीव्रम् ।
नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलेन ।
वृद्धि गतोऽसि मम नास्ति ममत्वमीश ॥१०४

कर्माणि रुद्रमरुदश्विशतक्रतूना ।
साध्यानि यस्य न भवन्ति निरीक्षितानि ।
त्व विष्णुरीश जगतामुपकारहेतोः ।
प्राप्तोऽसि न परिगतो विगतो हि मोह ॥१०५

हे जगदीश्वर ! जिनसे इस सम्पूर्ण ससार का प्राकट्य हुआ है, वह माया शक्ति के अतिरिक्त अन्य किस प्रकार से हमारे द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं ? ॥१०१॥ जिसमें सम्पूर्ण चराचर विश्व स्थित है, वह ईश्वर कोख और गोद में सोने वाला मानव किस प्रकार से हो सकता है ? ॥१०२॥ हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर अपने अशावतार के द्वारा ससार की रक्षा करिये। हे परमेश्वर ! मैं जानता हूँ कि आप मेरे पुत्र नहीं है, क्योंकि ब्रह्मादि से युक्त यह सम्पूर्ण विश्व आप ही की रचना है। फिर, आप हमें मोह में क्यों डाल रहे हैं? ॥१०३॥ हे भयातीत ! मायावश आपको पुत्र समझते हुए ही मैं कस से अत्यत भयभीत रहा था, और उसी शत्रु के कारण आपको गोकुल पहुचा आया था। फिर आप वहीं रहते हुए इस वय-वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिये भी आपके प्रति मेरा ममत्व नहीं रहा है ॥१०४॥ जो कर्म रुद्र, मरुद्गण और इन्द्र द्वारा भी किये जाने सभव नहीं हैं, वे आपके द्वारा होते हुए मैंने देखे हैं। इससे मेरा मोह नष्ट हो गया है। आप ही ईश्वर एव भगवान् विष्णु हैं तथा लोक-कल्याण के लिये ही आप अवतीर्ण हुए हैं ॥१०५॥

इक्कीसवाँ अध्याय

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्मदर्शनात् ।
देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा माया पुनर्हरिः ।
मोहाय यदुचक्रस्य विततान स वैष्णवीम् ॥१
उवाच चाम्ब हे तात चिरादुत्कण्ठितेन मे ।
भवन्तौ कंसभीतेन दृष्टौ सङ्कर्षणेन च ॥२
कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते ॥३
गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ।
कुर्वतां सफलः कालो देहिनां तात जायते ॥४
तत्क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः ।
कंसवीर्यप्रतापाभ्यामावयोः परवश्ययोः ॥५
इत्युक्त्वाथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमात् ।
यथावदभिपूज्याथ चक्रतुः पौरमाननम् ॥६
कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य हतं भुवि ।
विलेपुर्मातरश्चास्य दुःखशोकपरिप्लुताः ॥७
बहुप्रकारमत्यर्थं पश्चात्तापातुरो हरिः ।
तास्समाश्वासयामास स्वयमस्राविलेक्षणः ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—जब भगवान् ने यह देखा कि उनके ईश्वरीय कर्मों को देखकर वसुदेव-देवकी को विज्ञान उत्पन्न हो गया है, तब उन्होंने यादवों को मोह में डालने के लिये अपनी माया को विस्तृत किया ॥१॥ उन्होंने कहा—हे अम्ब ! हे तात ! और बलरामजी दोनों ही कंस के भय से बहुत समय से छिपकर रहते हुए भी आपके दर्शनों के लिये लालायित थे, जिसकी आज हमें प्राप्ति हुई है ॥२॥ माता-पिता की सेवा किये बिना व्यतीत हुआ आयु-भाग असाधुत्व को प्राप्त कराता हुआ व्यर्थ ही चला जाता है ॥३॥ हे तात ! शरीर धारियों के जीवन की सफलता तो गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिता

उस निशक चित्त से कहिये ॥११॥ ययाति के शापवश यद्यपि हमारे वश को राज्य करने का अधिकार नही है, फिर भी आप मुझ सवक के सामने अन्य राजाओं को क्या, देवताओं को भी आज्ञा देन म समर्थ है ॥१२। श्री पराशरजी ने कहा—मनुष्य रूप धारी भगवान् ने उग्रसेन से इस प्रकार कह कर वायु का स्मरण किया और उसके उपस्थित होते ही उससे कहने लगे ॥१३॥ हे वायो ! तुम इन्द्र के पास जाकर उससे कहो कि महाराज उग्रसेन के लिये अपनी सुधर्मा नाम की सभा प्रदान करदो ॥१४॥ श्रीकृष्ण का कहना है कि यह सुधर्मा नाम सभा राजा के लिये ही शोभनीय है, इसलिये इसम यदुवश का प्रतिष्ठित होना उचित है ॥१५॥

इत्युक्त पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम् ।
ददौ सोऽपि सुधर्माख्या सभा वायोः पुरन्दर ॥१६
वायुना चाहृता दिव्या सभा ते यदुपुङ्गवा ।
बुभुजस्सर्वरत्नाढ्या गोविन्दभुजसश्रया ॥१७
विदिताखिलविज्ञानो सर्वज्ञानमयावपि ।
शिष्याचार्यक्रम वीरौ ख्यापयन्तौ यदूत्तमौ ॥१८
ततस्सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ।
विद्यार्थं जग्मतुर्बालौ कृतोपनयनक्रमौ ॥१९
भेदाभ्यासकृतप्रीती सङ्कर्षणजनार्दनौ ।
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरौ हि तौ ॥२०
दर्शयाञ्चक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ।
सरहस्य धनुर्वेद ससङ्ग्रहमधीयताम् ॥२१
अहोरात्रचतुष्षष्ट्या तदद्भुतमभूद्द्विज ।
सान्दीपनिरसम्भाव्य तयो कर्मातिमानुषम् ॥२२
विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ ।
साङ्गांश्च चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥२३
अस्त्रग्रामसशेष प्रोक्तमात्रमवाप्य तौ ।
ऊचतुर्व्रियता या ते दातव्या गुरुदक्षिणा ॥२४

श्रीपराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वायु ने इन्द्र के पास जाकर सब बात कही जिस पर उसने वह सभा वायु को दे दी ।।१६।। तब उस सर्वरत्नमयी दिव्य सभा का उपभोग श्रीकृष्ण के भुज बल के आश्रित हुए यादव करने लगे ।।१७।। फिर सभी विज्ञानों के ज्ञाता श्रीकृष्ण और बलराम गुरु शिष्य का सम्बन्ध प्रकट करने के लिये उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्या पढ़ने के लिये काशी में उत्पन्न श्री सन्दीपन मुनि के यहाँ अवन्तिकापुर गये ।।१८ १९।। वहाँ कृष्ण और बलराम सान्दीपन के शिष्य होकर वेदाभ्यास करते हुए गुरु की सेवा-सुश्रूषादि लोक-शिष्टाचार पूर्वक रहने लगे। उन्होंने केवल चौंसठ दिन में ही रहस्य और संग्रह के सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा पूर्ण करली। सान्दीपन ने उनके असम्भव एवं अमानवीय कर्मों को देखा तो सूर्य-चन्द्रमा को ही अपने घर आया हुआ समझा। उन्होंने सर्वांग सहित चारों वेद, सभी शास्त्र तथा अस्त्र विद्या को एक बार सुनकर सीख लिया और फिर गुरुजी से पूछा—आपको गुरुदक्षिणा में क्या दिया जाय ? ।।२०-२४।।

सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म महामतिः ।
अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे ।।२५
गृहीतास्त्रौ ततस्तौ तु मार्घ्यहस्तो महोदधिः ।
उवाच न मया पुत्रो हृतस्सान्दीपनेरिति ।।२६
दैत्यः पञ्चजनो नाम शङ्खरूपस्स बालकम् ।
जग्राह योऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ।।२७
इत्युक्तोऽन्तर्जलं गत्वा हत्वा पञ्चजनं च तम् ।
कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभवं शङ्खमुत्तमम् ।।२८
यस्य नादेन दैत्यानां बलहानिरजायत ।
देवानां ववृधे तेजो यात्यधर्मश्च सङ्क्षयम् ।।२९
तं पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरं हरिः ।
बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वतं यमम् ।।३०
तं बालं यातनासंस्थं यथापूर्वशरीरिणम् ।
पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिनां वरः ।।३१

मथुरा च पुन प्राप्तावुग्रमेनेन पालिताम् ।
प्रहृष्टपुरुपस्त्रीकामुभौ रामजनार्दनौ ॥३२

महामनि मान्दीपन न उनको अद्भुत कर्मा देखकर प्रभास क्षेत्र स्थित नमक के समुद्र मे डूबकर मृत्यु को प्राप्त हुए पुत्र की उनसे याचना की ॥२५॥ तदनन्तर वे शस्त्र लेकर समुद्र के निकट गये तब समुद्र स्वय ही अर्घ्य लेकर उनसे सामने आया और कहने लगा कि हे प्रभो ! सान्दीपन के पुत्र का हरण मैंने नही किया है ॥२६॥ हे असुर सूदन ! मेरे जल मे पचजन नामक एक दैत्य शख रूप से निवास करता है, उसने ही उस बालक का हरण किया है ॥२७॥ श्री पराशरजी ने कहा—समुद्र की बात सुनकर श्रीकृष्ण उसके जल मे गये और वहाँ उन्होंने पचजन को मार कर उसकी अस्थियो से उत्पन्न शख को ग्रहण कर लिया ॥२८॥ उस शख के शब्द से दैत्यो का बल क्षीण होता, देवताओ के तेज की वृद्धि होती और अधर्म नष्ट हो जाता है ॥२९॥ उसी पाँचजन्य शख का घोष करते हुए कृष्ण-बलराम यमपुरी पहुँचे और वहाँ सूर्य पुत्र यम को पराजित कर नरक की यन्त्रणा भोगते हुए उस बालक को पूर्ववत् देह मे स्थापित कर उसके पिता के पास लाकर सौंप दिया ॥३०-३१॥ फिर जिस मथुरापुरी मे सब स्त्री-पुरुष आनन्द मना रहे थे, उस उग्रसेन द्वारा पालित पुरी मे कृष्ण-बलराम लौट आये ॥३२॥

बाईसवाँ अध्याय

जरासन्धसुते कंस उपयेमे महाबल ।
अस्ति प्राप्ति च मैत्रेय तयोर्भर्तृ हरण हरिम् ॥१
महाबलपरीवारो मगधाधिपतिर्बली ।
हन्तुमभ्याययौ कोपाज्जरासन्धस्सयादवम् ॥२
उपत्म मथुरा सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः ।
अक्षौहिणीभिस्सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृत ॥३

निष्क्रम्याल्पपरीवारावुभौ रामजनार्दनौ ।
युयुधाते समं तस्य बलिनौ बलिसैनिकैः ॥४
ततो रामश्च कृष्णश्च मतिं चक्रतुरञ्जसा ।
आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तम ॥५
अनन्तरं हरेश्शार्ङ्गं तूणौ चाक्षयसायकौ ।
आकाशादागतौ विप्र तथा कौमोदकी गदा ॥६
हलं च बलभद्रस्य गगनादागतं महत् ।
मनसोऽभिमतं विप्र सुनन्दं मुसलं तथा ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! महाबली कंस का विवाह जरासन्ध की पुत्री अस्ति और प्राप्ति से हुआ, वह बलवान् मगधराज जरासन्ध ने अपने जामाता के वधिक श्रीहरि को सम्पूर्ण यादवों के सहित नष्ट करने के लिये बहुत बड़ी सेना लेकर मथुरापुरी पर आक्रमण किया ॥१-२॥ उस समय मगधराज की तेईस अक्षौहिणी सेना से मथुरापुरी घिरी हुई थी ॥३॥ तब बलराम और कृष्ण थोड़ी-सी सेना साथ लेकर पुरी से बाहर आये और जरासन्ध के बलवान् सैनिकों से भिड़ गये ॥४॥ हे मुनिवर ! उस युद्ध में बलराम—कृष्ण ने अपने प्राचीन शस्त्रों को ग्रहण करने की इच्छा की ॥५॥ श्रीकृष्ण द्वारा स्मरण करते ही उनका शार्ङ्ग धनुष, अक्षय बाणों से परिपूर्ण दो तरकश और कौमोद नामक गदा—यह सब आकाश से उनकी सेवा में आगये ॥६॥ हे विप्र ! बलरामजी के लिये भी उनका इच्छित हल तथा सुनन्द नामक मूसल आकाश से उनके पास आगये ॥७॥

ततो युद्धे पराजित्य ससैन्यं मगधाधिपम् ।
पुरीं विविशतुर्वीरावुभौ रामजनार्दनौ ॥८
जिते तस्मिन्सुदुर्वृत्ते जरासन्धे महामुने ।
जीवमाने गते कृष्णस्तेनामन्यत नाजितम् ॥९
पुनरप्याजगामाथ जरासन्धो बलान्वितः ।
जितश्च रामकृष्णाभ्यामपक्रान्तो द्विजोत्तम ॥१०

दश चाष्टौ च सङ्ग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः ।
यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥११
सर्वेष्वेतेषु युद्धेषु यादवैस्स पराजितः ।
अपक्रान्तो जरासन्धस्स्वल्पसैन्यैर्बलाधिकः ॥१२
न तद्बलं यादवानां विजितं यदनेकशः ।
तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः ॥१३
मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतीपतेः ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥१४

इसके पश्चात् बलराम और कृष्ण ने जरासन्ध को सेना के सहित पराजित कर दिया और फिर मथुरा नगरी को लौट आये ॥८॥ हे महामुने ! उस दुर्वृत्त जरासन्ध को हरा कर भी उसके जीवित बच निकलने के कारण श्रीकृष्ण ने अपने को विजेता नहीं माना ॥९॥ हे द्विजोत्तम ! जरासन्ध ने उतनी ही सेना लेकर पुनः मथुरा पर आक्रमण किया, परन्तु बलराम-कृष्ण से हार कर भाग गया ॥१०॥ इस प्रकार उस अत्यन्त दुर्मद जरासन्ध ने यादवों के साथ अठारह बार संग्राम किया ॥११॥ इन सभी संग्रामों में वह बहुत अधिक सेना के साथ आकर भी अल्प सेना वाले यादवों से पराजित होकर चला गया ॥१२॥ यादवों की अल्प सेना भी उससे न हार सकी, यह सब भगवान् विष्णु के अंश रूप श्रीकृष्ण की सन्निधि की ही महिमा थी ॥१३॥ उन मनुष्य धर्म का अनुकरण करने वाले जगत्पति की यह लीला है जो वे अपने शत्रुओं पर विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते हैं ॥१४॥

मनसैव जगत्सृष्टिं संहारं च करोति यः ।
तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः ॥१५
तथापि यो मनुष्याणां धर्मस्तमनुवर्तते ।
कुर्वन्बलवता सन्धिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ ॥१६
साम चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन् ।
करोति दण्डपातं च क्वचिदेव पलायनम् ॥१७

मनुष्यदेहिना चेष्टामित्येवमनुवर्तते ।
लीला जगत्पतेस्तस्यच्छन्दतः परिवर्तते ॥१८

जिनके सङ्कल्प मात्र मे विश्व की उत्पत्ति और संहार करते हैं, उन्हें अपने शत्रुओ को नष्ट करने के लिये कितना प्रयत्न करना होता है ? ॥१५॥ फिर भी वे बलवान् पुरुषो से सन्धि और निर्बलो से विग्रह करके मनुष्य धर्म के अनुकरण मे लगे हैं ॥१६॥ वे कही साम-नीति, कही दान-नीति, कही दण्ड नीति और कही भेद-नीति से कार्य लेते है और आवश्यकता पडने पर कही युद्ध मे से भाग भी आते है ॥१७॥ इस मनुष्य शरीरियो की चेष्टाओ का अनुसरण करते हुए वे स्वेच्छा पूर्वक लीलाएं करते रहते है ॥१८॥

तेईसवां अध्याय

गार्ग्यं गोष्ठ्या द्विज स्यालष्षण्ढ इत्युक्तवान्द्विज ।
यदूना सन्निधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा ॥१
ततः कोपपरीतात्मा दक्षिणापथमेत्य सः ।
सुतमिच्छन्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ॥२
आराधयन्महादेव लोहचूर्णमभक्षयत् ।
ददौ वर च तुष्टोऽस्मै वर्षे तु द्वादशे हरः ॥३
सन्तोषयामास च तं यवनेशो ह्यनात्मजः ।
तद्योषित्सङ्गमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसन्निभः ॥४
त कालयवन नाम राज्ये स्वे यवनेश्वर ।
अभिषिच्य वन वज्राग्रकठिनोरसम् ॥५
स तु वीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान् ।
अपृच्छन्नारदस्तस्मै कथयामास यादवान् ॥६
म्लेच्छकोटिसहस्राणा सहस्रैस्सोऽभिसंवृत ।
गजाश्वरथसम्पन्नैश्चकार परमोद्यमम् ॥७

श्री पराशरजी बोले—हे द्विज ! एक यादवों के समाज में महर्षि गार्ग्य से उनके साले ने षण्ढ (पुंसत्वहीन) कह दिया, उस समय सभी यादव हँसने लगे ।।१।। इससे महर्षि गार्ग्य अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने दक्षिण-समुद्र के किनारे पर जाकर यादवों के लिये भयावह हो सके, ऐसे पुत्र की कामना से तप किया ।।२।। उन्होंने केवल लौह चूर्ण भक्षण करते हुए भगवान् शङ्कर की आराधना की, तब बारहवें वर्ष में शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने महर्षि गार्ग्य को इच्छित वर दिया ।।३।। एक यवनराज पुत्र हीन था, उसने महर्षि गार्ग्य की सेवा-सुश्रुषा करके उन्हें प्रसन्न किया तब उसकी स्त्री की संगति से एक भँवर के समान काले रङ्ग का बालक उत्पन्न हुआ ।।४।। उस कालयवन नामक बालक का वक्ष स्थल अत्यन्त हढ था । यवनराज ने उसका राज्य पर अभिषेक किया और स्वयं वन को चला गया ।।५।। फिर बल विक्रम के मद में उन्मत्त हुए कालयवन ने नारदजी से प्रश्न किया कि पृथिवी पर कौन–कौन से राजा अधिक बलवान् हैं, तब नारदजी ने यादवों को ही अधिक बलशाली बतलाया ।।६।। यह सुनकर कालयवन असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और म्लेच्छ सेना आदि को मथुरा पर चढ़ाई करने के लिये तैयार करने लगा ।।७।।

प्रययौ सोऽव्यवच्छिन्नं छिन्नयानो दिने दिने ।
यादवान्प्रति सामर्षो मैत्रेय मथुरां पुरीम् ।।८
कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपितं यादवं बलम् ।
यवनेन रणे गम्यं मागधस्य भविष्यति ।।९
मागधस्य बलं क्षीणं स कालयवनो बली ।
हन्तैतदेवमायातं यदूनां व्यसनं द्विधा ।।१०
तस्माद् दुर्गं करिष्यामि यदूनामरिदुर्जयम् ।
स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयुः किं पुनर्वृष्णिपुङ्गवाः ।।११
मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितेऽपि वा ।
यादवाभिभवं दुष्टा मा कुर्वन्त्वरयोऽधिकाः ।।१२
इति सञ्चिन्त्य गोविन्दो योजनानां महोदधिम् ।
ययाचे द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे ।।१३

दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना ।
तत्क्रोधजेन मैत्रेय भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२१

जब कालयवन मथुरा के निकट पहुँचा तभी श्रीकृष्ण ने सब मथुरावासियों को द्वारका में जा पहुँचाया और स्वयं मथुरा में लौट आये ॥१५॥ कालयवन की सेना के द्वारा मथुरा के घेर लिये जाने पर जब श्रीकृष्ण निःशस्त्र ही मथुरा नगरी से बाहर निकले तभी कालयवन ने उन्हें देख लिया ॥१६॥ जो महायोगियों के भी चिन्तन में नहीं आते, उन्हीं भगवान् कृष्ण को बाहुमात्र से आता देखकर कालयवन उनके पीछे दौड़ पड़ा ॥१७॥ कालयवन को पीछे आते देखकर भागते हुए श्रीकृष्ण उस गुफा में प्रविष्ट हुए, जिसमें महाबली राजा मुचुकुन्द शयन कर रहा था ॥१८॥ उस बुद्धिहीन कालयवन ने गुफा में जाकर मुचुकुन्द को कृष्ण समझा और उसके शयन करते हुए में ही पद-प्रहार किया ॥१९॥ उसके पदाघात से मुचुकुन्द की नींद खुल गई और उसने उठकर अपने सामने कालयवन को खड़ा हुआ देखा ॥२०॥ हे मैत्रेयजी ! मुचुकुन्द ने जैसे ही उस यवन को देखा, वैसे ही वह उसकी क्रोधाग्नि में दग्ध होगया ॥२१॥

स हि देवासुरे युद्धे गतो हत्वा महासुरान् ।
निद्रार्त्तस्सुमहाकाल निद्रां वव्रे वरं सुरान् ॥२२
प्रोक्तश्च देवैस्ससुप्तं यस्त्वामुत्थापयिष्यति ।
देहजेनाग्निना सद्यस्स तु भस्मीभविष्यति ॥२३
एवं दग्ध्वा स तं पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम् ।
कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शशिनः कुले ॥२४
वसुदेवस्य तनयो यदोर्वंशसमुद्भव ।
मुचुकुन्दोऽपि तत्रासौ वृद्धगार्ग्यवचोऽस्मरत् ॥२५
सस्मृत्य प्रणिपत्यैनं सर्वं सर्वेश्वरं हरिम् ।
प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरंशस्त्वं परमेश्वरः ॥२६
पुरा गार्ग्येण कथितमष्टाविंशतिमे युगे ।
द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवंशे भविष्यति । २७

बुद्धिरव्याकृतप्राणाः प्राणेशस्त्व तथा पुमान् ।
पुंसः परतरं यच्च व्याप्यजन्मविकारवत् ॥३३
शब्दादिहीनमजरममेय क्षयवर्जितम् ।
अवृद्धिनाश तद्ब्रह्म त्वमाद्यन्तविवर्जितम् ॥३४
त्वत्तोऽमरास्मपितरो यक्षगन्धर्वकिन्नरा ।
सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३५
सरीसृपा मृगास्सर्वे त्वत्तस्सर्वे महीरुहाः ।
यच्च भूत भविष्य च किञ्चिदत्र चराचरम् ॥३६

हे देव ! जब देवासुर सग्राम हुआ था, तब महाबली दैत्य भी मेरे तेज को सहन करने मे समर्थ नही थे, वही मैं आपके तेज को सहन नही कर रहा हू ॥३०॥ विश्व मे पतितो के आप ही परम आश्रय और शरणागतो के सङ्कट को दूर करने वाले हैं। इसलिये आप प्रसन्न होकर मेरे सङ्कट को नष्ट करिये ॥३१॥ हे प्रभो ! आप ही समुद्र, नदी, वन, पृथिवी, आकाश, वायु, जल और अग्नि है तथा मन भी आप ही हैं ॥३२॥ आप ही बुद्धि, प्राण, तथा प्राणो के अधिष्ठाता पुरुष हैं। आप ही पुरुष से परे व्यापक अजन्मा और निर्विकार प्रभु है ॥३३॥ आप ही शब्दादि से परे, जरा-रहित, अमेय, अक्षय, अविनाशी, वृद्धि-रहित तथा आदि-अन्त से परे हैं ॥३४॥ देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और अप्सराओ की उत्पत्ति आप से ही हुई है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, मृग, वृक्ष तथा भूत, भविष्यत्मय चराचर विश्व—सब कुछ आप ही हैं ॥३५ ३६॥

मूर्तामूर्तं तथा चापि स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा ।
तत्सर्वं त्वं जगत्कर्ता नास्ति किञ्चित्त्वया विना ॥३७
मया समारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता भगवान् सदा ।
तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३८
दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशया ।
मया नाथ गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन् ॥३९

राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तथात्मजाः ।
भार्या भृत्यजनो ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥४०
सुखबुद्धया मया सर्वं गृहीतमिदमव्ययम् ।
परिणामे तदेवेश तापात्मकमभून्मम ॥४१

हे प्रभो ! आप ही मूर्त्त, अमूर्त्त, स्थूल, सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है वह सब है, आपसे पृथक् कुछ भी नहीं है ॥३७॥ हे भगवन् ! तीनों तापों से अभिभूत हुआ मैं सदा ही इस संसार-चक्र में घूमता रहा हूँ, मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिली ॥३८॥ हे नाथ ! जल की आशा वाली मृगतृष्णा के समान ही मैंने दुःखों को सुख माना था, परन्तु उन सब से मुझे सन्ताप ही हुआ है । ॥३९॥ हे प्रभो ! राज्य, पृथिवी, सेना, कोष, मित्र, पुत्र, स्त्री, भृत्य और शब्दादि विषयों को अविनाशी और सुख मान कर ग्रहण किया था, परन्तु अन्त में वे सभी वस्तुएँ दुःख रूप सिद्ध हुई ॥४०-४१॥

देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि ।
मत्तस्साहाय्यकामोऽभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः ॥४२
त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम् ।
शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः ॥४३
त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान् ।
अवाप्य तापान्पश्यन्ति प्रेतराजमनन्तरम् ॥४४
ततो निजक्रियासूतिं नरकेष्वतिदारुणम् ।
प्राप्नुवन्ति नराः दुःखमस्वरूपविदस्तव ॥४५
अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया ।
ममत्वगर्वगर्त्तान्तर्भ्रमामि परमेश्वर ॥४६
सोऽहं त्वां शरणमपारमप्रमेयं सम्प्राप्तः परमपदं यतो न किञ्चित् ।
संसारभ्रमपरितापतप्तचेता निर्वाणे परिणतधाम्नि साभिलाषः ॥४७

हे प्रभो ! जब देवलोक वासी देवताओं को भी मेरी सहायता लेनी पड़ी तो उनके उस लोक में भी नित्य शान्ति कहाँ होगी ? ॥४२॥ हे नाथ ! आप सब संसार के उद्भव स्थान की आराधना के बिना शाश्वत शान्ति किसे

मिल सकती है ॥४३॥ हे प्रभो आपकी माया से भ्रमे हुए मनुष्य जन्म, जरा और मृत्यु आदि दुःखों को भोग करते हुए अन्त में यमराज को देखते हैं, ॥४४॥ जो आपके रूप को नहीं जानते, वे नरकों को प्राप्त होकर अपने फल रूप क्लेशों को भोगते है ॥४५॥ हे परमेश्वर ! मैं विषयों के प्रति दौड़ता हुआ आपकी माया से भ्रम कर ममता और अभिमान गर्त में भटकता रहा हू ॥४६॥ परन्तु आज मैं उस पार रहित और अप्रमेय परम पद रूप परमात्मा की शरण में आया हूँ, जिससे भिन्न कोई भी नहीं है । हे नाथ ! ससार में चक्कर काटने से खिन्न हुआ मैं आप निरतिशय, प्रकाशमान एव मोक्ष स्वरूप ब्रह्म की ही कामना करता हूँ ॥४७॥

चौबीसवाँ अध्याय

इत्थ स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता ।
प्राहेश सर्वभूतानामनादिनिधनो हरि ॥१
यथाभिवाञ्छितान्दिव्यान्गच्छ लोकान्नराधिप ।
अव्याहतपरैश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहित ॥२
भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगान्भविष्यसि महाकुले ।
जातिस्मरो मत्प्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥३
इत्युक्त प्रणिपत्येश जगतामच्युत नृप ।
गुहामुखाद्वि निष्क्रान्तस्स ददर्शाल्पकान्नरान् ॥४
तत कलियुग मत्वा प्राप्त तप्तु नृपस्तप ।
नरनारायणस्थान प्रययौ गन्धमादनम् ॥५
कृष्णोऽपि घातयित्वारिमुपायेन हि तद्बलम् ।
जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥६
आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्या न्यवेदयत् ।
पराभिभवनिश्शङ्क बभूव च यदो कुलम् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—महामति मुचुकुन्द द्वारा स्तुत हो कर सर्व-भूतेश्वर अनादि एवं अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा ॥१॥ श्री भगवान् बोले—हे राजन् ! आप अपने इच्छित दिव्य लोकों को गमन कीजिये, आपको मेरी कृपा से परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी ॥२॥ वहाँ आपको अत्यन्त दिव्य भोगों की प्राप्ति होगी, फिर एक महान् कुल में आपका जन्म होगा, जिसमें पूर्व जन्म वृत्तान्त याद रहेगा और मेरे अनुग्रह से मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥३॥ श्रीपराशर जी ने कहा— भगवान् द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने जिस्लेश्वर श्री कृष्ण को प्रणाम किया और गिरि कन्दरा से बाहर आकर लोगों के आकार बहुत छोटे हुए देखे ॥४॥ उस समय कलियुग को आया जानकर तप करने की इच्छा से राजा मुचुकुन्द नर-नारायण के परम स्थान रूप गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥५॥ इस यत्न से शत्रु को समाप्त कर श्रीकृष्ण मथुरा को लौट आये और कालयवन की रथ, हाथी, घोड़े आदि से सुसज्जित सम्पूर्ण सेना को अपने वश में करके द्वारका जाकर उग्रसेन को सौंप दी। उस समय से यादव शत्रुओं की ओर से भय रहित हो गये ॥६-७॥

बलदेवोऽपि मैत्रेय प्रशान्ताखिलविग्रहः ।
ज्ञातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८
ततो गोपाश्च गोप्यश्च यथापूर्वममित्रजित् ।
तथैवाभ्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरस्सरम् ॥९
स कैश्चित्सम्परिष्वक्तः कांश्चिच्च परिषस्वजे ।
हास्यं चक्रे समं कैश्चिद्गोपैर्गोपीजनैस्तथा ॥१०
प्रियाण्यनेकान्यवदन् गोपास्तत्र हलायुधम् ।
गोप्यश्च प्रेमकुपिताः प्रोचुःसेर्ष्यमथापराः ॥११
गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलप्रेमलवात्मकः ॥१२
अस्मच्चेष्टामपहसन्न कच्चित्पुरयोषिताम् ।
सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः ॥१३

कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कलम् ।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४

हे मैत्रेयजी ! जब यह सम्पूर्ण विग्रह शान्त हो गया तब बलरामजी अपने बन्धुओं से मिलने के लिये नन्द जी के गोकुल को पधारे ॥८॥ वहाँ जाकर उन्होंने गोपों और गोपियों को पूर्ववत् अत्यन्त आदर और प्रेम पूर्वक अभिवादन किया ॥९॥ किसी को उन्होंने हृदय से लगाया और कोई उनसे कन्धे से कन्धा भिड़ा कर मिला तथा किसी गोपी और गोप के साथ उनका हास परिहास हुआ ॥१०॥ गोपों ने उनसे अनेक प्रकार से प्रिय सम्भाषण किया तथा किसी गोपी ने प्रेम युक्त उपालम्भ दिया और किसी ने प्रणय कोप प्रदर्शित किया ॥११॥ किन्हीं गोपियों ने उनसे प्रश्न किया कि अल्प प्रेम और चञ्चल चित्त वाले तथा नगर की स्त्रियों के प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण कुशल से तो हैं ॥१२॥ उन क्षणिक स्नेह वाले कृष्ण ने क्या हमारे प्रेम का उपहास और नगर की स्त्रियों के सौभाग्य और सम्मान की वृद्धि नहीं की है ? ॥१३॥ क्या वे कभी हमारे गीतमय मनोहर स्वर को भी याद करते हैं ? और क्या वे एक बार अपनी माता को देखने के लिये भी यहाँ नहीं आवेंगे ? ॥१४॥

अथवा किं तदालापैः क्रियन्तामपराः कथाः ।
यस्यास्माभिर्विना तेन विनास्माकं भविष्यति ॥१५
पिता माता यथा भ्राताभर्ता बन्धुजनश्च किम् ।
सन्त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञध्वजो हि सः ॥१६
तथापि कच्चिदालापमिहागमनसंश्रयम् ।
करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता राम नानृतम् ॥१७
दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्त्रीसक्तमानसः ।
अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दर्शः प्रतिभाति नः ॥१८
आमन्त्रितश्च कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च ।
जहसुस्सस्वरं गोप्यो हरिणा हृतचेतसः ॥१९
सन्देशैस्साममधुरैः प्रेमगर्भैरगर्वितैः ।
रामेणाश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमनोहरैः ॥२०

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत् ।
वृन्दावनसमुत्पन्नकदम्बतरुकोटरे ॥४
विचरन् बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुत्तमम् ।
आघ्राय मदिरातर्पमवापाथ वराननः ॥५
तत कदम्बात्सहसा मद्यधारा स लाङ्गली ।
पतन्ती वीक्ष्य मैत्रेय प्रययौ परमा मुदम् ॥६
पपौ च गोपगोपीभिस्समुपेतो मुदान्वित ।
प्रगीयमानो ललित गीतवाद्यविशारदै ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—अपने महान् कार्यों के द्वारा पृथिवी को चलायमान करने वाले तथा धरणी के धारण करने वाल माया स मनुष्य बने हुए शेषावतार बलरामजी को गोपो के साथ व्रजभूमि मे क्रीडा करते देख कर वरुण ने उनके भोग के निमित्त वारुणी को आज्ञा दी ?—हे मदिरे! जिन महाबली अनन्त भगवान् को तुम सदा ही प्रिय लगती हो,उनके उपभोग और प्रसन्नता के निमित्त तुम शीघ्र ही उनक पास पहुँचो ॥१-३॥ वरुण की आज्ञा पाकर वह वारुणी वृदावन मे उत्पन्न हुए कदम्ब तरु के कोटर मे जाकर स्थित हुई ॥४॥ जब मनोहर मुख वाले बलरामजी वन मे घूम रहे थे, तब मदिरा की गध पाकर उन्होने उसके पान करने की इच्छा की ॥५॥ हे मैत्रेयजी ! उसी कदम्ब के वृक्ष से धार रूप मे मदिरा गिरने लगी, जिसे देखने पर बलरामजी को अत्यत प्रसन्नता हुई ॥६॥ फिर गायन-वादन चतुर गोप-गोपियो क मधुरालाप पूर्वक उनने साथ मिल कर बलरामजी ने हर्ष सहित मदिरा का पान किया ॥७॥

स मत्तोऽत्यन्तघर्माम्भ कणिकामौक्तिकोज्ज्वल ।
आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वल ॥८
तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामवमत्य वै ।
नाजगाम तत क्रुद्धो हल जग्राह लाङ्गली ॥९
गृहीत्वा ता हलान्तेन चकर्ष मदविह्वल ।
पापे नायासि नायासि गम्यतामिच्छयान्यत ॥१०

साकृष्टा सहसा तेन मार्गं सन्त्यज्य निम्नगा ।
यत्रास्ते बलभद्रोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११
शरीरिणी तदाभ्येत्य त्रासविह्वललोचना ।
प्रसीदेत्यब्रवीद्राम मुञ्च मां मुसलायुध ॥१२
ततस्तस्याः सुवचनमाकर्ण्य स हलायुधः ।
सोऽब्रवीदवजानासि मम शौर्यबले नदि ।
सोऽहं त्वां हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा ॥१३

फिर धूप के अधिक ताप से स्वेद बिन्दु रूपी मोतियों से सुशोभित हुए मदोन्मत्त बलरामजी ने विह्वलता पूर्वक कहा हे यमुने ! यहाँ आ, मेरी इच्छा स्नान करने की है ॥८॥ उनके उस कथन को यमुना ने मदिरा से उन्मत्त हुए मनुष्य का प्रलाप मात्र समझा और उस पर कुछ भी ध्यान न देती हुई वह वहाँ नहीं पहुँची । इस पर क्रोधित होकर उन्होंने अपना हल ग्रहण किया ॥९॥ उन मदविह्वल बलराम ने हल की नोक से यमुना को पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—अरी पापे ! तू नहीं आई ? अच्छा तू अपनी इच्छा से कहीं जाकर तो दिखा ॥१०॥ इस प्रकार बलरामजी के द्वारा खिंची हुई यमुना अपने मार्ग को छोड़ कर, जहाँ बलराम खड़े थे वहाँ आ गई और उस स्थान को जल से भर दिया ॥११॥ फिर वह भय से अश्रु-युक्त नेत्र वाली यमुना देह धारण कर बलरामजी के समक्ष उपस्थित हुई और उसने उनसे कहा—हे हलधर ! आप प्रसन्न होकर मुझे मुक्त कर दीजिए ॥१२॥ उसकी बात सुनकर बलरामजी बोले—हे नदी ! क्या तू मेरे शौर्य और बल का तिरस्कार करती है । देख, इस हल के द्वारा ही मैं तेरी हजारों धाराएँ बना दूँगा ॥१३॥

इत्युक्तयातिसन्त्रासात्तया नद्या प्रसादितः ।
भूभागे प्लाविते तस्मिन्मुमोच यमुनां बलः ॥१४
ततस्स्नातस्य वै कान्तिरजायत महात्मनः ।
अवतंसोत्पलं चारु गृहीत्वैकं च कुण्डलम् ॥१५
वरुणप्रहिता चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम् ।
समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥१६

कृतावतंसस्स तदा चारुकुण्डलभूषितः ।
नीलाम्बरधरस्स्रग्वी शुशुभे कान्तिसंयुतः ॥१७
इत्थं विभूषितो रेमे तत्र रामस्तथा व्रजे ।
मासद्वयेन यातश्च स पुनर्द्वारकां पुरीम् ॥१८
रेवती नाम तनयां रैवतस्य महीपतेः ।
उपयेमे बलस्तस्यां जज्ञाते निशठोल्मुकौ ॥१९

श्री पराशरजी ने कहा—बलरामजी के ऐसा कहने पर भय से काँपती हुई यमुना उस भू-खण्ड पर प्रवाहित होने लगी, तब प्रसन्न होकर उन्होंने यमुना को मुक्त कर दिया ॥१४॥ उसमें स्नान कर लेने पर महात्मा बलरामजी अत्यंत सुशोभित हुए। तब लक्ष्मीजी ने प्रकट होकर उन्हे एक सुन्दर कुण्डल, वरुण द्वारा भेजी गई सदा प्रफुल्लित रहने वाली पद्ममाला और समुद्र जैसी कान्ति वाले दो नीलाम्बर प्रदान किये ॥१५-१६॥ उन सब को धारण करके बलरामजी अत्यंत कांति वाले और शोभा सम्पन्न हो गये ॥१७॥ इस प्रकार अलंकृत हुए बलरामजी ने व्रज में लीलाएँ करते हुए दो मास पर्यंत निवास किया और फिर द्वारकापुरी में लौट आये ॥१८॥ जहाँ उन्होंने राजा रैवत की पुत्री रेवती का पाणिग्रहण किया और उससे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१९॥

छब्बीसवाँ अध्याय

भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भविषयेऽभवत् ।
रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना ॥१
रुक्मिणी चकमे कृष्णस्सा च तं चारुहासिनी ।
न ददौ याचते चैनां रुक्मी द्वेषेण चक्रिणे ॥२
ददौ च शिशुपालाय जरासन्धप्रचोदितः ।
भीष्मको रुक्मिणा सार्द्धं रुक्मिणीमुरुविक्रम ॥३

विवाहार्थं ततः सर्वे जरासन्धमुखा नृपाः ।
भीष्मकस्य पुरं जग्मुश्शिशुपालप्रियैषिणः ॥४
कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यदुभिः परिवारितः ।
प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चैद्यभूभृतः ॥५

श्री पराशरजी ने कहा—विदर्भदेश में कुण्डिनपुर नामक एक नगर था, जिसका शासन राजा भीष्मक करते थे उनके पुत्र का नाम रुक्मी और पुत्री का नाम रुक्मिणी था ॥१॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और रुक्मिणी भी उन्हीं की कामना करती थी, परन्तु भगवान् द्वारा याचना किये जाने पर भी उनके द्वेषी रुक्मी ने रुक्मिणी उन्हें नहीं दी ॥२॥ जरासन्ध की प्रेरणा से राजा भीष्मक ने रुक्मी के प्रस्ताव से सहमत होकर शिशुपाल के लिये अपनी कन्या देना स्वीकार किया ॥३॥ तब शिशुपाल के हित-चिन्तक जरासंधादि सब राजा बरात लेकर महाराज भीष्मक के नगर में पहुँचे ॥४॥ यादवों और बलरामजी को साथ लेकर श्रीकृष्ण भी चेदिराज शिशुपाल का विवाह देखने के निमित्त कुण्डिनपुर में आ गये ॥५॥

श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्यां हृतवान्हरिः ।
विपक्षभारमासज्य रामाद्येष्वथ बन्धुषु ॥६
ततश्च पौण्ड्रकश्श्रीमान्दन्तवक्त्रो विदूरथः ।
शिशुपालजरासन्धशाल्वाद्याश्च महीभृतः ॥७
कुपितास्ते हरिं हन्तुं चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ।
निर्जिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुङ्गवैः ॥८
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि ह्यहत्वा युधि केशवम् ।
कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमनुद्रुतः ॥९
हत्वा बलं सनागाश्वं पत्तिस्यन्दनसंकुलम् ।
निर्जितः पातितश्चोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा ॥१०
निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे च रुक्मिणीम् ।
राक्षसेन विवाहेन सम्प्राप्तां मधुसूदनः ॥११

तस्या जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांशस्सवीर्यवान् ।
जहार शम्बरो य वै यो जघान च शम्बरम् ॥१२

फिर, जब विवाह होने मे एक दिन शेष था तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण करके विपक्षियो से भिडने का भार बलरामजी आदि यादवो को दिया ॥६॥ उस समय पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ शिशुपाल, जरासध तथा शाल्वादि नरेशो ने श्रीकृष्ण का वध करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु बलरामजी आदि वीरश्रेष्ठो से युद्ध मे हार गये ॥७-८॥ तब रुक्मी ने कृष्ण को मार बिना, कुण्डिनपुर मे प्रवेश न करने की प्रतिज्ञा की और वेग पूर्वक श्रीकृष्ण का पीछा किया ॥९॥ परन्तु श्रीकृष्ण ने उसकी रथ, अश्व, गज और पैदलो से सम्पन्न सेना को पराजित कर रुक्मी को पृथिवी पर गिरा दिया ॥१०॥ इस प्रकार रुक्मी को हराकर राक्षस विवाह की पद्धति से प्राप्त हुई रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण ने विधिवत् विवाह किया ॥११॥ उस रुक्मिणी से उन्होंने कामदेव के अंश रूप अत्यत वीर्यशाली प्रद्युम्न को उत्पन्न किया, जिसका शम्बरासुर ने हरण कर लिया था और जिसके द्वारा उस शम्बरासुर की मृत्यु हुई थी ॥१२॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शम्बरेण हृतो वीर प्रद्युम्न स कथ मुने ।
शम्बर स महावीर्य प्रद्युम्नेन कथ हत ॥१
यस्तेनापहृत पूर्वं स कथ विजघान तम् ।
एतद्विस्तरत श्रोतुमिच्छामि सकल गुरो ॥२
षष्ठेऽह्नि जातमात्र तु प्रद्युम्न सूतिकागृहात् ।
ममैष हन्तेति मुने हृतवान्कालशम्बरः ॥३
हृत्वा चिक्षेप चैवैन ग्राहोग्रे लवणार्णवे ।
कल्लोलजनितावर्त्ते सुघोरे मकरालये ॥४
पातित तत्र चैवैको मत्स्यो जग्राह बालकम् ।
न ममार च तस्यापि जठराग्निप्रदीपित ॥५

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे मुने ! शम्बरासुर ने महावीर्य प्रद्युम्न को कैसे हर लिया और फिर प्रद्युम्न ने उसका वध किस प्रकार किया ? ॥१॥ जिसका उसने हरण किया उसी ने उसको कैसे मार डाला ? हे गुरो ! इस वृतान्त को विस्तृत रूप से सुनने की मेरी इच्छा है ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! काल के समान विकराल शम्बर ने प्रद्युम्न को अपना काल समझ कर जन्म के छटवें दिन ही प्रसूति गृह में चुरा लिया था ॥३॥ उसे चुरा लेने के बाद शम्बर ने खारे समुद्र में डाल दिया, जो कल्लोल जनित आवर्तों से परिपूर्ण तथा बड़े मत्स्यों का सदन है ॥४॥ समुद्र में डाले गये उस बालक को एक मत्स्य निगल गया, परन्तु उसकी जठराग्नि में पड़कर भी उसकी मृत्यु नहीं हुई ॥५॥

मत्स्यबन्धैश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैस्सह द्विज ।
घातितोऽसुरवर्याय शम्बराय निवेदितः ॥६
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्वरी ।
कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥७
दारिते मत्स्यजठरे सा ददर्शातिशोभनम् ।
कुमारं मन्मथतरोर्दग्धस्य प्रथमाङ्कुरम् ॥८
कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे प्रविवेशितः ।
इत्येवं कौतुकाविष्टां तन्वीं प्राहाथ नारदः ॥९
अयं समस्तजगतः स्थितिसंहारकारिणः ।
शम्बरेण हृतो विष्णोस्तनयः सूतिकागृहात् ॥१०
क्षिप्तस्समुद्रे मत्स्येन निगीर्णस्ते गृहं गतः ।
नररत्नमिदं सुभ्रु विस्रब्धा परिपालय ॥११
नारदेनैवमुक्ता सा पालयामास तं शिशुम् ।
बाल्यादेवातिरागेण रूपातिशयमोहिता ॥१२
स यदा यौवनाभागभूषितोऽभून्महामते ।
साभिलाषा तदा सापि बभूव गजगामिनी ॥१३
मायावती ददौ तस्मै मायास्सर्वा महामुने ।
प्रद्युम्नायानुरागान्धा तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥१४

उस मत्स्य को अन्य मछलियों के सहित मछुओं ने जाल में फँसाया और शम्बरासुर की भेंट कर दिया ॥६॥ उसकी मायावती नाम की पत्नी उसके घर की स्वामिनी थी और वही श्रेष्ठ लक्षण वाली सब रसोइयों की देख भाल करती थी ॥७॥ उस मत्स्य के उदर को चीरते समय एक सुन्दर बालक दिखाई पड़ा, जो जले हुए काम रूपी वृक्ष का प्राथमिक अंकुर था ॥८॥ मायावती विस्मय पूर्वक यह सोचने लगी कि 'यह बालक कौन है तथा मत्स्य के उदर में कैसे पड़ा'। उसके इस विस्मय का निवारण देवर्षि नारद ने इस प्रकार किया ॥९॥ हे सुभ्रू ! यह बालक सम्पूर्ण विश्व की स्थिति और संहार करने वाले भगवान् विष्णु का पुत्र है। शम्बरासुर ने सूतिकागृह में ही इसका अपहरण करके समुद्र में डाल दिया। वहाँ जो मत्स्य इसे निगल गया था, उसके यहाँ लाये जाने पर यह भी यहाँ आ गया है। अब तू आश्वस्त होकर इसका परिपालन कर ॥१०-११॥ श्री पराशरजी ने कहा—नारदजी की बात सुनकर मायावती उस अत्यन्त सुन्दर बालक पर मोहित होती हुई उसका अत्यन्त स्नेह से परिपालन में तत्पर हुई ॥१२॥ जब वह बालक नव यौवन के सम्पर्क में आया तभी से गज गामिनी मायावती उसमें अनुरागमयी हो गई ॥१३॥ हे महामुने ! जिस मायावती ने अनुराग में अन्धी होकर अपने हृदय तथा नेत्रों को उसमें तन्मय कर दिया था, उसने उसे सब प्रकार की माया सिखा डाली ॥१४॥

प्रसज्जन्ती तु तां प्राह स कार्ष्णि कमलेक्षणाम् ।
मातृत्वमपहायाद्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा ॥१५
सा तस्मै कथयामास न पुत्रस्त्वं ममेति वै ।
तनयं त्वामयं विष्णोर्हृतवान्कालशम्बर ॥१६
क्षिप्तः समुद्रे मत्स्यस्य सम्प्राप्तो जठरान्मया ।
सा हि रोदिति ते माता कान्ताद्याप्यतिवत्सला ॥१७
इत्युक्तश्शम्बरं युद्धे प्रद्युम्न स समाह्वयत् ।
क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबल ॥१८
हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य यादव ।
सप्त माया व्यतिक्रम्य मायां प्रयुयुजेऽष्टमीम् ॥१९

तया जघान तं दैत्यं मायया कालशम्बरम् ।
उत्पत्य च तया सार्द्धमाजगाम पितुः पुरम् ॥२०

इस प्रकार उस पद्माक्षी को अपने ऊपर आसक्त हुई देखकर प्रद्युम्न ने कहा—तुम मातृत्व के भाव को छोड़ कर अन्य भाव क्यों दिखा रही हो? ॥१५॥ इस पर मायावती बोली—तुम मेरे पुत्र नहीं, भगवान् विष्णु के पुत्र हो। शम्बरासुर ने तुम्हें चुरा कर जिस समुद्र में डाल दिया था, उस समुद्र में प्राप्त मत्स्य के पेट में तुम मुझे मिले हो। पुत्र स्नेह से सतप्त हुई तुम्हारी माता अब भी विलाप करती होगी ॥१६-१७॥ श्री पराशरजी ने कहा—मायावती की बात सुनकर महाबली प्रद्युम्न ने क्रोधाकुल होकर शम्बरासुर को ललकारा और उससे भिड़ गये ॥१८॥ फिर उस दैत्य की सब सेना का सहार कर और उसकी सात मायाओं को अपने वश में करके आठवीं माया का स्वयं प्रयोग किया ॥१६॥ उसी माया के द्वारा उन्होंने शम्बरासुर का वध कर दिया और मायावती को साथ लेकर गगन मार्ग से अपने पिता की द्वारकापुरी में आ पहुँचे ॥२०॥

अन्तःपुरे निपातितं मायावत्या समन्वितम् ।
तं दृष्ट्वा कृष्णसङ्कल्पा बभूवुः कृष्णयोषितः ॥२१
रुक्मिणी साभवत्प्रेम्णा सास्रदृष्टिरनिन्दिता ।
धन्यायाः खल्वयं पुत्रो वर्तते नवयौवने ॥२२
अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ।
सभाग्या जननी वत्स सा त्वया का विभूषिता ॥२३
अथवा यादृशः स्नेहो मम यादृग्वपुस्तव ।
हरेरपत्यं सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति ॥२४

मायावती के साथ अन्तःपुर में जाने पर श्रीकृष्ण की रानियों ने उन्हें कृष्ण ही समझा ॥२१॥ परन्तु उसे देखकर रुक्मिणीजी के नेत्रों में आँसू आगये और वे कहने लगी कि यह नवयौवन को प्राप्त हुआ किसी बड़भागिनी का ही पुत्र होगा ॥२२॥ यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न कहीं जीवित हो तो उसकी अवस्था भी इतनी ही होगी। हे वत्स! तेरे से कौन—सौभाग्यवती माता अलंकृत हुई है? ॥२३॥ अथवा जैसे तेरा रूप है और मेरा चित्त तेरी ओर स्नेह से आक-

पित हुआ है, उससे यही लगता है कि तू भगवान् का ही पुत्र है ।।२४।।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तस्सह कृष्णेन नारद ।
अन्त पुरचरा देवी रुक्मिणी प्राह हर्षयन् ।।२५
एप ते तनय सुभ्रु हत्वा शम्बरमागत ।
हतो येनाभवद् वालो भवत्यास्सूतिकागृहात्।।२६
इय मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती ।
शम्बरस्य न भार्येय श्रूयतामत्र कारणम् ।।२७
मन्मथे तु गते नाश तदुद्भवपरायणा ।
शम्बर मोहयामास मायारूपेण रूपिणी ।।२८
विहाराद्युपभोगेपु मायामय शुभम् ।
दर्शयामास दैत्यस्य यस्येय मदिरेक्षणा ।।२९
कामोऽवतीर्णं पुत्रस्ते तस्येय दयिता रति ।
विशङ्का नात्र कर्तव्या स्नुपेय तव शोभने ।।३०
ततो हर्षसमाविष्टौ रुक्मिणीकेशवौ तदा ।
नगरी च समस्ता सा साधुसाध्वित्यभापत ।।३१
चिर नष्टेन पुत्रेण सङ्गता प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् ।
अवाप विस्मय सर्वो द्वारवत्या तदा जन ।।३२

श्री पराशरजी ने कहा—उसी समय श्रीकृष्ण के साथ नारदजी भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होने रुक्मिणीजी को अत्यन्त आनन्दित करते हुए कहा—हे श्रेष्ठ भ्रू वाली ! यह तेरा ही पुत्र है, जो शम्बरासुर का वध करके यहाँ आया है। इसी को उसने सूतिकागृह से चुरा लिया था ।।२६।। यह मायावती शम्बरासुर की स्त्री नहीं है, तेरे इसी पुत्र की पत्नी है, अब मुझसे इसका कारण सुन ।।२७।। जब पूर्वकाल मे कामदेव भस्म होगया था तब उसके पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करती हुई इस मायावती ने अपने माया युक्त—रूप से शम्बरासुर को मोहित कर लिया था ।।२८।। यह मत्त नयना वाली मायावती उस दैत्य का विहारादि करने समय अपने अत्यन्त सुन्दर मायामय रूपों का दर्शन कराती रहती थी ।।२९।। वह कामदेव ही तेरे यहाँ पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ है और यह

उसकी पत्नी रति है। हे शोभने ! इसके अपनी पुत्रवधू होने में कोई सन्देह मत कर ॥३०॥ इस बात से रुक्मिणी और कृष्ण अत्यन्त आनन्दित हुए और द्वारका में निवास करने वाले सभी मनुष्यों को हर्ष हुआ ॥३१॥ बहुत समय से नष्ट हुए पुत्र के साथ रुक्मिणी का पुनर्मिलन देखकर द्वारका वासियों को अत्यन्त विस्मय हुआ ॥३२॥

अट्ठाईसवां अध्याय

चारुदेष्णं च चारुदेहं च वीर्यवान् ।
सुषेणं चारुगुप्तं च भद्रचारुं तथा परम् ॥१
चारुविन्दं सुचारुं च चारुं च बलिनां वरम् ।
रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्यां चारुमतीं तथा ॥२
अन्याश्च भार्या कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभना ।
कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा ॥३
देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी ।
मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डना ॥४
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
षोडशासन् सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥५

श्री पराशरजी ने कहा—रुक्मिणीजी के चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और चारु नामक महाबली पुत्र तथा चारुमती नाम की एक पुत्री हुई ॥१-२॥ रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण की जो सात रानियाँ थी उनके नाम कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, कामरूपिणी जाम्बवती, रोहिणी, मद्रराजसुता भद्रा सत्राजितसुता, सत्यभामा और सुन्दर हासवाली लक्ष्मणा अत्यन्त सुन्दर थी। इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के सोलह हजार रानियाँ और थीं ॥३-४-५॥

प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनयां शुभाम् ।
स्वयंवरे तां जग्राह सा च तं तनयं हरेः ॥६

तस्यामस्याभवत्पुत्रो महाबलपराक्रम. ।
अनिरुद्धो रणे रुद्धवीर्योदधिररिन्दम ॥७
तस्यापि रुक्मण पौत्री वरयामास केशव ।
दौहित्राय ददौ रुक्मी ता स्पर्द्धन्नपि चक्रिणा ॥८
तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह ।
रुक्मिणो नगर जग्मुर्नाम्ना भोजकट द्विज ॥९
विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राद्युम्नेस्तु महात्मन ।
कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिण वाक्यमब्रुवन् ॥१०
अनक्षज्ञो हली द्यूते तथास्य व्यसन महत् ।
न जयामो बल कस्माद् द्यूतेनैन महाबलम् ॥११

महाबली प्रद्युम्न न रुक्मी की कन्या की कामना की और उस कन्या ने भी प्रद्युम्न का स्वयवर म वरण किया ॥६॥ प्रद्युम्न न उस रुक्मीसुता से अनिरुद्ध नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो युद्ध म कभी न रुकने वाला और शत्रुओ क मर्दन म बल का समुद्र ही था ॥७॥ श्रीकृष्ण ने रुक्मी की पौत्री के साथ उसका विवाह किया । श्रीकृष्ण स द्वेष होते हुए भी रुक्मी ने अपने दौहित्र को अपनी पुत्री दने का निश्चय कर लिया ॥८॥ श्रीकृष्ण क साथ बलरामजी तथा अन्य यादवगण भी उस विवाहोत्सव म सम्मिलित होने के लिय राजा रुक्मी के भोजकट नामक नगर म जा पहुचे ॥९॥ प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध का विवाह-सस्कार पूर्ण हो चुकने पर कलिंगराज आदि प्रमुख नरेशो ने रुक्मी से कहा—यह बलरामजी द्यूत क्रीडा म चतुर न होते हुए भी, उसके बडे इच्छुक रहते हैं । इसलिये हम उन्हे द्यूत म ही क्यो न पराजित कर दे ? ॥११॥

तथेति तानाह नृपान्रुक्मी बलमदान्वित ।
सभाया सह रामेण चक्रे द्यूत च वै तदा ॥१२
सहस्रमेक निष्काणा रुक्मिणा विजितो बल ।
द्वितीयेऽपि पणे चान्यत्सहस्र रुक्मिणा जित ॥१३
ततो दशसहस्राणि निष्काणा पणमाददे ।
बलभद्रोऽजयत्तानि रुक्मी द्यूतविदा वर ॥१४

ततो जहास स्वनवत्कलिङ्गाधिपतिर्द्विज ।
दन्तान्विदर्शयन्मूढो रुक्मी चाह मदोद्धत ॥१५
अविद्योऽयं मया द्यूते बलभद्रः पराजित ।
मुधैवाक्षावलेपान्धो योऽवमेनेऽक्षकोविदान् ॥१६

श्री पराशरजी ने कहा—तब बल-मद से उन्मत्त हुआ रुक्मी उन राजाओं से 'बहुत अच्छा' कहकर सभा में गया और बलरामजी के साथ द्यूत-क्रीडा करने लगा ॥१२॥ प्रथम दाँव में उसने एक हजार निष्क जीते तथा द्वितीय दाँव में भी एक हजार निष्क पुनः जीत लिये ॥१३॥ फिर बलरामजी ने दस सहस्र निष्क का दाँव लगाया, उसमें भी वे रुक्मी से हार गये ॥१४॥ इस पर कलिंगराज उनकी हँसी उड़ाता हुआ जोर-जोर से हँसने लगा। उसी समय रुक्मी ने कहा—द्यूतक्रीडा न जानने वाले बलरामजी मुझसे हार गये हैं, यह पासे के घमण्ड में व्यर्थ ही पासे में कुशल व्यक्तियों का तिरस्कार करते थे ॥१६॥

दृष्ट्वा कलिङ्गराजं तं प्रकाशदशनाननम् ।
रुक्मिणं चापि दुर्वाक्यं कोपं चक्रे हलायुधः ॥१७
ततः कोपपरीतात्मा निष्ककोटिं समाददे ।
ग्लहं जग्राह रुक्मी च तदर्थेऽक्षानपातयत् ॥१८
अजयद्बलदेवस्तं प्राहोच्चैर्विजितं मया ।
ममेति रुक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तेरलं बल ॥१९
त्वयोक्तोऽयं ग्लहः सत्यं न ममैषोऽनुमोदितः ।
एवं त्वया चेद्विजितं विजितं न मया कथम् ॥२०
अथान्तरिक्षे वागुच्चैः प्राह गम्भीरनादिनी ।
बलदेवस्य तं कोपं वर्द्धयन्ती महात्मनः ॥२१
जितं बलेन धर्मेण रुक्मिणा भाषितं मृषा ।
अनुक्त्वापि वचः किंचित्कृतं भवति कर्मणा ॥२२

इस प्रकार कलिंगराज को हँसी उड़ाते और रुक्मी को दुर्वचन कहते देखकर बलरामजी को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१७॥ तब उन्होंने क्रोध पूर्वक एक

करोड निष्क दाँव पर लगाये और उसे जीतने के लिये रुक्मी ने भी पासे डाले ।।१८।। उस दाँव को बलरामजी जीत गये और उच्च स्वर से बोले कि इसे मैंने जीता है। इस पर रुक्मी ने भी जोर से कहा कि बलरामजी ! मिथ्या वचन कहने में क्या लाभ है ? यह दाँव मैंने ही जीता है ।।१९।। आपने इस दाँव के विषय में जो कहा था, उसका मैंने अनुमोदन कदापि नहीं किया। इस प्रकार यदि आप इसे अपने द्वारा जीता हुआ कहते है तो मैंने ही इसे किस प्रकार नहीं जीता है ? ।।२०।। श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् बलरामजी की क्रोध वृद्धि करती हुई आकाश वाणी ने गम्भीर स्वर में कहा—इस दाँव की जीत बलरामजी की ही हुई है, रुक्मी का कथन यथार्थ नहीं है, क्योंकि वचन के अभाव में भी कार्य के द्वारा अनुमोदन हुआ ही माना जायगा ।।२१-२२।।

ततो बल समुत्थाय कोपसरक्तलोचन ।
जघानाष्टापदेनैव रुक्मिण स महाबल ।।२३
कलिङ्गराज चादाय विस्फुरन्त बलाद्बल ।
बभञ्ज दन्तान्कुपितो यै प्रकाश जहास स ।।२४
आकृष्य च महास्तम्भ जातरूपमय बल ।
जघान तान्येतत्पक्षे भूभृत कुपितो भृशम् ।।२५
ततो हाहाकृत सर्व पलायनपर द्विज ।
तद्राजमण्डल भीत बभूव कुपिते बले ।।२६
बलेन निहत दृष्ट्वा रुक्मिण मधुसूदन ।
नोवाच किञ्चिन्मैत्रेय रुक्मिणीबलयोर्भयात् ।।२७
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतदार द्विजोत्तम ।
द्वारकामाजगामाथ यदुचक्र च केशव ।।२८

तब क्रोध से लाल नेत्र वाले बलरामजी ने जुआ खेलने के पासों से ही रुक्मी का वध कर दिया ।।२३।। फिर दाँतों को दिखाकर बलरामजी की हँसी उड़ाने वाले कलिंगराज को पकड़ कर उन्होंने उसके दाँत तोड़ डाले ।।२४।। इनके अतिरिक्त उसके पक्ष के जो भी राजा थे, वे सब एक सोने के स्तम्भ को उखाड़ कर, उससे मार दिये ।।२५।। हे द्विज ! बलरामजी को क्रोधित हुए

देखकर उस समय हा-हाकार मच गया और सभी राजागण डर के मारे वहाँ से भाग गये ॥२६॥ हे मैत्रेयजी ! रुक्मी का वध हुआ देखकर श्रीकृष्ण ने बलरामजी और रुक्मिणीजी दोनों के ही डर के कारण मौन धारण कर लिया ॥२७॥ फिर हे द्विजोत्तम ! फिर श्रीकृष्ण पत्नी युक्त अनिरुद्ध को साथ लेकर सम्पूर्ण यादवों के सहित द्वारका में लौट आये ॥२८॥

उनतीसवाँ अध्याय

द्वारवत्यां स्थिते कृष्णे शक्रस्त्रिभुवनेश्वर ।
आजगामाथ मैत्रेय मत्तैरावतपृष्ठग ॥१
प्रविश्य द्वारकां सोऽथ समेत्य हरिणा तत ।
कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम् ॥२
त्वया नाथेन देवानां मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता ।
प्रशमं सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥३
तपस्विव्यसनार्थाय सोऽरिष्टो धेनुकस्तथा ।
प्रवृत्तो यस्तथा केशी ते सर्वे निहतास्त्वया ॥४
कंस कुवलयापीडः पूतना बालघातिनी ।
नाशं नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवा ॥५
युष्मद्दोर्दण्डसम्भूतिपरित्राते जगत्त्रये ।
यज्ञयज्ञांशसम्प्राप्त्या तृप्तिं यान्ति दिवौकस ॥६
सोऽहं साम्प्रतमायातो यन्निमित्तं जनार्दन ।
तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥७

है ॥३॥ अरिष्ट, धेनुक, केशी आदि जो दैत्य सदा तपस्वियो को सताया करते थे, उन सबका आपने वध कर दिया ॥४॥ कंस, कुवलयापीड और बालघातिनी पूतना अथवा अन्य सभी उपद्रवियो को आपने मार डाला ॥५॥ आपके भुज-दण्ड के आश्रय मे तीनो लोकों के सुरक्षित होने के कारण यज्ञ भागो को प्राप्त करते हुए सब देवताओ को अब तृप्ति-लाभ हो रहा है ॥६॥ हे जनार्दन ! अब मैं जिस कारण से यहाँ आया हूं, उसे श्रवण कर उसके निवारण का उपाय करिये ॥७॥

करोति सर्वभूतानामुपघातमरिन्दम ॥८
देवसिद्धासुरादीना नृपाणा च जनार्दन
हृत्वा तु सोऽसुर कन्या रुरुधे निजमन्दिरे ॥६
छत्र यत्सलिलस्रावि तज्जहार प्रचेतस ।
मन्दरस्य तथा शृङ्ग हृतवान्मणिपर्वतम् ॥१०
अमृतस्राविणी दिव्ये मन्मातु कृष्ण कुण्डले ।
जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यैरावत गजम् ॥११
दुर्नीतमेतद्गोविन्द मया तस्य निवेदितम् ।
यदत्र प्रतिकर्तव्य तत्स्वय परिमृश्यताम् ॥१२
इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुत ।
गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्थो वरासनात् ॥१३
सञ्चिन्त्यागतमारुह्य गरुड गगनेचरम् ।
सत्यभामा समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिष पुरम् ॥१४

हे शत्रुओ के नाशक ! पृथिवी–पुत्र नरकासुर प्राग्ज्योतिपुर का अधीश्वर है । वह सभी प्राणियो को नष्ट करने मे लगा हुआ है ॥८॥ हे जनार्दन ! उसने देवता, सिद्ध, असुर और राजा आदि की पुत्रियो का बलपूर्वक अपहरण किया और उन्हें अपने अन्त पुर मे रख लिया है ॥६॥ उसने वरुण का जल-वर्षक छत्र तथा मन्दराचल का मणि पर्वत नामक शृङ्ग भी छीन लिया है ॥१०॥ हे कृष्ण ! उसने मेरी माता अदिति के कुण्डल भी बलपूवक ले लिये हैं और अब इस ऐरावत को भी छीन लेने की इच्छा करता है ॥११॥ हे गोविन्द ! उसकी

सभी दुर्नीतियों का मैंने आपसे वर्णन कर दिया है, अब उसके प्रतिकार का उपाय आप स्वयं ही सोच लें ॥१२॥ इन्द्र की बात सुनकर भगवान् कुछ मुसकराये और इन्द्र का हाथ पकडते हुए आसन से उठ खडे हुए ॥१३॥ फिर उन्होंने गरुड का स्मरण किया और उसके उपस्थित होते ही सत्यभामा सहित उस पर आरूढ होकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिये चल दिये ॥१४॥

आरुह्यैरावतं नागं शक्रोऽपि त्रिदिवं ययौ ।
ततो जगाम कृष्णश्च पश्यतां द्वारकौकसाम् ॥१५
प्राग्ज्योतिषपुरस्यापि समन्ताच्छतयोजनम् ।
आचिता मौरवैः पाशैः क्षुरान्तैर्भूर्द्विजोत्तम ॥१६
तांश्चिच्छेद हरिः पाशान्क्षिप्त्वा चक्रं सुदर्शनम् ।
ततो मुरस्समुत्तस्थौ तं जघान च केशवः ॥१७
मुरस्य तनयान्सप्त सहस्रांस्तांस्ततो हरिः ।
चक्रधाराग्निनिर्दग्धांश्चकार शलभानिव ॥१८
हत्वा मुरं हयग्रीवं तथा पञ्चजनं द्विज ।
प्राग्ज्योतिषपुरं धीमांस्त्वरावान्समुपाद्रवत् ॥१९
नरकेणास्य तत्राभून्महासैन्येन संयुगम् ।
कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान्सहस्रशः ॥२०
क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा ॥२१-
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वादितिकुण्डले ।
उपतस्थे जगन्नाथं वाक्यं चेदमथाब्रवीत् ॥२२

सब द्वारकावासियों के देखते-देखते इधर श्रीकृष्ण चल दिये, उधर इन्द्र भी अपने ऐरावत पर चढकर स्वर्गलोक को चले गये ॥१५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्राग्ज्योतिषपुर के चारों ओर सौ योजन तक की भूमि मुरदैत्य निर्मित छुरा की धार के समान अत्यन्त तीक्ष्ण पाशों के द्वारा घिरी हुई थी ॥१६॥ उन पाशों को श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला तो मुरदैत्य उनसे लडने के लिये सामने आया तभी उन्होंने उसका वध कर डाला ॥१७॥ फिर उन्होंने मुर के सात सहस्र पुत्रों को अपने चक्र की धार रूप ज्वाला में पतंग के समान

जला दिया ॥१८॥ इस प्रकार महामेधावी श्रीकृष्ण मुर, हयग्रीव और पञ्चजन आदि दैत्यों का संहार कर प्राग्ज्योतिपुर में प्रविष्ट हुए ॥१९॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त विशाल सेना वाले नरकासुर से युद्ध किया, जिसमें उसके हजारों दैत्य मारे गये थे ॥२०॥ दैत्यदल-दलन, चक्रधारी भगवान् श्रीहरि ने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करते हुए पृथिवीपुत्र नरकासुर के अपने सुदर्शन चक्र से दो खण्ड कर डाले ॥२१॥ उसके मरते ही अदिति के कुण्डलों को हाथ में लिये हुए पृथिवी मूर्तिमान् रूप से उपस्थित हुई और श्रीकृष्ण के प्रति बोली ॥२२॥

यदाहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना ।
त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तदायं मय्यजायत ॥२३
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः ।
गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सन्ततिम् ॥२४
भारावतरणार्थाय ममैव भगवानिमम् ।
अ शेन लोकमायातः प्रसादसुमुखः प्रभो ॥२५
त्व कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽप्ययः ।
जगता त्व जगद्रूप स्तूयतेऽच्युत किं तव ॥२६
व्याप्तिर्व्याप्यं क्रिया कर्ता कार्यं च भगवन्यथा ।
सर्वभूतात्मभूतस्य स्तूयते तव किं तथा ॥२७
परमात्मा च भूतात्मा त्वमात्मा चाव्ययो भवान् ।
यथा तथा स्तुतिर्नाथ किमर्थं ते प्रवर्तते ॥२८
प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेण तु यत्कृतम् ।
तत्क्षम्यतामदोषाय त्वत्सुतस्त्वन्निपातितः ॥२९

पृथिवी ने कहा—हे नाथ ! जब वराह रूप मे अवतीर्ण हो कर आपने मुझे निकाला था, तब आपके ही स्पर्श से मेरे इस पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२३॥ इस प्रकार आपके द्वारा दिये हुए पुत्र को आपने स्वय ही मार दिया, अब आप इन कुण्डलो को ग्रहण करिये तथा इसकी सन्तति की रक्षा करिये ॥२४॥ हे प्रभो ! आपने मुझे प्रसन्न हो कर मेरा बोझ उतारने के लिये अपने अ ंश से अवतार ग्रहण किया है ॥२५॥ हे अच्युत ! आप ही इस विश्व के कर्त्ता,

स्थितिकर्त्ता तथा हर्त्ता हैं, आप जगद्रूप ही इसकी उत्पत्ति लय के स्थल हैं, फिर मैं आपके किस वृत्तान्त को लेकर स्तुति करूँ ॥२६॥ हे प्रभो ! आप ही व्याप्ति व्याप्त, क्रिया, कर्त्ता, कार्यरूप एवं सब के आत्म स्वरूप हैं तब किस वस्तु के द्वारा आपकी स्तुति की जाय ? ॥२७॥ आप ही परमात्मा, भूतात्मा तथा अवि नाशी जीवात्मा है, तब किस वस्तु के लिये आपकी स्तुति की जा सकती है ? ॥२८॥ हे सर्व भूतात्मन् ! आप प्रसन्न होकर नरकासुर के सब अपराधों को क्षमा कर दीजिये, आपने अपने इस पुत्र का वध उसे दोषों से मुक्त करने के लिये ही किया है ॥२९॥

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्भूतभावन ।
रत्नानि नरकावासाज्जग्राह मुनिसत्तम ॥३०
कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुलविक्रम ।
शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामुने ॥३१
चतुर्दंष्ट्रान्गजाश्चाग्र्यान् षट्सहस्राश्च दृष्टवान् ।
काम्बोजानां तथाश्वानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२
ता कन्यास्तांस्तथा नागास्तानश्वान् द्वारका पुरीम् ।
प्रापयामास गोविन्दस्सद्यो नरककिंकरैः ॥३३
ददृशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् ।
आरोपयामास हरिर्गरुडे पतगेश्वरे ॥३४
आरुह्य च स्वयं कृष्णस्सत्यभामासहायवान् ।
अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम् ॥३५

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार भूत भावन भगवान् श्रीकृष्ण ने 'ऐसा ही हो' कह कर नरकासुर के घर से अनेक प्रकार के रत्न ग्रहण किये ॥३०॥ हे महामुने ! अत्यन्त बली भगवान् ने नरकासुर की कन्याओं के अन्त पुर में जाकर सोलह हजार कन्याओं को देखा ॥३१॥ वहीं चार दाँत वाले ६ हजार हाथी और इक्कीस लाख कम्बोजो जाति के घोड़े देखे ॥३२॥ उन सब कन्याओं, हाथियों और घोड़ों को उन्होंने नरकासुर के भृत्यों के द्वारा द्वारकापुरी पहुँचवा दिया ॥३३॥ फिर उन्होंने वरुण के छत्र और मणि पर्वत

को वहीं देख कर उठा लिया और पक्षिराज गरुड़ की पीठ पर उसे लाद ॥३४॥ तथा सत्यभामा सहित स्वयं भी गरुड़ पर आरूढ़ हो कर अदिति को उसके कुण्डल देने के लिये स्वर्गलोक को गये ॥३५॥

तीसरां अध्याय

गरुडो वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् ।
सभार्यं च हृषीकेशं लीलयैव वहन्ययौ ॥१
ततश्शङ्खमुपाध्मासीत्स्वर्गद्वारगतो हरिः ।
उपतस्थुस्तथा देवास्साध्यंहस्ता जनार्दनम् ॥२
स देवैरर्चितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम् ।
सिताभ्रशिखराकारं प्रविश्य ददृशेऽदितिम् ॥३
स तां प्रणम्य शक्रेण सह ते कुण्डलोत्तमे ।
ददौ नरकनाशं च शशंसास्यै जनार्दनः ॥४
ततः प्रीता जगन्माता धातारं जगतां हरिम् ।
तुष्टावादितिरव्यग्रा कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥५
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयंकर ।
सनातनात्मन् सर्वात्मन् भूतात्मन् भूतभावन ॥६
प्रणेतर्मनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मक ।
त्रिगुणातीत निर्द्वन्द्व शुद्धसत्त्व हृदि स्थित ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—वरुण के छत्र, मणि पर्वत सत्यभामा और श्रीकृष्ण को लीला पूर्वक धारण किये हुए ही पक्षिराज गरुड़ स्वर्ग के लिये चले ॥१॥ स्वर्ग द्वार के आते ही श्रीकृष्ण ने अपना शङ्ख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनते ही देवगण अर्घ्य सहित उनके समक्ष उपस्थित हुए ॥२॥ देवताओं द्वारा पूजन को प्राप्त हुए श्रीकृष्ण ने देवमाता अदिति के शुभ्र मेघ शिखर जैसे भवन मे पहुच कर उन्हें देखा ॥३॥ फिर इन्द्र के सहित श्रीकृष्ण ने उन्हे प्रणाम किया और नरकासुर के मारने का पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर उन्हे उनके कुण्डल

अर्पित किये ।।४।। फिर जगन्माता अदिति ने अत्यन्त आनन्दित हो कर विश्व स्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ।।५।। अदिति ने कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्त भयहारी सनातन स्वरूप ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन आपको नमस्कार है ।।६।। हे मन, बुद्धि और इन्द्रियों के रचने वाले गुण रूप एवं गुणातीत ! हे द्वन्द्व-रहित, शुद्ध सत्व एवं अन्तर्यामिन् ! आपको प्रणाम है ।।७।।

सितदीर्घादिनिश्शेषकल्पनापरिवर्जित ।
जन्मादिभिरसंस्पृष्ट स्वप्नादिपरिवर्जित ।।८
सन्ध्या रात्रिरहो भूमिर्गगनं वायुरम्बु च ।
हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्वं तथाच्युत ।।९
सर्गस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ।
ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर ।।१०
देवा दैत्यास्तथा यक्षा राक्षसास्सिद्धपन्नगाः ।
कूष्माण्डाश्च पिशाचाश्च गन्धर्वा मनुजास्तथा ।।११
पशवश्च मृगाश्चैव पतङ्गाश्च सरीसृपाः ।
वृक्षगुल्मलता बह्व्यः समस्तास्तृणजातयः ।।१२
स्थूला मध्यास्तथा सूक्ष्मास्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराश्च ये ।
देहभेदा भवान् सर्वे ये केचित्पुद्गलाश्रयाः ।।१३
माया तवेयमज्ञातपरमार्थातिमोहिनी ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं यया मूढो निरुद्ध्यते ।।१४

हे नाथ ! आप श्वेतादि वर्ण, दीर्घादि मान तथा जन्मादि विकारों से दूर हैं। स्वप्नादि तीन अवस्थाएँ भी आप में नहीं हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ।।८।। हे अच्युत ! सायं, रात्रि, दिवस, पृथिवी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और अहंकार—सब कुछ आप ही तो हैं ।।९।। हे ईश्वर ! आप, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर नामक अपने तीन रूप से संसार की सृष्टि, स्थिति, और संहार करते हैं। आप ही कर्त्ताओं के कर्त्ता हैं ।।१०।। देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, नाग, कूष्माण्ड, पिशाच गन्धर्व, मनुष्य, पशु, मृग, पतंग, सरीसृप वृक्ष, गुल्म, लता, सम्पूर्ण प्रकार के तृण और स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जितने भी देह के भेद परमाणु के आश्रय में हैं, वे सभी आप है ।।११

-१३।। आपकी ही माया परमार्थतत्व से अनभिज्ञ पुरुषों को मोहित करती है, जिसके कारण अज्ञानी मनुष्य अनात्म को आत्म समझ कर बन्धन मे पड़ते हैं ।।१४।।

अस्वे स्वमिति भावोऽत्र यत्पुंसामुपजायते ।
अहं ममेति भावो यत्प्रायेणैवाभिजायते ।
संसारमातुर्मायायास्तवैतन्नाथ चेष्टितम् ।।१५
यैः स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान् ।
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये ।।१६
ब्रह्माद्यास्सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा ।
विष्णुमायामहावर्तमोहान्धतमसावृताः ।।१७
आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभवक्षयम् ।
यदेते पुरुषा माया सैवेयं भगवंस्तव ।।१८
मया त्व पुत्रकामिन्या वैरिपक्षजयाय च ।
आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत् ।।१९
कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ।
जायते यदपुण्यानां सोऽपराधः स्वदोषजः ।।२०
तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय ।
अज्ञानं ज्ञानसद्भावभूतं भूतेश नाशय ।।२१

हे प्रभो ! अनात्मा मे आत्मा और ममता के भाव की जो उत्पत्ति हो जाती है, वह सब आपकी माया का ही प्रभाव है ।।१५।। हे नाथ ! जो मनुष्य अपने धर्म का आचरण करते हुए आपकी उपासना में रत रहते हैं, वे अपनी मुक्ति के लिये सब माया को लाँघ जाते है ।।१६।। ब्रह्मादि सब देवता, मनुष्य तथा पशु आदि सब विष्णु माया रूपी महान् गढ़े मे पड़कर मोह रूपी अन्धकार से ढक जाते हैं ।।१७।। हे प्रभो ! आप भव-बन्धन के काटने वाले की आराधना करके भी जो पुरुष विभिन्न प्रकार के भोग ही माँगते हैं, वह सब आपकी माया का ही प्रभाव है ।।१८।। मैंने भी शत्रुओं को हराने के लिये पुत्रों की विजय-कामना करते हुए ही आपका आराधन किया था, मोक्ष के लिये नही किया

यह भी आपकी माया का ही प्रभाव था ॥१९॥ कल्पवृक्ष से भी जो पुण्य-विहीन पुरुष वस्त्रादि की ही याचना करते हैं तो उनका यह दोष कर्म से ही उत्पन्न हुआ है ॥२०॥ हे सम्पूर्ण विश्व में माया-मोह के उत्पन्न करने वाले प्रभो ! आप प्रसन्न हूजिये । हे भूतेश्वर ! मेरे ज्ञान के अभिमान से उत्पन्न हुए अज्ञान को आप नष्ट कर डालिये ॥२१॥

नमस्ते चक्रहस्ताय शार्ङ्गहस्ताय ते नमः ।
गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय ते नमः ॥२२
एतत्पश्यामि ते रूप स्थूलचिह्नोपलक्षितम् ।
न जानामि पर यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥२३
अवित्यंवं स्तुतो विष्णु प्रहस्याह सुरारणिम् ।
माता देवि त्वमस्माक प्रसीद वरदा भव ॥२४
एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषैस्सुरासुरै ।
अजेयः पुरुषव्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि ॥२५
तत कृष्णस्य पत्नी च शक्रपत्न्या सहादितिम् ।
सत्यभामा प्रणम्याह प्रसीदेति पुनः पुन. ॥२६
मत्प्रसादान्न ते सुभ्रु जरा वैरूप्यमेव वा ।
भविष्यत्यनवद्याङ्गि सुस्थिर नवयौवनम् ॥२७
अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम् ।
यथावत्पूजयामास बहुमानपुरस्सरम् ॥२८

हे चक्रपाणे ! हे शार्ङ्ग धनुषधारी आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे गदा और शङ्ख धारण करने वाले विष्णो ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२२॥ मैं आपके स्थूल चिह्नों के आरोप वाले इसी रूप को देख रही हूँ, आपके उस यथार्थ पर स्वरूप को तो मैं जानती ही नहीं । हे परमेश्वर ! आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—अदिति की इस प्रकार की स्तुति को सुनकर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए देवजननी से कहा—हे देवि ! आप तो हमारी माता है, आप प्रसन्न होकर हमारे लिये वर देने वाली बनो ॥२४॥ अदिति ने कहा—हे पुरुष व्याघ्र ! ऐसा ही हो, तुम इच्छानुसार-फल प्राप्त

करो। मर्त्यलोक में तुम सब देवताओं और दैत्यों से अजेय रहोगे ॥२५॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर इन्द्र की भार्या शची के सहित कृष्ण पत्नी सत्यभामा ने अदिति को बारम्बार प्रणाम किया और उनसे निवेदन किया कि आप हम पर प्रसन्न हों ॥२६॥ हे सुभ्रू ! मेरी कृपा से वृद्धावस्था या विरूपता तेरे निकट न आयेगी और तू सदा ही अनिन्दित अङ्ग वाली और स्थिर नवयौवन से सम्पन्न रहेगी ॥२७॥ श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् अदिति की आज्ञा से देवराज इन्द्र ने श्रीकृष्ण का अत्यन्त मान के सहित पूजन किया ॥२८॥

शची च सत्यभामायै पारिजातस्य पुष्पकम् ।
न ददौ मानुषी मत्वा स्वयं पुष्पैरलङ्कृता ॥२९
ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान् ।
देवोद्यानानि हृद्यानि नन्दनादीनि सत्तम ॥३०
ददर्श च सुगन्धाढ्यं मञ्जरीपुञ्जधारिणम् ।
नित्याह्लादकरं ताम्रबालपल्लवशोभितम् ॥३१
मथ्यमानेऽमृते जातं जातरूपोपमत्वचम् ।
पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसूदनः ॥३२
तुतोष परमप्रीत्या तरुराजमनुत्तमम् ।
तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तम ।
कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः ॥३३
यदि चेत्त्वद्वचः सत्यं त्वमत्यर्थं प्रियेति मे ।
मद्गेहनिष्कुटार्थाय तदयं नीयतां तरुः ॥३४
न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी ।
सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम् ॥३५

उस समय कल्पवृक्ष के पुष्पों से सुशोभिता इन्द्राणी ने सत्यभामा के मानुषी होने के कारण पारिजात-पुष्प नहीं दिये ॥२९॥ फिर सत्यभामा के सहित श्रीकृष्ण ने देवताओं के नन्दन कानन आदि सुरम्य उपवनों को जाकर देखा ॥३०॥ केशी के मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ पर सुगन्धित मंजरी पुञ्ज से लदे हुए, नित्यानन्द करने वाले, ताम्ररङ्ग के बाल और पत्रों से सुशो-

भित, स्वर्गिम छाल से युक्त उस अमृत मंथन से उत्पन्न हुए पारिजात वृक्ष को देखा ॥३१-३२॥ हे द्विजोत्तम ! उस सर्वश्रेष्ठ तरराज के दर्शन कर उसके प्रति अत्यन्त प्रीति करती हुई सत्यभामाजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई और भगवान् से कहने लगी—हे प्रभो ! इस तरराज को द्वारका क्यो नही ले चलते ? ॥३३॥ यदि आप अपने वचनानुसार मुझे अपनी अनन्यतम प्रियतमा मानते हैं तो इस वृक्षराज को मेरे भवन के उद्यान मे लगाने के लिये ले चलिये ॥३४॥ हे कृष्ण ! हे नाथ ! आप अनेक बार कह चुके हैं कि हे सत्ये ! मुझे तेरे समान जाम्बती या रुक्मिणी कोई भी प्यारी नही है ॥३५॥

सत्य तद्यदि गोविन्द नोपचारकृत मम ।
तदस्तु पारिजातोऽय मम गेहविभूषणम् ॥३६
बिभ्रती पारिजातस्य केशपक्षेण मञ्जरीम् ।
सपत्नीनामह मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३७
इत्युक्तम्स प्रहस्यैना पारिजात गरुत्मति ।
आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिण ॥३८
भो शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम् ।
पारिजात न गोविन्द हर्तु महंसि पादपम् ॥३९
उत्पन्नो देवराजाय दत्तस्सोऽपि ददौ पुन ।
महिष्यै सुमहाभाग देव्यै शच्यै कुतूहलात् ॥४०
शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने ।
उत्पादितोऽय न क्षेमी गृहीत्वैन गमिष्यसि ॥४१
देवराजो मुखप्रेक्षी यस्यास्तस्या परिग्रहम् ।
मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैन हि को व्रजेत् ॥४२

हे गोविन्द ! यह आपका वह वचन सत्य और मेरे प्रति बहाना मात्र नही है, तो इस पारिजात को मेरे घर की शोभा बनाइये ॥३६॥ मैं चाहती हूँ कि अपने केशो मे इन पारिजात पुष्पो को गूँथ कर अपनी अन्य सौतो मे अधिक शोभा सम्पन्न बन जाऊँ ॥३७॥ श्री पराशरजी ने कहा—सत्यभामा के वचन सुनकर भगवान् श्रीहरि हँस पडे और उन्होंने उस पारिजात वृक्ष को उठाकर

गरुड की पीठ पर रख लिया। इस पर नन्दन कानन के रक्षकों ने उनसे कहा- ॥३८॥ हे गोविन्द ! यह पारिजात इन्द्राणी शची की निजी सम्पत्ति है, आप इसे न लीजिये ॥३९॥ जब यह क्षीर-सागर से उत्पन्न हुआ था, तब इसे देवराज ने प्राप्त करके अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया था ॥४०॥ शची को अलङ्कृत करने के लिये अमृत मथन के समय इसे देवताओं ने उत्पन्न किया था, इसलिये आप इसको कुशल पूर्वक नहीं ले जा सकते ॥४१॥ देवराज भी जिस शचि का मुख निहारते रहते हैं यह पारिजात उसी की सम्पत्ति है, जिसे ग्रहण करने का आपका विचार मूर्खता का ही है, भला इसका हरण करके कौन बचकर निकल सकता है ॥४२॥

अवश्यमस्य देवेन्द्रा निष्कृतिं कृष्ण यास्यति ।
वज्रोद्यतकरं शक्रमनुयास्यन्ति चामरा ॥४३
तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ।
विपाककटु यत्कर्म तन्न शसन्ति पण्डिता ॥४४
इत्युक्ते तैरुवाचैतान् सत्यभामातिकोपिनी ।
का शची पारिजातस्य को वा शक्रस्सुराधिप ॥४५
सामान्यस्सर्वलोकस्य यद्येषोऽमृतमन्थने ।
समुत्पन्नस्तरुः कस्मादेको गृह्णाति वासव ॥४६
यथा सुरा यथैवेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिण ।
सामान्यस्सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुम ॥४७
भर्तृबाहुमहागर्वाद्रुणद्ध्येनमथो शची ।
तत्कथ्यतामलं क्षान्त्या सत्या हारयति द्रुमम् ॥४८
कथ्यतां च द्रुतं गत्वा पौलोम्या वचनं मम ।
सत्यभामा वदत्येतदिति गर्वोद्धताक्षरम् ॥४९
यदि त्वं दयिता भर्तुर्यदि वश्य पतिस्तव ।
मद्भर्तुर्हरतो वृक्षं तत्कारय निवारणम् ॥५०
जानामि ते पतिं शक्रं जानामि त्रिदशेश्वरम् ।
पारिजातं तथाप्येनं मानुषी हारयामि ते ॥५१

हे कृष्ण ! इसकी रक्षा के लिये देवराज वज्र ग्रहण करके अवश्य आयेंगे तथा अन्य सभी देवगण उनकी सहायता करेंगे ॥४३॥ इसलिये, हे अच्युत ! सब देवताओं से शत्रुता करना उचित नहीं है, क्योंकि पण्डितजन कटु परिणाम वाले कार्य का निषेध करते हैं ॥४४॥ श्री पराशरजी ने कहा—उनके इस प्रकार कहने पर सत्यभामा क्रोधित होगई और कहने लगी—इस पारिजात के सुरपति इन्द्र और शची ही कौन हैं ? ॥४५॥ यदि अमृत मथन के समय इसकी उत्पत्ति हुई है तो इस पर सब लोकों का समान रूप से अधिकार है तब अकेले इन्द्र ही इसे कैसे ग्रहण कर सकते है ? ॥४६॥ हे वन रक्षको ! जैसे मदिरा, चन्द्रमा और लक्ष्मी का सभी समान रूप से उपभोग करते है, वैसे ही यह पारिजात भी सभी के लिये उपभोग्य है ॥४७॥ यदि अपने पति के भुजबल के घोर गर्व मे भर कर शची ने इस पर एकाधिकार कर लिया है, तो उसे बताना कि तुम क्षमा के योग्य नही हो, इसलिये सत्यभामा उस वृक्ष को ले गई है ॥४८॥ तुम शीघ्रता पूर्वक शची के पास जाकर यह कह दो कि सत्यभामा ने अत्यन्त गर्व पूर्वक कहा है कि यदि तुम्हारे पति तुम्हे अत्यन्त प्रेम करते हैं और तुम्हारे वश में है तो मेरे पति को पारिजात ले जाने से रोके ॥४९-५०॥ मैं तुम्हारे पति को जानती हूँ कि वे देवताओं के अधीश्वर हैं, फिर भी मैं मानुषी होकर तुम्हारे पारिजात को लिये जाती हूँ ॥५१॥

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा शच्याः प्रोचुर्यथोदितम् ।
श्रुत्वा चोत्साहयामास शची शक्रं सुराधिपम् ॥५२
ततस्समस्तदेवानां सैन्यैः परिवृतो हरिम् ।
प्रययौ पारिजातार्थमिन्द्रो योद्धुं द्विजोत्तम ॥५३
ततः परिघनिर्स्त्रिंशगदाशूलवरायुधाः ।
बभूवुस्त्रिदशास्सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥५४
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् ।
शक्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥५५
चकार शङ्खनिर्घोषं दिशश्शब्देन पूरयन् ।
मुमोच शरसङ्घातान्सहस्रायुतशश्शितान् ॥५६

ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशतैश्चितम् ।
मुमुचुस्त्रिदशास्सर्वे ह्यस्त्रशस्त्राण्यनेकशः ॥५७

श्री पराशरजी ने कहा—सत्यभामा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मालियों ने सब वृत्तान्त शची के पास जाकर सब वृत्तान्त यथावत् सुना दिया, जिसे सुनते ही शची ने सुरपति को वृक्ष की रक्षा के लिये उत्साहित किया ॥५२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर सब देवताओं की सेना को साथ लेकर सुरराज इन्द्र पारिजात को रोकने के लिये श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये गये ॥५३॥ जैसे ही इन्द्र ने वज्र ग्रहण किया, वैसे ही सब देवता परिघ, निस्त्रिंश, गदा और शूलादि श्रेष्ठ आयुधों से सज कर तैयार होगये ॥५४। फिर देवसेना सहित इन्द्र को युद्ध के लिये आया हुआ देखकर गरुडगामी गोविन्द ने अपनी शंख-ध्वनि से सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करके हजारों-लाखों तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की ॥५५-५६॥ इस प्रकार सब दिशाओं और आकाश को बाणों से आच्छादित देखकर देवताओं ने भी अनेकों शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया ॥५७॥

एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रशः ।
चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५८
पाशं सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः ।
चकार खण्डशश्चञ्च्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५९
यमेन प्रहितं दण्डं गदाविक्षेपखण्डितम् ।
पृथिव्यां पातयामास भगवान् देवकीसुतः ॥६०
शिबिकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः ।
चकार शौरिरर्कं च दृष्टिदृष्टहतोजसम् ॥६१
नीतोऽग्निश्शीततां बाणैर्द्राविता वसवो दिशः ।
चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः ॥६२
साध्या विश्वेऽथ मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः ।
शार्ङ्गिणा प्रेरितैरस्ता व्योम्नि शाल्मलितूलवत् ॥६३
गरुत्मानपि तुण्डेन पक्षाभ्यां च नखाङ्कुरैः ।
भक्षयस्ताडयन् देवान् दारयंश्च चचार वै ॥६४

जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक ही देवताओ के प्रत्येक शस्त्रास्त्र के हजारो खण्ड कर डाले ।।५८।। सर्पों का आहार करने वाले गरुड ने जलराज वरुण के पाश को सर्प के बालक के समान अपनी चोंच से चबाकर अनेक टुकडो मे विभक्त कर दिया ।।५६।। भगवान् श्रीकृष्ण ने यम द्वारा प्रेरित दण्ड को अपनी गदा से टूक-टूक कर पृथिवी पर गिरा दिया ।।६०।। कुबेर के विमान का चूर्ण कर दिया और अपनी तेजोमयी दृष्टि से देखकर ही तेज-हीन कर दिया ।।६१।। बाण-वर्षा द्वारा अग्नि को शीतल कर वसुओ को सब दिशाओ मे भगा दिया और त्रिशूलो की नोक को अपने चक्र से काट डाला और रुद्रो को भूमि पर गिरा दिया ।।६२।। उनके द्वारा प्रेरित किये गये बाणो से साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण और सभी गन्धर्व सेमल की रुई के समान उडते हुए, व्योम मे ही विलीन होगये ।।६३।। उस समय गरुड भी अपनी चोंच, पंख और पंजो के द्वारा देवताओ का भक्षण करते, विदीर्ण करते और मारते हुए विचर रहे थे ।।६४।।

ततश्शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ ।
परस्परं ववर्षाते धाराभिरिव तोयदौ ।।६५
ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र सङ्कुले ।
देवैस्समस्तैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः ।।६६
भिन्नेष्वशेषबाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरन् ।
जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ।।६७
ततो हाहाकृतं सर्वं त्रैलोक्यं द्विजसत्तम ।
वज्रचक्रकरौ दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ ।।६८
क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः ।
न मुमोच तदा चक्रं शक्र तिष्ठेति चाब्रवीत् ।।६६

फिर जैसे दो बादलो से जल की वर्षा हो रही हो, वैसे ही श्रीकृष्ण और इन्द्र परस्पर बाण-वर्षा कर रहे थे ।।६५।। उस समय गरुड-ऐरावत भिड़त हो रही थी तथा श्रीकृष्ण देवताओ और इन्द्र से भिड रहे थे ।।६६।। सभी बाणो के समाप्त होने और शस्त्रास्त्रो के छिन्न-भिन्न होजाने पर इन्द्र ने

वज्र और कृष्ण ने सुदर्शन चक्र ग्रहण किया ॥६७॥ हे द्विजसत्तम ! उस समय इन्द्र को वज्र और कृष्ण को सुदर्शन चक्र लेकर युद्ध करते देख कर तीनो लोको मे हाहाकार मच गया ॥६८॥ श्रीकृष्ण ने इन्द्र द्वारा प्रेरित वज्र को पकड लिया और अपने चक्र को हाथ मे ग्रहण किये हुए ही इन्द्र से ललकार कर कहा—'ठहर तो सही' ॥६९॥

प्रणष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतवाहनम् ।
सत्यभामाब्रवीद्वीरं पलायनपरायणम् ॥७०
त्रैलोक्येश न ते युक्तं शचीभर्तुः पलायनम् ।
पारिजातस्रगाभाग्रा त्वामुपस्थास्यते शची ॥७१
कीदृशं देवराज्यं ते पारिजातस्रगुज्ज्वलाम् ।
अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाभ्यागतां शचीम् ॥७२
अलं शक्र प्रयासेन न व्रीडां गन्तुमर्हसि ।
नीयतां पारिजातोऽयं देवास्सन्तु गतव्यथाः ॥७३
पतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरस्सरम् ।
न ददर्श गृहं यातामुपचारेण मां शची ॥७४
स्त्रीत्वादगुरुचित्ताहं स्वभर्तृश्लाघनापरा ।
ततः कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम् ॥७५
तदलं पारिजातेन परस्वेन हृतेन मे ।
रूपेण गर्विता सा तु भर्त्रा का स्त्री न गर्विता ॥७६

इस प्रकार वज्र छिन जाने और ऐरावत का गरुड के प्रहारो से बुरी तरह आहत होने के कारण इन्द्र भागने लगा, तब सत्यभामा ने उससे कहा—हे त्रैलोक्येश ! तुम शचीपति को इस प्रकार युद्ध से नही भागना चाहिये। क्योंकि पारिजात के पुष्पो से अलंकृत हुई शची अब शीघ्र ही तुम्हारे पास उपस्थित होगी ॥७०-७१॥ हे इन्द्र ! जब पारिजात पुष्पो से शून्य शची तुम्हारे पास प्रेमवश उपस्थित होगी, तब उसे उस प्रकार देख कर तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा ? ॥७२॥ हे इन्द्र ! अब अधिक प्रयास मत करो, निःसंकोच इस पारिजात को लेजाओ, क्योकि इसे पाने पर ही देवताओ की व्यथा दूर होगी

॥७३॥ अपने पति के भुजबल से गर्विता हुई शची ने मुझे अपने घर पर आई हुई देख कर भी मेरा कुछ विशेष सम्मान नहीं किया था ॥७४॥ मैं भी स्त्री होने के कारण अधिक गंभीर चित्त वाली नहीं हूँ, इसलिये अपने पति का गौरव दिखाने के लिये ही मैंने यह युद्ध कराया था ॥७५॥ मुझे इस पारिजात रूप पराई सम्पत्ति को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे शची को अपने रूप और पति का गर्व है, वैसे ही अन्य स्त्री को भी क्यों न होगा? ॥७६॥

इत्युक्तो वै निववृते देवराजस्तया द्विज।
प्राह चैनामलं चण्डि सख्यु खेदोक्तिविस्तरैः ।७७
न चापि सर्गसंहारस्थितिकर्ताखिलस्य यः।
जितस्य तेन मे व्रीडा जायते विश्वरूपिणा ॥७८
यस्माज्जगत्सकलमेतदनादिमध्या-
द्यस्मिन्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात्।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन
व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७९
सकलभुवनसूतिमूर्तिरल्पाल्पसूक्ष्मा
विदितसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः।
तमजमकृतमीशं शाश्वतं स्वेच्छयैनं
जगदुपकृतिमर्त्यं को विजेतुं समर्थः ॥८०

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज! इस प्रकार कहे जाने पर देवराज इन्द्र लौट आये और कहने लगे—मैं तो तुम्हारा सुहृद ही हूँ, मेरे प्रति इस प्रकार की खेदोक्तियों के विस्तार से क्या लाभ है? ॥७७॥ सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहारकर्त्ता तथा विश्वरूप परमात्मा से हारे जाने में संकोच का कोई कारण नहीं है ॥७८॥ हे देवि! जिन आदि-मध्य से रहित भगवान् से यह विश्व उत्पन्न होकर उन्हीं के द्वारा स्थित होता और अन्त में विलीन होजाता है, ऐसे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप ईश्वर से पराजित होने में संकोच कैसा? ॥७९॥ जिनकी सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाली अल्प से भी अल्प और सूक्ष्म मूर्ति को सब वेदों के ज्ञाता भी नहीं जान

सकते तथा जिन्होंने स्वेच्छा पूर्वक लोक कल्याण के लिये मर्त्यलोक में अवतार लिया है, उन जन्म-रहित, कर्म-रहित और नित्य स्वरूप परमेश्वर को पराजित करने का सामर्थ्य किसमें होगा ? ॥८०॥

इकतीसवाँ अध्याय

सस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशव. ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१
देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।
क्षन्तव्यं भवतैवेदमपराध कृत मम ॥२
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम् ।
गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३
वज्रं चेद गृहाण त्व यदत्र प्रहितं त्वया ।
तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४
विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् ।
जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥५
योऽसि सोऽसि जगत्त्राणप्रवृत्तो नाथ संस्थितः ।
जगतश्शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवती पुरीम् ।
मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नाय सस्थास्यते भुवि ॥७
देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।
शङ्खचक्रगदापाणे क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गभीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र हैं और हम मरणधर्मा मानव, इसलिये हमसे आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात

को इसके अपने स्थान पर ही रखिये क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने के लिये ही मैंने इसे ग्रहण किया था ॥३॥ आप अपने फेंके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह में क्यों डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हूँ, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नहीं है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो हैं, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए हैं तथा उसे कण्टक-विहीन कर रहे हैं ॥६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती को लेजाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नहीं रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महाभुज ! हे शङ्ख-चक्र-गदापाणे ! मेरे अपराध को क्षमा करिये ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः ।
प्रसक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥९
ततश्शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः ।
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विज ॥१०
अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम् ॥११
यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।
वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२
ततस्ते यादवास्सर्वे देहबन्धानमानुषान् ।
ददृशुः पादपे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो' कहा और सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षियों से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥९॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होंने शङ्ख-ध्वनि करके द्वारकावासियों को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उनके सहित गरुड से उतरे और पारिजात को वहीं रखवा दिया ॥११॥ जिसकी निकटता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पों की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को सुरभित रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उसमें

सकते तथा जिन्होंने स्वेच्छा पूर्वक लोक कल्याण के लिये मर्त्यलोक में अवतार लिया है, उन जन्म-रहित, कर्म-रहित और नित्य स्वरूप परमेश्वर को पराजित करने का सामर्थ्य किसमें होगा ? ॥८०॥

इक्तीसवाँ अध्याय

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१
देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।
क्षन्तव्यं भवतैवेदमपराध कृतं मम ॥२
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम् ।
गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३
वज्रं चेदं गृहाण त्व यदत्र प्रहितं त्वया ।
तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४
विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् ।
जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥५
योऽसि सोऽसि जगत्त्राणप्रवृत्तौ नाथ संस्थितः ।
जगतश्शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवतीं पुरीम् ।
मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नायं संस्थास्यते भुवि ॥७
देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।
शङ्खचक्रगदापाणे क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गभीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र है और हम मरणधर्मा मानव, इसलिये हमसे आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात

को इसके अपने स्थान पर ही रखिये क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने के लिये ही मैंने इसे ग्रहण किया था ॥३॥ आप अपने फेंके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह मे क्यो डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हू, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नही है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो हैं, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए हैं तथा उसे कटक-विहीन कर रहे है ॥६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती को लेजाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नही रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महाभुज ! हे शंख-चक्र-गदापाणे ! मेरे अपराध को क्षमा करिये ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुव हरिः ।
प्रसक्तं. सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरर्षिभि. ॥६
ततश्शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि सस्थित. ।
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिना द्विज ॥१०
अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।
निष्कुटे स्थापयामास पारिजात महातरुम् ॥११
यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।
वास्यते यस्य पुष्पोत्यगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२
ततस्ते यादवास्सर्वे देहबन्धानमानुपान् ।
ददृशु. पादपे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो' कहा और सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षियो से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥६॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होने शख-ध्वनि करके द्वारकावासियो को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उसके सहित गरुड से उतरे और पारिजात को वही रखवा दिया ॥११॥ जिसकी निकटता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पो की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को सुरभित रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उसकी

सकते तथा जिन्होंने स्वेच्छा पूर्वक लोक कल्याण के लिये मर्त्यलोक में अवतार लिया है, उन जन्म-रहित, कर्म-रहित और नित्य स्वरूप परमेश्वर को पराजित करने का सामर्थ्य किसमें होगा ? ॥८०॥

इकतीसवाँ अध्याय

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१
देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।
क्षन्तव्यं भवतैवेदमपराध कृत मम ॥२
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम् ।
गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३
वज्रं चेदं गृहाण त्व यदत्र प्रहितं त्वया ।
तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४
विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति कि वदन् ।
जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥५
योऽसि सोऽसि जगत्त्राणप्रवृत्तो नाथ संस्थितः ।
जगतश्शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवती पुरीम् ।
मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नाय संस्थास्यते भुवि ॥७
देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।
शङ्खचक्रगदापाणे क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गभीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र हैं और हम मरणधर्मा मानव, इसलिये हमसे आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात

को इसके अपने स्थान पर ही रखिये क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने के लिये ही मैंने इसे ग्रहण किया था ॥३॥ आप अपने फेंके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह में क्यों डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हूँ, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नहीं है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो है, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए है तथा उसे कटक-विहीन कर रहे हैं ॥६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती को लेजाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नहीं रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महाभुज ! हे शंख-चक्र-गदापाणे ! मेरे अपराध को क्षमा करिये ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः ।
प्रसक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥९
ततश्शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः ।
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विज ॥१०
अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम् ॥११
यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।
वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२
ततस्ते यादवास्सर्वे देहबन्धानमानुषान् ।
ददृशुः पादपे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो' कहा और सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षियों से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥९॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होंने शंख-ध्वनि करके द्वारकावासियों को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उसके सहित गरुड से उतरे और पारिजात को वहीं रखवा दिया ॥११॥ जिसकी निकटता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पों की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को सुरभित रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उसकी

की पौत्री और बाणासुर की पुत्री उषा से हुआ ॥७॥ उस विवाह के अवसर पर श्रीकृष्ण और शंकर मे घोर संग्राम हुआ था तथा बाणासुर की हजार भुजायें काट डाली गईं थी ॥८॥

कथं युद्धमभूद्ब्रह्मन्नुषार्थे हरकृष्णयोः ।
कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां कृतवान्हरिः ॥६
एतत्सर्वं महाभाग ममाख्यातुं त्वमर्हसि ।
महत्कौतूहलं जातं कथां श्रोतुमिमां हरेः ॥१०
उषा बाणसुता विप्र पार्वतीं सह शम्भुना ।
क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम् ॥११
ततस्सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् ।
अलमत्यर्थतापेन भर्त्रा त्वमपि रंस्यसे ॥१२
इत्युक्ता सा तया चक्रे कदेति मतिमात्मनः ।
को वा भर्ता ममेत्याह पुनस्तामाह पार्वती ॥१३
वैशाखशुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव ।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! उषा के लिये कृष्ण-शंकर मे संग्राम क्यो हुआ था और श्रीकृष्ण ने बाणासुर की भुजायें क्यो काट डाली थी ॥६॥ हे महाभाग मैं उस कथा को सुनने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ, अत: आप मुझसे उसका पूर्ण वर्णन करिये ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे विप्र ! एक बार की बात है कि शंकर-पार्वती को क्रीडा-रत देख कर बाणासुर-सुता उषा ने भी अपने पति के साथ क्रीडा करने की इच्छा की ॥११॥ तब सबके चित्त को जानने वाली पार्वतीजी ने उससे कहा कि—तू संताप न कर, समय आने पर तू भी अपने पति का संग प्राप्त करेगी ॥१२॥ उनके ऐसा कहने पर उषा ने यह सोच कर कि वह समय कब आयेगा, और मेरा पति कौन होगा ? इस विषय मे पार्वतीजी से पूछा तो उन्होंने उससे फिर कहा ॥१३॥ पार्वतीजी बोली—हे राजकुमारी ! वैशाख शुक्ला द्वादशी की रात्रि मे जिस पुरुष के साथ संगति करने का तू स्वप्न देखेगी, वही पुरुष तेरा पति होगा ॥१४॥

तस्या तिथावुपास्वप्ने यथा देव्या समीरितम् ।
तथैवाभिभवं चक्रे कश्चिद्राग च तत्र सा ॥१५
ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती समुत्सुका ।
क्व गतोऽसीति निर्लज्जा मैत्रेयोक्तवती सखीम् ॥१६
बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
तस्याः सख्यभवत्सा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते ॥१७
यदा लज्जाकुला नास्यै कथयामास सा सखी ।
तदा विश्वासमानीय सर्वमेवाभ्यवादयत् ॥१८
विदितार्था तु तामाह पुनश्चोषा यथोदितम् ।
देव्या तथैव तत्प्राप्तौ यो ह्युपायः कुरुष्व तम् ॥१९
दुर्विज्ञेयमिदं वक्तुं प्राप्तुं वापि न शक्यते ।
तथापि किञ्चित्कर्तव्यमुपकारं प्रिये तव ॥२०
सप्ताष्टदिनपर्यन्तं तावत्कालः प्रतीक्ष्यताम् ।
इत्युक्त्वाभ्यन्तरं गत्वा उपायं तमथाकरोत् ॥२१

श्री पराशरजी ने कहा—फिर उसी तिथि में उषा की स्वप्नावस्था में जिस पुरुष ने पार्वतीजी के वचनानुसार उससे सङ्गति की थी, उसी से उषा का अनुराग होगया था ॥१५॥ हे मैत्रेयजी ! जब उसका स्वप्न भंग हुआ तब उसने उस पुरुष को न देखकर उसे प्राप्त करने की कामना करके उसने अपनी सखी के सामने ही लज्जा त्याग कर कहा कि तुम कहाँ चले गये ? ॥१६॥ बाणासुर के मन्त्री कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा उषा की सखी थी, उसने पूछा कि 'तुम यह किसके लिए कह रही हो ? ॥१७॥ परन्तु उषा ने उसे कुछ भी न बताया तो चित्रलेखा ने उसे विश्वास देकर उषा से सब वृत्तान्त पूछ लिया ॥१८॥ चित्रलेखा को जब यह बात विदित होगई, तब उषा ने उसे पार्वतीजी के वचन भी सुना दिये और फिर उसने चित्रलेखा से उस पुरुष की प्राप्ति का उपाय करने को कहा ॥१९॥ चित्रलेखा बोली—हे प्रिय सखी ! तुम्हारे देखे हुए पुरुष को जब तक जान न लिया जाय तब तक उसका प्राप्त होना कैसे सम्भव है ? फिर भी मैं तुम्हारा कुछ कार्य बनाने का यत्न करूँगी ॥२०॥ तुम सात-आठ दिन

तक प्रतीक्षा करो। यह कहकर उस पुरुष की खोज करने का उपाय करने के लिये वह अपने घर चली गई ॥२१॥

ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वांश्च प्रधानतः ।
मनुष्यांश्च विलिख्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत् ॥२२
अपास्य सा तु गन्धर्वांस्तथोरगसुरासुरान् ।
मनुष्येषु ददौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु ॥२३
कृष्णरामौ विलोक्यासीत्सुभ्रूर्लज्जाजडेव सा ।
प्रद्युम्नदर्शने व्रीडादृष्टिं निन्येऽन्यतो द्विज ॥२४
दृष्टमात्रे ततः कान्ते प्रद्युम्नतनये द्विज ।
दृष्ट्वात्यर्थविलासिन्या लज्जा क्वापि निराकृता ॥२५
सोऽयं सोऽयमितीत्युक्ते तया सा योगगामिनी ।
चित्रलेखाब्रवीदेनामुषा बाणसुता तदा ॥२६

श्री पराशरजी ने कहा—फिर चित्रलेखा ने प्रमुख-प्रमुख देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्यों के चित्र बनाकर उषा को दिखाये ॥२२॥ उस समय उषा ने गन्धर्व, नाग, देवता, दैत्य आदि पर ध्यान नहीं दिया और अधक तथा वृष्णिवंशी मनुष्यों को ही देखने लगी ॥२३॥ हे द्विज ! बलराम और कृष्ण के चित्रों को देखकर वह लज्जा से जड के समान होगई और प्रद्युम्न को देखकर तो उसे बहुत ही लज्जा आई ॥२४॥ फिर प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखते ही, उसकी लज्जा नष्ट होगई ॥२५॥ और यही है, यही है, कह उठी। उसके ऐसे वचन सुनकर चित्रलेखा ने उषा से कहा ॥२६॥

अयं कृष्णस्य पौत्रस्ते भर्ता देव्या प्रसादितः ।
अनिरुद्ध इति ख्यातः प्रख्यातः प्रियदर्शनः ॥२७
प्राप्नोषि यदि भर्तारमिमं प्राप्तं त्वयाखिलम् ।
दुष्प्रवेशा पुरी पूर्वं द्वारका कृष्णपालिता ॥२८
तथापि यत्नाद्भर्तारमानयिष्यामि ते सखि ।
रहस्यमेतद्वक्तव्यं न कस्यचिदपि त्वया ॥२९

अचिरादागमिष्यामि सहस्व विरहं मम ।
ययौ द्वारवती चोषां समाश्वास्य ततः सखीम् ॥३०

चित्रलेखा ने कहा—भगवती पार्वती ने प्रसन्न होकर कृष्ण के पौत्र इस अनिरुद्ध को ही तेरा पति बनाया है। यह अपनी सुन्दरता के लिये विख्यात हो रहा है ॥२७॥ इसे पति रूप मे पाने पर तो तुझे सर्वस्व ही मिल जायगा,परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित द्वारका मे प्रथम तो घुसना ही दुष्कर है ॥२८॥ फिर भी हे सखि ! मैं तेरे पति को लाने का उपाय करूंगी, परन्तु तू इस गुप्त बात को किसी पर प्रकट न करना ॥२९॥ अब मैं जाती हू और शीघ्र ही लौटूंगी। इस प्रकार उषा को आश्वासन देती हुई चित्रलेखा द्वारकापु ी के लिये चल दी।३०।

तेतीसवाँ अध्याय

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे मैत्रेयाह त्रिलोचनम् ।
देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽस्म्याहवं विना ॥१
कच्चिन्ममैषां बाहूनां साफल्यजनको रणः ।
भविष्यति विना युद्ध भाराय मम किं भुजै ॥२
मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति ।
पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसे त्व तदा रणम् ॥३
तत प्रणम्य वरद शम्भुमभ्यागतो गृहम् ।
सभग्न ध्वजमालोक्य हृष्टो हर्षं पुनर्ययौ ॥४
एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम् ।
अनिरुद्धमथानिन्ये चित्रलेखा वराप्सरा ॥५
कन्यान्त पुरमभ्येत्य रममाणं महोषया ।
विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशसुर्दैत्यभूपतेः ॥६
व्यादिष्ट किङ्कराणां तु सैन्य तेन महात्मना ।
जघान परिघं घोरमादाय परवीरहा ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! एक बार भगवान् त्रिनेत्र से बाणासुर ने प्रणाम पूर्वक कहा था कि हे देव ! युद्ध के बिना, इन हजार भुजाओं के कारण मुझे खेद होरहा है ॥१॥ क्या कभी मेरी इन भुजाओं को सफल करने वाला संग्राम हो सकेगा ? क्योंकि युद्ध के बिना यह भुजाएँ भार स्वरूप प्रतीत हो रही हैं, फिर इनसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥२॥ भगवान् शंकर ने कहा—हे बाणासुर ! जब तेरी मयूर-ध्वजा भंग हो जायगी तभी मांस भोजी पिशाचों को प्रसन्न करने वाले संग्राम की प्राप्ति होगी ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा-तब बाणासुर ने वरदायक शिवजी को प्रणाम किया और घर में पर लौट आया । फिर कुछ समय व्यतीत होने पर उसकी ध्वजा टूट गई, जिसे देखकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ ॥४॥ इसी अवसर पर चित्रलेखा द्वारका आकर अपने योग बल के प्रभाव से अनिरुद्ध को वहाँ से ले आई ॥५॥ जब अन्तःपुर के रक्षकों को अनिरुद्ध का उषा के साथ रहना ज्ञात हुआ, तब उन्होंने बाणासुर के पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥६॥ यह सुनकर बाणासुर ने अपने सेवकों को अनिरुद्ध को पकड़ने की आज्ञा दी, परन्तु शत्रुओं को नष्ट करने वाले अनिरुद्ध ने उस सम्पूर्ण सेना को लोहे के एक दण्ड से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥७॥

हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यत ।
युध्यमानो यथाशक्ति यदुवीरेण निर्जितः ॥८
मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः ।
ततस्तं पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९
द्वारवत्यां क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् ।
यदूनामाचचक्षे तं बद्धं बाणेन नारदः ॥१०
तं शोणितपुरं नीतं श्रुत्वा विद्याविदग्धया ।
योषिता प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नामरैरिति ॥११
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रागतं हरिः ।
बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२
पुरप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महात्मनः ।
ययौ बाणपुराभ्याशं नीत्वा तान्संक्षयं हरिः ॥१३

जब बाणासुर के सेवक मारे गये तब बाणासुर अनिरुद्ध का वध करने के विचार से रथारूढ होकर अनिरुद्ध से युद्ध मे प्रवृत्त हुआ, परन्तु अपने जी-जान लगाकर भी वह अनिरुद्ध से हार गया ॥८॥ तब उसने मन्त्रियो के परामर्श से माया फैला कर अनिरुद्ध को नाग–पाश मे जकड लिया ॥६॥ इधर द्वारका मे अनिरुद्ध के सहसा अदृश्य हो जाने पर विविध प्रकार की बाते चल रही थी, तभी देवर्षि नारद ने अनिरुद्ध के नागपाश मे बाँध जाने का समाचार दिया ॥१०॥ योग–विद्या मे कुशल चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध को शोणितपुर लेजाया गया यह सुनकर यादवो ने समझ लिया कि अनिरुद्ध का देवताओ ने अपहरण नही किया है ॥११॥ फिर स्मरण करने पर तत्काल उपस्थित हुए गरुड पर चढ कर बलराम और प्रद्युम्न के सहित श्रीकृष्ण बाणापुर के नगर को गये ॥१२॥ वहाँ पहुँचते ही उन तीनो को शिव–पार्षद प्रमथगणो से सग्राम करना पडा। उनको मार कर वे बाणासुर के निकट जा पहुचे ॥१३॥

ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान् ।
बाणरक्षार्थमभ्येत्य युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४
तद्भस्मस्पर्शसम्भूततापः कृष्णाङ्गसङ्गमात् ।
अवाप बलदेवोऽपि श्रममामीलितेक्षणः ॥१५
ततस्स युद्धयमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा ।
वैष्णवेन ज्वरेणाशु कृष्णदेहान्निराकृतः ॥१६
नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् ।
त वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह ॥१७
ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त वैष्णव ज्वरम् ।
आत्मन्येव लय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८
मम त्वया सम युद्ध ये स्मरिष्यन्ति मानवा ।
विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ ज्वर ॥१९
ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा तथा क्षयम् ।
दानवाना बल कृष्णश्चूर्णयामास लीलया ॥२०

उसके पश्चात् बाणासुर की रक्षा मे जो तीन शिर और तीन पाँव वाला माहेश्वर ज्वर नियुक्त था, उसने अग्रसर होकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया ॥१३॥ उस ज्वर द्वारा प्रेरित भस्म के स्पर्श से श्रीकृष्ण भी सन्तप्त हो उठे और कृष्ण के अङ्गों के स्पर्श से बलरामजी ने भी शिथिलता को प्राप्त होकर अपने नेत्र बन्द कर लिये ॥१५॥ इस प्रकार जब वह माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्ण के देह मे व्याप्त होकर युद्ध कर रहा था, तब वैष्णव ज्वर ने आक्रमण करके उसे उनके शरीर से दूर कर दिया ॥१६॥ उस समय भगवान् की भुजाओ के आघात को सहन न करने से सतप्त हुए उस माहेश्वर ज्वर को विह्वल देखकर ब्रह्माजी ने उसे क्षमा करने के लिये श्रीकृष्ण से कहा ॥१७॥ तब श्रीकृष्ण ने उसे क्षमा करके वैष्णव ज्वर को अपने देह मे ही विलीन कर लिया ॥१८॥ तब माहेश्वर ज्वर ने कहा—आपके और मेरे मध्य मे हुए इस युद्ध का जो स्मरण करेंगे, उन्हे ज्वर व्याप्त नही होगा। यह कहकर वह ज्वर चला गया ॥१९॥ फिर श्रीकृष्ण ने पचाग्नियों को वशीभूत कर उन्हे नष्ट कर डाला और लीला पूर्वक ही दानवो को मारने लगे ॥२०॥

ततस्समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेस्सुत: ।
युयुधे शङ्करश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१
हरिशङ्करयोर्युद्धमतीवासीत्सुदारुणम् ।
चुक्षुभुस्सकला लोकाः शस्त्रास्त्रांशुप्रतापिताः ॥२२
प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः ।
मेनिरे त्रिदशास्तत्र वर्तमाने महारणे ॥२३
जृम्भकास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शङ्करम् ।
ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥२४
जृम्भाभिभूतस्तु हरो रथोपस्थ उपाविशत् ।
न शशाक ततो योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥२५
गरुडक्षतवाहश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः ।
कृष्णहुङ्कारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः ॥२६

तदन्तर बलिपुत्र बाणासुर, भगवान् शङ्कर और स्वामी कार्तिकेयजी सम्पूर्ण दैत्य सेना के सहित आगे बढ कर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध मे तत्पर हुए ॥२१॥ भगवान् श्रीहरि और शङ्करजी मे परस्पर अत्यन्त घोर सग्राम हुआ, जिसमे प्रयुक्त शस्त्रास्त्रों के तेज जाल से सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध एव संतप्त होगये ॥२२॥ इस भयङ्कर युद्ध के होने से देवगण समझने लगे कि सम्पूर्ण विश्व का प्रलयकाल आगया जान पडता है ॥२३॥ गोविन्द द्वारा प्रेरित जृम्भकास्त्र से शङ्करजी भपकी और जमुहाई लने लगे, उनकी ऐसी दशा देखकर दैत्यो और प्रमथो मे भगदड मच गई ॥२४॥ भगवान् शङ्कर निद्रा से अभिभूत होकर रथ के पिछले भाग मे बैठ कर महान् वर्मा कृष्ण से युद्ध करने मे विफल रहे ॥२५॥ फिर स्वामि कार्तिकेय भी अपने वाहन के द्वारा गरुड द्वारा मारे जाने से और श्रीकृष्ण की हुकार तथा प्रद्युम्न के शस्त्रो से आहत होकर युद्ध भूमि से भाग निकले ॥२६॥

जृम्भते शङ्करे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते ।
नीते प्रमथसैन्ये च सङ्क्षय शार्ङ्ग धन्वना ॥२७
नन्दिना सङ्गृहीत,श्वमधिरूढो महारथम् ।
बाणस्तत्रायथौ योद्धुं कृष्णकार्ष्णिबलैरसह ॥२८
बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा ।
विव्याध बाणं प्रभ्रश्य धर्मतश्च पलायत ॥२९
आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुसलेनाशु ताडितम् ।
बल बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणा ॥३०
तत कृष्णेन बाणस्य युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
समस्यतोरिपून्दीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१
कृष्णश्चिच्छेद बाणांस्तान्बाणेन प्रहिताञ्छितान् ।
विव्याध केशव बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२
मुमुचाते तयास्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीपया ।
परस्पर क्षतिकरौ तापयादनिश द्विज ॥३३

इस प्रकार द्विजजी मे भपकी लेने, दैत्य-सेना के नष्ट होने,स्वामि कार्ति-

वैय के पलायन करने और शिवगणों के क्षीण होने पर नन्दीश्वर द्वारा हाँके जाते हुए महाश्व पर आरूढ़ हुआ बाणासुर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न से युद्ध करने के लिये सामने आया ।।२७-२८।। तब महाबली रामजी ने बाण-वर्षा के द्वारा दैत्य-सेना को छिन्न-भिन्न किया, तब वह कायरता पूर्वक वहाँ से भाग चली ।।२९।। उस समय बाणासुर ने देखा कि उसकी सेना को बलराम जी स्फूर्ति पूर्वक हल से खींचते और मूसल से मारते है तथा कृष्ण उसे बाणों से बींधे डालते है ।।३०।। तब उसने श्रीकृष्ण के साथ महा संग्राम मचाया । दोनों ही कवच भेदी बाणों का प्रयोग करने लगे ।।३१।। फिर जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर द्वारा प्रयुक्त बाणों को काट डाला, तब बाणासुर ने उन्हें और उन्होंने बाणासुर को बाणों से बींधना आरम्भ किया ।।३२।। हे द्विज ! उस समय बाणासुर और कृष्ण दोनों ही परस्पर में प्रहार करते हुए विजय की कामना से फुर्ती से आयुधों का आदान-प्रदान करने लगे ।।३३।।

छिद्यमानेष्वशेषेपुशरेष्वस्त्रेपु सीदति ।
प्राचुर्येण ततो बाणं हन्तुं चक्रे हरिर्मनः ।।३४
ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सदृशद्युति ।
जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ।।३५
मुञ्चतो बाणनाशाय ततश्चक्रं मधुद्विपः ।
नग्ना दैतेयविद्याभूत्कोटरी पुरतो हरेः ।।३६
तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षस्सुदर्शनम् ।
मुमोच बाणमुद्दिश्यच्छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ।।३७
क्रमेण तत्तु बाहूनां बाणस्याच्युतचोदितम् ।
छेदं चक्रेऽसुरापास्तशस्त्रौघक्षपणादृतम् ।।३८
छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः ।
मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ।।३९
समुपेत्याह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः ।
विलोक्य बाणं दोर्दण्डच्छेदासृक्स्रावर्षिणम् ।।४०

अन्त में जब सभी बाण टूट गये और सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ होगये, तब

भगवान् श्रीहरि ने बाणासुर को नष्ट करने का निश्चय किया ।।३४।। फिर दैत्यो के महान् शत्रु भगवान् हरि ने सैकडों सूर्यों जैसे तेज वाले सुदर्शन चक्र को हाथ मे ग्रहण किया ।।३५।। जब वह उसे मारने के लिये अपने चक्र को छोडने मे तत्पर हो रहे थे, तभी दैत्यो की विद्या कोटरी नग्नावस्था मे श्रीकृष्ण के सामने आई ।।३६।। उसे देखकर भगवान् ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और बाणासुर की भुजाओ रूपी वन को काटने के लिये, उसे लक्ष्य करके चक्र प्रेरित किया ।।३७।। तब उस चक्र ने दैत्यो द्वारा प्रेरित अस्त्रो को काट कर बाणासुर की भुजाओ को भी काट कर गिरा दिया ।।३८।। तब भगवान् शङ्कर ने यह समझ कर कि अब श्रीकृष्ण इस बाणासुर का वध करने के लिये पुन अपने चक्र को प्रेरित करने मे तत्पर हैं ।।३९।। तब बाणासुर के कटे हुए भुजदण्डो से रुधिर–धार प्रवाहित होती देखकर उन पार्वतीनाथ त्रिपुरारि शङ्कर ने भगवान् गोविन्द के पास आकर कहा ।।४०।।

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम् ।
परेश परमात्मानमनादिनिधन हरिम् ।।४१
देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका ।
लीलेय सर्वभूतस्य तव चेष्टोपलक्षणा ।।४२
तत्प्रसीदाभय दत्त बाणस्यास्य मया प्रभो ।
तत्त्वया नानृत कार्य यन्मया व्याहृत वच ।।४३
अस्मत्संश्रयदृप्तोऽय नापराधी तवाव्यय ।
मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ।।४४
इत्युक्त प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम् ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ।।४५

भगवान् शङ्कर बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! मुझे ज्ञात है कि आप परम पुरुष, परमात्मा और आदि–अन्त–विहीन श्रीहरि हैं ।।४१।। आप देव तिर्यक् और मनुष्यादि योनियो मे उत्पन्न होते हैं, यह सब आप सर्वभूतात्मय प्रभु की लीला ही है ।।४२।। हे प्रभो ! आप प्रसन्न हो । मैंने इस बाणासुर को जो अभयदान दिया है, मेरे उस वचन को आप भग न कीजिये

सेय के पलायन करने और शिवगणों के क्षीण होने पर नन्दीश्वर द्वारा हाँके जाते हुए महारथ पर आरूढ हुआ बाणासुर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न से युद्ध करने के लिये सामने आया ।।२७-२८।। तब महाबली रामजी ने बाण-वर्षा के द्वारा दैत्य-सेना को छिन्न-भिन्न किया, तब वह कायरता पूर्वक वहाँ से भाग चली ।।२९।। उस समय बाणासुर ने देखा कि उसकी सेना को बलराम जी स्फूर्ति पूर्वक हल से खींचते और मूसल से मारते हैं तथा कृष्ण उसे बाणों से बींधे डालते हैं ।।३०।। तब उसने श्रीकृष्ण के साथ महा युद्ध मचाया । दोनों ही कवच भेदी बाणों का प्रयोग करने लगे ।।३१।। फिर जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर द्वारा प्रयुक्त बाणों को काट डाला, तब बाणासुर ने उन्हें और उन्होंने बाणासुर को बाणों से बींधना आरम्भ किया ।।३२।। हे द्विज ! उस समय बाणासुर और कृष्ण दोनों ही परस्पर में प्रहार करते हुए विजय की कामना से फुर्ती से आयुधों का आदान-प्रदान करने लगे ।।३३।।

भिद्यमानेष्वशेषेषुशरेष्वस्त्रेषु सीदति ।
प्राचुर्येण ततो बाणं हन्तुं चक्रे हरिर्मनः ।।३४
ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सदृशद्युति ।
जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ।।३५
मुञ्चतो बाणनाशाय ततश्चक्रं मधुद्विषः ।
नग्ना दैतेयविद्याभूत्कोटरी पुरतो हरेः ।।३६
तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षस्सुदर्शनम् ।
मुमोच बाणमुद्दिश्यच्छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ।।३७
क्रमेण तत्तु बाहूना बाणस्याच्युतचोदितम् ।
छेदं चक्रेऽसुरापास्तशस्त्रौघक्षपणादृतम् ।।३८
छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः ।
मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ।।३९
समुपेत्याह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः ।
विलोक्य बाणं दोर्दण्डच्छेदासृक्स्राववर्षिणम् ।।४०

अन्त में जब सभी बाण टूट गये और सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ होगये, तब

भगवान् श्रीहरि ने वाणासुर को नष्ट करने का निश्चय किया ॥३४॥ फिर दैत्यो के महान् शत्रु भगवान् हरि ने सैंकड़ो सूर्यों जैसे तेज वाले सुदर्शन चक्र को हाथ में ग्रहण किया ॥३५॥ जब वह उसे मारने के लिये अपने चक्र को छोड़ने मे तत्पर हो रहे थे, तभी दैत्यो की विद्या कोटरी नग्नावस्था मे श्रीकृष्ण के सामने आई ॥३६॥ उसे देखकर भगवान् ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और बाणासुर की भुजाओं रूपी वन को काटने के लिये, उसे लक्ष्य करके चक्र प्रेरित किया ॥३७॥ तब उस चक्र ने दैत्यो द्वारा प्रेरित अस्त्रो को काट कर बाणासुर की भुजाओ को भी काट कर गिरा दिया ॥३८॥ तब भगवान् शङ्कर ने यह समझ कर कि अब श्रीकृष्ण इस बाणासुर का वध करने के लिये पुन अपन चक्र को प्रेरित करने मे तत्पर हैं ॥३९॥ तब बाणासुर के कटे हुए भुजदण्डो स रुधिर–धार प्रवाहित होती देखकर उन पार्वतीनाथ त्रिपुरारि शङ्कर ने भगवान् गोविन्द के पास आकर कहा ॥४०॥

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम् ।
परेश परमात्मानमनादिनिधन हरिम् ॥४१
देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका ।
लीलेय सर्वभूतस्य तव चेष्टोपलक्षणा ॥४२
तत्प्रसीदाभय दत्त बाणस्यास्य मया प्रभो ।
तत्त्वया नानृत कार्यं यन्मया व्याहृत वच ॥४३
अस्मत्सश्रयदृप्तोऽय नापराधी तवाव्यय ।
मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४
इत्युक्त प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम् ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५

भगवान् शङ्कर बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! मुझे ज्ञात है कि आप परम पुरुष, परमात्मा और आदि–अन्त–विहीन श्रीहरि हैं ॥४१॥ आप देव तिर्यक् और मनुष्यादि योनियो में उत्पन्न होते हैं, यह सब आप सर्वभूतात्मा प्रभु की लीला ही है ॥४२॥ हे प्रभो ! आप प्रसन्न हो । मैंने इस बाणासुर को जो अभयदान दिया है, मेरे उस वचन को आप भग न कीजिये

॥४३॥ हे अव्यय ! इसने मेरे आश्रय के कारण इतना गर्वीला होने से ही आपका अपराध किया है, इसलिये यह आपका अपराधी नहीं है। इसे मैंने जो वर प्रदान किया था, उसकी रक्षा के लिये ही मैं इसे क्षमा करने के लिये आपसे आग्रह करता हूँ ॥४४॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् शङ्कर के वचन सुन कर श्रीकृष्ण ने बाणासुर के प्रति उत्पन्न हुए अपने क्रोध को त्याग दिया और प्रसन्न मुख होकर उनसे बोले ॥४५॥

युष्मद्दत्तवरो बाणो जीवतामेष शङ्कर ।
त्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्रं निवर्तितम् ॥४६
त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया ।
मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ॥४७
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हसि ॥४८
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ॥४९
प्रसन्नोऽहं गमिष्यामि त्वं गच्छ वृषभध्वज ॥५०

श्री भगवान् ने कहा—हे शङ्कर ! आपके वरदान के कारण यह बाणासुर जीवित रहे। आपका वचन भंग न हो, इसलिये मैं अपने चक्र को रोकता हूँ ॥४६॥ हे शिव ! आपने जो वर दिया है, उसे मेरे द्वारा ही दिया हुआ समझें, आप मुझे सदैव अपने से अभिन्न ही देखें ॥४७॥ जो मैं हूँ, वही आप हैं। सम्पूर्ण विश्व—देवता, दैत्य, मनुष्यादि कोई भी तो मुझसे भिन्न नहीं है ॥४८॥ हे शङ्कर ! अविद्या से भ्रमित चित्त वाले मनुष्य ही हम दोनों में भेद कथन करते अथवा देखते हैं। हे वृषभध्वज ! आप गमन कीजिये, मैं भी अब जा रहा हूँ ॥४९-५०॥

इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्णः प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति ।
तद्बन्धफणिनो नेशुर्गरुडानिलपोथिताः ॥५१
ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति ।
आजग्मुर्द्वारकां रामकार्ष्णिदामोदराः पुरीम् ॥५२

पुत्रपौत्रैः परिवृतस्तत्र रेमे जनार्दनः ।
देवीभिस्सतत विप्र भूभारतरणेच्छया ॥५३

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्ध के पास पहुचे । उनके वहाँ जाते ही अनिरुद्ध के लिये पाश रूप हुए सभी नाग गरुड के चलने से उत्पन्न हुए पवन के वेग से नाश को प्राप्त हुए ॥५१॥ फिर अनिरुद्ध को उसकी पत्नी उषा के सहित गरुड पर चढ़कर बलराम और प्रद्युम्न सहित श्रीकृष्ण द्वारकापुरी मे आगये ॥५२॥ हे द्विज ! वहाँ पृथिवी का भार उतारने की इच्छा से अपने पुत्र पौत्रादि के सहित निवास करते हुए भगवान् अपनी रानियो के साथ क्रीडा करने लगे ॥५३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

चक्रे कर्म महच्छौरिर्बिभ्राणो मानुषी तनुम् ।
जिगाय शक्रं शर्वं च सर्वान्देवाश्च लीलया ॥१
यच्चान्यदकरोत्कर्म दिव्यचेष्टाविघातकृत् ।
तत्कथ्यता महाभाग पर कौतूहल हि मे ॥२
गदतो मम विप्रर्षे श्रूयतामिदमादरात् ।
नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥३
पौण्ड्रको वासुदेवस्तु वासुदेवोऽभवद्भुवि ।
अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः ॥४
स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले ।
नष्टस्मृतिस्ततस्सर्वं विष्णुचिह्नमचीकरत् ॥५
दूत च प्रेपयामास कृष्णाय सुमहात्मने ।
त्यक्त्वा चक्रादिक चिन्ह मदीय नाम चात्मनः ॥६
वासुदेवात्मक मूढ त्यक्त्वा सर्वमशेषतः ।
आत्मनो जीवितार्थाय ततो मे प्रणति व्रज ॥७

ततस्तु केशवोद्योगं श्रुत्वा काशिपतिस्तदा ।
सर्वसैन्यपरीवारः पार्ष्णिग्राह उपाययौ ॥१४

दूत ने उसके संदेश को यथावत् श्रीकृष्ण को जा सुनाया, तब उन्होंने हँसते हुए कहा—हे दूत पौंड्रक को कहना कि मैं अपने चक्र रूप चिह्न को तेरे लिये अवश्य छोड़ूंगा। मैंने तेरे संदेश का यथार्थ भाव ग्रहण कर लिया, अब तू जैसा चाहे वैसा कर ॥८-९॥ मैं अपने चिह्न और वेश के सहित तेरे यहाँ आकर इन्हें तेरे ऊपर ही छोड़ दूँगा ॥१०॥ और मैं तेरी आज्ञा का पालन करने के लिये कल ही तेरी शरण में उपस्थित होऊँ ॥११॥ मैं तेरी शरण में पहुँच कर तुझे भय-रहित करने का पूर्ण उपाय करूँगा ॥१२॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण जी की बात सुनकर दूत चला गया तब भगवान् ने गरुड का स्मरण किया, जिससे वह तत्काल आ गये। भगवान् उस पर चढ़ कर पौण्ड्रक की राजधानी की ओर चल दिये ॥१३॥ भगवान् के यहाँ आने का समाचार प्राप्त कर काशी नरेश भी पौंड्रक की सहायता के लिये अपनी सेना के सहित आ गया ॥१४॥

ततो बलेन महता काशिराजबलेन च ।
पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौकेशवाभिमुखो ययौ ॥१५

तं ददर्श हरिर्दूरादुदारस्यन्दने स्थितम् ।
चक्रहस्तं गदाशार्ङ्गबाहुं पाणिगताम्बुजम् ॥१६

स्रग्धरं पीतवसनं सुपर्णरचितध्वजम् ।
वक्षःस्थले कृतं चास्य श्रीवत्सं ददृशे हरिः ॥१७

किरीटकुण्डलधरं नानारत्नोपशोभितम् ।
तं दृष्ट्वा भावगम्भीरं जहास गरुडध्वजः ॥१८

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विज ।
निस्त्रिंशर्ष्टिगदाशूलशक्तिकार्मुकशालिना ॥१९
शार्ङ्गेण शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैररिविदारणैः ।
गदाचक्रनिपातैश्च सूदयामास तद्बलम् ॥२०

काशिराजवलं चैव क्षयं नीत्वा जनार्दनः ।
उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षितम् ॥२१॥

इसके पश्चात् काशी नरेश की सेना के साथ ही अपनी महान् सेना को लेकर पौण्ड्रक भगवान् वासुदेव के सामने आया ॥१५॥ भगवान् ने उसे हाथ में चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और पद्म धारण किये एक श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए देखा ॥१६॥ उसके कण्ठ में वैजयन्ती माला, देह में पीताम्बर, वक्ष स्थल में श्रीवत्स का चिह्न और गरुड से चित्रित ध्वजा थी ॥१७॥ उसे विभिन्न प्रकार के रत्नादि से युक्त किरीट–कुण्डल धारण किये हुए देख कर गरुडध्वज भगवान् वासुदेव गम्भीरता पूर्वक हँस पड़े ॥१८॥ हे द्विज ! फिर उसकी अश्व–गजादि से सम्पन्न एवं निस्त्रिंश, खड्ग, गदा, शूल, शक्ति धनुष आदि आयुधों से सज्जित सेना के साथ युद्ध करने में तत्पर हुए ॥१९॥ भगवान् ने शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले अपने तीक्ष्ण बाणों को शार्ङ्ग धनुष से छोड़ कर तथा गदा और चक्र से शत्रुओं पर प्रहार करके क्षण भर में ही उन्हें नष्ट–भ्रष्ट कर दिया ॥२०॥ इसी प्रकार काशीराज की भी सेना मार दी और अपने सामने सभी चिह्न धारण किये हुए पौण्ड्रक को देख कर उससे कहा ॥२१॥

पौण्ड्रकोक्तं त्वया यत्तु दूतवक्त्रेण मां प्रति ।
समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते सम्पदयाम्यहम् ॥२२
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता ।
गरुत्मानेष चोत्सृष्टस्समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३
इत्युच्चार्य विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः ।
पातितो गदया भग्नो ध्वजश्चास्य गरुत्मता ॥२४
ततो हाहाकृते लोके काशिपुर्यधिपो बली ।
युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५
ततश्शार्ङ्गधनुर्मुक्तैश्छित्त्वा तस्य शिरश्शरैः ।
काशिपुर्यां स चिक्षेप कुर्वँल्लोकस्य विस्मयम् ॥२६
हत्वा तं पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजं च सानुगम् ।
पुनर्द्वारवतीं प्राप्तो रेमे स्वर्गगतो यथा ॥२७

श्री भगवान् ने कहा—हे पौंड्रक ! तूने मुझे सन्देश भेजा था कि मेरे चिह्नों को छोड़ दे, इस लिये उस आज्ञा का पालन तेरे ही सामने करता हूँ ॥२२॥ देख, तेरे ऊपर यह चक्र छोड़ दिया, यह गदा भी छोड़ दी और अब गरुड़ को भी छोड़ रहा हूँ, जो तेरी ध्वजा पर चढ़ जाय ॥२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कह कर छोड़े गये चक्र ने पौंड्रक को विदीर्ण कर दिया और गदा ने उसे धराशायी किया तथा गरुड़ ने उसकी ध्वजा काट डाली ॥२४॥ इस पर सब सेना में हा-हाकार मच गया। यह देख कर मित्र के प्रतिशोधार्थ काशिराज ने श्रीकृष्ण से युद्ध किया ॥२५॥ तब भगवान् ने एक बाण से ही उसका मस्तक काट कर काशीपुरी में फेंक दिया, इससे सभी आश्चर्य करने लगे ॥२६॥ इस प्रकार पौंड्रक और काशीराज का सम्पूर्ण सेना सहित संहार करने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका में आकर स्वर्ग के समान सुख भोगने लगे ॥२७॥

है, तो अपने पुरोहित की सहायता से उसने भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया ॥२६॥ उस अविमुक्त महाक्षेत्र मे प्रसन्न हुए भगवान् शङ्कर ने प्रकट हो कर उस राजपुत्र से कहा—'वर माँग' ॥३०॥ इस पर उसने कहा—हे महेश्वर ! हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें मेरे पिता को मारने वाले कृष्ण के विनाशार्थ कृत्या उत्पन्न हो जाय ॥३१॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् शङ्कर बोले कि 'ऐसा ही होगा' । उनके ऐसा कहने पर दक्षिणाग्नि का चयन करने पर उससे उसी अग्नि को नष्ट करने वाली कृत्या उत्पन्न हो गई ॥३२॥ उसका ज्वाला मालाओ से परिपूर्ण विकराल मुख और अग्नि शिखा के समान प्रज्वलित केश थे । ऐसी वह कृत्या कृष्ण ! कृष्ण ! पुकारती हुई क्रोध पूर्वक द्वारका पुरी मे जा पहुँची ॥३३॥

तामवेक्ष्य जनस्त्रासाद्विचलल्लोचनो मुने ।
ययौ शरण्यं जगतां शरणं मधुसूदनम् ॥३४
काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम् ।
उत्पादिता महाकृत्येत्यवगम्याथ चक्रिणा ॥३५
जहि कृत्यामिमामुग्रां वह्निज्वालाजटालकाम् ।
चक्रमुत्सृष्टमक्षेषु क्रीडासक्तेन लीलया ॥३६
तदग्निमालाजटिलज्वालोद्गारातिभीषणाम् ।
कृत्यामनुजगामाशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥३७
चक्रप्रतापनिर्दग्धा कृत्या माहेश्वरी तदा ।
ननाश वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम् ॥३८
कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता ।
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तम ॥३९
ततः काशीबलं भूरिप्रमथानां तथा बलम् ।
समस्तशस्त्रास्त्रयुतं चक्रस्याभिमुखं ययौ ॥४०

हे मुने ! उसे देख कर सभी द्वारका निवासी भय से व्याकुल हो उठे और तत्काल ही भगवान् श्रीकृष्ण की शरण मे जा पहुँचे ॥३४॥ तब जुआ खेलने म लगे हुए भगवान् ने उस कृत्या को काशिराज के पुत्र द्वारा प्रसन्न हुए

शङ्कर के प्रसाद से वहाँ आई हुई जान कर अपने चक्र को आदेश दे दिया कि इस ज्वालामयी भयङ्करी कृत्या को नष्ट कर दे ।।३५-३६।। आज्ञा पाते ही उस छूटे हुए सुदर्शन चक्र ने अग्निमाल मण्डित जटाओं और अग्निमुख के कारण भयानक मुख वाली उस कृत्या का पीछा किया ।।३७।। तब उस चक्र के तेज से जलती हुई कृत्या छिन्न-भिन्न होती हुई द्रुतवेग से भागी और चक्र ने भी उस का उसी वेग से पीछा किया ।।३८।। हे मुनिसत्तम ! चक्र के तेज से प्रभावहीन हुई वह कृत्या उल्टी लौट कर काशी में ही जा पहुची ।।३९।। उस समय शिव जी के प्रमथगण और काशिराज की सम्पूर्ण सेना शस्त्रास्त्रों से सज कर उस चक्र के सामने आ गये ।।४०।।

शस्त्रास्त्रमोक्षचतुर दग्ध्वा तद्बलमोजसा ।
कृत्यागर्भामशेषां तां तदा वाराणसी पुरीम् ।।४१
सभूभृद्भृत्यपौरा तु साश्वमातङ्गमानवाम् ।
अशेषगोष्ठकोशा तां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि ।।४२
ज्वालापरिष्कृताशेषगृहप्राकारचत्वराम् ।
ददाह तद्धरेश्चक्रं सकलामेव तां पुरीम् ।।४३
अक्षीणामर्षमत्युग्रसाध्यसाधनसस्पृहम् ।
तच्चक्र प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्याययौ करम् ।।४४

उस समय उस चक्र ने अपने तेज से सब प्रकार के आयुधों के प्रेरण में अभ्यस्त उस सम्पूर्ण सेना को भस्म कर उस कृत्या के सहित सम्पूर्ण काशी पुरी को दग्ध करना आरम्भ किया ।।४१।। जो वाराणसी राजा, प्रजा, सेवक, हाथी, घोडे और मनुष्यादि से परिपूर्ण, सभी गोठों और कोषों से सम्पन्न तथा देवताओं के लिये दुर्लभ दर्शन थी, उसे उस विष्णु चक्र ने घर, कोट, चबूतरे आदि के सहित भस्म कर दिया ।।४२-४३।। अन्त में वह अनान्त तथा उग्रकर्मा अत्यन्त तेजोमय चक्र वहाँ से लौटकर पुन भगवान् के हाथ में जा पहुँचा ।।४४

पैंतीसवाँ अध्याय

भूय एवाहमिच्छामि बलभद्रस्य धीमतः ।
श्रोतुं पराक्रम ब्रह्मन् तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१
यमुनाकर्षणादीनि श्रुतानि भगवन्मया ।
तत्कथ्यतां महाभाग यदन्यत्कृतवान्बलः ॥२
मैत्रेय श्रूयतां कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम् ।
अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीधृता ॥३
सुयोधनस्य तनयां स्वयंवरकृतक्षणाम् ।
बलादादत्तवान्वीरस्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥४
ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः ।
भीष्मद्रोणादयश्चैनं बबन्धुर्युधि निर्जितम् ॥५
तच्छ्रुत्वा यादवास्सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु ।
मैत्रेय चक्रुः कृष्णश्च तान्निहन्तुं महोद्यमम् ॥६
तान्निवार्य बलः प्राह मदलोलकलाक्षरम् ।
मोक्ष्यन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान्॥७

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं बलरामजी के पराक्रम का वृत्तान्त सुनने का उत्सुक हूँ, उसे कहिये ॥१॥ यमुना को खींचने आदि पराक्रम तो सुन चुका, अब उनके अन्य कार्यों को बतलाइये ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! गोपावतार श्री बलरामजी द्वारा किये गये कर्मों को मुझसे सुनो ॥३॥ एक बार जाम्बवती-पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री के स्वयंवर से उसे बल पूर्वक हर लिया था ॥४॥ तब महाबली कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण आदि ने क्रोधित होकर उसे बाँध कर अपने वश में कर लिया ॥५॥ यह समाचार मिलने पर श्रीकृष्णादि यदुवंशियों ने अत्यन्त क्रोधित होकर उनको मारने के लिये भारी तैयारी की ॥६॥ बलरामजी ने उन्हें रोकते हुए कहा कि मेरे

कहने मात्र से कौरवगण साम्ब को मुक्त कर देंगे, इसलिये मैं अकेला ही वहाँ जाना हूँ ॥७॥

बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम् ।
बाह्योपवनमध्येऽभून्न विवेश च तत्पुरम् ॥८
बलमागतमाज्ञाय भूपा दुर्योधनादयः ।
गामर्घ्यमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥९
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ।
आज्ञापयत्युग्रसेनस्साम्बमाशु विमुञ्चत ॥१०
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो नृपाः ।
कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्षुभुर्द्विजसत्तम ॥११
ऊचुश्च कुपितास्सर्वे बाह्लिकाद्याश्च कौरवाः ।
अराज्यार्हं यदोर्वंशमवेक्ष्य मुसलायुधम् ॥१२
भो भो किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः ।
आज्ञा कुरुकुलोत्थानां यादवः कः प्रदास्यति ॥१३
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञां कौरवाणां प्रदास्यति ।
तदलं पाण्डुरैश्छत्रैर्नृपयोग्यैर्विडम्बनैः ॥१४

श्री पराशर जी ने कहा—इसके पश्चात् बलरामजी हस्तिनापुर पहुँच कर नगर से बाहर एक उद्यान में ठहर गये ॥८॥ बलरामजी के वहाँ आने का समाचार दुर्योधनादि ने गौ, अर्घ्य और पाद्यादि के निवेदन पूर्वक उनका सत्कार किया ॥९॥ उसे स्वीकार करके बलरामजी ने उनसे कहा—राजा उग्रसेन की आज्ञा है कि आप साम्ब को मुक्त करदें ॥१०॥ हे द्विजसत्तम ! यह सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि अत्यन्त क्षुब्ध हुए ॥११॥ और यदुवंश को राज्य के अयोग्य समझ कर क्रोध पूर्वक बलरामजी से बोले ॥१२॥ हे बलरामजी ! आप क्या कहते हैं ? कौन सा यदुवंशी वीर किसी कौरव वीर को आज्ञा देने में समर्थ है ? ॥१३॥ यदि उग्रसेन जैसे भी कौरवों को आज्ञा दे सकते हैं तो कौरव को इस श्वेत राजछत्र के धारण की क्या आवश्यकता है ? ॥१४॥

तद्गच्छ बल मा वा त्वं साम्बमन्यायचेष्टितम् ।
विमोक्ष्यामो न भवतश्चोग्रसेनस्य शासनात् ॥१५
प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः ।
ननाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः ॥१६
गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः ।
को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीत्या नावलोकिता ॥१७
अस्माभिरर्घो भवतो योऽयं बल निवेदितः ।
प्रेम्णैतन्नैतदस्माकं कुलाद्युष्मत्कुलोचितम् ॥१८
इत्युक्त्वा कुरवः साम्बं मुञ्चामो न हरेस्सुतम् ।
कृतैकनिश्चयास्तूर्णं विविशुर्गजसाह्वयम् ॥१९
मत्तः कोपेन चाघूर्णंस्ततोऽधिक्षेपजन्मना ।
उत्थाय पार्ष्ण्या वसुधां जघान स हलायुधः ॥२०
ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः ।
आस्फोटयामास तदा दिशश्शब्देन पूरयन् ॥२१

इसलिये हे बलरामजी ! तुम जाओ या रहो, परन्तु हम तुम्हारी अथवा उग्रसेन की आज्ञा पर साम्ब को मुक्त नहीं करेंगे ॥१५॥ पहिले सभी यदुवंशी हमे प्रणाम करते थे, परन्तु अब ये वैसा न करके सेवक होते हुए भी स्वामी को कैसे आज्ञा दे रहे हैं ? ॥१६॥ तुम्हारे साथ समान व्यवहार करके हमने ही तुम्हें चढा दिया है, इसमें तुम्हारा भी कुछ दोष नहीं है, हमने ही प्रेम के वशीभूत होकर नीति पर ध्यान नही दिया था ॥१७॥ हे बलराम ! तुम्हे यह अर्घ्यादि भी हमने प्रेमवश ही दिया है, यथार्थ रूप में तो हमारे द्वारा तुम्हारा सम्मान किया जाना अनुचित ही है ॥१८॥ श्री पराशरजी ने कहा—कृष्ण-पुत्र साम्ब को बन्धन मुक्त न करने का निश्चय प्रकट करके सब कौरवगण उसी समय नगर मे चले गये ॥१९॥ इस प्रकार तिरस्कृत हुए बलरामजी ने रोष पूर्वक पृथिवी में पद-प्रहार किया ॥२०॥ इससे पृथिवी फट गई और बलरामजी अपने शब्द से सब दिशाओ को गुञ्जार कम्पित करने लगे ॥२१॥

उवाच चातिताम्राक्षो भृकुटीकुटिलानन ।
अहो मदावलेपोऽयमसाराणा दुरात्मनाम् ॥२२
कौरवाणा महीपत्वमस्माक किल कालजम् ।
उग्रसेनस्य ये नाज्ञा मन्यन्तेऽद्यापि लङ्घनम् ॥२३
उग्रसेन समध्यास्ते सुधर्मां न शचीपतिः ।
धिङ्मानुषशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषा नृपासने ॥२४
पारिजाततरो पुष्पमञ्जरीर्वनिताजन ।
बिभर्ति यस्य भृत्याना सोऽप्येषा न महीपति ॥२५
समस्तभूभृता नाथ उग्रसेनस्स तिष्ठतु ।
अद्य निष्कौरवीमुर्वीं कृत्वा यास्यामि तत्पुरीम् ॥२६
कर्णं दुर्योधन द्रोणमद्य भीष्म सबाह्लिकम् ।
दुश्शासनादीन्भूरिं च भूरिश्रवसमेव च ॥२७
सोमदत्त शल चैव भीमार्जुनयुधिष्ठिरान् ।
यमौ च कौरवांश्चान्यान्हत्वा साश्वरथद्विपान् ॥२८
वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक तत पुरीम् ।
द्वारकामुग्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९
अथ वा कौरवावास समस्तै कुरुभिस्सह ।
भागीरथ्या क्षिपाम्याशु नगर नागसाह्वयम् ॥३०

बलरामजी की भृकुटी टेढी और आँखे लाल हो गई, उन्होंने कहा—यह दुरात्मा कौरव राजमद मे कैसे उन्मत्त होगये हैं ? वह समझते हैं कि हमारा भूपालत्व स्वय ही सिद्ध है, इसीलिये महाराज उग्रसेन की आज्ञा का तिरस्कार कर रहे हैं ॥२२-२३॥ आज महाराज उग्रसेन उस सुधर्मा सभा मे बैठते हैं, जिसमे इन्द्र भी नही बैठ सकते । इन उच्छिष्ट सिंहासन पर बैठने वाले कौरवो को धिक्कार है ॥२४॥ जिनके भृत्यो की पत्नियाँ पारिजात पुष्पो से शृङ्गार करती है, वह महाराज उग्रसेन इनके लिये आदरणीय नही है ? ॥२५॥ वही उग्रसेन सब राजाओ के सिरताज बन कर रहेंगे। आज मैं अकेला ही इस पृथिवी को कौरवों से शून्य करके उनकी द्वारकापुरी को लौटूंगा ॥२६॥ कर्ण,

दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, वाह्लिक, दुःशासन, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेवादि जितने भी कौरव हैं उन सबका सेना-सहित वध करके और पत्नी सहित साम्ब को लेकर ही मैं द्वारका को लौटूंगा ।।२७-२८ २६ । अथवा सब कौरवों सहित उनके हस्तिनापुर को ही मैं आज गङ्गा में डुबाये दे रहा हूं ।।३०।।

इत्युक्त्वा मदरक्ताक्ष कर्षणाधोमुख हलम् ।
प्राकारवप्रदुर्गस्य चकर्ष मुसलायुध ।।३१
आघूर्णित तत्सहसा ततो वै हास्तिन पुरम् ।
दृष्ट्वा सक्षुब्धहृदयाश्चुक्षुभु सर्वकौरवा ।।३२
राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यता त्वया ।
उपसह्रियता कोप प्रसीद मुसलायुध ।।३३
एप साम्बस्सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल ।
अविज्ञातप्रभावाणा क्षम्यतामपराधिनाम् ।।३४
ततो निर्यातयामासुस्साम्ब पत्नीसमन्वितम् ।
निष्क्रम्य स्वपुरात्तूर्णं कौरवा मुनिपुङ्गव ।।३५
भीष्मद्रोणकृपादीना प्रणम्य वदता प्रियम् ।
क्षान्तमेव मयेत्याह बलो बलवता वर ।।३६
अद्याप्याघूर्णिताकार लक्ष्यते तत्पुर द्विज ।
एप प्रभावो रामस्य बलशौर्योपलक्षण ।।३७
ततस्तु कौरवास्साम्ब सम्पूज्य हलिना सह ।
प्रेपयामासुरुद्वाहधनभार्यासमन्वितम् ।।३८

श्री पराशरजी ने कहा—यह कहकर बलरामजी ने हस्तिनापुर के खाई और दुर्ग के सहित प्राकार मूल में हल की नोक को लगाकर उसे खींचा ।।३१।। उससे सम्पूर्ण नगर काँपने लगा यह देखकर समस्त कौरव भयभीत होगए ।।३२।। उन्होंने कहा—हे बलराम ! हे महाबाहो ! हम क्षमा करो । अपने क्रोध को शान्त करके प्रसन्न होओ ।।३३।। हम इस साम्ब को इसकी भार्या के सहित आपको सौंपते हैं । आपका प्रभाव न जानने के कारण हमने जो अपराध

बना है, उसे क्षमा करिये ॥३४॥ श्री पराशरजी बोले—हे मुनिवर ! कौरवों ने साम्ब को पत्नी सहित बलरामजी के पास लाकर सौंप दिया तब भीष्म द्रोण, कृप आदि से बलरामजी ने कहा कि अच्छा, क्षमा करता हूँ ॥३५-३६॥ हे द्विज ! हस्तिनापुर अब भी कुछ झुका हुआ-सा दिखाई देता है, यह बलरामजी की वीरता का प्रभाव समझो ॥३७॥ फिर कौरवों ने बलरामजी सहित साम्ब का पूजन कर बहुत सी दात और भार्या के सहित द्वारका के लिये विदा किया ॥३८॥

छत्तीसवां अध्याय

मैत्रेयैतद्बलं तस्य बलस्य बलशालिनः ।
कृतं यदन्यत्तेनाभूत्तदपि श्रूयतां त्वया ॥१
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिनः ।
सखाभवन्महावीर्यो द्विविदो वानरर्षभः ॥२
वैरानुबन्धं बलवान्स चकार सुरान्प्रति ।
नरकं हतवान्कृष्णो देवराजेन चोदितः ॥३
करिष्ये सर्वदेवानां तस्मादेतत्प्रतिक्रियाम् ।
यज्ञविध्वंसनं कुर्वन् मर्त्यलोकक्षयं तथा ॥४
ततो विध्वंसयामास यज्ञानज्ञानमोहितः ।
बिभेद साधुमर्यादां क्षयं चक्रे च देहिनाम् ॥५
ददाह सवनान्देशान्पुरग्रामान्तराणि च ।
क्वचिच्च पर्वताक्षेपैर्ग्रामादीन्समचूर्णयत् ॥६
शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा ।
पुनश्चार्णवमध्यस्थः क्षोभयामास सागरम् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! बलरामजी का ऐसा ही प्रभाव था, अब उनके अन्य कर्मों को सुनो ॥१॥ देवताओं के द्रोही नरकासुर का मित्र

द्विविद नामक एक अत्यन्त बली बन्दर था ॥२॥ इन्द्र की प्रेरणा से श्रीकृष्ण ने नरकासुर को मारा था, इसीलिये द्विविद ने देवताओं से शत्रुता ठान ली ॥३॥ मैं मर्त्यलोक को क्षीण करके यज्ञादि को बन्द कर दूँगा, इससे देवताओं से बदला ले लिया जायगा ॥४॥ ऐसा निश्चय करके वह यज्ञों को विध्वंस करने, साधुओं की मर्यादा को नष्ट करने और शरीर धारियों को मारने लगा ॥५॥ वह वन, देश, पुर और ग्रामादि को भस्म करता या उन पर पर्वतादि को गिरा देता है ॥६॥ कभी समुद्र में पर्वत-शिला फेंकता तो कभी समुद्र में घुसकर उसमें क्षोभ उत्पन्न करता है ॥७॥

तेन विक्षोभितश्चाब्धिरुद्वेलो द्विज जायते ।
प्लावयंस्तीरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेगवान् ॥८
कामरूपी महारूपं कृत्वा सस्यान्यशेषतः ।
लुठन्भ्रमणसम्मर्दैस्सञ्चूर्णयति वानरः ॥९
तेन विप्र कृतं सर्वं जगदेतद्दुरात्मना ।
निस्स्वाध्यायवषट्कारं मैत्रेयासीत्सुदुःखितम् ॥१०
एकदा रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः ।
रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रियः ॥११
उद्गीयमानो विलसल्ललनामौलिमध्यगः ।
रेमे यदुकुलश्रेष्ठः कुबेर इव मन्दरे ॥१२
ततस्स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम् ।
मुसलं च चकारास्य सम्मुखं च विडम्बनम् ॥१३
तथैव योषितां तासां जहासाभिमुखं कपिः ।
पानपूर्णांश्च करकांश्चिक्षेपाहत्य वै तदा ॥१४

तब वह क्षुभित हुआ समुद्र अपने तटवर्ती ग्राम आदि को डुबा देता ॥८॥ जब वह कामरूपी बन्दर विशाल रूप धारण कर खेतों पर लेट जाता तब सभी धान्यों को कुचल कर नष्ट कर देता है॥९॥ उस पापी ने सम्पूर्ण विश्व को यज्ञ और स्वाध्याय से विमुख कर दिया इससे दुःखों की अत्यन्त वृद्धि हुई ॥१०॥ एक दिन बलरामजी रैवतोद्यान में रेवती और अन्य सुन्दरियों के साथ

बैठे हुए मद्य पी रहे थे ॥११॥ मन्दराचल पर कुबेर के क्रीडा करने के समान ही स्त्रियों द्वारा गायन-वादन चलने पर उनके मध्य में सुशोभित थे ॥१२॥ उसी समय वहाँ वह द्विविद नाम का वन्दर आ गया और बलरामजी के हल-मूसल उठा कर उनकी नकल बनाने लगा ॥१३॥ फिर उसने मदिरा के घड़े को फोड़ फेंका और स्त्रियों की ओर घूर-घूर कर हँसने लगा ॥१४॥

ततः कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास तं हली ।
तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलध्वनिम् ॥१५
ततः स्मयित्वा स बली जग्राह मुसलं रुषा ।
सोऽपि शैलशिलां भीमां जग्राह प्लवगोत्तमः ॥१६
चिक्षेप स च तां क्षिप्तां मुसलेन सहस्रधा ।
बिभेद यादवश्रेष्ठः सा पपात महीतले ॥१७
अथ तन्मुसलं चासौ समुल्लङ्घ्य प्लवङ्गमः ।
वेगेनागत्य रोषेण करेणोरस्यताडयत् ॥१८
ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः ।
पपात रुधिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः ॥१९
पतता तच्छरीरेण गिरेश्शृङ्गमशीर्यत ।

रामजी पर फेंकी तो उन्होंने अपने मूसल से उसके हजारो खण्ड करके पृथिवी पर गिरा दी ॥१७॥ तब वन्दर ने वलरामजी के मूसल की मार से बचकर उनकी छाती मे बडे वेग से मुष्टिका का प्रहार किया ॥१८॥ तब उन्होंने क्रोध पूर्वक उस वन्दर के सिर मे घूँसा मार कर पृथिवी पर गिरा दिया और वह रक्त वमन करता हुआ समाप्त होगया ॥१६॥ उस वन्दर के गिरने से, जैसे इन्द्र के वज्र से पर्वत विदीर्ण होते हैं, वैसे ही पर्वत-शिखर के सैकड़ों खण्ड होगये ॥२०॥ उस समय देवताओ वलरामजी पर पुष्प वृष्टि करते हुए उनकी स्तुति की ॥२१॥ उन्होने कहा कि जगत् को घोर त्रास देने वाला यह दुष्ट वन्दर आज आपके द्वारा नष्ट होगया, यह कितने सौभाग्य की बात हुई है, यह कहते हुए सभी देवगण प्रसन्न होते हुए स्वर्गलोक को गये ॥२२-२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—शेषावतार श्री वलरामजी के ऐसे असख्य कर्म हैं, जिनकी गणना सम्भव नही है ॥२४॥

सैंतीसवाँ अध्याय

एवं दैत्यवधं कृष्णो वलदेवसहायवान् ।
चक्रे दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ॥१
क्षितेश्च भारं भगवान्फाल्गुनेन समन्वितः ।
अवतारयामास विभुस्समस्ताक्षौहिणीवधात् ॥२
कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाखिलान्नृपान् ।
शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मनः ।
साशो विष्णुमय स्थान प्रविवेश मुने निजम् ॥४
स विप्रशापव्याजेन संजह्रे स्वकुलं कथम् ।
कथं च मानुष देहमुत्ससर्ज जनार्दनः ॥५
विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः ।
पिण्डारके महातीर्थे दृष्ट्वा यदुकुमारकैः ॥६

ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिता ।
साम्ब जाम्ववतीपुत्र भूषयित्वा स्त्रिय यथा ॥७
प्रश्रितास्तान्मुनीनूचु प्रणिपातपुरस्सरम् ।
इय स्त्री पुत्रकामा वै ब्रूत किं जनयिष्यति ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार लोकहितैषी बलरामजी के सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने दैत्यों और राजाओं का संहार किया ॥१॥ फिर अर्जुन के साथ मिलकर उन्होंने अठारह अक्षौहिणी सेना को नष्ट कर भू-भार उतार दिया ॥२॥ इस प्रकार सब राजाओं का ससैन्य संहार कर उन्होंने ब्राह्मणों के शाप के बहाने से अपने कुल का भी उपसंहार किया ॥३॥ हे मुने ! अन्त में उन्होंने द्वारकापुरी और अपने मानव देह के परित्याग पूर्वक अपने अंश सहित स्वधाम में प्रवेश किया ॥४॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण ने अपने कुल का उपसंहार किस प्रकार किया और कैसे अपने मानव शरीर का त्याग किया ? ॥५॥ श्री पराशरजी ने कहा—एक बार यादवों के बालकों ने पिण्डारक क्षेत्र में विश्वामित्र, कण्व और नारदादि महर्षियों को देखा ॥६॥ तब उन्होंने जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री-वेश में सजाकर उन मुनियों से प्रणाम पूर्वक पूछा कि 'इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये इसके क्या उत्पन्न होगा ?'॥७ ८॥

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धाः कुमारकै ।
मुनय कुपिता प्रोचुर्मुसल जनयिष्यति ॥९
सर्वयादवसंहारकारण भुवनोत्तरम् ।
येनाखिलकुलोत्सादो यादवाना भविष्यति ॥१०
इत्युक्तास्ते कुमारास्तु आचचक्षुर्यथातथम् ।
उग्रसेनाय मुसल जज्ञे साम्बस्य चोदरात् ॥११
जज्ञे तदेरकाचूर्णं प्रक्षिप्त तैर्महोदधौ ॥१२
मुसलस्याथ लोहस्य चूर्णितस्य तु यादवै. ।
खण्ड चूर्णितशेष तु ततो यत्तोमराकृति ॥१३

तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः ।
घातितस्योदरात्तस्य लुब्धो जग्राह तज्जरा: ॥१४
विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान्मधुसूदनः ।
नैच्छत्तदन्यथा कर्तुं विधिना यत्समीहितम् ॥१५

श्री पराशरजी ने कहा—यादव-बालको की हँसी को ताड कर उन महर्षियो ने क्रोधपूर्वक कहा—इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवो के नाश का कारण हो जायगा ॥९-१०॥ मुनियो के ऐसा कहने पर उन बालको ने राजा उग्रसेन को जाकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया ॥११॥ उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण कराकर समुद्र मे फिकवा दिया, जिससे बहुत से सरकंडे उत्पन्न होगये ॥१२॥ उस मूसल का भाले की नोक जैसा एक भाग चूर्ण करने से रह गया, उसे भी समुद्र मे डलवा दिया था, उस भाग को एक मछली ने निगल लिया। मछेरो द्वारा पकडी गई उस मछली के चीरने पर निकला हुआ मूसल का वह टुकडा जरा नामक व्याध ने उठा लिया ॥१३-१४॥ श्रीकृष्ण इन सब बातो को जानते थे, परन्तु उन्होंने विधाता के विधान मे हस्तक्षेप करना उचित नही समझा ॥१५॥

देवैश्च प्रहितो वायुः प्रणिपत्याह केशवम् ।
रहस्येवमहं दूतः प्रहितो भगवन्सुरैः ॥१६
वस्वश्विमरुदादित्यरुद्रसाध्यादिभिस्सह ।
विज्ञापयति शक्रस्त्वां तदिदं श्रूयतां विभो ॥१७
भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम् ।
भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैस्सह चोदितः ॥१८
दुर्वृत्ता निहता दैत्या भुवो भारोऽवतारितः ।
त्वया सनाथास्त्रिदशा भवन्तु त्रिदिवे सदा ॥१९
तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम् ।
इदानीं गम्यतां स्वर्गो भवता यदि रोचते ॥२०
देवैर्विज्ञाप्यते देव तथात्रैव रतिस्तव ।
तत्स्थीयतां यथाकालमाख्येयमनुजीविभिः ॥२१

इसी अवसर पर देवताओं द्वारा भेजे गये वायु ने श्रीकृष्ण को प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! मुझे दूत-रूप से देवताओं ने आपके पास भेजा है ॥१६॥ हे विभो ! वसुगण, अश्विनी द्वय, रुद्र, आदित्य, मरुत् और साध्यादि देवताओं की सहमति से इन्द्र के भेजे सन्देश को सुनिये ॥१७॥ देवताओं की प्रार्थना पर उनके साथ ही पृथिवी पर भू-भार हरणार्थ उद्भूत हुए सौ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं ॥१८॥ आपने दैत्यों को मार कर पृथिवी का भार उतार दिया, इसलिये अब सब देवता आपके सहित स्वर्गलोक में ही सनाथ करें ॥१६॥ हे जगदीश्वर ! पृथिवी पर आये हुए आपको सौ वर्ष से अधिक होगये, अब यदि इच्छा हो तो आप स्वर्गलोक को पधारें ॥२०॥ हे देव ! उन्होंने यह भी कहा है कि आप वहीं रहना चाहें तो रहें, सेवकों का कर्त्तव्य तो निवेदन करने का ही है ॥२१॥

यत्त्वमात्थाखिलं दूत वेद्म्येतदहमप्युत ।
प्रारब्ध एव हि मया यादवानां परिक्षयः ॥२२
भुवो नाद्यापि भारोऽयं यादवैरनिर्बर्हिते ।
अवतार्य करोम्येतत्सप्तरात्रेण सत्वरः ॥२३
यथा गृहीताम्भोधेर्दत्त्वाहं द्वारकाभुवम् ।
यादवानुपसंहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४
मनुष्यदेहमुत्सृज्य सङ्कर्षणसहायवान् ।
प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथामरैः ॥२५
जरासन्धादयो येऽन्ये निहता भारहेतवः ।
क्षितेस्तेभ्यः कुमारोऽपि यदूनां नापचीयते ॥२६
तदेतं सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम् ।
यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ॥२७

श्री भगवान् ने कहा—हे दूत ! तुम्हारी बात ठीक है, मैंने यादवों के नाश का उपाय कर दिया है ॥२२॥ इन यादवों के रहते हुए पृथिवी का बोझ नहीं घट सकता, इसलिये सात रात के भीतर ही मैं तुम्हारे कहे अनुसार करूँगा ॥२३॥ इस द्वारकापुरी की भूमि मैंने समुद्र से माँगी थी, इसलिये इसे

उसको लौटाकर और यादवों को नष्ट कर स्वर्ग को प्रस्थान करूँगा ॥२४॥ अब सब देवताओ और इन्द्र को यह बता देना कि बलरामजी के सहित मुझे स्वर्ग मे पहुंचा हुआ ही समझो ॥२५॥ पृथिवी के बोझ स्वरूप जरासन्ध आदि जो राजा नष्ट हुए हैं, यह यदुवंशी भी उनसे किसी प्रकार न्यून नहीं है ॥२६॥ इसलिये देवताओ से कहना कि पृथिवी का बोझ उतार कर ही शीघ्र ही स्वर्गलोक मे आकर उसका पालन करूँगा ॥२७॥

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूतः प्रणम्य तम् ।
मैत्रेय दिव्यया गत्या देवराजान्तिकं ययौ ॥२८
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यभौमान्तरिक्षजान् ।
ददर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय दिवानिशम् ॥२९
तान्दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् ।
महोत्पाताञ्छमायैषा प्रभास याम मा चिरम् ॥३०
एवमुक्ते तु कृष्णेन यादवप्रवरस्ततः ।
महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥३१
भगवन्यन्मया कार्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम् ।
मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति ॥३२
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३३

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वायु उन्हें प्रणाम करके चल दिये और तुरन्त ही इन्द्र के पास पहुंचे ॥२८॥ इधर द्वारकापुरी मे नाश सूचक दिव्य, पार्थिव और अन्तरिक्ष सम्बन्धी घोर उत्पात होते दिखाई पड़े ॥२९॥ तब भगवान् ने यादवो से कहा कि यह घोर उपद्रव हो रहे हैं, प्रभास क्षेत्र मे चलकर इनकी शान्ति का उपाय करें ॥३०॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की बात सुनकर उद्धवजी ने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! अब आपकी इच्छा से इस कुल का नाश होता दिखाई देता है, सब ओर ऐसे ही अपशकुन हो रहे हैं, इसलिये मुझे जो करना हो, वह आज्ञा कीजिए ॥३२-३३॥

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया ।
यद्वदर्याश्रमं पुण्य गन्धमादनपर्वते ।
नरनारायणस्थाने तत्पवित्रं महीतले ॥३४
मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि ।
अहं स्वर्गं गमिष्यामि ह्युपसंहृत्य वै कुलम् ॥३५
द्वारकां च मया त्यक्ता समुद्रः प्लावयिष्यति ।
मद्वेश्म चैकं मुक्त्वा तु भयान्मत्तो जलाशये ।
तत्र सन्निहितश्चाह भक्तानां हितकाम्यया ॥३६
इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगामाशु तपोवनम् ।
नरनारायणस्थान केशवेनानुमोदितः ॥३७
ततस्ते यादवास्सर्वे रथानारुह्य शीघ्रगान् ।
प्रभास प्रययुस्साद्धं कृष्णरामादिभिद्विज ॥३८
प्रभासं समनुप्राप्ताः कुकुरान्धकवृष्णयः ।
चक्रुस्तत्र महापानं वासुदेवेन चोदिताः ॥३९
पिवतां तत्र चैतेषा सङ्घर्षेण परस्परम् ।
अतिवादेन्धनो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः ॥४०

श्री भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! अब तुम मेरी कृपा से प्राप्त हुई दिव्य गति से गन्धमादन पर्वत के वदरिकाश्रम मे जाओ, वह सबसे पवित्र क्षेत्र है ॥३४॥ वहाँ मुझमे अनन्य चित्त रखने से तुम्हे सिद्धि प्राप्त होगी । अब मुझे भी यदुकुल के नष्ट होने पर स्वर्गलोक को प्रस्थान करना है ॥३५॥ मेरे यहाँ से जाते ही समुद्र द्वारका को अपने जल मे विलीन कर लेगा, परन्तु केवल भवन ही शेष रह जायगा, जिसमे भक्तो के हितार्थ मे सदा निवास करता हूँ ॥३६॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की आज्ञा सुनकर उद्धवजी ने उन्हें प्रणाम किया और तुरन्त ही वदरिकाश्रम चले गये ॥३७॥ फिर कृष्ण वल-रामादि सब यादव रथो पर चढ कर प्रभास क्षेत्र गये ॥३८॥ वहाँ पहुच कर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सभी यादवो ने महापान किया ॥३९॥ पान करते समय उनमे कुछ विवाद हो गया, जिनसे कलहाग्नि धधकने लगी ॥४०॥

स्व स्व वै भुञ्जता तेषा कलहः किन्निमित्तक. ।
सङ्घर्षो वा द्विजश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ।।४१
मृष्ट मदीयमन्नं ते न मृष्टमिति जल्पताम् ।
मृष्टामृष्टकथा जज्ञे सङ्घर्षकलहो तत. ।।४२
ततश्चान्योन्यमभ्येत्य क्रोधसरक्तलोचनाः ।
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्देवबलात्कृताः ।।४३
क्षीणशस्त्राश्च जगृहु प्रत्यासन्नामथैरकाम् ।।४४
एरका तु गृहीता वै वज्रभूतेव लक्ष्यते ।
तया परस्परं जघ्नुस्सम्प्रहारे सुदारुणे ।।४५
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माथ सात्यकिः ।
अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च ।।४६
चारुवर्मा चारुकश्च तथाक्रूरादयो द्विज ।
एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नु परस्परम् ।।४७
निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम् ।
सहाय मेनिरेऽरीणा प्राप्तं जघ्नु परस्परम् ।।४८

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे द्विजवर ! भोजन करते हुए उन यदुवंशियो मे कलह क्यो हुआ ? यह बतलाइये ।।४१।। श्री पराशरजी ने कहा—मेरा पदार्थ शुद्ध है, तेरा भोजन ठीक नही, इसी प्रकार विवाद करते हुए उन यादवो मे सघर्ष होने लगा ।।४२।। तब वे दैवी प्रेरणा से परस्पर मे शस्त्र प्रहार करने लगे और जब शस्त्र भी समाप्त हो गये तो उन्होने निकटवर्ती क्षेत्र से सरकण्डे ग्रहण किये ।।४३-४४।। वे सरकडे वज्र जैसे लग रहे थे, उन्ही के द्वारा वे परस्पर मे आघात-प्रत्याघात करने लगे ।।४५।। प्रद्युम्न तथा साम्बादि कृष्णसुत कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादव उन्ही सरकडो का परस्पर प्रहार कर रहे थे ।।४६-४७।। जब श्रीकृष्ण ने उन्हे निवृत्त करना चाहा तो वे उन्हे प्रतिपक्षी का सहायक समझ कर परस्पर प्रहार करने से न रुके ।।४८।।

कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे ।
वधाय सोऽपि मुसलं मुष्टिर्लौहमभूत्तदा ॥४६
जघान तेन निश्शेषान्यादवानाततायिनः ।
जघ्नुस्ते सहसाभेत्य तथान्येऽपि परस्परम् ॥५०
ततश्चार्णवमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः ।
पश्यतो दारुकस्याथ प्रायादश्वैर्धृतो द्विज ॥५१
चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणी शङ्खोऽसिरेव च ।
प्रदक्षिणं हरिं कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना ॥५२
क्षणेन नाभवत्कश्चिद्यादवानामघातितः ।
ऋते कृष्णं महात्मानं दारुकं च महामुने ॥५३
चङ्क्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूले कृतासनम् ।
ददृशाते मुखाच्चास्य निष्क्रामन्तं महोरगम् ॥५४
निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजङ्गमः ।
प्रययावर्णवं सिद्धैः पूज्यमानस्तथोरगैः ॥५५
ततोऽर्घ्यमादाय तदा जलधिस्सम्मुखं ययौ ।
प्रविवेश ततस्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः ॥५६

इस पर क्रुद्ध हुए श्रीकृष्ण ने भी एक मुट्ठी भर कर सरकंडे उठाये, जो कि लोह के मूसल जैसे प्रतीत होने लगे ॥४६॥ उन सरकंडों से वे सब आक्रमणकारी यादवों को मारने लगे और यादव–गण परस्पर भी मारने–मरने लगे ॥५०॥ फिर दारुक के देखते–देखते ही श्रीकृष्ण का जैत्र नामक रथ अश्वों के द्वारा खिंचता हुआ समुद्र के मध्य मार्ग से चला गया ॥५१॥ तथा शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष, तरकस असि आदि सब आयुध श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके सूर्य–पथ से चले गये ॥५२॥ हे महामुने ! क्षण भर में ही श्रीकृष्ण और दारुक के अतिरिक्त और कोई भी यादव शेष न रहा ॥५३॥ उन दोनों ने बलरामजी को एक वृक्ष के नीचे बैठे और उनके मुख से एक विशाल सर्प को निकलते देखा

गया ॥५५॥ तभी समुद्र अर्घ्य लेकर उपस्थित हुआ और वह नागो द्वारा पूजित सर्प समुद्र मे प्रविष्ट हो गया ॥५६॥

दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ।
इद सर्वं समाचक्ष्व वसुदेवोग्रसेनयोः ॥५७
निर्याणं बलभद्रस्य यादवानां तथा क्षयम् ।
योगे स्थित्वाहमप्येतत्परित्यक्ष्ये कलेवरम् ॥५८
वाच्यश्च द्वारकावासी जनस्सर्वस्तथाहुकः ।
यथेमां नगरी सर्वां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥५९
तस्माद्भवद्भिस्सर्वैस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागमः ।
न स्थेयं द्वारकामध्ये निष्क्रान्ते तत्र पाण्डवे ॥६०
तेनैव सह गन्तव्यं यत्र याति स कौरवः ॥६१
गत्वा च ब्रूहि कौन्तेयमर्जुनं वचनान्मम ।
पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽयं मत्परिग्रहः ॥६२
त्वमर्जुनेन सहितो द्वारवत्यां तथा जनम् ।
गृहीत्वा याहि वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥६३

इस प्रकार बलरामजी का महाप्रयाण देखकर दारुक से श्रीकृष्ण ने कहा—तुम यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उग्रसेन जी और वसुदेवजी को जाकर सुनादो ॥५७॥ बलरामजी का जाना और यादवो का नष्ट होना बता कर यह भी कहना कि मैं भी योगस्थ होकर देह त्याग करूँगा ॥५८॥ सब द्वारकावासियो और उग्रसेनजी से कहना कि समुद्र इस सम्पूर्ण नगर को अपने मे लीन कर लेगा ॥५९॥ इसलिये जब तक अर्जुन यहाँ न पहुँचे तभी तक द्वारका मे रहे और जहाँ अर्जुन जाँय वही सब चले जाँय ॥६०-६१॥ तुम अर्जुन से भी मेरा यह सदेश कहना कि अपने सामर्थ्य के अनुसार ही मेरे परिवारी जनों की रक्षा करना ॥६२॥ तुम सब द्वारकावासियो के सहित अर्जुन के साथ चले जाना। फिर यदुवश का राजा वज्र होगा ॥६३॥

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
प्रदक्षिणं च बहुशः कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥६४

स च गत्वा तदाचष्ट द्वारकायां तथार्जुनम् ।
आनिनाय महाबुद्धिर्वज्रं चक्रं तथा नृपम् ॥६५
भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् ।
ब्रह्मात्मनि समारोप्य सर्वभूतेष्वधारयत् ॥६६
निष्प्रपञ्चे महाभाग संयोज्यात्मानमात्मनि ।
तुर्यावस्थ सलीलं च शेते स्म पुरुषोत्तमः ॥६७
सम्मानयन्द्विजवचो दुर्वासा यदुवाच ह ।
योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तम ॥६८
आययौ च जरानाम तदा तत्र स लुब्धकः ।
मुसलावशेषलोहैकसायकन्यस्ततोमरः ॥६९
स तत्पादं मृगाकारमवेक्ष्यारादवस्थितः ।
तले विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तम ॥७०

श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् के वचन सुनकर दारुक ने उन्हें बारम्बार प्रणाम करके अनेक परिक्रमाएँ कीं और उनकी आज्ञानुसार वहाँ से चला गया ॥६४॥ उसने द्वारका में पहुँच कर सब वृत्तान्त सुनाया और अर्जुन को वहाँ लाकर वज्र को राज्यपद में अभिषिक्त किया ॥६५॥ इधर श्रीकृष्ण अपने आत्मा में परब्रह्म को आरोपित कर उनमें चित्त लगाते हुए अपने तुरीय-पद में अवस्थित होगये ॥६६-६७॥ हे मुनिवर ! दुर्वासाजी के वचनानुसार उन्होंने अपनी जाँघों पर चरण रख कर योग युक्त समाधि लगाई ॥६८॥ तभी मूसल के अवशिष्ट भाग को अपने बाण पर नोक रूप से लगाये हुए जरा नामक वह व्याध वहाँ आया और भगवान् के चरण को मृगाकार देख कर उसने दूरसे उन पर बाण छोड़ दिया ॥६९-७०॥

ततश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम् ।
प्रणिपत्याह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥७१
अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कया ।
क्षम्यतां मम पापेन दग्धं मा त्रातुमर्हसि ॥७२

ततस्त भगवानाह न तेऽस्तु भयमण्वपि ।
गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध स्वर्गं सुरास्पदम् ॥७३
विमानमागत सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम् ।
आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥७४
मते तस्मिन्स भगवान्संयोज्यात्मानमात्मनि ।
ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥७५
अजन्मन्यमरे विष्णावप्रमेयेऽखिलात्मनि ।
तत्याज मानुष देहमतीत्य त्रिविधा गतिम् ॥७६

फिर उस व्याध ने श्रीकृष्ण के पास पहुँच कर जैसे ही एक चतुर्भुजी श्रेष्ठ पुरुष को देखा तो उनके चरणों में गिरपड़ा और बारम्बार 'प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' कहता हुआ बोला—मैंने मृग समझ कर ही यह अपराध कर डाला है, आप क्षमा करके मुझ पाप से भस्म होते हुए पापी की रक्षा करिये ॥७१-७२॥ श्री पराशरजी ने कहा—तू भय मत कर, तू अभी मेरी कृपा से स्वर्गलोक को प्राप्त होगा ॥७३॥ उनके ऐसा कहते ही वहाँ एक विमान आगया, जिस पर चढ वह व्याध स्वर्ग लोक को गया ॥७४॥ उसके जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने भी अपने आत्मा को अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवस्वरूप, निर्मल, अज, अमर, अप्रमेय, सर्वात्मा तथा ब्रह्मरूप भगवान् विष्णु में लीन कर इस मानव देह का त्याग कर दिया ॥७५-७६॥

अड़तीसवाँ अध्याय

अर्जुनोऽपि तदान्विष्य रामकृष्णकलेवरे ।
संस्कारं लम्भयामास तथान्येषामनुक्रमात् ॥१
अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु याः ।
उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम् ॥२
रेवती चापि रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमा ।
विवेश ज्वलित वह्नि तत्सङ्गाह्लादशीतलम् ॥३

उग्रसेनस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवानकदुन्दुभि ।
देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४
ततोऽर्जुन प्रेतकार्यं कृत्वा तेषा यथाविधि ।
निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च ॥५
द्वारवत्या विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रश ।
वज्र जन च कौन्तेय पालयञ्छनकैर्ययौ ॥६
सभा सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके समुज्झिते ।
स्वर्गं जगाम मैत्रेय पारिजातश्च पादप ॥७
यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिव सन्त्यज्य मेदिनीम् ।
तस्मिन्नेवावतीर्णोऽय कालकायो बली कलि ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—अर्जुन ने बलराम, कृष्ण तथा अन्यान्य प्रमुख-प्रमुख यादवो के मृत शरीरो को ढुंढवा कर उनका संस्कार किया ॥१॥ श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ पटरानियो ने उनके देह का आलिंगन कर अग्नि-प्रवेश किया ॥२॥ रेवतीजी भी बलरामजी के देह का आलिंगन कर उनकी चिता म प्रविष्ट होगई ॥३॥ इस अनिष्ट समाचार को सुनकर उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने भी अग्नि प्रवेश द्वारा अपने को नष्ट कर लिया ॥४॥ फिर अर्जुन ने उन सबका औध्वदैहिक संस्कार किया और वज्र तथा अन्य कुटुम्बियो के सहित द्वारका से निकल आये ॥५॥ श्रीकृष्ण की हजारो पत्नियो और वज्रादि अन्यान्य बन्धुओ की रक्षा करते हुए अर्जुन धीरे-धीरे चलने लगे ॥६॥ हे मैत्रेयजी ! श्रीकृष्ण के पृथिवी लोक को छोडते ही सुधर्मा सभा और पारिजात तरु भी स्वर्ग लोक को चले गये ॥७॥ जिस दिन भगवान् ने पृथिवी को छोडा, उसी दिन से महाबली कलियुग पृथिवी पर उतर आया ॥८

प्लावयामास ता शून्या द्वारका च महोदधि ।
वासुदेवगृह त्वेक न प्लावयति सागर ॥९
नातिक्रान्तुमल ब्रह्म स्तदद्यापि महोदधि ।
नित्य सन्निहितस्तत्र भगवान्केशवो यत ॥१०

तदतीव महापुण्य सर्वपातकनाशनम् ।
विष्णुश्रियान्वित स्थान दृष्ट्वा पापाद्विमुच्यते ॥११
पार्थ पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते ।
चकार वास सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तम ॥१२
ततो लोभस्समभवत्पार्थेनैकेन धन्विना ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूना निहतेश्वरा ॥१३
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहृतचेतस ।
आभीरा मन्त्रयामासुस्समेत्यात्यन्तदुर्मदा ॥१४
अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजन निहतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतद्भवता बलम् ॥१५

इस प्रकार जनशून्य हुई उस द्वारका को समुद्र ने डुबा दिया, केवल श्रीकृष्ण का भवन ही शेष रह गया ॥९॥ उसमे श्रीकृष्ण के सदा निवास करने से समुद्र आज भी उस भवन को नही डुबा सकता ॥१०॥ वह ऐश्वर्य-सम्पन्न स्थान अत्यन्त पवित्र और दर्शन मात्र से सब पापो को नष्ट करने वाला है ॥११॥ हे मुनिवर ! उन सब द्वारकावासियो को अर्जुन ने धन धान्य युक्त पचनद प्रदेश मे बसा दिया ॥१२॥ उस समय अनाथ अबलाओ के साथ अर्जुन को अकेले देख कर दस्युओ को लोभ हो आया और उन पापी आभीर दस्युओ ने परस्पर मे मन्त्रणा की ॥१३-१४॥ देखो यह अर्जुन अकेला ही हमारा तिरस्कार कर इन स्त्रियो को लिये जा रहा है, इससे हमारे बल को धिक्कार है ॥१५॥

हत्वा गर्वसमारूढो भीष्मद्रोणजयद्रथान् ।
कर्णादीश्च न जानाति बल ग्रामनिवासिनाम् ॥१६
यष्टिहस्तानवेक्ष्यास्मान्धनुष्पाणिस्स दुर्मति ।
सर्वानेवावजानाति कि वो बाहुभिरुन्नतै ॥१७
ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टधारिणः ।
सहस्रशोऽभ्यधावन्त त जन निहतेश्वरम् ॥१८
ततो निर्भर्त्स्य कौन्तेय प्राहाभीरान्हसन्निव ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि न स्थ मुमूर्षव ॥१९

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम् ।
स्त्रीधनं चैव मैत्रेय विष्वक्सेनपरिग्रहम् ॥२०
ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं युधि ।
आरोपयितुमारेभे न शशाक च वीर्यवान् ॥२१
चकार सज्यं कृच्छ्राच्च तच्चाभूच्छिथिलं पुनः ।
न सस्मार ततोऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२

भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण आदि का वध करके ही यह इतना गर्वीला होगया है कि हम ग्रामीणों को कुछ नहीं समझता ॥१६॥ हमारे हाथों मे लाठी होने पर यह हमे धनुष दिखा रहा है, तो हमारी विशाल भुजाओं से क्या प्रयोजन है? ॥१७॥ ऐसा विचार करके उन हजारों लुटेरों ने उन अनाथ द्वारकावासियों पर लाठियों और पत्थरों से आक्रमण कर दिया ॥१८॥ तब अर्जुन ने ललकार कर उनसे कहा—अरे पापियो! अगर जीवित रहना चाहते हो तो यहाँ से तुरन्त लौट जाओ ॥१६। परन्तु हे मैत्रेयजी! दस्युओं ने उनकी बात पर ध्यान न देकर श्रीकृष्ण की स्त्रियों और सम्पूर्ण धन को उन्होंने जीत लिया ॥२०॥ तब अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष को चढाना चाह कर भी न चढा सके ॥२१॥ जैसे तैसे करके प्रत्यञ्चा चढा भी ली तो उनके अङ्ग शिथिल होगये और उन्हें अपने अस्त्रों की याद ही न आई ॥२२॥

शरान्मुमोच चैतेषु पार्थो वैरिष्वमर्षितः ।
त्वग्भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्विना ॥२३
वह्निना येऽक्षया दत्ताश्शरास्तेऽपि क्षयं ययुः ।
युद्धचतस्सह गोपालैरर्जुनस्य भवक्षये ॥२४
अचिन्तयच्च कौन्तेयः कृष्णस्यैव हि तद्बलम् ।
यन्मया शरसङ्घातैस्सकला भूभृतो हताः ॥२५
मिषतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
आभीरैरपकृष्यन्त कामं चान्याः प्रदुद्रुवुः ॥२६
ततश्शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोट्या धनञ्जयः ।
जघान दस्यूंस्ते चास्य प्रहाराञ्जहसुर्मुने ॥२७

प्रेक्षतस्तस्य पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समस्ता मुनिसत्तम ॥२८
ततस्सुदुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ।
अहो भगवतानेन वञ्चितोऽस्मि रुरोद ह ॥२६

फिर उन्होंने उन शत्रुओं पर रोष पूर्वक बाण-वर्षा की परन्तु वे बाण उन लुटेरों की त्वचा को ही बींध सके ॥२३॥ अर्जुन के उद्भव के क्षीण होने के कारण अग्नि-प्रदत्त बाण भी इस युद्ध में नष्ट होगये ॥२४॥ तब अर्जुन विचार करने लगा कि अब तक मैंने अनेक राजाओं को परास्त किया था, वह सब श्रीकृष्ण का ही प्रभाव था ॥२५॥ अर्जुन के देखते-देखते ही उन अहीरों ने एक-एक स्त्री को घसीट घसीट कर हरण कर लिया और कोई-कोई अपनी इच्छा से ही इधर-उधर भाग निकली ॥२६॥ बाणों के न रहने पर अर्जुन ने धनुष की नोक से उन्हें मारना प्रारम्भ किया, परन्तु उन लुटेरों ने उनकी और भी हँसी उड़ाई ॥२७॥ हे मुनिवर ! उन वृष्णि और अन्धक वंश की सब स्त्रियों को वे लुटेरे अर्जुन के सामने ही उठा ले गये ॥२८॥

तद्धनुस्तानि शस्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ।
सर्वमेकपदे नष्टं दानमश्रोत्रिये यथा ॥३०
अहोऽतिबलवद्दैवं विना तेन महात्मना ।
यदसामर्थ्ययुक्तेऽपि नीचवर्गे जयप्रदम् ॥३१
तौ बाहू स च मे मुष्टिः स्थानं तत्सोऽस्मि चार्जुनः ।
पुण्येनैव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२
ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृते ध्रुवम् ।
विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं रथिनां वरः ॥३३
इत्थं वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।
चकार तत्र राजानं वज्रं यादवनन्दनम् ॥३४
स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम् ।
तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥३५

यह देख कर अर्जुन अपमान से दुखित होकर रोने लगे कि भगवान् ने ही मुझे ठग लिया। यह वही धनुष, वे शास्त्र, वही रथ तथा वही घोडे हैं, परन्तु व्यर्थ दान के समान यह सब निष्फल होगये हैं ॥३०॥ दैव की प्रबलता देखो कि उसने इन असमर्थ और नीच अहीरो को जिता दिया। उसी मुष्टिका और उसी भुजा वाला मैं अर्जुन आज श्रीकृष्ण के अभाव मे सार-हीन होगया हूँ ॥३१-३२॥ मेरा अर्जुनत्व उन्ही के प्रभाव से था, अहो मुझ महारथी-श्रेष्ठ को आज तुच्छ अहीरो ने पराजित कर दिया ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार चिन्ता करते हुए अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ मे आकर वज्र का राज्याभिषेक किया ॥३४॥ फिर उन्होने वन मे जाकर महर्षि व्यासजी से भेंट की और विनीत भाव से उनके चरणो मे प्रणाम किया ॥३५॥

त वन्दमान चरणावबलोक्य मुनिश्चिरम् ।
उवाच वाक्य विच्छायः कथमद्य त्वमीदृश ॥३६
अवीरजोऽनुगमन ब्रह्महत्या कृताथ वा ।
दृढाशाभङ्गदु खीव भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम् ॥३७
सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः ।
अगम्यस्त्रीरतिर्वा त्व येनासि विगतप्रभ ॥३८
भुङ्क्तेऽप्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकोऽथ वा भवान् ।
किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवतार्जुन ॥३९
कच्चिन्नु शूर्पवातस्य गोचरत्व गतोऽर्जुन ।
दुष्टचक्षुर्हतो वाऽसि निश्श्रीक' कथमन्यथा ॥४०
स्पृष्टो नखाम्भसा वाथ घटवार्युक्षितोऽपि वा ।
केन त्व वासि विच्छायो न्यूनैर्वा युधि निर्जित ॥४१

अर्जुन को चरणो मे झुके हुए देख कर महर्षि ने उनसे पूछा कि आज तुम ऐसे निस्तेज क्यो होरहे हो ? क्या तुम भेडो की धूलि के पीछे चले हो, या तुम्हारी आशा टूट गई है अथवा तुमने ब्रह्महत्या की है, जिससे ऐसे दुखी होरहे हो ? ॥३६-३७॥ क्या तुमने किसी सन्तान—कामना वाले की विवाह—याचना पर ध्यान नही दिया है अगम्या से समागम किया है या किसी कृपण का धन

छीन लिया है अथवा ब्राह्मणों को दिये बिना अकेले ही पक्वान्न भोजन कर लिया है ? ॥३८-३९॥ अथवा तुमने सूप की वायु का सेवन किया है या तुम्हारे नेत्र विकृत होगये हैं अथवा किसी ने तुम पर प्रहार किया है, जिससे इस प्रकार श्रीहीन होरहे हो ?॥४०॥ कहीं तुमने नख का जल तो नहीं छू लिया, या तुम्हारे ऊपर घडे से जल के छलकने पर छींट तो नहीं पड गये अथवा तुम अपने से निर्बल पुरुष से तो नहीं हार गये ? ॥४१॥

तत पार्थो विनि श्वस्य श्रूयता भगवन्निति ।
उक्त्वा यथावदाचष्टे व्यासायात्मपराभवम् ॥४२
यद्बल यच्च यत्तेजो यद्वीर्यं य पराक्रम ।
या श्रीश्छाया च न सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गत. ॥४३
ईश्वरेणापि महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा ।
हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४
अस्त्राणा सायकाना च गाण्डीवस्य तथा मम ।
सारता याभवन्मूर्तिस्स गत पुरुषोत्तम. ॥४५
यास्यावलोकनादस्माञ्छ्रीर्जय सम्पदुन्नति ।
न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वास्मान्भगवान्गत ॥४६
भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादय ।
यत्प्रभावेण निर्दग्धास्म कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७
निर्यौवना गतश्रीका नष्टच्छायेव मेदिनी ।
विभाति तात नैकोऽह विरहे तस्य चक्रिण ॥४८

श्री पराशरजी ने कहा—इस पर अर्जुन ने दीर्घ श्वास लेते हुए कहा—अपने परास्त होने का सब वृत्तान्त यथावत् सुना दिया ॥४२॥ अर्जुन बोले—हमारे एकमात्र बल, तेज, वीर्य पराक्रम, श्री और कान्ति स्वरूप श्रीकृष्ण हम छोड कर प्रस्थान कर गये ॥४३॥ जो समर्थ होकर भी हमसे हँस हँसकर बतराते थे, उन हरि के बिना हम तिनके से निर्मित हुए पुतले के समान निर्जीव होगये हैं ॥४४॥ मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्य बाणों और गाण्डीव के सार रूप श्रीहरि हम त्याग कर चले गये ॥४५॥ जिनकी कृपा से जय, ऐश्वर्य और उन्नति सदा

हमारे साथ रही, वे गोविन्द हमें छोड़ गये ॥४६॥ जिनके प्रभाव रूप अग्नि में भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि वीर भस्म होगये,उन श्रीहरि ने इस पृथिवी को छोड़ दिया ॥४७॥ उन श्रीकृष्ण के विरह में यह सम्पूर्ण पृथिवी ही विगत यौवना और कान्तिहीना लग रही है ॥४८॥

यस्य प्रभावाद्भीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम् ।
विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जितः ॥४६
गाण्डीवस्त्रिषु लोकेषु ख्याति यदनुभावतः ।
गतस्तेन विनाभीरलगुडैस्स तिरस्कृतः ॥५०
स्त्रीसहस्राण्यनेकानि मन्नाथानि महामुने ।
यततो मम नीतानि दस्युभिर्लगुडायुधैः ॥५१
आनीयमानमाभीरैः कृष्ण कृष्णावरोधनम् ।
हृत यष्टिप्रहरणैः परिभूय वल मम ॥५२
निश्श्रीकता न मे चित्रं यज्जीवामि तदद्भुतम् ।
नीचावमानपङ्काङ्की निर्लज्जोऽस्मि पितामह ॥५३

जिनके प्रभाव मे मुझ अग्नि रूप मे पडकर भीष्मादि महारथी पतंग के समान भस्म होगये थे, आज उन्ही के न होने पर गोपो ने मुझे जीत लिया ॥४६॥ जिनके प्रभाव से यह गाण्डीव तीनो लोको मे विख्यात था, आज उन्हा के अभाव मे यह अहीरो की लाठियो से व्यर्थ होगया ॥५०॥ हे महामुने ! श्रीकृष्ण की हजारो पत्नियाँ मेरे संरक्षण मे आ रही थी, उन्हें लुटेरो अपना लाठियों के वल पर ही लूट कर ले गये ॥५१॥ लाठियो से सज्जित अहीरो ने मेरे वल को तिरस्कृत कर मेरे साथ के सम्पूर्ण कृष्ण–परिवार का हरण कर लिया ॥५२॥ ऐसी अवस्था मे श्रीहीन होने का तो कोई आश्चर्य नही है, परन्तु नीच पुरुषो द्वारा अपमानित होकर भी मैं अभी तक जीवित हूं, यही आश्चर्य है ॥५३॥

अलं ते व्रीडया पार्थ न त्वं शोचितुमर्हसि ।
अवेहि सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५४

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव ।
कालमूलमिदं ज्ञात्वा भव स्थैर्यपरोऽर्जुन ॥५५
नद्यः समुद्रा गिरयस्सकला च वसुन्धरा ।
देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः ॥५६
सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति सक्षयम् ।
कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५७
कालस्वरूपी भगवान्कृष्णः कमललोचन ।
यच्चात्थ कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनंजय ॥५८
भारावतारकार्यार्थमवतीर्णस्य मेदिनीम् ।
भाराक्रान्ता धरा याता देवानां समितिं पुरा ॥५९
तदर्थमवतीर्णोऽसौ कालरूपी जनार्दन ।
तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभुजो हताः ॥६०

श्री व्यासजी ने कहा—हे पार्थ ! लज्जा और शोक से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि सब भूतों में काल की गति ऐसी ही है ॥५४॥ प्राणियों की उन्नति या अवनति काल से ही होती है और जय-पराजय भी उसी के अधीन हैं ॥५५॥ नदी, समुद्र, पर्वत, पृथिवी, देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्पादि जन्तु सब काल से ही रचे जाते और उसी से क्षीण होते है। यह सब प्रपञ्च कालात्मक है—यह समझ कर शान्ति धारण करो ॥५६-५७॥ श्रीकृष्ण की जो महिमा तुमने कही है, वह उन भगवान् के साक्षात् कालरूप होने के कारण सत्य ही है ॥५८॥ वे भू-भार-हरण करने के लिये ही अवतीर्ण हुए थे, क्योंकि भार से आक्रान्त हुई पृथिवी एकबार देवताओं की सभा में गई थी ॥५९॥ उसी के निमित्त पृथिवी पर आकार उन्होंने सब राजाओं को मार दिया, इस प्रकार उनका उद्देश्य पूर्ण होगया ॥६०॥

वृष्ण्यन्धककुलं सर्वं तथा पार्थोपसंहृतम् ।
न किञ्चिदन्यत्कर्तव्यं तस्य भूमितले प्रभो ॥६१
अतो गतस्स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया ।

सृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितौ स्थितिम् ।
अन्तेऽन्ताय समर्थोऽयं साम्प्रतं वै यथा गतः ॥६२
तस्मात्पार्थ न सन्तापस्त्वया कार्यः पराभवे ।
भवन्ति भावाः कालेषु पुरुषाणां यतः स्तुतिः ॥६३
त्वयैकेन हता भीष्मद्रोणकर्णादयो रणे ।
तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६४
विष्णोस्तस्य प्रभावेण यथा तेषां पराभवः ।
कृतस्तथैव भवतो दस्युभ्यस्स पराभवः ॥६५
स देवेशश्शरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम् ।
करोति सर्वभूतानां नाशमन्ते जगत्पतिः ॥६६

हे पार्थ ! वृष्णि और अन्धकादि सब यादवों के नष्ट हो जाने पर तो पृथिवी पर उनका कोई रह ही नहीं गया था ॥६१॥ इसीलिये वे स्वेच्छापूर्वक यहाँ से चले गये। वे ही सृष्टि रचने तथा उसका पालन और विनाश करने हैं ॥६२॥ इसीलिये अपनी पराजय पर दुःखी नहीं होना चाहिये, क्योंकि अभ्युदय काल में पुरुषों से प्रशंसनीय कर्म बन पाते हैं ॥६३॥ हे अर्जुन ! जब तुम अकेले ने ही भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे महावीरों को मार डाला था, तब क्या उनका कालक्रम के कारण ही अपने तुमसे के सामने पराजित होना नहीं था ? ॥६४॥ जैसे भगवान् विष्णु के प्रभाव से तू ने उनका तिरस्कार किया था, वैसे ही चोर तुझे तिरस्कृत होना पड़ा है ॥६५॥ वे ही जगत्पति सब देहों में स्थित होकर संसार का पालन और अन्त में संहार करते हैं ॥६६॥

गृहीता दस्युभिर्याश्च भवाञ्छोचति तास्त्रिय ।
एतस्याह् यथावृत्त कथयामि तवार्जुन ॥७०

हे कुन्तीपुत्र ! तेरे भाग्योदय के समय श्रीकृष्ण की तुझ पर कृपा थी और अब तेरे विपक्षियो पर उनकी कृपा हुई है ॥६७॥ यह कौन मानता था कि तू भीष्म सहित सब कौरवो का सहार कर डालेगा और अब इसे भी कौन मान सकता है कि तू अहीरो से पराजित हो जायगा ? ॥६८॥ हे पार्थ ! यह सब उन्ही की लीला है कि तुझ अकेले ने कौरवो का सहार कर दिया और अब तू ही अहीरो से हार गया ॥६९॥ हे अर्जुन ! उन लुटेरो द्वारा हरण की गई जिन स्त्रियो के लिये तुझे शोक हो रहा है, उसका रहस्य मैं तुझसे कहता हूँ ॥७०॥

अष्टावक्र पुरा विप्रो जलवासरतोऽभवत् ।
बहून्वर्षगणान्पार्थ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥७१
जितेष्वसुरसङ्घेषु मेरुपृष्ठे महोत्सव ।
बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्त सुरस्त्रिय ॥७२
रम्भातिलोत्तमाद्यास्तु शतशोऽथ सहस्रश ।
तुष्टुवुस्त महात्मान प्रशशसुश्च पाण्डव ॥७३
आकण्ठमग्न सलिले जटाभारवह मुनिम् ।
विनयावनताश्चैन प्रणेमु स्तोत्रतत्परा ॥७४
यथा यथा प्रसन्नोऽसौ तुष्टुवुस्त तथा तथा ।
सर्वास्ता कौरवश्रेष्ठ त वरिष्ठ द्विजन्मनाम् ॥७५
प्रसन्नोऽह महाभागा भवतीना यदिष्यते ।
मत्तस्तद्व्रियता सर्वं प्रदास्याम्यतिदुर्लभम् ॥७६
रम्भातिलोत्तमाद्यास्त वैदिक्योऽप्सरसोऽब्रुवन् ।
प्रसन्ने त्वय्यपर्याप्त किमस्माकमिति द्विजा ॥७७
इतरास्त्वब्रुवन्विप्र प्रसन्नो भगवान्यदि ।
तदिच्छाम पति प्राप्तु विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम् ॥७८

पूर्व काल की बात है—ब्राह्मण श्रेष्ठ अष्टावक्रजी भगवान् का चिन्तन

करते हुए अनेक वर्षों तक जल मे स्थित रहे ॥७१॥ तभी दैत्यो को जीतकर देवताओ ने सुमेरु पर्वत पर एक महोत्सव किया, जिसके लिये जाती हुई रम्भा, तिलोत्तमा आदि हजारो देव–नारियो ने अष्टावक्रजी को देख कर उनकी स्तुति की ॥७२-७३॥ उन कठ तक जल म स्थित हुए मुनिवर की देव–नारियाँ अत्यन्त विनय पूवक स्तुति और प्रणाम करने लगी ॥७४॥ जिस स्तुति से वे ब्राह्मण श्रेष्ठ प्रसन्न हो सकें, वैसी स्तुति उन्होने की ॥७५॥ इस पर अष्टावक्रजी ने कहा—हे महाभागाओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे वर माँग लो, दुलभ वर भी दे डालूगा ॥७६॥ तब उन रम्भा-तिलोत्तमा आदि अप्सराओ ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपके प्रसन्न होने से ही हम क्या नहीं मिल गया है ? ॥७७॥ परन्तु अन्य अप्सराओ ने कहा कि–यदि आप प्रसन्न हैं तो हम भगवान् विष्णु को पति रूप म कामना करती हैं ॥७८॥

एव भविष्यतीत्युक्त्वा ह्युत्ततार जलान्मुनि ।
तमुत्तीर्णं च ददृशुर्विरूप वक्रमष्टधा ॥७९
त दृष्ट्वा गूहमानाना यासा हास स्फुटोऽभवत् ।
तास्शशाप मुनि कोपमवाप्य कुरुनन्दन ॥८०
यस्माद्विकृतरूप मा मत्वा हासावमानना ।
भवतीभि कृता तस्मादत शाप ददामि व ॥८१
मत्प्रसादेन भर्तार लब्ध्वा तु पुरुषोत्तमम् ।
मच्छापोपहतास्सर्वा दस्युहस्त गमिष्यथ ॥८२
इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनिस्ताभि प्रसादित ।
पुनस्सुरेन्द्रलोक वै प्राह भूयो गमिष्यथ ॥८३
एव तस्य मुनेश्शापादष्टावक्रस्य चक्रिणम् ।
भर्तार प्राप्य ता याता दस्युहस्त सुराङ्गना ॥८४
तत्त्वया नात्र कर्त्तव्यश्शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव ।
तेनैवाखिलनाथेन सर्व तदुपसहृतम् ॥८५
भवता चोपसहार' आसन्नस्तेन पाण्डव ।
बल तेजस्तथा वीर्य माहात्म्य चोपसहृतम् ॥८६

श्रीव्यासजी ने कहा—अष्टावक्रजी 'ऐसा ही होगा' कहते हुए जल से बाहर निकले, उस समय अप्सराओं ने उनके आठ स्थानों में टेढ़े शरीर को देखा तो मुख से हँसी छूट पड़ी और छिपाने पर भी छिप न सकी, इससे महर्षि ने रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया कि तुमने मेरे कुबड़ की हँसी उड़ाई है, इसलिये तुम भगवान् विष्णु को पति रूप में पाकर भी लुटेरों द्वारा अपहृत होओगी ॥७९-८२॥ श्री व्यासजी बोले—इस पर उन अप्सराओं ने अष्टावक्रजी को पुनः प्रसन्न किया, तब मुनिवर ने उनसे कहा—कि 'उसके बाद तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी' ॥८३॥ इस प्रकार अष्टावक्रजी की कृपा से उन्हें रति रूप भगवद्-प्राप्ति और शाप से लुटेरों द्वारा अपहरण रूप फल मिला ॥८४॥ हे पाण्डव ! उन अखिलेश्वर ने स्वयं ही सब यादव-वंश को नष्ट किया है तो तुम्हें शोक करना उचित नहीं है ॥८५॥ फिर तुम्हारा भी अन्तकाल समीप है इसलिये भगवान् ने तुम्हारे बल, वीर्य, तेज और माहात्म्य को क्षीण कर दिया है ॥८६॥

जातस्य नियतो मृत्यु पतन च तथोन्नते ।
विप्रयोगावसानस्तु सयोग सञ्चये क्षय ॥८७
विज्ञाय न बुधाश्शोक न हर्षमुपयान्ति ये ।
तेषामेवेतरे चेष्टा शिक्षन्तस्सन्ति तादृशा ॥८८
तस्मात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वैतद्भ्रातृभिस्सह ।
परित्यज्याखिल तन्त्र गन्तव्य तपसे वनम् ॥८९
तद् गच्छ धर्मराजाय निवेद्य तद्वचो मम ।
परश्वो भ्रातृभिस्सार्द्ध यथा यासि तथा कुरु ॥९०
इत्युक्तोऽभ्येत्य पार्थाभ्या यमाभ्या च सहार्जुनः ।
दृष्ट चैवानुभूत च सर्वमाख्यातवास्तथा ॥९१
व्यासवाक्य च ते सर्वे श्रुत्वार्जुनमुखेरितम् ।
राज्ये परीक्षित कृत्वा ययु पाण्डुसुता वनम् ॥९२
इत्येतत्तव मैत्रेय विस्तरेण मयोदितम् ।
जातस्य यद्यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥९३

यश्चैतच्चरितं यस्य कृष्णस्य शृणुयात्सदा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

हे पार्थ ! जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा, उन्नति का पतन भी निश्चित है, सयोग से वियोग और संचय से ही व्यय होता है । ऐसा समझ कर हर्षशोक न करके बुद्धिमान् पुरुष दूसरो के लिये भी अनुकरणीय बन जाते हैं ॥८७-८८॥ तुम भी अब राज-पाट को त्याग कर अपने भाइयों के सहित वन में जाओ ॥८९॥ अब यहाँ से जाकर युधिष्ठिर को सब वृत्तान्त कहकर वन-गमन कर सको वैसी चेष्टा करो ॥९०॥ मुनिवर व्यास के ऐसा कहने पर अर्जुन ने सब भाइयों के पास आकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया, जिससे सब पाण्डु पुत्र परीक्षित् को राज्यपद पर अभिषिक्त कर स्वयं वन को चल दिये ॥९१-९२॥ हे मैत्रेयजी! भगवान् ने यदुवंश मे अवतीर्ण होकर जो-जो चरित्र किये वह सब मैंने तुम्हें सुना दिये । जो पुरुष इन चरित्रो का सुनता है, वह सभी पापो से मुक्त होकर अन्त मे विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥९३-९४॥

॥ पंचम अंश समाप्त ॥

षष्ठ अंश

व्याख्याता भवता सर्गवंशमन्वन्तर स्थितिः ।
वंशानुचरित चैव विस्तरेण महामुने ॥१
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् ।
महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२
मैत्रेय श्रूयतां मत्तो यथावदुपसंहृति. ।
कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३
अहोरात्रं पितॄणां तु मासोऽब्दस्त्रिदिवौकसाम् ।
चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो वै द्विजोत्तम ॥४
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५
चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपत: ।
आद्यं कृतयुगं मुक्त्वा मैत्रेयान्त्यं तथा कलिम् ॥६
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यथा ।
क्रियते चोपसंहारस्तथान्ते च कलौ युगे ॥७

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे महामुने ! आपने सृष्टि रचना, मन्वन्तर और वंश के चरित्र विस्तार सहित कहे हैं ॥१॥ अब मैं कल्पान्त में होने वाले महाप्रलय का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! आत्म प्रलय में प्राणियों का जिस प्रकार उपसंहार होता है, उसे श्रवण करो ॥३॥ मनुष्यों के एक मास का पितरों का एक दिन-रात, एक वर्ष का देवताओं का एक दिन-रात तथा दो हजार चतुर्युगियों का ब्रह्मा का एक दिन रात होता है ॥४॥ सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग—यह चतुर्युगी है, इसका मान बारह हजार दिव्यवर्ष है ॥५॥ प्रथम के सत्ययुग और अन्त के कलियुग के अतिरिक्त शेष सब चारों युग में मानानुसार एक समान हैं ॥६॥ जैसे प्रारम्भिक युग में ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं, वैसे अन्तिम युग में उसका संहार कर देते हैं ॥७॥

कलेस्स्वरूप भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसि ।
धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्विप्लवमृच्छति ॥८
कलेःस्वरूप मैत्रेय यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति ।
तन्निबोध समासेन वर्तते यन्महामुने ॥९
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् ।
न सामऋग्यजुर्धर्मविनिष्पादन हेतुकी ॥१०
विवाहो न कलौ धर्म्यो न शिष्यगुरुसंस्थितिः ।
न दाम्पत्यक्रमो नैव वह्निदेवात्मकः क्रमः ॥११
यत्र कुत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ ।
सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो योग्यः कन्यावरोधने ॥१२
येन केन च योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ ।
यैव सैव च मैत्रेय प्रायश्चित कलौ क्रिया ॥१३
सर्वमेव कलौ शास्त्र यस्य यद्वचनं द्विज ।
देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य चाश्रमः ॥१४
उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ ।
धर्मो यथाभिरुचिरैरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥१५

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! उस कलियुग के स्वरूप को विस्तार पूर्वक कहिये, जिसमें भगवद्धर्म लुप्त हो जाता है ॥८॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! आप कलियुग का रूप सुनने के इच्छुक हैं इसलिये उसे यथावत् सक्षेप में श्रवण करिये ॥९॥ कलियुग में मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम धर्म और

वेदत्रयी युक्त नहीं होती ॥१०॥ उस समय धर्म पूर्वक विवाह, गुरु-शिष्य-संबंध, दाम्पत्य-जीवन का क्रम और यज्ञानुष्ठान आदि का भी लोप हो जाता है ॥११॥ बलवान् ही सब का स्वामी और सभी वर्णों से कन्या–ग्रहण करने मे समर्थ होता है ॥१२॥ उस समय निकृष्ट उपाय 'दीक्षित' होने मे और सरल क्रिया ही प्रायश्चित मानने मे स्वीकार होगी ॥१३॥ जिसके मुख से जो निकल जाय वही शास्त्र तथा भूतादि देवता और सभी के लिये सब आश्रम खुले होंगे ॥१४॥ उपवास, तीर्थयात्रा, धन-दान और स्वेच्छा पूर्वक अनुष्ठान ही श्रेष्ठ धर्म माने जायेंगे ॥१५॥

वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ ।
स्त्रीणां रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६
सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षयं गते ।
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलङ्कृताः ॥१७
परित्यक्ष्यन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः ।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥१८
यो वै ददाति बहुल स्व स स्वामी सदा नृणाम् ।
स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धो न चाभिजनता तथा ॥१९
गृहान्ता द्रव्यसङ्घाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।
अर्थाश्चात्मोपभोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०
स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ।
अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषाः स्पृहयालवः ॥२१
अभ्यर्थितापि सुहृदा स्वार्थहानिं न मानवा ।
पणार्धार्धार्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ॥२२
समानपौरुषं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ॥२३

थोड़े धन से ही धनवान् होने का अभिमान और बालों से ही नारी–सौन्दर्य का गर्व होगा । स्वर्ण, मणि और रत्नादि के अभाव में केश–कलाप ही स्त्रियों का अलंकार होगा ॥१६-१७॥ स्त्रियाँ धन–हीन पति का त्याग करेंगी

और धनवान् को ही अपना पति मानेंगी ॥१८॥ अधिक धन देने वाला ही स्वामी होगा, उस समय सम्बन्ध या कुलीनता से स्वामित्व को नहीं माना जायगा ॥१६॥ सम्पूर्ण द्रव्य गृह-निर्माण में ही व्यय होता रहेगा धन सचय वाली बुद्धि होगी और सब धन अपने ही उपयोग में लाया जायगा ॥२०॥ कलियुग में स्त्रियाँ स्वेच्छाचार पूर्वक सुन्दर पुरुष को चाहेंगी, तथा पुरुषगण अन्याय पूर्वक धन ग्रहण करने की इच्छा करेंगे ॥२१॥ स्वजनो की प्रार्थना पर भी कोई एक आध दमडी की हानि भी स्वीकार न करेगा ॥२२॥ शूद्र ब्राह्मणो से समानता करेंगे और दूध देने के कारण ही गौएँ सम्मानित होंगी ॥२३॥

अनावृष्टिभयप्राया प्रजा क्षुद्भयकातरा ।
भविष्यन्ति तदा सर्वे गगनासक्तदृष्टय ॥२४
कन्दमूलफलाहारास्तापसा इव मानवा ।
आत्मान घातयिष्यन्ति ह्यनावृष्ट्यादिदु खिता ॥२५
दुर्भिक्षमेव सतत तथा क्लेशमनोश्वरा ।
प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखप्रमोदा मानवा कलौ ॥२६
अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम् ।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥२७
लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नादनतत्परा ।
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रिय ॥२८
उभाभ्यामपि पाणिभ्या शिर कण्डूयन स्त्रिय ।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृ णामाज्ञा भेत्स्यन्त्यनादरा ॥२६
स्वपोषणपरा क्षुद्रा देहसस्कारवर्जिता ।
परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रिय ॥३०
दु शीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यस्सतत स्पृहाम् ।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गना ॥३१

भूख से व्याकुल हुई प्रजा अनावृष्टि के भय से आकाश को ताकती रहेगी ॥२४॥ मनुष्यो को केवल कन्द, मूल, फल के सहारे रहना होगा और बहुत से अनावृष्टि से दुखित हो कर आत्मघात कर लेंगे ॥२५॥ कलियुग में

मनुष्य इतने असमर्थ होंगे कि सुख के क्षीण होने पर उन्हे दुर्भिक्ष और क्लेश की ही प्राप्ति होती रहेगी ॥२६॥ बिना स्नान किये ही भोजन तथा अग्नि, देवता और अतिथि के पूजन का अभाव और पिण्डदान न करने की वृत्ति हो जायगी ॥२७॥ स्त्रियाँ विषयासक्त अति भोजन करने वाली, अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली अभागी और छोटे देह में होगी ॥२८॥ वे अपने दोनों हाथों से सिर खुजाती हुई अपने बड़ों तथा पतियों के आदेश को न मानेंगी ॥२९॥ वे क्षुद्र चित्तवाली, अपनी ही उदर पूर्ति में लगी हुई, आचार-विचार में हीन तथा कठोर और मिथ्या वचन कहने वाली होंगी ॥३०॥ दुश्चरित्र पुरुषों का सङ्ग चाहने वाली, दुराचारिणी और पुरुषों से धूर्ततापूर्ण व्यवहार करने वाली होंगी ॥३१॥

वेदादान करिष्यन्ति वटवश्चाकृतव्रता ।
गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि ॥३२
वानप्रस्था भविष्यन्ति ग्राम्याहारपरिग्रहा ।
भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसम्बन्धयन्त्रणा ॥३३
अरक्षितारो हर्त्तारश्शुल्कव्याजेन पार्थिवा ।
हारिणो जनवित्ताना सम्प्राप्ते तु कलौ युगे ॥३४
यो योऽश्वरथनागाढ्यस्स स राजा भविष्यति ।
यश्च यश्चाबलस्सर्वस्स स भृत्य कलौ युगे ॥३५
वैश्या कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत् ।
शूद्रवृत्त्या प्रवर्त्स्यन्ति कारुकर्मोपजीविन ॥३६
भैक्षव्रतपरा शूद्रा प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमा ।
पाषण्डसंश्रया वृत्तिमाश्रयिष्यन्ति सत्कृता ॥३७
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रुता जना ।
गोधूमान्नयवान्नाढ्यान्देशान्यास्यन्ति दु खिता ।३८

ब्रह्मचारी व्रतादि न करते हुए ही वेद पढ़ेंगे और गृहस्थ सत्पात्र को दान न देने वाले और हवन न करने वाले होंगे ॥३२॥ वान प्रस्थ नगर का भोजन पसन्द करेंगे और सन्यासी अपने स्नेहीजनों के प्रेम में फँसे रहेंगे ॥३३॥

कलियुग मे राजागण कर लेने के बहाने प्रजा को लूटेंगे और उसकी रक्षा भी नहीं करेंगे ॥३४॥ बहुत से रथ, हाथी, घोड़े वाला ही राजा हो जायगा तथा धनहीन पुरुष श्रेष्ठ हो कर भी सेवक ही बनेगा ॥३५॥ वैश्य भी कृषि-वाणिज्य को छोड़ कर शिल्पकारी करेंगे या शूद्र वृत्ति से निर्वाह करेंगे ॥३६॥ अधम लोग संन्यासी वेश मे भिक्षावृत्ति करेंगे तथा सम्मानित हो कर पाखण्ड की वृद्धि करेंगे ॥३७॥ प्रजाजन कर और दुर्भिक्ष के कारण अत्यन्त दुःखित होकर गेहूँ और जौ की अधिकता वाले देशो मे चले जायेंगे ॥३८॥

वेद मार्गे प्रलीने च पाषण्डाढ्ये ततो जने ।
अधर्मवृद्धया लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९
अशास्त्रविहित घोर तप्यमानेषु वै तप ।
नरेषु नृपदोषेण बाल्ये मृत्युर्भविष्यति ॥४०
भविना योषितां सूति पञ्चषट्सप्तवार्षिकी ।
नवाष्टदशवर्षाणा मनुष्याणा तथा कलौ ॥४१
पलितोद्भवश्च भविता तथा द्वादशवार्षिक ।
नातिजीवति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशति ॥४२
अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्त करणा कलौ ।
यतस्ततो विनङ्क्ष्यन्ति कालेनाल्पेन मानवा ॥४३
यदा तदा हि मैत्रेय हानिर्धर्मस्य लक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणै ॥४४
यदा यदा हि पाषण्डवृद्धिर्मैत्रेय लक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया महात्मभि ॥४५
यदा यदा सता हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणै ॥४६

कलिकाल मे वेद-धर्म के लुप्त होने, पाखड के बढाने और अधर्म की प्रचुरता होने से प्रजा अल्प आयु वाली होगी ॥३९॥ शास्त्र विरुद्ध तपस्या से और राजा के विपरीत मार्गगामी होने से बाल्यावस्था मे ही मृत्यु होने लगेगी ॥४०॥ पाँच,छ या सात वर्ष की स्त्री और आठ, नौ या दस वर्ष के पुरुष की

सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे ॥४१॥ बारह वर्ष की आयु में ही केश पकने लगेंगे और बीस वर्ष से अधिक किसी की भी आयु नहीं होगी ॥४२॥ लोगों की बुद्धि मन्द होगी, दुष्ट चित्त वाले हो कर व्यर्थ के चिह्न धारण करेंगे और इसीलिये अल्पायु में ही मर जांयगे ॥४३॥ हे मैत्रेयजी ! जैसे-जैसे धर्म की हानि होती हुई दिखाई दे, वैसे-वैसे ही कलियुग को बढ़ता हुआ समझे ॥४४॥ जब पाखंड की वृद्धि दिखाई दे, तभी समझलें कि कलियुग का बल बढ़ रहा है ॥४५॥ जब वैदिक मार्ग पर चलने वालों की कमी जान पड़े, तभी बुद्धिमान् पुरुष कलियुग को उत्कर्ष पर जान लेवें ॥४६॥

प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मभृतां नृणाम् ।
तदानुमेय प्राधान्यं कलेर्मैत्रेय पण्डितैः ॥४७
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम् ॥४८
न प्रीतिर्वेदवादेषु पाषण्डेषु यदा रतिः ।
कलेर्वृद्धिस्तथा प्राज्ञैरनुमेया विचक्षणैः ॥४९
कलौ जगत्पतिं विष्णु सर्वस्रष्टारमीश्वरम् ।
नार्चयिष्यन्ति मैत्रेय पाषण्डोपहता जनाः ॥५०
किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजन्मना ।
इत्येव विप्र वक्ष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः ॥५१
स्वल्पाम्बुवृष्टिः पर्जन्यः सस्यं स्वल्पफलं तथा ।
फलं तथाल्पसारं च विप्र प्राप्ते कलौ युगे ॥५२
शाणीप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः ।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५३
अणुप्रायाणि धान्यानि अजाप्रायं तथा पयः ।
भविष्यति कलौ प्राप्ते ह्यौशीरं चानुलेपनम् ॥५४

हे मैत्रेयजी ! जब धर्मात्मा पुरुषों द्वारा आरम्भ किये हुए कार्य विफल हो जाँय, तब कलियुग का आधिक्य समझे ॥४७॥ जब यज्ञों के द्वारा यज्ञेश्वर भगवान् के यजन से लोग विमुख हो जाँय तब कलियुग की प्रबलता माने ॥४८॥

जय वेदवाद मे अरुचि और पाखण्ड मे तन्मयता हो तब ही कलियुग की वृद्धि जाने ॥४६॥ कलियुग मे पाखण्ड के वशीभूत होकर मनुष्य जगदीश्वर भगवान् विष्णु की पूजा नही करेंगे ॥५०॥ उस समय पाखण्डीजन कहेंगे कि देवता, विप्र, वेद तथा जल से होने वाले कर्मों से क्या लाभ है ? ॥५१॥ कलियुग मे वर्षा थोडी होगी, खेती थोडा अन्न उत्पन्न करेगी और फलादि मे न्यून गुण होगा ॥५२॥ सन के बने हुए वस्त्र पहिन जाँयगे, शमी वृक्षो की अधिकता होगी और सब वर्णों का आचरण शूद्र के समान होगा ॥५३॥ कलियुग मे धान्य बहुत छोटे होंगे, बकरियो का दूध ही उपलब्ध होगा और खस ही अनुलेपन होगा ॥५४॥

श्वश्रू श्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणा कलौ ।
श्यालाद्या हारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तम ॥५५
कस्य माता पिता कस्य यथा कर्मानुग पुमान् ।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नरा. ॥५६
वाङ्मन कायजैर्दोषैरभिभूता पुनः पुन ।
नरा पापान्यनुदिन करिष्यन्त्यल्पमेधस ॥५७
निस्सत्त्वानामशौचाना निर्ह्रीकाणा तथा नृणाम् ।
यद्यद्दु खाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५८
निस्स्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते ।
तदा प्रविरलो धर्मं क्वचिल्लोके निवत्स्यति ॥५९
तत्राल्पेनैव यत्नेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम् ।
करोति य कृतयुगे क्रियते तपसा हि स ॥६०

कलियुग मे सास-ससुर गुरुजन तथा पत्नी और साले ही सुहृद्जन होंगे ॥५५॥ सास-ससुर के वश मे पडे हुए लोग माता-पिता को कुछ नही मानेंगे ॥५६॥ मनुष्यो की बुद्धि अल्प होगी और वे मन, वाणी और कर्म के द्वारा बारम्बार पाप कर्म करेंगे ॥५७॥ अशक्त, अपवित्र और लज्जाहीनो को जो दु ख मिल सकते हैं, उन सभी दु खो की कलियुग मे प्राप्ति होगी ॥५८॥ ससार स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा से हीन हो जायगा और कही-

कहीं ही कुछ धर्म रह सकेगा ॥५६॥ परन्तु कलियुग में स्वल्प प्रयत्न से ही जिस महान् पुण्य राशि की प्राप्ति हो सकती है, उसे सत्ययुग में घोर तप करके ही पाया जा सकता है ॥६०॥

दूसरा अध्याय

व्यासश्चाह महाबुद्धिर्यदत्रैव हि वस्तुनि ।
तच्छ्रूयता महाभाग गदतो मम तत्त्वतः ॥१
कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति सुमहत्फलम् ।
मुनीनां पुण्यवादोऽभूत्कैश्चासौ क्रियते सुखम् ॥२
सन्देहनिर्णयार्थाय वेदव्यास महामुनिम् ।
ययुस्ते सशयं प्रष्टुं मैत्रेय मुनिपुङ्गवाः ॥३
ददृशुस्ते मुनिं तत्र जाह्नवीसलिले द्विज ।
वेदव्यास महाभागमर्द्धस्नात सुत मम ॥४
स्नानावसान ते तस्य प्रतीक्षन्तो महर्षयः ।
तस्थुस्तीरे महानद्यास्तरुषण्डमुपाश्रिता. ॥५
मग्नोऽथ जाह्नवीतोयादुत्थायाह सुतो मम ।
शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येव शृण्वता वच. ॥६
तेषा मुनीना भूयश्च ममज्ज स नदीजले ।
साधु साध्विति चोत्थाय शूद्र धन्योऽसि चाब्रवीत् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे महाभाग ! इस विषय में व्यासजी ने जो कहा है, वही ज्यों का त्यों सुनाता हूँ ॥१॥ एकबार मुनियों में परस्पर पुण्य विषयक वार्तालाप हुआ कि किस समय का अल्प पुण्य भी महान् फल वाला होता है तथा उसके अनुष्ठाता कौन हो सकते हैं ? ॥२॥ फिर इस संदेह के समाधान हेतु वे सब महामुनि व्यासजी के पास पहुँचे ॥३॥ हे मैत्रेयजी ! वहाँ जाकर उन्होंने मेरे पुत्र व्यासजी को गङ्गाजी में अर्द्ध स्नान करते हुए पाया ॥४॥ तब वे सब गंगातट स्थित वृक्षों के नीचे बैठकर उनके स्नान करने की

प्रतीक्षा करने लगे ॥५॥ उस समय गंगाजी में गोता लगाकर व्यासजी ने ऊपर उठते हुए कहा 'कलियुग श्रेष्ठ, शूद्र श्रेष्ठ' उनके वचन सबने सुने। उन्होंने पुनः गोता लगाया और उठकर कहा—हे शूद्र ! तुम ही श्रेष्ठ और तुम ही धन्य हो ॥६-७॥

निमग्नश्च समुत्थाय पुनः प्राह महामुनिः ।
योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः ॥८
ततः स्नात्वा यथान्यायमायान्तं च कृतक्रियम् ।
उपतस्थुर्महाभाग मुनयस्ते सुत मम ॥९
कृतसवन्दनाश्चाहुः कृतासनपरिग्रहान् ।
किमर्थमागता यूयमिति सत्यवतीसुतः ॥१०
तमूचुः संशयं प्रष्टुं भवन्तं वयमागताः ।
अलं तेनास्तु तावन्नः कथ्यतामपरं त्वया ॥११
कलिस्साध्विति यत्प्रोक्तं शूद्रः साध्विति योषितः ।
यदाह भगवान् साधु धन्याश्चेति पुनः पुनः ॥१२
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामो न चेद् गुह्यं महामुने ।
तत्कथ्यतां ततो हृत्स्थं पृच्छामस्त्वां प्रयोजनम् ॥१३
इत्युक्तो मुनिभिर्व्यासः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।
श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यदुक्तं साधु साध्विति ॥१४

इसके पश्चात् उन्होंने फिर गोता लगाया और उठते हुए कहा—स्त्रियाँ धन्य हैं, वे ही साधु हैं, उनसे बढ़कर कृतकृत्य और कौन हो सकता है ? ॥८॥ फिर जब व्यासजी स्नान तथा नित्य-कर्मादि से निवृत्त हुए तब वे मुनिजन उनके पास गये ॥९॥ वहाँ अभिवादन आदि करके जब वे बैठ गये तब व्यासजी ने उनसे उनके आगमन का कारण पूछा ॥१०॥ तब मुनियों ने कहा—वैसे तो हम एक शङ्का के समाधानार्थ यहाँ आये थे, परन्तु इस समय तो आप एक और बात बताने की कृपा करें ॥११॥ आपने स्नान करते समय कलियुग श्रेष्ठ, शूद्र श्रेष्ठ, स्त्रियाँ धन्य, वे ही साधु हैं आदि वाक्य कहे उनका तात्पर्य क्या है, यही हम सुनने को उत्सुक हैं। यदि यह विषय गोपनीय न हो तो बताने की कृपा

करे ॥१२-१३॥ श्री पराशरजी ने कहा—मुनियों के प्रश्न पर व्यासजी हँस पड़े और बोले कि मेरे वचनों का प्रयोजन सुनो ॥१४॥

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥१५
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः ।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम् ॥१६
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥१७
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ ।
अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलेः ॥१८
व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्वं द्विजातिभिः ।
ततस्स्वधर्मसम्प्राप्तैर्यष्टव्यं विधिवद्धनैः ॥१९
वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथेज्या च द्विजन्मनाम् ।
पतनाय ततो भाव्यं तैस्तु संयमिभिस्सदा ॥२०
असम्यक्करणे दोषस्तेषां सर्वेषु वस्तुषु ।
भोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः ॥२१
पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्येषु वै यतः ।
जयन्ति ते निजाँल्लोकान्क्लेशेन महता द्विजाः ॥२२

श्री व्यासजी बोले—हे द्विजगण ! सत्ययुग में दस वर्ष तक तप, ब्रह्मचर्य-पालन और जपादि करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक महीने में तथा कलियुग में तो एक अहोरात्रि में ही प्राप्त किया जा सकता है ॥१५-१६॥ सत्ययुग में ध्यान से जो फल होता है, वह त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में देव-पूजन से तथा कलियुग में केवल श्रीकृष्ण-नाम संकीर्तन से होता है ॥१७॥ हे धर्मज्ञो ! कलियुग में थोड़ा-सा परिश्रम करने पर ही महान् धर्म की प्राप्ति होती है, इसीलिये मैं कलियुग से बहुत प्रसन्न हूँ ॥१८॥ द्विजातियों को ब्रह्मचर्य व्रत के पालन पूर्वक वेदाध्ययन और धर्म से उपार्जित धन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञों के अनुष्ठान करने होते हैं ॥१९॥ फिर

भी व्यर्थ वार्तालाप व्यर्थ भोजन या निष्फल यज्ञ उनका पतन करने वाले होते हैं, इसीलिये उन्हें संयम रखना आवश्यक होता है ॥२०॥ सभी कार्यों की विपरीतता से उन्हे दोष की प्राप्ति होती है, इस भय से वे भोजन तथा पानादि भी अपनी इच्छानुसार नही कर सकते ॥२१॥ वे सभी कार्यों मे परतन्त्रता पूर्वक निष्ठावान् रहकर अत्यन्त क्लेश से पुण्यलोकों को प्राप्त होते हैं ॥२२॥

द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान् ।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्तत ॥२३
भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वै यत ।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरित ॥२४
स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लब्धं धन सदा ।
प्रतिपादनीय पात्रेषु यष्टव्य च यथाविधि ॥२५
तस्यार्जने महाक्लेश पालने च द्विजोत्तमा ।
तथासद्विनियोगेन विज्ञात गहन नृणाम् ॥२६
एवमन्यैस्तथा क्लेशै पुरुषा द्विजसत्तमा ।
निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥२७
योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तु कर्मणा मनसा गिरा ।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्य यतो द्विजा ॥२८
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।
तृतीय व्याहृत तेन मया साध्विति योषित ॥२९
एतद्व कथित विप्रा यन्निमित्तमिहागता ।
तत्पृच्छत यथाकाम सर्वं वक्ष्यामि व स्फुटम् ॥३०
ऋषयस्ते तत प्रोचुर्यत्प्रष्टव्य महामुने ।
अस्मिन्नेव च तत् प्रश्ने यथावत्कथित त्वया ॥३१

केवल पाक–यज्ञ का अधिकारी शूद्र द्विजो की सेवा से ही मोक्ष प्राप्त करने मे समर्थ है, इसलिये वह अधिक धन्य है ॥२३॥ हे मुनिवरो ! शूद्र के लिये भक्ष्याभक्ष्य का भी कोई बन्धन नही होने से मैं उन्हें श्रेष्ठ कहता हूँ ॥२४॥

मनुष्यों को धर्म से प्राप्त धन से सुपात्र को दान और विधिवत् यज्ञ करना उचित है ।।२५।। इस धन के उपार्जन में और रक्षण में अत्यन्त कष्ट होता है और फिर उसे उचित मार्ग से व्यय न करने पर तो बहुत ही दुःख भोगना होता है ।।२६।। इस प्रकार के कष्ट साध्य उपायों के द्वारा ही मनुष्यों को प्राजापत्य आदि लोकों की प्राप्ति होती है ।।२७।। परन्तु, स्त्रियों को तो केवल पति-सेवा करने से ही पति के समान लोकों की प्राप्ति हो जाती है, इसलिये मैंने स्त्रियों को साधु कहा है ।।२८-२९।। हे विप्रो ! यह तो मैंने आपको बता ही दिया, अब आप अपने आने का प्रयोजन कहिये, जिसे मैं स्पष्टता से समझा सकूँ ।।३०।। इस पर ऋषि बोले कि हमारे प्रश्न का उत्तर इसी में मिल गया है ।।३१।।

ततः प्रहस्य तानाह कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनास्तापसास्तानुपागतान् ।।३२
यथैषा भवता प्रश्नो ज्ञातो दिव्येन चक्षुषा ।
ततो हि वः प्रसङ्गेन साधु साध्विति भाषितम् ।।३३
स्वल्पेन हि प्रयत्नेन धर्मस्सिद्धयति वै कलौ ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ।।३४
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्द्विजसत्तमाः ।
तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि ।।३५
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतरं मतम् ।
धर्मसम्पादने क्लेशो द्विजतीनां कृतादिषु ।।३६
भवद्भिर्यदभिप्रेतं तदेतत्कथितं मया ।
अपृष्टेनापि धर्मज्ञाः किमन्यत्क्रियतां द्विजाः ।।३७

श्री पराशरजी ने कहा—यह सुनकर श्री व्यासजी ने उन तपस्वियों से हँसते हुए कहा ।।३२।। मैंने आपके प्रश्न को दिव्य दृष्टि से जानकर ही प्रसंगवश 'साधु' कहा था ।।३३।। जिन्होंने गुण रूप जल से अपने सब दोषों को धो दिया है, उन्हें कलियुग में स्वल्प उद्यम से ही धर्म की प्राप्ति हो जाती है ।।३४।। शूद्र द्विजसेवा से और स्त्रियाँ पति-सेवा से ही धर्म की प्राप्ति कर लेती हैं ।।३५।। इसीलिये यह तीनों धन्य से भी धन्य हैं, कलियुग के अतिरिक्त अन्य युगों में भी

द्विजातियों को ही धर्म की सिद्धि के लिये घोर कष्ट सहन करने होते हैं ॥३६॥ इस प्रकार आपकी शङ्का का समाधान हो चुका अब और मुझे क्या करना चाहिये ? ॥३७॥

ततस्सम्पूज्य ते व्यास प्रशशंसु. पुन पुन. ।
यथागत द्विजा जग्मुर्व्यासोक्तिकृतनिश्चया. ॥३८
भवतोऽपि महाभाग रहस्य कथित मया ॥३९
अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान्गुण. ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्ध पर व्रजेत् ॥४०
यच्चाह भवता पृष्टो जगतामुपसहृतिम् ।
प्राकृतामन्तराला च तामप्येष वदामि ते ॥४१

श्री पराशरजी ने कहा—फिर वे ऋषिगण व्यासजी का पूजन और बारम्बार स्तवन करते हुए अपने स्थान को गये ॥३८॥ हे मैत्रेयजी ! आपको भी मैं यह रहस्य सुना चुका ॥३९॥ इस कलियुग मे केवल कृष्ण-नाम सकीर्तन से परमपद की प्राप्ति होती है ॥४०॥ अब मैं उस प्रश्न को भी कहता हूँ जो आपने ससार के उपसहार के विषय मे पूछा था ॥४१॥

तीसरा अध्याय

सर्वेषामेव भूताना त्रिविध प्रतिसञ्चर ।
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लय. ॥१
ब्राह्मो नैमित्तकस्तेषा कल्पान्ते प्रतिसञ्चरः ।
आत्यन्तिकस्तु मोक्षाख्य. प्राकृतो द्विपरार्द्धकः ॥२
परार्द्धसख्या भगवन्ममाचक्ष्व यया तु सः ।
द्विगुणीकृतया ज्ञेय. प्राकृत प्रतिसञ्चर: ॥३
स्थानात्स्थान दशगुणमेकस्माद् गण्यते द्विज ।
ततोऽष्टादशमे भागे परार्द्धमभिधीयते ॥४

परार्द्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतस्स लयो द्विज ।
तदाव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं स्वहेतौ लयमेति वै ॥५
निमेषो मानुषो योऽसौ मात्रा मात्राप्रमाणतः ।
तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठा कला स्मृता ॥६
नाडिका तु प्रमाणेन सा कला दश पञ्च च ।
उन्मानेनाम्भसस्सा तु पलान्यर्द्धं त्रयोदश ॥७
मागधेन तु मानेन जलप्रस्थस्तु स स्मृतः ।
हेममाषैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥८

तैस्तु द्वादशसाहस्रैश्चतुर्युगमुदाहृतम् ।
चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥११
स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश महामुने ।
तदन्ते चैव मैत्रेय ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥१२
तस्य स्वरूपमत्युग्रं मैत्रेय गदतो मम ।
शृणुष्व प्राकृतं भूयस्तव वक्ष्याम्यहं लयम् ॥१३

ऐसी दो नाड़िकाओं का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक अहोरात्र और तीस अहोरात्र का एक मास होता है ॥९॥ बारह मास का वर्ष होता है, यही देवताओं का एक अहोरात्र है । ऐसे तीन सौ साठ वर्षों का एक दिव्य वर्ष होता है ॥१०॥ बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी और एक हजार चतुर्युगियों का ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥११॥ हे महामुने ! यही कल्प है, इसमें चौदह मनु होते हैं । इस कल्प के अन्त में ही ब्रह्माजी का नैमित्तिक प्रलय होता है ॥१२॥ अब मैं उस नैमित्तिक प्रलय के भयङ्कर रूप को कहता [illegible] फिर प्राकृत प्रलय को कहूँगा ॥१३॥

चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ।
अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी ॥१४
ततो यान्यल्पसाराणि तानि सत्त्वान्यशेषतः ।
क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठ पार्थिवान्यनुपीडनात् ॥१५
ततः स भगवान्विष्णू रुद्ररूपधरोऽव्ययः ।
क्षयाय यतते कर्तुं मात्मस्थास्सकलाः प्रजाः ॥१६
ततस्स भगवान्विष्णुर्भानोस्सप्तसु रश्मिषु ।
स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तम ॥१७
पीत्वाम्भांसि समस्तानि प्राणिभूमिगतान्यपि ।
शोषं नयति मैत्रेय समस्तं पृथिवीतलम् ॥१८
समुद्रान्सरितः शैलनदीप्रस्रवणानि च ।
पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९

ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपवृंहिता ।
त एव रश्मयस्सप्त जायन्ते सप्त भास्करा ॥२०
अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततस्सप्त दिवाकरा ।
दहन्त्यशेष त्रैलोक्य सपातालतल द्विज ॥२१

एक हजार चतुर्युगियो के व्यतीत होने पर जब पृथिवी क्षीण प्राय होती है, तब सौ वर्ष तक वर्षा नही होती ॥१४॥ उस समय अल्प शक्ति वाले पार्थिव प्राणी अनावृष्टि से सतप्त होकर नाश को प्राप्त होते है ॥१५॥ फिर रुद्र रूपी भगवान् विष्णु जगत् के सहारार्थ सब प्रजा को अपने मे लीन करने के लिये प्रयत्नवान् होते हैं ॥१६॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! उस समय सूर्य की सप्तरश्मियो मे स्थित हुए भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जल का शोषण कर लेते हैं ॥१७॥ इस प्रकार वे जल का शोषण कर समस्त पृथिवी को सुखा देते है ॥१८॥ समुद्र, नदी, पर्वतीय स्रोत और पातालादि मे सर्वत्र जल सूख जाता है ॥१९॥ तब प्रभु–प्रताप से वे सप्त–रश्मियाँ जल–पान से पुष्ट होकर सात सूर्य हो जाते हैं ॥२०॥ उस समय वे सातो सूर्य सभी दिशाओ मे प्रकाशित होकर पाताल तक सम्पूर्ण त्रिलोकी को भस्म कर देते है ॥२१॥

दह्यमान तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्य द्विज भास्करैः ।
साद्रिनद्यर्णवाभोग निस्नेहमभिजायते ॥२२
ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिल द्विज ।
भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृति ॥२३
तत कालाग्निरुद्रोऽसौ भूत्वा सर्वहरो हरि ।
शेषाहिश्वाससम्भूत पातालानि दहत्यध ॥२४
पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलनो महान् ।
भूमिमभ्येत्य सकल वभस्ति वसुधातलम् ॥२५
भुवर्लोक ततस्सर्वं स्वर्लोक च सुदारुण ।
ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६
अम्बरीषमिवाभाति त्रैलोक्यमखिल तदा ।
ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणचराचरम् ॥२७

ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः ।
कृताधिकारा गच्छन्ति महर्लोक महामुने ॥२८
तस्मादपि महातापतप्ता लोकात्ततः परम् ।
गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः ॥२९

हे द्विज ! उन सूर्यों से नदी, पर्वत, समुद्रादि से युक्त सम्पूर्ण त्रिलोकी रस–हीन हो जाती है ॥२२॥ वृक्षो और जलादि के न रहने से यह पृथिवी कछुए की पीठ जैसी कठोर हो जाती है ॥२३॥ फिर कालाग्नि रुद्र रूप से प्रकट हुए भगवान् नीचे से पातालों को भस्मी भूत करने लगते है ॥२४॥ सब पातालों को जलाकर वह अग्नि पृथिवी पर पहुंच कर उसे भी भस्म कर डालता है ॥२५॥ फिर वह भुवर्लोक और स्वर्गलोक को भस्म करके वहीं घूमता रहता है ॥२६॥ इस प्रकार अग्नि के घेरे मे घिर कर सम्पूर्ण चराचर के नष्ट होने पर यह त्रिलोकी तपे हुए कढाव जैसी हो जाती है ॥२७॥ फिर परलोक की कामना वाले अधिकारीगण भुवर्लोक और स्वर्गलोक मे स्थित हुए उस अग्नि से संतप्त होकर महर्लोक मे जाते हैं परन्तु वहाँ भी वैसा ही ताप होने के कारण जनलोक मे चले जाते हैं ॥२८-२९॥

ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः ।
मुखानिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तम ॥३०
ततो गजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः ।
उत्तिष्ठन्ति तथा व्योम्नि घोरास्संवर्तका घनाः ॥३१
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः ।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा ।
केचिद्वैदूर्यसङ्काशा इन्द्रनीलनिभाः क्वचित् ॥३३
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभाः परे ।
इन्द्रगोपनिभाः केचित्ततश्शिखिनिभास्तथा ॥३४
मनश्शिलाभाः केचिद्वै हरितालनिभाः परे ।
चापपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ते महाघनाः ॥३५

जब सम्पूर्ण विश्व अन्धकारमय हो जाता है, तब समस्त स्थावर-जगम प्राणियो के नष्ट होने पर वे महामेघ सौ वर्ष से अधिक समय तक वृष्टि करते रहते है ॥४०॥ हे मुनिवर ! भगवान् वासुदेव की महिमा से कल्प के अन्त मे इसी प्रकार होता है ॥४१॥

चौथा अध्याय

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि महामुने ।
एकार्णव भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिल तत ॥१
मुखनि श्वासजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदाम्तत ।
नाशयन्वाति मैत्रेय वर्षाणामपर शतम् ॥२
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावन ।
अनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेषत ॥३
एकार्णवे ततस्तस्मिञ्छेषशय्यागत प्रभु ।
ब्रह्मरूपधरश्शेते भगवानादिकृद्धरि ॥४
जनलोकगतैस्सिद्धैस्सनकाद्यै रभिष्टुत ।
ब्रह्मलोकगतैश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभि ॥५
आत्ममायामयी दिव्या योगनिद्रा समास्थितः ।
आत्मान वासुदेवाख्य चिन्तयन्मधुसूदन. ॥६
एप नैमित्तको नाम मैत्रेय प्रतिसञ्चरः ।
निमित्त तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरि ॥७
यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत् ।
निमीलत्येतदखिल मायाशय्या गतेऽच्युते ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामुने ! सप्तर्षियो के स्थान का भी अतिक्रमण करने वाले जल के कारण सम्पूर्ण त्रिलोकी महासागर जैसी प्रतीत होती है ॥१॥ हे मैत्रेयजी ! फिर भगवान् विष्णु के मुख से प्रकट हुआ वायु उन मेघो को नष्ट करके सौ वर्ष तक चलता है ॥२॥ फिर जन- लोक वासी सनकादि

सिद्धों से स्तुत और ब्रह्मलोक-प्राप्त मुमुक्षुओं द्वारा ध्यान किये जाते हुए भूत भावन भगवान् श्रीहरि उस सम्पूर्ण वायु का पान करके वासुदेवात्मक अपने रूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा का अवलम्बन कर महा समुद्र स्थित शेष-शैया पर शयन करते हैं ॥३-६॥ हे मैत्रेयजी ! इसमें ब्रह्मा रूपधारी भगवान् विष्णु का शयन करना ही निमित्त होने से इसे नैमित्तिक प्रलय कहा गया है ॥७॥ भगवान् के जागते रहने पर संसार की चेष्टाएँ चलती रहती है और उनके शयन करने पर संसार भी उनमें लीन हो जाता है ॥८॥

पद्मयोनेर्दिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत् ।
एकार्णवीकृते लोके तावती रात्रिरिष्यते ॥९
ततः प्रबुद्धो राज्यन्ते पुनस्सृष्टिं करोत्यजः ।
ब्रह्मस्वरूपधृग्विष्णुर्यथा ते कथितं पुरा ॥१०
इत्येष कल्पसंहारोऽवान्तरप्रलयो द्विज ।
नैमित्तिकस्ते कथितः प्राकृतं शृण्वतः परम् ॥११
अनावृष्ट्यादिसम्पर्कात्कृते संक्षालने मुने ।
समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वखिलेषु च ॥१२
महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये ।
कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥१३
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥१४
प्रणष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका ।
आपस्तदा प्रवृद्धास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५
सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च ।
सलिलेनोर्मिमालेन लोका व्याप्ताः समन्ततः ॥१६

ब्रह्मा जी का दिन जिस प्रकार एक हजार चतुर्युगी का है, वैसे ही जगत् के एकार्णव रूप होने से उतने ही काल की उनकी रात्रि होती है ॥९॥ रात्रि का अन्त होने पर जब भगवान् जागते हैं तब ब्रह्मा रूप होकर पूर्वोक्त हुए प्रकार से सृष्टि-रचना करते हैं ॥१०॥ हे द्विज ! इस प्रकार नैमि

प्रवान्तर प्रलय के विषय में कहा गया, अब प्राकृत प्रलय का वर्णन सुनो ॥११॥ अनावृष्टि आदि से सम्पूर्ण लोकों और पातालों के नष्ट होने पर महत्तत्त्व से विशेष तक सब विकार क्षीण हो जाते हैं और पहिले पृथिवी के गुण गंध को जल अपने में लीन कर लेता है। इस प्रकार गंध-हीन होने से पृथिवी का प्रलय होता है ॥१२-१४॥ गंध-तन्मात्रा का नाश होने पर पृथिवी जलमयी हो जाती है और घोर शब्द से युक्त जल कभी स्थिर और कभी बहता हुआ रह कर सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लेता है ॥१५-१६॥

अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा पीयते तु सः ।
नश्यन्त्यापस्ततस्ताश्च रसतन्मात्रसंक्षयात् ॥१७
ततश्चापो हृतरसा ज्योतिषं प्राप्नुवन्ति वै ।
अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो वृते ॥१८
स चाग्निः सर्वतो व्याप्य चादत्ते तज्जलं तथा ।
सर्वमापूर्यतेऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनैः ॥१९
अर्चिभिस्संवृते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तदा ।
ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम् ॥२०
प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽखिलात्मनि ।
प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः ॥२१
प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान् ।
निरालोके तथा लोके वाय्ववस्थे च तेजसि ॥२२
ततस्तु मूलमासाद्य वायुस्सम्भवमात्मनः ।
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ॥२३

इसके पश्चात् जल के गुण रस को अग्नि अपने में लीन कर लेता है और रस तन्मात्रा के अभाव में जल नष्ट हो जाता है ॥१७॥ इस प्रकार अग्नि रूप हुआ जल अग्नि के साथ संयुक्त होकर शेष जल का शोषण कर लेता है और तब सम्पूर्ण विश्व ही अग्निमय हो जाता है ॥१८-१९॥ जब सम्पूर्ण विश्व सब ओर से अग्निमय होता है, तब उस अग्नि के गुण प्रकाश (रूप) को वायु अपने में लीन कर लेता है ॥२०॥ उस समय रूप-तन्मात्रा के न रहने पर अग्नि

का कोई स्वरूप ही नही रहता ॥२१॥ तब उस अग्नि के विलीन होने पर अत्यत घोर वायु चलता है ॥२२॥ तब अपने उद्गम स्थल आकाश के आश्रय मे रह कर वह वायु सभी दिशाओं मे अत्यत वेग पूर्वक चलता है ॥२३॥

वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रसते तत ।
प्रशाम्यति ततो वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४
अरूपरसमस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ।
सर्वमापूरयच्चै व सुमहत्तत्प्रकाशते ॥२५
परिमण्डल च सुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्र तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६
ततश्शब्दगुण तस्य भूतादिर्ग्रसते पुन ।
भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ सम्थितेषु वै ॥२७
अभिमानात्मको ह्येप भूतादिस्तामसस्स्मृत ।
भूतादि ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षण ॥२८

तदनन्तर वायु का गुण स्पर्श भी आकाश मे लीन हो जाता है और वायु के अभाव मे आकाश का कोई आवरण नही रहता ॥२४॥ उस समय रूप, रस, गंध और आकार से हीन हुआ आकाश ही सब को व्याप्त करता हुआ प्रकाशित होता है ॥२५॥ उस समय सब ओर से गोल, छिद्र रूप, शब्द लक्षण आकाश ही सबको आच्छादित किये रहता है ॥२६॥ फिर भूतादि उस आकाश के गुण शब्द का ग्रास कर लेता है। इसी भूतादि मे पचभूत और इन्द्रियो के भी लीन हो जाने पर यह अहकारात्मक तामस कहा जाता है। फिर बुद्धि रूप महत्तत्व इस भूतादि का ग्रास कर लेता है ॥२७-२८॥

उर्वी महाश्च जगत· प्रान्तेऽन्तर्वाह्यतस्तथा ॥२९
एव सप्त महाबुद्धे क्रमात्प्रकृतयस्स्मृत· ।
प्रत्याहारे तु तास्सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् ॥३०
येनेदमावृत सर्वमण्डलमप्सु प्रलीयते ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोक सपर्वतम् ॥३१

उदकावरणं यत्तु ज्योतिषा पीयते तु तत् ।
ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः ॥३२
आकाशं चैव भूतादिर्ग्रसते तं तथा महान् ।
महान्तमेभिस्सहितं प्रकृतिर्ग्रसते द्विज ॥३३
गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनं च महामुने ।
प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम् ॥३४
इत्येषा प्रकृतिस्सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्मान्मैत्रेय लीयते ॥३५

पृथिवी और महत्तत्त्व ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जगत् और बाह्य जगत् दोनों की सीमाएँ हैं ॥२६॥ इसी प्रकार जो सात आवरण कहे हैं, वे सभी प्रलयकाल में अपने कारण में लीन हो जाते हैं ॥३०॥ सप्त द्वीप, सप्त समुद्र, सप्त लोक और सब पर्वत श्रेणियों के सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल जल में विलीन हो जाता है ॥३१॥ फिर जल के आवरण का पान करने वाला अग्नि वायु में और वायु आकाश में लीन हो जाता है ॥३२॥ वह आकाश भूतादि में और भूतादि महत्तत्त्व में तथा महत्तत्त्व मूल प्रकृति में लीन होता है ॥३३॥ हे महामुने ! सत्वादि गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है, इसी को प्रधान कहते हैं। इसी प्रधान से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है ॥३४॥ प्रकृति के व्यक्त और अव्यक्त रूप से सर्वमयी होने के कारण व्यक्त रूप अव्यक्त में विलीन हो जाता है ॥३५॥

एकश्शुद्धोऽक्षरो नित्यस्सर्वव्यापी तथा पुमान् ।
सोऽप्यंशस्सर्वभूतस्य मैत्रेय परमात्मनः ॥३६
न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः ।
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥३७
तद्ब्रह्म परमं धाम परमात्मा स चेश्वरः ।
स विष्णुस्सर्वमेवेदं यतो नावर्तते यतिः ॥३८
प्रकृतिर्या मयाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ॥३९

परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ।
विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥४०
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
ताभ्यामुभाभ्यां पुरुषैस्सर्वमूर्त्तिस्स इज्यते ॥४१
ऋग्यजुस्सामभिर्मार्गैः प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ।
यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्पुरुषैः पुरुषोत्तमः ॥४२
ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्त्तिः स चेज्यते ।
निवृत्ते योगिभिर्मार्गे विष्णुर्मुक्तिफलप्रदः ॥४३

हे मैत्रेयजी ! इससे भिन्न एक शुद्ध, अक्षर, नित्य और सर्वव्यापी पुरुष भी परमात्मा का ही अंश है ॥३६॥ जिस ज्ञानात्मा एवं ज्ञातव्य में नाम-जाति की कल्पना नहीं है, वही सर्वेश्वर परमधाम परब्रह्म परमात्मा है । वही विश्व रूप ईश्वर है । उसे प्राप्त होकर योगी पुरुष पुन. संसार में नहीं आते ॥३७-३८॥ मेरे द्वारा कही हुई व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति तथा पुरुष भी उसी परमात्मा में लीन होते हैं ॥३९॥ उसी सर्वाधार, परमेश्वर को वेद-वेदान्तों में 'विष्णु' नाम से कहा है ॥४०॥ कर्म और सांख्य रूप दोनों प्रकार के वैदिक कर्मों से उसी परमेश्वर का यजन होता है ॥४१॥ ऋक्, यजुः और साम द्वारा कहे गये प्रवृत्ति मार्ग से भी उन्हीं यज्ञेश्वर भगवान् का पूजन होता है ॥४२॥ तथा निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करने वाले योगी भी उन्हीं भगवान् विष्णु का ज्ञान योग से यजन करते हैं ॥४३॥

ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्यत्तु किञ्चिद्वस्त्वभिधीयते ।
यच्च वाचामविषयं तत्सर्वं विष्णुरव्ययः ॥४४
व्यक्तस्स एव चाव्यक्तस्स एव पुरुषोऽव्ययः ।
परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः ॥४५
व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन्प्रकृतिस्सम्प्रलीयते ।
पुरुषश्चापि मैत्रेय व्यापिन्यव्याहतात्मनि ॥४६
द्विपरार्द्धात्मकः कालः कथितो यो मया तव ।
तदहस्तस्य मैत्रेय विष्णोरीशस्य कथ्यते ॥४७

व्यक्ते च प्रकृतौ लीने प्रकृत्यां पुरुषे तथा।
तत्र स्थिते निशा चास्य तत्प्रमाणा महामुने ॥४८

नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः।
उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते ॥४९

इत्येष तव मैत्रेय कथितः प्राकृतो लय।
आत्यन्तिकमथो ब्रह्मन्निबोध प्रतिसञ्चरम् ॥५०

तीनो प्रकार के स्वरों से जो कहा जाता है और जो वाणी से परे हैं, वह सब अव्ययात्मा विष्णु ही है ॥४४॥ वह विश्व रूप परमात्मा अव्यक्त और अविनाशी हैं ॥४५॥ उन्ही सर्वव्याप्त एवं अविकृत रूप परमात्मा से व्यक्त और अव्यक्त रूप वाली प्रकृति और पुरुष लीन हो जाते हैं ॥४६॥ हे मैत्रेयजी ! मैंने जो द्विपरार्द्ध काल तुम्हे बताया है, वह विष्णु भगवान् का एक दिन समझो ॥४७॥ जब व्यक्त जगत् प्रकृति में और प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है, तब इतने समय की विष्णु की रात्रि होती है ॥४८॥ यथार्थ में तो उस परमात्मा का न कोई दिन है, न रात्रि है, उपचार से ही इस प्रकार कहा गया है ॥४९॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार प्राकृत प्रलय का यह वर्णन किया गया है, अब आत्यन्तिक प्रलय के विषय मे सुनो ॥५०॥

पांचवां अध्याय

आध्यात्मिकादि मैत्रेय ज्ञात्वा तापत्रय बुधः।
उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिक लयम् ॥१

आध्यात्मिकोऽपि द्विविधश्शारीरो मानसस्तथा।
शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयता च सः ॥२

शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगन्दरैः।
गुल्मार्शः श्वयथुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३

तथाक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयमञ्ज्ञितं ।
भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्हसि ॥४
कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः ।
शोकासूयावमानेर्ष्यामात्सर्यादिमयस्तथा ॥५
मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठ तापो भवति नैकधा ।
इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिकः स्मृतः ॥६
मृगपक्षिमनुष्याद्यैः पिशाचोरगराक्षसैः ।
सरीसृपाद्यैश्च नृणां जायते चाधिभौतिकः ॥७
शीतवातोष्णवर्षाम्बुवैद्युतादिसमुद्भवः ।
ततो द्विजवर श्रेष्ठैः कथ्यते चाधिदैविकः ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रयजी ! आध्यात्मिक आदि तीनों तापों का ज्ञान प्राप्त करके और वैराग्य के उत्पन्न होने पर आत्यन्तिक प्रलय की प्राप्ति होती है ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के शारीरिक और मानसिक दो भेद हैं, उनमें शारीरिक के भी अनेक भेद हैं, उन्हें सुनो ॥२॥ शिरोरोग, प्रतिश्याय, ज्वर, शूल, भगन्दर, गुल्म, अर्श, शोथ, श्वास, छर्दि, नेत्र रोग, अतिसार, कुष्ठ आदि के भेद से शारीरिक ताप अनेक प्रकार का है। अब मानसिक ताप सुनो ॥३-४॥ काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया, अपमान, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि के भेद से मानसिक ताप भी बहुत प्रकार का है। ऐसे ही अनेक भेद वाले ताप को आध्यात्मिक कहा है ॥५-६॥ मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, राक्षस, सरीसृप आदि से प्राप्त होने वाले दुःख को आधिभौतिक कहते हैं ॥७॥ शीत, वात, उष्ण, वर्षा, जल, विद्युत् आदि से मिलने वाला दुःख आधिदैविक है ॥८॥

गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकजं तथा ।
दुःखं सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तम ॥९
सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृते ।
उल्बसंवेष्टितो भुग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः ॥१०

अत्यम्लकटुतीक्ष्णोष्णलवणैर्मातृभोजनैः ।
अत्यन्ततापैरत्यर्थं वर्द्धमानातिवेदनः ॥११
प्रसारणाकुञ्चनादौ नाङ्गानां प्रभुरात्मनः ।
शकृन्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीडितः ॥१२
निरुच्छ्वासः सचैतन्यः स्मरञ्जन्मशतान्यथ ।
आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः ॥१३
जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः ।
प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः ॥१४
अधोमुखो वै क्रियते प्रबलैस्सूतिमारुतैः ।
क्लेशान्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः ॥१५

हे मुनिवर ! इन दुःखों के अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु तथा नरक से उत्पन्न दुःख भी सहस्रों प्रकार के हैं ॥६॥ गर्भ की झिल्ली से लिप्त सुकुमार काया जीव मल-मूत्र रूप घोर कीचड़ में पड़ा हुआ माता के खट्टे कड़ुवे, चरपरे, खारे और गर्म पदार्थों के सेवन से और पीठ तथा ग्रीवा की हड्डियों के कुण्डलाकार मुड़ी रहने से अत्यन्त पीड़ा को प्राप्त हो कर और चेतनामय होते हुए भी श्वास लेने में असमर्थ रह कर अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करता हुआ गर्भ-वास के दुःखों को भोगता है ॥१०-१३॥ जन्म के समय भी उसका मुख मल, मूत्र, रक्त, वीर्य आदि में सना रहता तथा सम्पूर्ण अस्थिबंधन प्राजापत्य वायु से सन्तप्त होते हैं ॥१४॥ सूतिकावात उसके मुख को नीचे कर देता है और जीव अत्यन्त क्लेश पूर्वक माता के गर्भ से निकलने में समर्थ होता है ॥१५॥

मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना ।
विज्ञानभ्रंशमवाप्नोति जातश्च मुनिसत्तम ॥१६
कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः ।
पूतिव्रणान्निपतितो धरण्यां कृमिको यथा ॥१७
कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः ।
स्नानपानादिकाहारमप्याप्नोति परेच्छया ॥१८

अशुचिप्रस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा ।
भक्ष्यमाणोऽपि नैवैषां समर्थो विनिवारणे ॥१९
जन्मदुःखान्यनेकानि जन्मनोऽनन्तराणि च ।
बालभावे यदाप्नोति ह्याधिभौतादिकानि च ॥२०
अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्तःकरणो नरः ।
न जानाति कुतः कोऽहं क्वाहं गन्ता किमात्मकः ॥२१
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् ।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते ॥२२
को धर्मः कश्च वाधर्मः कस्मिन्वर्तेऽथ वा कथम् ।
किंकर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत् ।
अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः ॥२४

हे मुनिश्रेष्ठ ! उत्पन्न होने पर बाहरी वायु के स्पर्श से अत्यन्त मूर्च्छा को प्राप्त होता है ॥१६॥ उस समय जीव दुर्गंधित व्रण से गिरे या आरे से चीरे हुए कीड़े के समान ही गर्भाशय से पृथिवी पर गिरता है ॥१७॥ वह स्वयं कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहता तथा स्नान और दुग्धाहार के लिये भी पराधीन रहता है ॥१८॥ अपवित्र बिछौने पर पड़े रहने पर मच्छर आदि डसते काटते हैं, उन्हें भी वह नहीं हटा सकता ॥१९॥ इस प्रकार उत्पत्ति के समय और बाद में जीव आधिभौतिक दुःखों को भोगता है ॥२०॥ अज्ञान के अन्धेरे में पड़ा हुआ जीव यह भी भूल जाता है कि मैं कहाँ से आया ? कहाँ जाऊँगा ? मैं कौन हूँ ?, मेरा रूप क्या है ? ॥२१॥ मैं कौन से बन्धन से किस कारण बँधा हूँ ? मैं क्या करूँ, क्या न करूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? ॥२२॥ धर्म क्या है, अधर्म क्या है ? किस अवस्था में कैसे रहूँ ? कर्तव्य या अकर्तव्य क्या है ? तथा गुण या दोष क्या है ? ॥२३॥ इस प्रकार विवेक रहित पशु के समान यह जीव अज्ञान से उत्पन्न दुःखों को भोगते हैं ॥२४॥

अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः ।
अज्ञानिनां प्रवर्तन्ते कर्मलोपास्ततो द्विज ॥२५

नरकं कर्मणां लोपात्फलमाहुर्मनीषिणः ।
तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम् ॥२६
जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान् ।
विगलच्छीर्णदशनो वलिस्नायुशिरावृतः ॥२७
दूरप्रणष्टनयनो व्योमान्तर्गततारकः ।
नासाविवरनिर्यातलोमपुञ्जश्चलद्वपुः ॥२८
प्रकटीभूतसर्वास्थिर्नतपृष्ठास्थिसंहतिः ।
उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥२९

हे द्विज ! अज्ञान के तामसिक होने से अज्ञानी पुरुषों की प्रवृत्ति तामसिक कर्मों में होती है इसके कारण वैदिक कर्म लुप्त हो जाते हैं ॥२५॥ कर्म लोप का फल मनीषियों ने नरक कहा है, इस लिये अज्ञानियों को इहलोक-परलोक दोनों में ही दुःखों को भोगना होता है ॥२६॥ जब बुढ़ापा आता है तब अङ्ग शिथिल होते दाँत उखड़ जाते और देह पर झुर्रियाँ तथा नस-नाड़ियाँ उभड़ आती हैं ॥२७॥ नेत्र दूर तक नहीं देख पाते और उनमें गढ्ढे पड़ जाते हैं, नासिका-छिद्रों से रोम बाहर निकलते और देह काँपता रहता है ॥२८॥ रीढ़ की हड्डी झुक जाती और सभी अस्थियाँ दिखाई देने लगती हैं जठराग्नि मन्द हो कर पाचन शक्ति और पुरुषार्थ में न्यूनता आ जाती है ॥२९॥

कृच्छ्राच्चङ्क्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः ।
मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रस्रवल्लालाविलाननः ॥३०
अनायत्तैस्समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः ।
तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्ताखिलवस्तुनाम् ॥३१
सकृदुच्चारिते वाक्ये समुद्भूतमहाश्रमः ।
श्वासकासमुद्भूतमहायासप्रजागरः ॥३२
अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेश्यते जरी ।
भृत्यात्मपुत्रदाराणामवमानास्पदीकृतः ॥३३
प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसस्पृहः ।
हास्यः परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ॥३४

अनुभूतिमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम् ।
सूक्ष्मरन्यौवने दीर्घं नि श्वसत्यभितापित ॥३५

एवमादीनि दु खानि जरायामनुभूय वै ।
मरणे यानि दु खानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६

चलने-फिरने, उठने-बैठने आदि में भी कठिनाई होती है, कान और नेत्र अशक्त हो जाते है, और लार निकलने से मुख भी मलीन हो जाता है ॥३०॥ इन्द्रियाँ अपने अधीन नही रहती और मरणासन्न अवस्था की प्राप्ति होती है तथा अपने देखे-सुने पदार्थों की भी याद नही रहती ॥३१॥ एक वाक्य कहने मे भी कष्ट होता तथा श्वास-काम के प्रकोप से जागता रहता है ॥३२॥ दूसरे के द्वारा उठाया-बैठाया जाता है, स्वय कुछ कर नही सकता, इसीलिये अपने भृत्य, पुत्र, स्त्री आदि से भी तिरस्कृत होता रहता है ॥३३॥ उसका पवित्राचरण नष्ट होता और भोग भोजन की इच्छा बढ जाती है, उसके बधुजन उससे उदासीनता का व्यवहार करते और परिजन हँसी उडाते हैं ॥३४॥ उसे अपनी यौवनावस्था की चेष्टाएँ किसी अन्य जन्म मे की हुई सी याद आती हैं और वह दु ख के कारण दीर्घ श्वास लेता रहता है ॥३५॥ इस प्रकार बुढ़ापे के कष्ट भोगते हुए मरणकाल मे उसकी जो अवस्था होती है उसे भी सुनो ॥३६

श्लथद्ग्रीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ व्याप्तो वेपथुना भृशम् ।
मुहुर्ग्लानिपरवशो मुहुर्ज्ञानलवान्वित ॥३७

हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु ।
एते कथ भविष्यन्तीत्यतीव ममताकुल ॥३८

मर्मभिद्भिर्महारोगै क्रकचैरिव दारुणै ।
शरैरिवान्तकस्योग्रै दिछद्यमानासुबन्धन ॥३९

परिवर्तितताराक्षो हस्तपाद मुहु क्षिपन् ।
सशुष्यमाणताल्वोष्ठपुटो घुरघुरायते ॥४०

निरुद्धकण्ठो दोषौघैरुदानश्वासपीडित ।
तापेन महता व्याप्तस्तृषा चार्तस्तथा क्षुधा ॥४१

धनोपार्जन तथा धन की रक्षा और उसके व्यय मे अथवा इष्टमित्रो की विपत्ति के कारण भी जीव को अनेक दु ख भोगने होते हैं ॥५४॥

यद्यत्प्रीतिकर पुसा वस्तु मैत्रेय जायते ।
तदेव दु खवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति ॥५५
कलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकैं ।
क्रियते न तथा भूरि सुख पुसा यथाऽसुखम् ॥५६
इति ससारदु खार्कतापतापितचेतसाम् ।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुख नृणाम् ॥५७
तदस्य त्रिविधस्यापि दु खजातस्य वै मम ।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यत ॥५८
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा ।
भेषज भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ॥५९
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्न कर्तव्य पण्डितैर्नरैं ।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञान च कर्म चोक्तं महामुने ॥६०
आगमोत्थ विवेकाच्च द्विधा ज्ञान तदुच्यते ।
शब्दब्रह्मागममय पर ब्रह्म विवेकजम् ॥६१
अन्ध तम इवाज्ञान दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम् ।
यथा सूर्यस्तथा ज्ञान यद्विप्रर्षे विवेकजम् ॥६२

हे मैत्रेयजी ! मनुष्यो की प्रिय वस्तुएँ उनके लिये दु ख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती हैं ॥५५॥ स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, घर, खेत तथा धान्यादि से जितने दु ख की प्राप्ति होती है, उतना सुख नही मिलता ॥५६॥ इस प्रकार ससार के दु ख रूपी सूर्य के ताप से सतप्त हुए पुरुषो को मोक्षरूपी वृक्ष की छाया के अतिरिक्त अन्य किस स्थान पर सुख की प्राप्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिये गर्भ, जन्म और बुढापा आदि रोग–समूहो की एकमात्र औषधि भगवान् की प्राप्ति ही है, जिसका लक्षण आनन्द रूप सुख का प्राप्त होना ही है ॥५८-५९॥ इसलिये भगवत्प्राप्ति का प्रयत्न ही ज्ञानियों का कर्त्तव्य है, और उसके ज्ञान और कर्म ये दो ही मार्ग हैं ॥६१॥ ज्ञान भी दो प्रकार का है—शास्त्र जन्य और विवेकजन्य ।

शब्द ब्रह्म विषयक ज्ञान शास्त्र से उत्पन्न होता है और परब्रह्म विषयक ज्ञान की उत्पत्ति विवेक से होती है ॥६१॥ हे ब्रह्मर्षे ! अज्ञान घोर अन्धकार जैसा है, उसे दूर करने के लिये इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान दीपक के समान और विवेक से उत्पन्न ज्ञान सूर्य के समान है ॥६२॥

मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तम ।
तदेतच्छ्रू यतामत्र सम्बन्धे गदतो मम ॥६३
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥६४
द्वे वै विद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ।
परया त्वक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमयापरा ॥६५
यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम् ॥६६
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणम् ।
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥६७
तद्ब्रह्म तत्परं धाम तद्धयेयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोःपरमं पदम् ॥६८
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥६९

हे मुनिवर ! वेदार्थ के स्मरण पूर्वक मनुजी ने जो कुछ कहा है, वही मैं कहता हूं,सुनो ॥६३॥ब्रह्म के दो भेद हैं-और परब्रह्म जो शब्द ब्रह्म में निपुण होता है उसे परब्रह्म की प्राप्ति होजाती है ॥६४॥ अथर्व श्रुति है कि परा और अपरा भेद से विद्या दो प्रकार की है। परा से अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है तथा अपरा ऋगादि वेदात्मिका है ॥६५॥ अव्यक्त,अजर,अचिन्त्य,अज,अव्यय,अनिर्देश्य, अरूप, हाथ-पांव से शून्य, विभु, सर्वगत, नित्य, भूतयोनि, कारण-रहित, जिससे व्याप्य, व्यापक प्रकट हुआ और जिसे ज्ञानीजन ही देख पाते हैं, वही परमधाम ब्रह्म है। वही मुमुक्षुओं द्वारा चिन्तनीय भगवान् विष्णु का अत्यन्त सूक्ष्म परम-

पद है। परमात्मा का वही रूप 'भगवत्' कहा जाता है तथा 'भगवत्' शब्द उसी आदि एवं अक्षय रूप के लिये प्रयुक्त होता है ॥६९॥

एवं निगदितार्थस्य तत्तत्त्वं तस्य तत्त्वतः।
ज्ञायते येन तज्ज्ञानं परमन्यत्त्रयीमयम् ॥७०
अशब्दगोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज।
पूजायां भगवच्छब्दः क्रियते ह्युपचारतः ॥७१
शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते।
मैत्रेय भगवच्छब्दस्सर्वकारणकारणे ॥७२
सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥७३
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥७४
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥७५
एवमेष महाञ्छब्दो मैत्रेय भगवानिति।
परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः ॥७६

जिसका ऐसा रूप कहा है उस ब्रह्म तत्व का जिससे यथार्थ ज्ञान होता है, वही परमज्ञान है और त्रयीमय ज्ञान इससे भिन्न है ॥७०॥ हे द्विज ! ब्रह्म के शब्द का विषय न होने पर भी 'भगवत्' शब्द उपासना के लिये उपचार से ही कहा जाता है ॥७१॥ हे मैत्रेयजी ! सब कारणो के कारण, महाविभूति रूप परब्रह्म को ही 'भगवत्' कहा है ॥७२॥ इस शब्द मे भकार के दो अर्थ लिये गये हैं—भरण करने वाला तथा सबका आधार और गकार के अर्थ कर्म-फल की प्राप्ति कराने वाला, लय करने और रचने वाला है ॥७३॥ ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः को भग कहते हैं ॥७४॥ उस सर्व-भूतात्मा मे सब भूतो का निवास है तथा वह स्वयं भी सब भूतो मे स्थित है, इसलिये वह अव्यय ही वकार है ॥७५॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार यह भगवान् शब्द परब्रह्म रूप वासुदेव का ही वाचक है ॥७६

तत्र पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वित ।
उत्पत्ति प्रलय चैव भूतानामागति गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्या च स वाच्यो भगवानिति ।।७८
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजास्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गु णादिभि ।।७९
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्तत स्मृत ।।८०
खाण्डिक्यजनकायाह पृष्ट केशिध्वज पुरा ।
नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्वत ।।८१
भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसत्यत्र च तानि यत् ।
धाता विधाता जगता वासुदेवस्तत. प्रभु ।।८२
स सर्वभूतप्रकृति विकारान् गुणादिदोषाश्च मुने व्यतीत ।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृत यद्भुवनान्तराले ।।८३
समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्ग ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेह स्ससाधिताशेपजगद्धितो य ।।८४
तेजोवलैश्वर्यमहावबोध सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशि ।
पर पराणा सकला न यत्र क्लेशादयस्सन्ति परावरेशे ।।८५
स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूप ।
सर्वेश्वरस्सर्वदृक् सर्ववित्त्व समस्तशक्ति परमेश्वराख्य ।।८६
सज्ञायते येन तदस्तदोष शुद्ध पर निर्मलमेकरूपम् ।
सदृश्यते वाप्यवगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ।।८७

पूजनीय सूचक इस भगवान् शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से परमात्मा के लिये ही है, अन्यो के प्रति गौण रूप से होता है ।।७७।। क्योकि भगवान् वही कहा जा सकता है जो सब जीवो के उत्पत्ति, विनाश, आवागमन और विद्या-अविद्या का ज्ञाता हो ।।७८।। त्यागने योग्य गुणादि को छोडकर ज्ञान, शक्ति बल,ऐश्वर्य,वीर्य तथा तेज आदि गुण ही 'भगवत् कहे जा सकते हैं ।।७९।। उन्ही परमात्मा मे सब भूतो का निवास हैं तथा वे भी आत्मा रूप से सब म रहते हैं

इसलिये उन्हें 'वासुदेव' कहा जाता है ॥८०॥ प्राचीनकाल मे खाण्डिक्य जनक के प्रश्न पर केशिध्वज ने 'वासुदेव' नाम की इस प्रकार व्याख्या की थी ॥८१॥ सब भूतो मे व्याप्त और सब भूतो के निवास स्थान तथा ससार के रचयिता और रक्षक होने से वे 'वासुदेव' कहे जाते हैं ॥८२॥ वे सर्वभूतो की प्रकृति-प्रकृति के विकार, गुण और उनके दोषो से विलक्षण तथा सब आवरणो से अतीत सर्वात्मा हैं। पृथिवी—आकाश के मध्य मे जो कुछ स्थित है, वह सब उन्हीं के द्वारा व्याप्त है ॥८३॥ वे सभी कल्याण-गुणात्मक है, उन्होने अपनी माया से ही सबको व्याप्त किया हुआ है और वे अपने इच्छित स्वरूपो के धारण पूर्वक विश्व का कल्याण करते हैं ॥८४॥ तेज, बल, ऐश्वर्य, बोध, वीर्य और शक्ति आदि गुणों के समूह तथा प्रकृति आदि से भिन्न और सम्पूर्ण क्लेशो से नितान्त परे हैं ॥८५॥ वे ही समष्टि और व्यष्टि रूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्त हैं, वे ही सर्वसाक्षी, सर्वज्ञाता और सबके स्वामी हैं तथा वे ही सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर सज्ञक हैं ॥८६॥ वे दोष-रहित, मल-रहित, विशुद्ध और एक रूप परमात्मा जिसके द्वारा देखे या जाने जाते हैं, वही ज्ञान है और इसके विपरीत को अज्ञान समझो ॥८७॥

छठवां अध्याय

स्वाध्यायसयमाभ्या स दृश्यते पुरुषोत्तम ।
तत्प्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतदिति पठ्यते ॥१
स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमावसेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥२
तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षुर्योगस्तथा परम् ।
न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतस्स शक्यते ॥३
भगवस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद ।
ज्ञाते यत्राखिलाधारं पश्येय परमेश्वरम् ॥४

यथा केशिध्वजः प्राह खाण्डिक्याय महात्मने।
जनकाय पुरा योगं तमहं कथयामि ते ॥५
खाण्डिक्यः कोऽभवद् ब्रह्मन्को वा केशिध्वजः कृती।
कथं तयोश्च संवादो योगसम्बन्धकारणभूत्॥६

श्री पराशरजी ने कहा—स्वाध्याय और संयम के द्वारा ही उन पुरुषोत्तम के दर्शन होते हैं तथा ब्रह्म की प्राप्ति के कारण होने से इन्हें भी ब्रह्म ही कहा है ॥१॥ स्वाध्याय से योग का आश्रय प्राप्त करे और योग से स्वाध्याय का आश्रय ले। इस प्रकार स्वाध्याय और योग रूप सम्पत्ति ही परमात्मा को प्रकाशित करने वाली है ॥२॥ उस ब्रह्मरूप ब्रह्म को चर्म-नेत्रों से नहीं, स्वाध्याय और योग रूपी नेत्रों से ही देखा जा सकता है ॥३॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् ! जिसे जानने पर परमेश्वर को देखा जा सकता है, उस योग को जानने का मैं इच्छुक हूँ, उसे आप मेरे प्रति कहिये ॥४॥ श्री पराशरजी ने कहा—पूर्वकाल में खाण्डिक्य जनक से केशिध्वज ने इस योग का जो वर्णन किया था, वह तुम से कहता हूँ ॥५॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—यह खाण्डिक्य और केशिध्वज कौन थे और उनका योग विषयक सम्वाद किसलिये हुआ था ? ॥६॥

धर्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रोऽमितध्वजः।
कृतध्वजश्च नाम्नासीत्सदाध्यात्मरतिर्नृप. ॥७
कृतध्वजस्य पुत्रोऽभूत् ख्यातः केशिध्वजो नृप।
पुत्रोऽमितध्वजस्यापि खाण्डिक्यजनकोऽभवत् ॥८
कर्ममार्गेण खाण्डिक्यः पृथिव्यामभवत्कृती।
केशिध्वजोऽप्यतीवासीदात्मविद्याविशारदः ॥९
तावुभावपि चैवास्तां विजिगीषू परस्परम्।
केशिध्वजेन खाण्डिक्यस्स्वराज्यादवरोपितः ॥१०
पुरोधसा मन्त्रिभिश्च समवेतोऽल्पसाधनः।
राज्यान्निराकृतस्सोऽथ दुर्गारण्यचरोऽभवत् ॥११

इयाज सोऽपि सुबहून्यज्ञाञ्ज्ञानव्यपाश्रय ।
ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्त्तु मृत्यमविद्यया ।।१२

श्री पराशरजी ने कहा—पूर्वकाल म धर्मध्वज जनक नामक एक राजा होगये हैं। उनके दो पुत्र अमितध्वज और कृतध्वज नाम से हुए। इनमे से कृत ध्वज अध्यात्म मे ही लगा रहता था ।।७।। कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज और अमितध्वज का पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ ।।८।। खाण्डिक्य कर्म-मार्ग मे और केशिध्वज अध्यात्म शास्त्र मे निपुण था ।६।। वे दोनो परस्पर म एक दूसरे को हराने का यत्न करते रहते थे और अन्त मे केशिध्वज ने खाण्डिक्य को राज्य से हटा दिया ।।१०।। राज्य से भ्रष्ट हुआ खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियो तथा अल्प सामान सहित वन म चला गया ।।११।। ज्ञानी होते हुए भी केशिध्वज ने कर्म द्वारा मृत्यु को जीतने के लिये अनेको यज्ञ किये ।।१२।।

एकदा वर्तमानस्य यागे योगविदा वर ।
धर्मधेनु जघानोग्रश्शार्दूलो विजने वने ।।१३
ततो राजा हता श्रुत्वा धेनु व्याघ्रेण चर्त्विज ।
प्रायश्चित्त स पप्रच्छ किमत्रेति विधीयताम् ।।१४
तेऽप्यूचुर्न वय विद्म कशेरु पृच्छ्यतामिति ।
कशेरुरपि तेनोक्तस्तथैव प्राह भार्गवम् ।।१५
शुनक पृच्छ राजेन्द्र नाह वेद्मि स वेत्स्यति ।
स गत्वा तमपृच्छच्च सोऽप्याह श्रृणु यन्मुने ।।१६
न कशेरुर्न चैवाह न चान्य साम्प्रत भुवि ।
वेत्त्येक एव त्वच्छत्रु खाण्डिक्यो यो जितस्त्वया ।।१७
स चाह त व्रजाम्येप प्रष्टुमात्मरिपु मुने ।
प्राप्त एव महायज्ञो यदि मा स हनिष्यति ।।१८
प्रायश्चित्तमशेषेण चेत्पृष्टो वदिष्यति ।
ततश्चाविकलो यागो मुनिश्रेष्ठ भविष्यति ।।१६

एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठान मे लगे थे तब उनकी धर्म-गौ को जनहीन वन मे एक भयानक व्याघ्र ने मार डाला ।।१३।। जब राजा न

गौ का इस प्रकार मारे जाना सुना तो उसने ऋत्विजों से उसका प्रायश्चित्त पूछा ॥१४॥ ऋत्विजों ने कहा—कि इस विषय में मैं नहीं जानता, कशेरु से पूछिये। कशेरु से पूछने पर उन्होंने भी यही कहा कि मैं तो नहीं जानता, परन्तु शुनक अवश्य जानते होंगे। तब राजा ने शुनक से पूछा और उन्होंने उसका उत्तर इस प्रकार दिया—इस बात को कशेरु, मैं अथवा अन्य कोई भी नहीं जानता, केवल आपके द्वारा परास्त खाण्डिक्य ही जानता है ॥१५-१६-१७॥ यह सुनकर राजा ने कहा–हे मुने! तो मैं अपने शत्रु खाण्डिक्य के पास जाकर ही पूछता हूँ। यदि उसने मेरा वध कर दिया तो भी महायज्ञ का फल तो प्राप्त हो ही जायगा और यदि प्रायश्चित बता दिया, तो यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति निश्चित है ॥१८-१९॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरो नृप ।
वन जगाम यत्रास्ते स खाण्डिक्यो महामतिः ॥२०
तमापतन्तमालोक्य खाण्डिक्यो रिपुमात्मन ।
प्रोवाच क्रोधताम्राक्षस्समारोपितकार्मुक ॥२१
कृष्णाजिन त्व कवचमाबध्यास्मान्हनिष्यसि ।
कृष्णाजिनधरे वेत्सि न मयि प्रहरिष्यति ॥२२
मृगाणा वद पृष्ठेषु मूढ कृष्णाजिन न किम् ।
येषा मया त्वया चोग्रा प्रहिताश्शितसायका ॥२३
स त्वामह हनिष्यामि न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।
आततायसि दुर्बुद्धे मम राज्यहरो रिपु ॥२४
खाण्डिक्य सशय प्रष्टु भवन्तमहमागत ।
न त्वा हन्तु विचार्यैतत्कोप बाण विमुञ्च वा ॥२५

तूने उन कृष्ण मृगो पर कभी बाण नही बरसाये हैं ? ॥२३॥ इसलिये, मैं अवश्य ही तेरा वध कर दूँगा, तू मेरे राज्य का अपहरण करने वाला शत्रु है ॥२४॥ केशिध्वज ने कहा—हे खाण्डिक्य ! मैं आपका वध करने के लिये नहीं, केवल एक सन्देह का समाधान करने के लिये आया हू । यह जानकर आप क्रोध का त्याग करें अथवा मुझ पर बाण छोड दे ॥२५॥

ततस्त मन्त्रिभिस्सार्द्धमेकान्ते सपुरोहितः ।
मन्त्रयामास खाण्डिक्यस्सर्वैरेव महामतिः ॥२६
तमूचुर्मन्त्रिणो वध्यो रिपुरेप वशं गतः ।
हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा तव वश्या भविष्यति ॥२७
खाण्डिक्यश्चाह तान्सर्वानेवमेतन्न सशय. ।
हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा मम वश्या भविष्यति ॥२८
परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम ।
न हन्मि चेल्लोकजयो मम तस्य वसुन्धरा ॥२६
नाह मन्ये लोकजयादधिका स्याद्वसुन्धरा ।
परलोकजयोऽनन्तस्स्वल्पकालो महीजयः ॥३०
तस्मान्नून हनिष्यामि यत्पृच्छति वदामि तत् ॥३१
ततस्तमभ्युपेत्याह खाण्डिक्यजनको रिपुम् ।
प्रष्टव्य यत्त्वया सर्वं तत्पृच्छस्व वदाम्यहम् ॥३२

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा सुन कर खाण्डिक्य ने अपने पुरोहितो और मन्त्रियो से परामर्श किया ॥२६॥ तब मन्त्रियो ने कहा—इस समय शत्रु आपकी पकड मे है, इसे मार डालना ही उचित है ।ऐसा करने से इस सम्पूर्ण पृथिवी पर आपका अधिकार हो जायगा ॥२७॥ खाण्डिक्य बोले—आप सब का वचन यथार्थ है, परन्तु इसे मार देने पर यह पारलौकिक विजय प्राप्त कर लेगा और मुझे पृथिवी ही मिलेगी । यदि इसका वध नही करूँगा तो इसे पृथिवी और मुझे पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होगी ॥२८-२६॥ परलोक से बढ कर पृथिवी नही है, क्यो कि पारलौकिक विजय चिरकालिक और पृथिवी अल्प कालिक होती है । इसीलिये मैं इसका वध न करके इसके प्रश्न का समाधान करूँगा

बाढमित्येव तेनोक्तः खाण्डिक्यस्तमथाब्रवीत् ।
भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षणः ॥४६
यदि चेद्दीयते मह्यं भवता गुरुनिष्क्रयः ।
तत्क्लेशप्रशमायाऽलं यत्कर्म तदुदीरय ॥५०

तब खाण्डिक्य ने हँसते हुए कहा—राज्य तो कुछ दिन टिकने वाला है, मेरे जैसे व्यक्ति को क्या माँगना चाहिए ? ॥४६॥ यह सत्य है कि स्वार्थ सिद्धि के लिये आपका परामर्श उचित हो सकता है परन्तु परमार्थ का आपको ज्ञान नहीं ॥४७॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर खाण्डिक्य ने केशिध्वज के पास आकर कहा—क्या तुम मुझे अवश्य गुरु दक्षिणा देना चाहते हो ? केशिध्वज बोले—अवश्य । तब खाण्डिक्य ने कहा—आप आध्यात्मरूपिणी परमार्थ विद्या में पारङ्गत है, इसलिये गुरुदक्षिणा स्वरूप मुझे यह बताइये, जिससे सभी क्लेशों का शमन हो सके ॥५०॥

सातवाँ अध्याय

न प्रार्थितं त्वया कस्मादस्मद्राज्यमकण्टकम् ।
राज्यलाभाद्विना नान्यत्क्षत्रियाणामतिप्रियम् ॥१
केशिध्वज निबोध त्वं मया न प्रार्थितं यतः ।
राज्यमेतदशेषं ते तत्र गृध्नन्त्यपण्डिताः ॥२
क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।
वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम् ॥३
तत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपहृते त्वया ।
बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमोज्झिता ॥४
जन्मोपभोगलिप्सार्थं मियं राज्यस्पृहा मम ।
अन्येषां दोषजा सैव धर्मं वै नानुरुध्यते ॥५
न याच्ञा क्षत्रबन्धूनां धर्मायैतत्सतां मतम् ।
अतो न याचितं राज्यमविद्यान्तर्गतं तव ॥६

राज्ये गृध्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः ।
अहंमानमहापानमदमत्ता न मादृशाः ॥७

केशिध्वज ने कहा—क्षत्रिय तो राज्य से अधिक प्रिय और किसी भी वस्तु को नही मानते, फिर आपके निष्कटक राज्य न मागने का क्या कारण है ? ॥१॥ खाण्डिक्य ने कहा—हे केशिध्वज ! राज्यादि की कामना तो मूर्ख किया करते हैं, इसी लिये मैंने राज्य नही मागा है ॥२॥ क्षत्रियों का धर्म प्रजा-पालन तथा अपने विरोधियो का धर्म पूर्वक दमन करना है ॥३॥ अशक्त होने के कारण तुमने मेरे राज्य का अपहरण कर लिया तो वैसा न करने मे मुझे कोई दोष नही है । यद्यपि यह अविद्या ही है, फिर भी इसका अनियमित रूप से त्याग करना भी बन्धन का कारण हो जाता है ॥४॥ राज्य की आकाक्षा तो जन्मान्तर का सुख भोगने को निमित्त है और मन्त्री आदि मे भी उसकी उत्पत्ति रागादि के कारण होती है ॥५॥ सज्जनो का मत है कि याचना करना श्रेष्ठ मनियो का धर्म नहीं है, इसीलिये मैंने अविद्या वाले राज्य की याचना नही की है ॥६॥ अहकार रूपी मद से उन्मत्त और ममतामय चित्त वाले मूर्ख पुरुष ही राज्य की इच्छा करते है, मेरे जैसो को उसकी कोई कामना नही ॥७॥

प्रहृष्टस्साध्विति प्राह तत केशिध्वजो नृप. ।
खाण्डिक्यजनक प्रीत्या श्रूयता वचनं मम ॥८
अहं मविद्या मृत्युं च ततुं काम करोमि वै ।
राज्यं यागांश्च विविधान्भोगैः पुण्यक्षयं यथा ॥९
तदिद ते मनो दिष्ट्या विवेकैश्वर्यता गतम् ।
तच्छ्रूयतामविद्यायास्स्वरूप कुलनन्दन ॥१०
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः ।
संसारतरुसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम् ॥११
पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः ।
अहं ममैतदित्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥१२
आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीभ्यः पृथक् स्थिते ।
आत्मन्यात्ममय भाव कः करोति कलेवरे ॥१३

कलेवरोपभोग्य हि गृहक्षेत्रादिक च कः ।
अदेहे ह्यात्मनि प्राज्ञो ममेदमिति मन्यते ॥१४

श्री पराशरजी ने कहा—इस पर राजा केशिध्वज ने उन्हे साधुवाद देकर प्रेम सहित यह कहा ॥८॥ मैं अविद्या के द्वारा मृत्यु को जीतना चाह कर राज्य और यज्ञो के अनुष्ठान मे लगा हूँ, जिससे विविध प्रकार के भोगो से मेरे पुण्य क्षीण हो सकें ॥९॥ यह प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारी बुद्धि विवेक से सम्पन्न हुई है, इसलिये अब तुम अविद्या के रूप का श्रवण करो ॥१०॥ अनात्मा को आत्मा और अपना नही है, उसे अपना मानना—इस प्रकार अविद्या के दो भेद हैं ॥११॥ यह बुद्धिहीन प्राणी मोहान्धकार मे पड कर पञ्चभूतात्मक इस शरीर 'मैं' या मेरा' का भाव रखता है ॥१२॥ परन्तु आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि से आत्मा के नितान्त पृथक् होने के कारण कौन विवेकी पुरुष शरीर को आत्मा मानेगा ? ॥१३॥ और जब शरीर से आत्मा भिन्न है तो शरीर के उपभोग की घर आदि वस्तुओ को कौन ज्ञानी पुरुष अपना कह सकता है ॥१४॥

इत्थ च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पादितेषु क ।
करोति पण्डितस्स्वाम्यमनात्मनि कलेवरे ॥१५
सर्वं देहोपभोगाय कुरुते कर्म मानव ।
देहश्चान्यो यदा पु सस्तदा बन्धाय तत्परम् ॥१६
मृन्मय हि यथा गेह लिप्यते वै मृदम्भसा ।
पार्थिवोऽय तथा देहो मृदम्ब्वालेपनस्थित ॥१७
पञ्चभूतात्मकर्भोगै पञ्चभूतात्मक वपु ।
आप्यायते यदि तत पु सो भोगोऽत्र कि कृतः ॥१८
अनेकजन्मसाहस्रीं ससारपदवीं व्रजन् ।
मोहश्रम प्रयातोऽसौ वासनारेणुगुण्ठितः ॥१९
प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा ।
तदा ससारपान्थस्य याति मोहश्रमश्शमम् ॥२०

मोहश्रमे शम याते स्वस्थान्त करणः पुमान् ।
अनन्यातिशयावाध पर निर्वाणमृच्छति ॥२१

इस प्रकार देह के आत्मा न होने से उत्पन्न हुए पुत्र पौत्र आदि को भी कौन अपना मानेगा ? ॥१५॥ इस देह के उपभोगार्थ सब कर्म किये जाते हैं, परन्तु देह के अपने से अलग होने के कारण वे सभी कर्म बन्धनकारी ही होजाते है ॥१६॥ जैसे घर को मिट्टी और जल से लीपा जाता है, वैसे ही यह शरीर मिट्टी और जल के द्वारा ही स्थिर रहता है ॥१७॥ यदि पञ्चभूतात्मक इस देह का पोषण पाञ्चभौतिक पदार्थों से ही होता है तो पुरुष इससे क्या भोग कर सका ? ॥१८॥ यह प्राणी हजारो जन्म तक सांसारिक भोगो मे रहने के कारण उन्ही भोगो की वासना रूपी धूलि से पट कर मोह रूपी श्रम को पाता है ॥१९ जब वह धूलि ज्ञान रूपी उष्ण जल से धुल जाती है तभी इस विश्वपथ के पथिक का मोह-श्रम मिट पाता है ॥२०॥ तब वह स्वस्थ-चित्त हुआ पुरुष निरतिशय और अबाध परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है ॥२१॥

निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमल ।
दु खाज्ञानमया धर्मा प्रकृतेस्ते तु नात्मन ॥२२
जलस्य नाग्निससर्ग स्थालीसगात्तथापि हि ।
शब्दोद्रेकादिकान्धर्मास्तत्करोति यथा नृप ॥२३
तथात्मा प्रकृतेस्सङ्गादहम्मानादिदूषित ।
भजते प्राकृतान्धर्मानन्यस्तेभ्यो हि सोऽव्यय ॥२४
तदेतत्कथित वीजमविद्याया मया तव ।
क्लेशाना च क्षयकर योगादन्यन्न विद्यते ॥२५
त तु ब्रूहि महाभाग योग योगविदुत्तम ।
विज्ञातयोगशास्त्रार्थ स्त्वमस्या निमिसन्ततौ ॥२६
योगस्वरूप खाण्डिक्य श्रूयता गदतो मम ।
यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्म लय मुनि ॥२७

यह मल-रहित और ज्ञानमय आत्मा निर्वाण रूप है और दु खादि अज्ञानमय धर्म आत्मा के नही, प्रकृति के हैं ॥२२॥ जैसे स्थाली मे भरे हुए जल

का संयोग अग्नि से न होने पर भी स्थाली के संसर्ग से ही वह जल खौलने लगता है, वैसे ही प्रकृति के संसर्ग से अहंकार आदि से दूषित हुआ आत्मा प्रकृति के धर्मों को अपना लेता है। नहीं तो अव्यय स्वरूप आत्मा उन धर्मों से नितान्त पृथक् है ॥२३-२४॥ इस प्रकार यह अविद्या का बीज मैंने कहा है। इस अविद्या-जन्य क्लेशों का दूर करने का उपाय योग ही है ॥२५॥ खाण्डिक्य ने कहा—हे केशिध्वज ! तुम योग के जानने वालों में श्रेष्ठ तथा योगशास्त्र के मर्मज्ञ हो, इसलिये उस योग का स्वरूप भी कहो ॥२६॥ केशिध्वज ने कहा—अब तुम मुझसे उस योग को सुनो जिसमें अवस्थित मुनिजन ब्रह्म स्वरूप होकर फिर उससे पतित नहीं होते ॥२७॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥२८
विषयेभ्यस्समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः ।
चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम् ॥२९
आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्म ध्यायिनं मुनिम् ।
विकार्यमात्मनश्शक्त्या लोहमाकर्षको यथा ॥३०
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ॥३१
एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तधर्मोपलक्षणः ।
यस्य योगः स वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते ॥३२
योगयुक् प्रथमं योगी युञ्जानो ह्यभिधीयते ।
विनिष्पन्नसमाधिस्तु परं ब्रह्मोपलब्धिमान् ॥३३

मनुष्यों के बन्ध-मोक्ष का कारण मन ही है। विषयों में आसक्त होकर वह बन्धन करने वाला तथा विषयों का त्याग से मोक्ष प्राप्त कराने वाला होता है ॥२८॥ इसलिये विज्ञान-सम्पन्न मुनिजनों को अपने मन को विषयों से निवृत्त कर, मोक्ष की प्राप्ति के लिये परमात्मा का ही चिन्तन करना चाहिये ॥२९॥ जैसे चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही ब्रह्म-चिन्तन वाले मुनि को परमात्मा स्वभाव से ही अपने में मिला लेता है ॥३०॥

आत्मज्ञान के यत्न रूप यम, नियमादि की अपेक्षा वाली विशिष्ट मनोगति का ब्रह्म से संयोग होना ही 'योग' कहा गया है ॥३१॥ जो इस प्रकार के विशिष्ट धर्म वाले योग में रत रहता है, वह मुमुक्षु योगी कहलाता है ॥३२॥ प्रथम योगाभ्यास करने वाला 'योग युक्त योगी' कहा जाता है और जब वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, तब उसे 'विनिष्पन्न समाधि' कहते है ॥३३॥

यद्यन्तरायदोषेण दूष्यते चास्य मानसम् ।
जन्मान्तरैरभ्यसतो मुक्तिः पूर्वस्य जायते ॥३४
विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्ति तत्रैव जन्मनि ।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मचयोऽचिरात् ॥३५
ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यता स्वमनो नयन् ॥३६
स्वाध्यायशौचसन्तोषतपासि नियतात्मवान् ।
कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन्प्रवणं मनः ॥३७
एते यमास्सनियमाः पञ्च पञ्च च कीर्तिताः ।
विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः ॥३८
एकं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतः ।
यमाख्यैर्नियमाख्यैश्च युञ्जीत नियतो यतिः ॥३९
प्राणाख्यमनिलं वश्यमभ्यासात्कुरुते तु यत् ।
प्राणायामस्स विज्ञेयस्सबीजोऽबीज एव च ॥४०

यदि उस योगी का चित्त किसी विघ्न के कारण दूषित हो जाता है तो दूसरे जन्म में अभ्यास करने पर उसकी मुक्ति हो जाती है ॥३४॥ विनिष्पन्न समाधि योगी के कर्म योगाग्नि से भस्म हो जाते है और इसीलिये उस स्वल्प काल मे ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ॥३५॥ योगी को ब्रह्म-चिन्तन के योग्य होने के लिये ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह आदि का पालन करना उचित है ॥३६॥ स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तप के आचरण पूर्वक अपने मन को परब्रह्म में लगादे ॥३७॥ यम और नियम दोनों पाँच-पाँच हैं, किसी कामनावश इनका पालन करने से पृथक्-पृथक् फल की प्राप्ति होती है,

परन्तु निष्काम पालन से मोक्ष मिल जाता है ॥३८॥ इसलिये यति को भद्रासन आदि मे से किसी एक आसन के अवलम्बन मे यम, नियम आदि के सेवन पूर्वक योगाभ्यास करना चाहिये ॥३९॥ अभ्यास द्वारा प्राण वायु का वश मे किया जाना प्राणायाम है । उसके सबीज और निर्बीज—यह दो प्रकार हैं ॥४०॥

परस्परेणाभिभवं प्राणापानौ यथानिलौ ।
कुरुतस्सद्विधानेन तृतीयस्सयमात्तयोः ॥४१
तस्य चालम्वनवतः स्थूलरूप द्विजोत्तम ।
आलम्बनमनन्तस्य योगिनोऽभ्यसतः स्मृतम् ॥४२
शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् ।
कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥४३
वश्यता परमा तेन जायतेऽतिचलात्मनाम् ।
इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी योगसाधक ॥४४
प्राणायामेन पवने प्रत्याहारेण चेन्द्रिये ।
वशीकृते तत कुर्यात्स्थित चेतश्शुभाश्रये ॥४५

प्राण और अपान के द्वारा निरोध करने से दो प्राणायाम होते है तथा इन दोनो को एक ही समय रोकने से तीसरा कुम्भक प्राणायाम होता है ॥४१॥ सबीज प्राणायाम के अभ्यासी का आलम्बन अनन्त भगवान् का स्थूल रूप होता है ॥४२॥ फिर वह प्रत्याहार के अभ्यास पूर्वक अपनी विषयासक्त इन्द्रियो को संयमित करके अपने चित्त के अनुसार चलने वाली बना लेता है ॥४३॥ इससे चचल इंद्रियाँ उसके वश मे हो जाती हैं, जिनको वशीभूत किये विना योग–साधन सम्भव नही होता ॥४४॥ इस प्रकार प्राणायाम से वायु को और प्रत्याहार से इन्द्रियो को वश मे करके चित्त को शुभाश्रय मे स्थित करना चाहिये ।४५।

कथ्यता मे महाभाग चेतसो यश्शुभाश्रयः ।
यदाधारमशेष तद्धन्ति दोषमलोद्भवम् ॥४६
आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः ।
भूप मूर्त्तममूर्त्त च पर चापरमेव च ॥४७

त्रिविधा भावना भूप विश्वमेतन्निबोधताम् ।
ब्रह्माख्या कर्मसंज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका ।।४८
कर्मभावात्मिका ह्येका ब्रह्मभावात्मिका परा ।
उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना ।।४९
सनन्दनादयो ये तु ब्रह्मभावनया युताः ।
कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावराश्चराः ।।५०
हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्मात्मिका द्विधा ।
बोधाधिकारयुक्तेषु विद्यते भावभावना ।।५१
अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु ।
विश्वमेतत्परं चान्यद्भेदभिन्नदृशां नृणाम् ।।५२
प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम् ।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ।।५३
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्तमम् ।
विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः ।।५४

खाण्डिक्य ने कहा—हे महाभागो ! जिसके आश्रय मे चित्त के सब दोष नाश को प्राप्त होते है, वह चित्त का शुभाश्रय कौन-सा है ? ।।४६।। केशिध्वज ने कहा—चित्त का आश्रय ब्रह्म है, जो मूर्त्त–अमूर्त्त अथवा पर–अपर रूप से दो प्रकार का है ।।४७।। हे राजन् ! इस विश्व मे कर्म, ब्रह्म और उभयात्मिका नाम की तीन प्रकार की भावनाएँ कही है ।।४८।। इनमे कर्मभावना पहिली, ब्रह्मभावना दूसरी और उभयात्मिका तीसरी है ।।४६।। सनन्दन आदि मुनिगण ब्रह्म भावना वाले तथा देवताओ से स्थावर जगम तक जितने भी जीव हैं, वे सब कर्म भावना वाले हैं ।।५०।। तथा बोध और अधिकार वाली ब्रह्म और कर्म दोनो से युक्त उभयात्मिका भावना समझो ।।५१।। जब तक विशेष ज्ञान के कारण रूप कर्मों का क्षय नही होता, तभी तक अहङ्कारादि के कारण जिनकी भेद दृष्टि हो रही है, उन्हे ब्रह्म और जगत् भिन्न प्रतीत होते हैं ।।५२।। जिसमे सब भेद नष्ट होते, जो सत्तामात्र वाणी का विषय नही है तथा जो अनुभव से जानने योग्य है, वही ब्रह्मज्ञान है ।।५३।। वही विष्णु अरूप कहा जाने

वाला परम स्वरूप है, जो उनके विश्व रूप से नितान्त विलक्षण है ॥५४॥

न तद्योगयुजा शक्यं नृप चिन्तयितुं यतः ।
ततः स्थूल हरे रूपं चिन्तयेद्विश्वगोचरम् ॥५५
हिरण्यगर्भो भगवान्वासुदेवः प्रजापतिः ।
मरुतो वसवो रुद्रा भास्करास्तारका ग्रहाः ॥५६
गन्धर्वयक्षदैत्याद्यास्सकला देवयोनय ।
मनुष्या. पशवश्शैलास्समुद्रास्सरितो द्रुमाः ॥५७
भूप भूतान्यशेषाणि भूताना ये च हेतवः ।
प्रधानादिविशेषान्त चेतनाचेतनात्मकम् ॥५८
एकपादं द्विपाद च बहुपादमपादकम् ।
मूर्तमेनद्धरे रूप भावनात्रितयात्मकम् ॥५९
एतत्सर्वमिद विश्व जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोश्शक्तिसमन्वितम् ॥६०

हे नृप ! योगाभ्यासी प्रारम्भ मे उनके उस परम रूप का चिन्तन करने मे असमर्थ होते हैं, इसलिये उन्हे उनके विश्वमय स्थूल रूप का ही ध्यान करना चाहिये ॥५५॥ हिरण्यगर्भ, वासुदेव, प्रजापति, मरुद्गण, वसुगण, रुद्र, आदित्य, तारागण, ग्रहगण, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य देवता, मनुष्य, पशु पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत तथा प्रधान से विशेष पर्यन्त उनके कारण तथा चेतन, अचेतन, एकपाद, दो पाद अथवा अनेक पाद या बिना पाद के प्राणी—यह सभी भगवान् के तीन भावना वाले मूर्त स्वरूप हैं ॥५६-५७-५८-५९॥ यह सम्पूर्ण विश्व ही उन परब्रह्म रूप भगवान् विष्णु की शक्ति स सम्पन्न उन्हीं का 'विश्व' नामक स्वरूप है ॥६०॥

विष्णुशक्ति परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।
अविद्या कर्मसञ्ज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥६१
यया क्षेत्रज्ञशक्तिस्सा वेष्टिता नृप सर्वगा ।
ससारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान् ॥६२

तया तिरोहितत्वाच्च शक्ति क्षेत्रज्ञसज्ञिता ।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते ॥६३
अप्राणवत्सु स्वल्पा सा स्थावरेषु ततोऽधिका ।
सरीसृपेषु तेभ्योऽपि ह्यतिशक्त्या पतत्त्रिषु ॥६४
पतत्त्रिभ्यो मृगास्तेभ्यस्तच्छक्त्या पशवोऽधिका ।
पशुभ्यो मनुजाश्चातिशक्त्या पु स प्रभाविता ॥६५
तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप ॥६६
शक्रस्ससस्तदेवेभ्यस्ततश्चाति प्रजापति ।
हिरण्यगर्भोऽपि तत पु स शक्त्युपलक्षित ॥६७
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव ।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा ॥६८

विष्णु नामक शक्ति परा और क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति अपरा है तथा कर्म सज्ञक तृतीय शक्ति अविद्या कही जाती है ॥६१॥ हे नृप ! इसी अविद्या से आवृत्त हुई क्षेत्रज्ञ शक्ति सब प्रकार के सासारिक कष्टो को भोगती है ॥६२॥ अविद्या से तिरोहित हुई क्षेत्रज्ञ शक्ति सब जीवो मे तारतम्य से दिखाई पडती है ॥६३॥ जड पदार्थों मे यह स्वल्प प्रमाण मे, उनसे अधिक स्थावरो मे और उनसे अधिक सरीसृपादि मे तथा उनसे भी अधिक पक्षियो मे है ॥६४॥ पक्षियो से अधिक मृगों मे, उनसे अधिक पशुओ मे तथा पशुओ से अधिक शक्ति मनुष्यो मे है ॥६५॥ मनुष्यो से अधिक नाग, गन्धर्व, यक्षादि सब देवताओ मे, उनसे अधिक इन्द्र मे, इन्द्र से अधिक प्रजापति मे, उनसे अधिक हिरण्यगर्भ मे दिखाई देती है ॥६६-६७॥ यह सभी रूप उस परमेश्वर के ही देह हैं, क्योकि आकाश के समान ही उनकी शक्ति से यह सभी व्याप्त हो रहे हैं ॥६८॥

द्वितीय विष्णुसज्ञस्य योगिध्येय महामते ।
अमूर्त्त ब्रह्मणो रूप यत्सदित्युच्यते बुधै ॥६९
समस्ता शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिता ।
तद्विश्वरूपवैरूप्य रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥७०

समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर ।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिचेष्टावन्ति स्वलीलया ।।७१
जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा ।
चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यव्याहतात्मिका ।।७२
तद्रूप विश्वरूपस्य तस्य योगयुजा नृप ।
चिन्त्यमात्मविशुद्धयर्थ सर्वकिल्विषनाशनम् ।।७३
यथाग्निरुद्धतशिख कक्ष दहति सानिल ।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिना सर्वकिल्विषम् ।।७४
तस्मात्समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतस ।
कुर्वीत संस्थितिं सा तु विज्ञेया शुद्धधारणा ।।७५

हे महामते ! ब्रह्म का द्वितीय अमूर्त्त रूप 'विष्णु'संज्ञक है,जिसे ज्ञानीजन 'सत्' कहते और मुनिजन जिसका ध्यान करते है ।।६९।। जिसम यह सभी शक्तियाँ स्थित है वही विश्व रूप से विलक्षण भगवान् का दूसरा रूप है ।।७०।। अपनी लीला स देव, तिर्यक तथा मनुष्यादि की चेष्टाओ वाला सर्व शक्तिमय स्वरूप भी भगवान् का वही रूप धारण करता है ।।७१।। इन रूपो मे उनकी व्यापक और अव्याहत चेष्टा जगत् के उपकारार्थ है कर्म से उत्पन्न नही होती ।।७२।। हे नृप ! योगाभ्यास करने वाले को आत्म शुद्धि के लिये उसी सर्व पाप हर स्वरूप का ध्यान करना चाहिये ।।७३।। जैसे वायु से मिलकर अग्नि अपनी ऊँची ज्वालाओ से तिनको को भस्म कर देता है, वैसे ही चित्त मे स्थित हुए भगवान् विष्णु योगियो के सभी पापो को भस्म कर देते हैं ।।७४।। इसलिय सर्वशक्तियो के आधार भगवान् विष्णु मे चित्त का लगाना ही शुद्ध धारणा है ।७५

शुभाश्रय स चित्तस्य सर्वगस्याचलात्मन ।
त्रिभावभावनातीतो मुक्तये योगिनो नृप ।।७६
अन्ये तु पुरुषव्याघ्र चेतसो ये व्यपाश्रया ।
अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्या कर्मयोनय ।।७७
मूर्त्त भगवतो रूप सर्वापाश्रयनि स्पृहम् ।
एषा वै धारणा प्रोक्ता यच्चित्त तत्र धार्यते ।।७८

यच्च मूर्त्तं हरे रूपं यादृग्विचिन्त्य नराधिप ।
तच्छ्रूयतामनाधारा धारणा नोपपद्यते ॥७६
प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम् ।
सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम् ॥८०
समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम् ।
कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥८१
वलित्रिभङ्गिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च ।
प्रलम्बाष्टभुज विष्णुमथवापि चतुर्भुजम् ॥८२
समस्थितोरुजङ्घं च सुस्थिताङ्घ्रिवराम्बुजम् ।
चिन्तयेद् ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम् ॥८३

हे राजन्! तीनो भावनाओं से परे भगवान् विष्णु ही योगियो को मोक्ष प्राप्त कराने के लिये उनके चचल और स्थिर चित्त के शुभाश्रय हैं ॥७६॥ इसके अतिरिक्त मन को आश्रय देने वाले देवादि कर्म योनियो को अशुद्धाश्रय समझो ॥७७॥ भगवान् के इस मूर्त्त रूप से चित्त अन्य आश्रयो से हट जाता है, इस प्रकार चित्त के उन्ही मे स्थिर होने को 'धारणा' कहते हैं ॥७८॥ हे राजन्! बिना किसी आधार के धारणा नही होती, इसलिये प्रभु का जो मूर्त्त रूप है, उसे सुनो ॥७६॥ जो भगवान् प्रसन्न मुख और सुन्दर पद्मदल जैसे लोचन वाले, श्रेष्ठ कपोल, विशाल ललाट, कानो मे कुण्डल धारण किये हुए, शख जैसी ग्रीवा वाले, विस्तृत एव श्रीवत्सचिह्न युक्त वक्षःस्थल वाले, तरंगाकार त्रिवली और गभीर नाभि वाले उदर से शोभित, आठ लम्बी-लम्बी भुजाओ वाले, जिनके जंघा और ऊरु समान रूप से स्थित हैं, सुघड़ और मनोहर चरण कमलो से वैठे हुए उन श्री विष्णु का ध्यान करना चाहिये ॥८० से ८३॥

किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् ॥८४
शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम् ।
वरदाभयहस्त च मुद्रिकारत्न भूषितम् ॥८५
चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम् ।
तावद्यावद्दृढीभूता तत्रैव नृप धारणा ॥८६

व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।
नापयाति यदा चित्तात्सिद्धां मन्येत तां तदा ॥८७
ततः शङ्खगदाचक्रशार्ङ्गादिरहितं बुधः ।
चिन्तयेद्भगवद्रूपं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम् ॥८८
सा यदा धारणा तद्वदवस्थानवती ततः ।
किरीटकेयूरमुखैर्भूषणै रहितं स्मरेत् ॥८९
तदेकावयवं देवं चेतसा हि पुनर्बुधः ।
कुर्यात्ततोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत् ॥९०

हे राजन् ! किरीट, हार, केयूर, कटक ग्रादि धारण किये शार्ङ्ग धनु, शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और ग्रक्ष-ग्रवलि युक्त वरद और अभय मुद्रा वाले कर-कमय, जिनमें रत्नमयी मुद्रिका सुशोभित हैं, ऐसे भगवान् के दिव्य रूप का एकाग्र मन से धारणा करके दृढ न होने तक चिंतन करते रहना चाहिये॥८४-८५-८६॥ जब चलते, उठते, बैठते या ग्रन्य कोई कार्य करने मे भी वह रूप ग्रपने चित्त से विस्मृत न हो, तब सिद्धि की प्राप्ति हुई समझे ॥८७॥ जब धारणा मे इतनी दृढता ग्रा जाय, तब शख, चक्र, गदा ग्रौर शार्ङ्ग धनुष ग्रादि के बिना जो उनका ग्रक्षमाला और यज्ञोपवीत धारण किये हुए शान्त स्वरूप है, उसका ध्यान करना चाहिये ॥८८॥ जब यह धारणा भी दृढ हो जाय तब किरीट-केयूरादि ग्राभूषणों से रहित उनके स्वरूप का चिन्तन करे ॥८९॥ फिर एक ग्रवयव विशिष्ट भगवान् का ध्यान करे ग्रौर जब यह भी सिद्ध होजाय तब ग्रवयव रहित रूप का चिन्तन करना चाहिये ॥९०॥

तद्रूपप्रत्यया चैका सन्ततिश्चान्यनिःस्पृहा ।
तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप ॥९१
तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत् ।
मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते ॥९२
विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव ।
प्रापणीयस्तथैवात्मा प्रक्षीणाशेषभावनः ॥९३

क्षेत्रज्ञ: करणी ज्ञानं करणं तस्य तेन तत् ।
निष्पाद्य मुक्तिकार्यं वै कृतकृत्यो निवर्तते ॥९४
तद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना ।
भवत्यभेदी भेदस्य तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥९५
विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥९६
इत्युक्तस्ते मया योगः खाण्डिक्य परिपृच्छतः ।
संक्षेपविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्रियतां तव ॥९७

हे नृप ! जिसमे प्रभु रूप की प्रतीति हो, वह निस्पृह एवं अनवरत धारा ही ध्यान है, यह अपने से पहले छः अंगो द्वारा निष्पन्न होता है ॥९१॥ ध्यान द्वारा सिद्धि के योग्य उस ध्येय का जो स्वरूप मन के द्वारा ग्रहण होता है, वही समाधि कही जाती है ॥९२॥ विज्ञान ही प्राप्त होने योग्य परब्रह्म तक पहुँचाने वाला तथा सब भावनाओ से हीन आत्मा ही वहाँ तक पहुचने वाला है ॥९३॥ मोक्ष-लाभ मे क्षेत्रज्ञ कर्त्ता और ज्ञान करण है, मोक्ष रूपी कार्य को सिद्ध करने से धन्य हुआ वह विज्ञान निवृत्ति को प्राप्त होता है ॥९४॥ उस समय भगवान् के भाव से परिपूर्ण हुआ विज्ञान परमात्मा से अभिन्न होता है, इसको भिन्न मानने जाने का कारण अज्ञान ही है ॥९५॥ भेदोत्पादक अज्ञान के नष्ट होजाने पर ब्रह्म और आत्मा मे न होने वाले भेद को कौन कर सकता है ? ॥९६॥ हे खाण्डिक्य ! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने संक्षिप्त रूप से और विस्तार पूर्वक भी योग का वर्णन कर दिया है, अब तुम्हारा और क्या कार्य मुझे करना है ? ॥९७॥

कथिते योगसद्भावे सर्वमेव कृतं मम ।
तवोपदेशेनाशेषो नष्टश्चित्तमलो यतः ॥९८
ममेति यन्मया चोक्तमसदेतन्न चान्यथा ।
नरेन्द्र गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः ॥९९
अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः ।
परमार्थस्त्वसंलापो गोचरे वचसां न यः ॥१००

तद्गच्छ श्रेयसे सर्वं ममैतद्भवता कृतम् ।
यद्विमुक्तिप्रदो योगः प्रोक्त केशिध्वजाव्यय. ॥१०१

खाण्डिक्य ने कहा—इस योग का वर्णन करके तुमने मेरे सभी कार्यों को सिद्ध कर दिया । अब तुम्हारे उपदेश से मेरे चित्त का सब मैल दूर होगया है ॥६८॥ मैंने जो 'मेरा' कहा, वह भी मिथ्या ही है, क्योंकि जानने योग्य पदार्थ ज्ञाता ऐसा कदापि नही कह सकते ॥६६॥ मैं, मेरा की भावना और इनका व्यवहार भी अविद्या है और पदार्थ वाणी का विषय न होने से कहा या सुना नही जा सकता ॥१००॥ हे केशिध्वज ! आपने मोक्षदायक योग को कहकर मेरी मुक्ति के निमित्त सब कुछ कर दिया, अब आप सुख से जाइये ॥१०१॥

यथार्हं पूजया तेन खाण्डिक्येन स पूजित. ।
आजगाम पुर ब्रह्म स्ततः केशिध्वजो नृप ॥१०२
खाण्डिक्योऽपि सुत कृत्वा राजान योगसिद्धये ।
वन जगाम गोविन्दे विनिवेशितमानसः ॥१०३
तत्रैकान्तमतिर्भूत्वा यमादिगुणसयुत ।
विष्ण्वाख्ये निर्मले ब्रह्मण्यवाप नृपतिर्लयम् ॥१०४
केशिध्वजो विमुक्त्यर्थी स्वकर्मक्षपणोन्मुख. ।
बुभुजे विषयान्कर्म चक्रे चानभिसहितम् ॥१०५
सकल्याणोपभोगैश्च क्षीणपापोऽमलस्तथा ।
अवाप सिद्धिमत्यन्ता तापक्षयफला द्विज ॥१०६

श्री पराशरजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इसके पश्चात् खाण्डिक्य द्वारा पूजित हुआ राजा केशिध्वज अपने नगर को गये और अपने पुत्र को स्वामित्व सौंपकर भगवान् में चित्त लगा कर निर्जन वन में योग-सिद्धि करने लगे ॥१०२ १०३॥ यम-नियमादि से युक्त हुए राजा खाण्डिक्य एकाग्र चित्त से चिन्तन करते हुए निर्मल ब्रह्म में लय को प्राप्त हुए ॥१०४॥ उधर राजा केशिध्वज अपने कर्मों को क्षय करते हुए सब विषयों को भोगते रहे और अनेकों निष्काम कर्म करते रहे ॥१०५॥ हे द्विज ! अनेकों कल्याणकारी भोगों को भोगते हुए उन्हें

ताप और मल के क्षीण होने पर तापत्रय को मिटाने वाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त होगई है ॥१०६॥

आठवां अध्याय

इत्येष कथितः सम्यक् तृतीयः प्रतिसञ्चरः ।
आत्यन्तिको विमुक्तिर्या लयो ब्रह्मणि शाश्वते ॥१
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव भवतो गदितं मया ॥२
पुराणं वैष्णवं चैतत्सर्वकिल्विषनाशनम् ।
विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥३
तुभ्यं यथावन्मैत्रेय प्रोक्तं शुश्रूषवेऽव्ययम् ।
यदन्यदपि वक्तव्यं तत्पृच्छाद्य वदामि ते ॥४
भगवन्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया मुने ।
श्रुतंचैतन्मया भक्त्या नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥५
विच्छिन्ना सर्वसन्देहा नैर्मल्यं मनसः कृतम् ।
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञाता उत्पत्तिस्थितिसंक्षया ॥६
ज्ञातश्चतुर्विधो राशिः शक्तिश्च त्रिविधा गुरो ।
विज्ञाता सा च कात्स्न्र्येन त्रिविधा भावभावना ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार तीसरे आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन भी मैंने तुमसे कर दिया, जिसे तुम ब्रह्म में लीन होने रूपी ब्रह्म ही समझो ॥१॥ मैंने सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशों के चरित्र भी कह दिये ॥२॥ तुम्हें श्रवणेच्छुक देखकर इस सर्वश्रेष्ठ, सर्व पापहारी तथा पुरुषार्थ के प्रतिपादक विष्णु पुराण को मैंने सुना दिया। अब यदि कुछ और पूछना चाहो तो उसे भी पूछ लो ॥३-४॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन् !

आपने मेरा पूछा हुआ सभी कुछ कह दिया और मैंने भी उसे भक्तिपूर्वक सुना है, अब मुझे कुछ नहीं पूछना है ॥५॥ आपकी कृपा से मेरी शङ्काओं का समाधान होगया तथा चित्त निर्मल हुआ और सृष्टि, स्थिति और प्रलय का ज्ञान भी मुझे होगया ॥६॥ हे गुरो ! चार प्रकार की राशि, तीन प्रकार की शक्ति और तीन प्रकार की ही भाव–भावनाओं का मुझे ज्ञान होगया ॥७॥

त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं ज्ञेयमन्यैरलं द्विज ।
यदेतदखिलं विष्णोर्जगन्न व्यतिरिच्यते ॥८
कृतार्थोऽहमसन्देहस्त्वत्प्रसादान्महामुने ।
वर्णधर्मादयो धर्मा विदिता यदशेषतः ॥९
प्रवृत्तं च निवृत्तं च ज्ञातं कर्म मयाखिलम् ।
प्रसीद विप्रप्रवर नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥१०
यदस्य कथनायासैर्योजितोऽसि मया गुरो ।
तत्क्षम्यतां विशेषोऽस्ति न सतां पुत्रशिष्ययोः ॥११
एतत्ते यन्मयाख्यातं पुराणं वेदसम्मतम् ।
श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति ॥१२
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वतराणि च ।
वंशानुचरितं कृत्स्नं मयात्र तव कीर्तितम् ॥१३
अत्र देवास्तथा दैत्या गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
यक्षविद्याधरास्सिद्धा कथ्यन्ते ऽप्सरसस्तथा ॥१४

हे द्विज ! आपकी कृपा से मैं इस जानने योग्य बात को भले प्रकार जान गया कि यह संसार विष्णु से भिन्न नहीं है, इसलिये अन्य बातों के जानने से क्या प्रयोजन है ? ॥८॥ आपकी कृपा से मैं कृतार्थ होगया हूं, क्योंकि मैं वर्ण–धर्मादि सब धर्मों तथा प्रवृत्ति–निवृत्ति रूप सब कर्मों को जान गया। हे ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न हों, अब कुछ भी पूछना शेष नहीं है ॥९-१०॥ हे गुरो ! मैंने इस सम्पूर्ण पुराण के कहने का जो कष्ट आपको दिया है, उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। सन्तजन तो पुत्र और शिष्य में कोई भेद नहीं मानते ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—मैंने तुम्हें जो यह वेद सम्मत पुराण सुनाया है, उसके

सुनने से ही सब दोषो से उत्पन्न हुए पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ इसमे सृष्टि-रचना, प्रलय, वश, मन्वन्तर और वशो के चरित्र—इन सबका वर्णन तुमसे किया है ॥१३॥ इसमे देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और अप्सराओ का वर्णन हुआ है ॥१४॥

मुनयो भावितात्मान कथ्यन्ते. तपसान्विता ।
चातुर्वर्ण्यं तथा पु सा विशिष्टचरितानि च ॥१५
पुण्या प्रदेशा मेदिन्या पुण्या नद्योऽथ सागरा ।
पर्वताश्च महापुण्याश्चरितानि च धीमताम् ॥१६
वर्णधर्मादियो धर्मा वेदशास्त्राणि कृत्स्नश ।
येषा सस्मरणात्सद्य सर्वपापै प्रमुच्यते ॥१७
उत्पत्तिस्थितिनाशाना हेतुर्यो जगतोऽव्यय ।
स सर्वभूतस्सर्वात्मा कथ्यते भगवान्हरि ॥१८
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकै ।
पुमान्विमुच्यते सद्य सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥१९
यन्नामकीर्तन भक्त्या विलायनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापाना धातूनामिव पावक ॥२०
कलिकल्मषमत्युग्र नरकार्तिप्रद नृणाम् ।
प्रयाति विलय सद्य सकृद्यत्र च सस्मृते ॥२१

तपोनिष्ठ मुनिजन, चार वर्णों का विभाग, महापुरुषो के चरित्र, पृथिवी के पवित्र क्षेत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, बुद्धिमानो के चरित्र, वर्ण धर्मादि धर्म और वेद शास्त्रो का भी इसमे भले प्रकार से वर्णन हुआ है, जिनके स्मरण करने से ही मनुष्य सब पापो छूट जाता है ॥१५-१६-१७॥ विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के एकमात्र कारण रूप भगवान् विष्णु का भी इसमे कीर्तन हुआ है ॥१८॥ यदि विवश होकर भी उन भगवान् का कीर्तन करे तो सिंह से भय-भीत हुए भेडिये के समान मुक्त हो जाता है ॥१९॥ हे मैत्रेयजी ! भक्तिभाव पर्वक जिनका हुआ नाम–कीर्तन सभी पापो का सर्वश्रेष्ठ विलयन है ॥२०॥

जिनका एकबार भी स्मरण करने से नरक की यातनाएँ प्राप्त कराने वाला कलि-कल्मष उसी समय क्षीण हो जाता है ॥२१॥

हिरण्यगर्भदेवेन्द्ररुद्रादित्याश्विवायुभिः ।
पावकैर्वसुभि. साध्यैर्विश्वेदेवादिभि सुरैः ॥२२
यक्षरक्षोरगं. सिद्धैर्दैत्यगन्धर्वदानवै. ।
अप्सरोभिस्तथा तारानक्षत्रै. सकलैर्ग्रहै ॥२३
सप्तर्षिभिस्तथा धिष्ण्यैर्धिष्ण्याधिपतिभिस्तथा ।
ब्राह्मणाद्यैर्मनुष्यैश्च तथैव पशुभिर्मृगै. ॥२४
सरीसृपैर्विहङ्गैश्च पलाशाद्यैर्महीरुहैः ।
वनाग्निसागरसरित्पातालैः सधरादिभि ॥२५
शब्दादिभिश्च सहित ब्रह्माण्डमखिल द्विज ।
मेरोरिवाणुर्यस्यैतद्यन्मय च द्विजोत्तम ॥२६
स सर्व सर्ववित्सर्वस्वरूपो रूपवर्जितः ।
भगवान्कीर्तितो विष्णुरत्र पापप्रणाशन ॥२७
यदश्वमेधावभृथे स्नात प्राप्नोति वै फलम् ।
मानवस्तदवाप्नाति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥२८
प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्णवे ।
कृतोपवास प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः ॥२९

हे द्विजश्रेष्ठ ! हिरण्यगर्भ, देवेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विद्वय, वायु, अग्नि, वसु, साध्य, विश्वेदेवा, यक्ष, राक्षस, उरग, सिद्ध, दैत्य, गन्धर्व, दानव, अप्सरा, तारे, नक्षत्र, ग्रह, सप्तर्षि, लोक, लोकपाल, मनुष्य, पशु, मृग, सरीसृप, विहग, वृक्ष, वन, अग्नि, समुद्र, नदी, पाताल और पृथिवी आदि और शब्दादि विषयों के सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिन प्रभु के सामने अत्यन्त तुच्छ है और जो उसके उपादान-कारण भी है, उन सर्वरूप, सर्वज्ञ, रूपहीन तथा पापों के नाश करने वाले भगवान् विष्णु का चरित्र इसमें कहा गया है ॥२२ से २७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान का जो फल है, वही इस पुराण के सुनने से प्राप्त हो जाता है ॥२८॥ प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र अथवा समुद्र के किनारे रहकर

उपवास करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस पुराण के श्रवण से ही प्राप्त होजाता है ॥२९॥

यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षेणाप्नोति मानवः ।
महापुण्यफलं विप्र तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥३०
यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोतिः पुरुषः फलम् ॥३१
तदाप्नोत्यखिलं सम्यगध्यायं यः शृणोति वै ।
पुराणस्यास्य विप्रर्षे केशवार्पितमानसः ॥३२
यमुनासलिलस्नातः पुरुषो मुनिसत्तम ।
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः ॥३३
समभ्यर्च्याच्युतं सम्यङ् मथुरायां समाहितः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥३४
आलोक्यर्द्धिमथान्येषामुन्नीतानां स्ववंशजैः ।
एतत्किलोचुरन्येषां पितरः सपितामहाः ॥३५

नियमानुसार एक वर्ष तक अग्निहोत्र करने से जिस महापुण्य फल की प्राप्ति होती है, वह फल इसके एकबार श्रवण से ही मिल जाता है ॥३०॥ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को मथुरा में यमुना स्नान करके श्रीकृष्ण का दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल भगवान् श्रीकृष्ण में तन्मय चित्त होकर इस पुराण के एक अध्याय के श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है ॥३१-३२॥ हे मुनिवर ! ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन मथुरापुरी में उपवास पूर्वक यमुना स्नान करके श्री अच्युत भगवान् में चित्त लगा कर उनका पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ जैसा ही फल प्राप्त होता है ॥३३-३४॥ अपने वंशजो द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त हुए पितरो ने अन्य पितरो को समृद्धि-लाभ करते हुए देखकर इस प्रकार कहा था ॥३५॥

कच्चिदस्मत्कुले जातः कालिन्दीसलिलाप्लुतः ।
अर्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥३६

ज्येष्ठामूले सिते पक्षे येनैवं वयमप्युत ।
परामृद्धिमवाप्स्यामस्तारिताः स्वकुलोद्भवैः ॥३७
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
धन्यानां कुलजः पिण्डान्यमुनायां प्रदास्यति ॥३८
तस्मिन्काले समभ्यर्च्य तत्र कृष्णं समाहितः ।
दत्त्वा पिण्डं पितृभ्यश्च यमुनासलिलाप्लुतः ॥३९
यदाप्नोति नरः पुण्यं तारयन्स्वपितामहान् ।
श्रुत्वाध्यायं तदाप्नोति पुराणस्यास्य भक्तितः ॥४०
एतत्संसारभीरूणां परित्राणमनुत्तमम् ।
श्राव्याणां परमं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम् ॥४१
दुःस्वप्ननाशनं नृणां सर्वदुष्टनिबर्हणम् ।
मङ्गलं मङ्गलानां च पुत्रसम्पत्प्रदायकम् ॥४२

हमारे कुल मे उत्पन्न कोई पुरुष क्या ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन उपवास करके परम पवित्र मथुरा नगरी मे यमुना-स्नान करके गोविन्द का पूजन करेगा ? जिससे हमभी अपने वंशजो द्वारा उद्धार किये जाकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे। क्योंकि किन्ही भाग्यवान् व्यक्तियो के वंशज ही जेष्ठ मास के शुक्ल पक्ष म यमुना मे पितृो को पिण्डदान का पुण्य करते हैं ॥३६-३८॥ जल मे इस प्रकार स्नान करके पितरो को पिण्डदान करके उनको तारने वाला पुरुष जिस पुण्य का भागी होता है, वही पुण्य इस विष्णु पुराण का एक अध्याय भक्तिपूर्वक सुनने से प्राप्त होता है ॥३९-४०। यह पुराण संसार सागर स भयभीत जनो का बहुत बडा रक्षक, श्रवण योग्य तथा पवित्रो मे भी बहुत पवित्रहै ॥४१॥ बुरे स्वभावो का नाशक सपूर्ण दोपो को दूर करने वाला, मागलिक वस्तुओ मे परम मागलिक और सतान तथा सम्पत्ति का देने वाला है ॥४२॥

इदमार्षं पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः ।
ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेऽब्रवीत् ॥४३

भागुरिः स्तम्भमित्राय दधीचाय स चोक्तवान् ।
सारस्वताय तेनोक्तं भृगुस्सारस्वतेन च ॥४४
भृगुणा पुरुकुत्साय नर्मदायै स चोक्तवान् ।
नर्मदा धृतराष्ट्राय नागायापूरणाय च ॥४५
ताभ्यां च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज ।
वासुकिः प्राह वत्साय वत्सश्चाश्वतराय वै ॥४६
कम्बलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वै ।
पाताल समनुप्राप्तस्ततो वेदशिरा मुनिः ॥४७
प्राप्तवानेतदखिलं स च प्रमतये ददौ ।
दत्तं प्रमतिना चैतज्जातुकर्णाय धीमते ॥४८

इस आर्ष-पुराण के प्रथम वक्ता ब्रह्माजी थे जिनसे ऋभु ने इसे श्रवण किया। ऋभु से प्रियव्रत और प्रियव्रत से भागुरि ने सुना। भागुरि ने स्तम्भमित्र को, स्तम्भमित्र ने दधीचि को, दधीचि ने सारस्वत को, सारस्वत ने भृगु को सुनाया ॥४३-४४॥ इसके पश्चात् इसे भृगु से पुरुकुत्स ने, पुरुकुत्स से नर्मदा ने, नर्मदा से धृतराष्ट्र और पूरण नाग ने सुना ॥४५॥ इन दोनों ने यह पुराण नागराज वासुकि को सुनाया। वासुकि ने वत्स को, वत्स ने अश्वतर को, अश्वतर ने कम्बल को, कम्बल ने इला पुत्र को सुनाया। उसी अवसर पर वेदशिरा मुनि पाताल लोक में आये हुए थे, उन्होंने इस पुराण को नागों से प्राप्त करके प्रमति को सुनाया और उससे परम विद्वान जातुकर्ण ने इसे प्राप्त किया ॥४६-४८॥

जातुकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यकर्मणाम् ।
पुलस्त्यवरदानेन ममाप्येतत्स्मृतिं गतम् ॥४९
मयापि तुभ्यं मैत्रेय यथावत्कथितं त्विदम् ।
त्वमप्येतच्छिनीकाय कलेरन्ते वदिष्यसि ॥५०
इत्येतत्परमं गुह्यं कलिकल्मषनाशनम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५१

समस्ततीर्थस्नानानि समस्तामरसंस्तुतिः ।
कृता तेन भवेदेतद्यः शृणोति दिने दिने ॥५२
कपिलादानजनित पुण्यमत्यन्तदुर्लभम् ।
श्रुत्वैतस्य दशाध्यायानवाप्नोति न संशय. ॥५३
यस्त्वेतत्सकल शृणोति पुरुष. कृत्वा मनस्यच्युत।
सर्वं सर्वमय समस्तजगता माधारमात्माश्रयम् ।
ज्ञानज्ञेयमनादिमन्तरहितं सर्वामराणां हितं ।
स प्राप्नोति न सशयोऽस्त्यविकलं यद्वाजिमेधे फलम् ॥५४
यत्रादौ भगवांश्चराचरगुरुर्मध्ये तथान्ते च सः ।
ब्रह्मज्ञानमयोऽच्युतोऽखिलजगन्मध्यान्तसर्गप्रभुः ।
तत्सर्वं पुरुषः पवित्रममलं शृण्वन्पठन्वाचयन् ।
प्राप्नोत्यस्ति न तत्फलं त्रिभुवनेष्वेकान्तसिद्धिर्हरि· ॥५५

तत्पश्चात् जातुकर्ण ने इसे महात्माओं को सुनाया और उनमें से पुलस्त्य जी के वरदान से मुझे भी यह ज्ञात हो गया। वही मैंने तुमको यथावत् सुना दिया और तुम कलियुग के अन्त में इसे शिनीक को सुनाओगे ॥४६-५०॥ जो व्यक्ति इस परम गुह्य और कलियुग के दोषों को नाश करने वाले पुराण को भक्ति के साथ श्रवण करता है वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है। और जो कोई इसको प्रति दिन सुनता रहता है तो मानो तमाम तीर्थों के स्नान तथा सभी देवों की स्तुति का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया ॥५१-५२॥ जो कोई इस पुराण के दस अध्यायों को श्रवण कर लेता है उसे कपिला गौ के दान का अत्यन्त दुर्लभ पुण्य प्राप्त होता है। जो मनुष्य जगदाधार, आत्मा के आश्रय सर्व स्वरूप, सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेय रूप, आदि अन्त रहित और सब देवताओं के हितैषी विष्णु भगवान् का ध्यान करते हुए इस सम्पूर्ण पुराण का श्रवण करता है उसे निस्सन्देह अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥५३-५४॥ इस पुराण के आदि, अन्त, मध्य में सर्वत्र विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय में समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर गुरु भगवान् अच्युत का कीर्तन किया गया है। इस लिए इस सर्वश्रेष्ठ और निर्मल पुराण को सुनने, पढ़ने और धारण करने

से जो फल प्राप्त होता है वह तीनो लोक मे अन्य किसी प्रकार प्राप्त नही हो सकता, क्योंकि मुक्तिदाता भगवान् विष्णु की ही इसके द्वारा प्राप्ति होती है ॥५५॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरक स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने ।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्ति चेतसि यः स्थितोऽमलधिया पुंसा ददात्यव्यय. ।
किं चित्रं यदघ प्रयाति विलय तत्राच्युते कीर्तिते ॥५६
यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वर कर्मिणो ।
य वै ब्रह्ममय परावरमय ध्यायन्ति च ज्ञानिनः ।
य सञ्चिन्त्य न जायते न म्रियते नो वर्द्धते हीयते ।
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम् ॥५७
कव्य य· पितृरूपधृग्विधिहुत हव्य च भुङ्क्ते विभु
र्देवत्वे भगवाननादिनिधन. स्वाहास्वधासज्ञिते ।
यस्मिन्ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां
निष्ठायै प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्र स यातो हरिः ॥५८

जिन विष्णु भगवान् मे चित्त लगाने से नर्क का भय दूर हो जाता है, जिनके स्मरण मे स्वर्ग भी निस्सार है, ब्रह्म लोक भी तुच्छ प्रतीत होता है, और जो शुद्ध चित्त वाले सज्जनो के हृदय मे स्थित होकर उन्हे मोक्ष देते हैं, उन्ही भगवान् अच्युत का कीर्तन करने यदि सब पाप नष्ट हो जाते हैं तो इसमे आश्चर्य क्या है ॥५६॥ कर्मनिष्ठ यज्ञवेत्ता जिन भगवान् का यज्ञेश्वर रूप से भजन करते हैं, ज्ञानी जन जिनका ब्रह्म रूप से ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करने से न पुरुष जन्म लेता है, न मरता है, न क्षीण होता है, एवं जो न सद् है न असत्, उन श्रीहरि के अतिरिक्त सुनने का विषय और क्या हो सकता है ? ॥५७॥ जो अनादिनिधन प्रभु पितृरूप से स्वधासज्ञक कव्य को और देव रूप से अग्नि मे हवन किये गये हव्य को ग्रहण करते हैं, तथा जिन समस्त शक्तियो के आश्रयभूत भगवान् के विषय मे प्रमाण कुशल विद्वान भी प्रमाण

नहीं दे सकते वे श्रीहरि श्रवण पथ में आते ही समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं ।।५८।।

नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति
वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य ।
नापक्षयं च समुपैत्यविकारि वस्तु
यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम् ।।५९
तस्यैव योऽनु गुणभुग्बहुधैक एव
शुद्धोऽप्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदैः ।
ज्ञानान्वितः सकलसत्त्वविभूतिकर्त्ता
तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ।।६०
ज्ञानप्रवृत्तिनियमैक्यमयाय पुंसो
भोगप्रदानपटवे त्रिगुणात्मकाय ।
अव्याकृताय भवभावनकारणाय
वन्दे स्वरूपभवनाय सदाजराय ।।६१
व्योमानिलाग्निजलभूरचनामयाय
शब्दादिभोग्यविषयोपनयक्षमाय ।
पुंसः समस्तकरणैरुपकारकाय
व्यक्ताय सूक्ष्मवृहदात्मवते नतोऽस्मि ।।६२
इति विविधमजस्य यस्य रूपं ।
प्रकृतिपरात्ममयं सनातनस्य ।
प्रदिशतु भगवानशेषपुंसां ।
हरिरपजन्मजरादिकां स सिद्धिम् ।।६३

समस्त वैभवो का कर्त्ता है उस अव्यय परमपुरुष को नमस्कार है ॥६०॥ जो ज्ञान-प्रवृत्ति और नियमन का सम्मिलित रूप है, जो मनुष्यो को समस्त भोग प्रदान करता है, तीनों गुणो से युक्त और अव्याकृत है, जो संसार की उत्पत्ति का कारण है, उस स्वत सिद्ध और अजर भगवान् को नमस्कार करता हूं ॥६१। जो भगवान् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी रूप है, शब्दादि भोग्य विषयो को प्राप्त कराने वाला है और मनुष्यो का उनकी इन्द्रियों द्वारा उपकार करने वाला है उस सूक्ष्म और विराट स्वरूप को नमस्कार है ॥६२॥ इस प्रकार जिन नित्य तथा सनातन परमात्मा के प्रकृति-पुरुष भेद से अनेक रूप हैं वे भगवान् हरि मनुष्य मात्र को जन्म और जरा से विहीन मुक्ति प्रदान करे ॥६३॥

॥ विष्णु महापुराण समाप्त ॥

विष्णुपुराण का निष्पक्ष नैतिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक अध्ययन

विष्णुपुराण विविध विषयों का भण्डार है, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी उपयोगी तथ्यों का इसमें चयन किया गया है। पुराणकार ने परिस्थितियों का केवल एक पहलू ही प्रस्तुत नहीं किया है, अच्छे और बुरे दोनों पहलुओं पर विचार किया है। विष्णु पुराण कालीन भारत की सामाजिक दुर्दशा का भी विस्तृत वर्णन किया गया है और उसका सुन्दर, व्यावहारिक समाधान किया गया है, पतन के लक्षणों के चित्रण के साथ उत्थान के सूत्र भी दिए हैं। भारत के गौरवमय इतिहास के झलकों का भी खुले रूप में वर्णन है और भारत के मस्तक को ऊँचा उठाने वाली विभूतियों का भी उल्लेख है। मानव मन की कमजोरियों का दिग्दर्शन कराते हुए उनका हल भी ढूंढने का प्रयत्न किया गया है। दोषों, दुर्गुणों और कुरीतियों के दुष्परिणामों की ओर विशेष प्रकार से ध्यान दिलाया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। मानव जीवन के उत्थान के सिद्धान्तों का वर्णन है ही। उन्हें क्रिया रूप देने वाली साधनाओं को भी दिया गया है। कथाओं के माध्यम से जीवन जीने की कला सिखाई गई है। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विरोधी स्वभाव के प्रभावशाली व्यक्तित्वों को उभारा गया है, उनके कर्तृत्वों के परिणामों से ही पाठक निर्णय कर सकते हैं कि उन्हें किस मार्ग पर चलना उपयुक्त रहेगा। पुराणकार ने साम्प्रदायिक एकता भी बनाने का प्रयत्न किया है। जिस तरह से सब पुराणों में पुराण से सम्बन्धित देवी देवता को ही सबसे बड़ा और श्रेष्ठ बताया गया है और दूसरों को हीनतापूर्वक उनकी उपासना करते हुए दिखाया गया है, ऐसा विष्णु पुराण में नहीं है। इसमें अन्य देवी देवताओं के साथ उचित न्याय किया गया है। सार यह है कि मानव जीवन के सामाजिक, नैतिक और

आध्यात्मिक उत्थान के लिये जिन तथ्यों और विचारों की आवश्यकता रहती है। वह सभी इसमें प्रस्तुत हैं।

हम अब विष्णुपुराण का निष्पक्ष अध्ययन करेंगे।

सामाजिक दुर्दशा—

पुराणों की परम्परागत शैली में विष्णु पुराण में भी पाँचो लक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र उपलब्ध होते हैं। विष्णुपुराण का निर्माण लोकहित की दृष्टि से किया गया है। राष्ट्र का हित इसी में होता है कि जनता के समक्ष देश में फैल रहे सामाजिक रोगों, उत्पातों और कुरीतियों को रखा जाए और स्पष्ट रूप से बताया जाए कि किस प्रकार राष्ट्र पतन की ओर जा रहा है। लेखक लोकनायकों का आह्वान करता है कि वह उठें और अपने तप त्याग द्वारा देश का उत्थान करें। विष्णु पुराण के लेखक ने ऐतिहासिक वर्णनों के साथ (कहीं २ प्रतीक रूप में और कहीं २ अतिशयोक्ति शैली में) उस समय की सामाजिक दुर्दशा का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे विदित होगा कि पतन की राहें केवल कलयुग में ही नहीं बनी हैं हर युग में समाज का एक वर्ग दूषित रहा है जिसे सन्मार्ग पर लाने की आवश्यकता रही है। विष्णुकालीन भारत का चित्र पुराणकार ने बड़ी ही सरलता से खींचा है। विष्णु पुराण से ही कुछ उदाहरण देकर हम इसे स्पष्ट करेंगे।

राजाओं का अन्याय और अत्याचार—

राजा वेन के राज्यकाल का वर्णन करते हुए (१।१२।१३।२४) में कहा गया है जब वह वेन राजपद पर अभिषिक्त हुआ था तभी उसने विश्व भर में यह घोषित कर दिया था कि मैं भगवान् हूं, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता एवं स्वामी मैं ही हूं। इसलिये अब कभी कोई भी मनुष्य दान और यज्ञादि न करे। हे मैत्रेयजी ! उस समय वे महर्षिगण उस राजा वेन के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा करके सान्त्वनामयी मीठी वाणी से कहा "हम तुम्हारे राज्य, प्रजा तथा शरीर के हितार्थ जो कहते हैं,उसे श्रवण करो।

तुम्हारा कल्याण हो, हम यज्ञेश्वर देवदेव भगवान् विष्णु का पूजन करेंगे, उसके फल के छठे अंश का भाग तुम्हें भी प्राप्त होगा। यज्ञों के द्वारा भगवान् यज्ञ पुरुष सन्तुष्ट होकर हमारे साथ ही तुम्हारी भी अभिलाषाएँ पूरी करेंगे। जिन राजाओं के राज्यकाल में यज्ञेश्वर भगवान् का यज्ञानुष्ठानों द्वारा पूजन होता है, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।" यह सुनकर वेन ने कहा—"मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो। तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है? ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा अथवा अन्य जो भी देवता शाप या वर देने में समर्थ हैं, उन सभी का निवास राजा में होने से राजा ही सर्वदेवमय होता है। हे द्विजगण! यह जानकर मेरे आदेश का पालन करो, किसी को भी दान यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! जैसे स्त्री का परम धर्म पतिसेवा है, वैसे हो आपका परमधर्म मेरी आज्ञा का पालन है।"

इससे उस समयमे राजाओ की नादिरशाही का परिचय मिलता है। वह राज्य सत्ता का दुरुपयोग किसी भी तरह कर सकते थे। जनता को कोई आवाज न थी। राजा जनता को इतना दबाकर रखते थे कि भले ही उन पर हजारो जुल्म ढाये जाएँ,वह चू भी नही कर सकती थी,जनता की कोई विचार-धारा और बल नही था, वह राजा के नेतृत्व को ही सौभाग्य मानती थी। इसीलिए उस समय के राजाओ मे यह साहस उत्पन्न हो जाता था कि वह अपने को भगवान् घोषित कर देते थे और जनता से भगवान् की तरह पूजा और सम्मान के आकांक्षी रहते थे। जिस देश की जनता की आत्मा मर चुकी हो, वह अपने नेता का अन्धानुकरण करती है भले ही उनके आत्म विवेक का गला घुट रहा हो। जो जनता राजा के इशारो पर नाचती है,उसका उत्थान कैसे हो सकता है? यह प्राकृतिक नियम है कि कमजोर को हर कोई दबाता है। इसलिए निर्बलता को पाप माना गया है। वेन के समय मे जनता निर्बल थी। उनकी निर्बलता ने ही वेन को अन्याय और अत्याचार करने के लिये उत्साहित किया। यदि उस समय के लोग कुछ भी विरोध करते तो उनके अत्याचार इस सीमा तक न बढ़ पाते।

इसी अध्याय में लूट पाट का वर्णन करते हुए कहा गया है "फिर महर्षियों ने सर्वत्र बड़ी धूल उड़ती हुई देखकर अपने पास खड़े लोगों से पूछा कि यह क्या है ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि इस समय राष्ट्र राजा रहित हो गया है इसलिए दीन दुःखी मनुष्यों ने धनवानों को लूटना प्रारम्भ कर दिया है। हे मुनिवरो ! उन अत्यन्त वेगवान लुटेरों के उत्पात से ही यह धूल उड़ रही है।" (१।१३।३०-३२)

अन्याय स्वयं में एक निर्बलता है, उसकी भी एक सीमा होती है। वह स्थिर नहीं रह सकता। अन्यायी अपने अन्याय से ही अपने अस्तित्व को नष्ट करता है। वेन की भी यही दुर्दशा हुई। जब राष्ट्र में भुखमरी फैलती है और शासन कुछ भी सहायक सिद्ध नहीं होता तो भूखी जनता लाचार होकर जमाखोरों को ढूँढती है। परिस्थितियाँ उन्हें बाध्य करती हैं कि वह क्षुधा तृप्ति के लिये धनवानों को लूटने का साहस करे, यही उस समय होने लगा था।

राजाओं की तानाशाही का बड़ा ही मार्मिक उल्लेख पुराणकार ने किया है। ऐसा लगता कि राज्य शासन के संचालन के लिये उन्होंने मानवता के सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देदी थी। हिरण्यकशिपु काल में वेन के कुशासन के सभी लक्षण तो देखने को मिलते ही हैं, इसके अतिरिक्त ऐसे हृदय विदारक दृश्य दिखाई देते हैं जो पशुता, क्षुद्रता और विवेकहीनता की सीमाओं का उल्लंघन कर गये हैं। जनता पर तो इतिहास में सैकड़ों राजाओं ने अन्याय किया है परन्तु यह केवल एक ही उदाहरण है कि यदि उसकी अपनी संतान विवेक संगत बात करती है तो उसको मृत्यु तुल्य दण्ड दिये जाएँ। वह किसी का भी विरोध सहन नहीं करते थे चाहे वह विरोध करने वाला उनका अपना ही पुत्र क्यों न हो। हल्का-सा विरोध उनके क्रोध के संतुलन को अव्यवस्थित कर देता है और वह बड़े से बड़ा दण्ड देने के लिये तैयार हो जाते हैं। (१।१६।१-१०) के अनुसार जब प्रह्लाद ने भगवान् विष्णु को अपना इष्ट बताया तो उसे अग्नि में भस्म करने का प्रयत्न किया गया, शस्त्रास्त्रों से आघात पहुँचाये गये, बाँध कर समुद्र के जल में डाला गया, पत्थरों की बौछार से उसका

शरीरान्त करने का प्रयास किया गया। पर्वतो मे गिराया गया, सर्पो से डसवाया गया, दिग्गजो के दाँतो से रुँधवाया गया, दैत्य गुरुओ ने उस पर कृत्या चलाई शम्बासुर ने अपनी मायाओ को प्रयुक्त किया, रसोइयो ने विष दिया।"

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जो अपने पुत्र पर इतने अत्याचार कर सकता है, वह जनता को कितने कष्ट पहुँचाता होगा, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। उसके राज्य मे कोई भी व्यक्ति अपने जान व माल को सुरक्षित नही समझता होगा क्योकि क्या पता ऐसे कुशासक के कुविचारो का वेग किधर को प्रवाहित होने लगे और उधर ही उत्पातो के समूह लग जाएँ। जब उनकी मात्र आज्ञा ही नियम है तो क्षणभर मे हजारो सर धड से अलग किए जा सकते हैं। ऐसे अत्याचारी राजा की प्रजा कभी भी अपने को सुरक्षित नही मान सकती है। वह समझते होगे, कभी भी बिना कारण दण्ड मिल सकता है। ऐसा कुशासन तो विश्व के इतिहास मे कभी नही देखा गया।

ब्राह्मण राष्ट्र निर्माता होते हैं। वह सामाजिक रोगो की चिकित्सा करके राष्ट्र को स्वस्थ शासन देते हैं, परन्तु उस समय के ब्राह्मण भी अन्याय का पक्षपात करते देखे जाते है। ब्राह्मण को प्राचीन काल मे निष्पक्ष और साहसी नेता माना जाता था क्षत्रिय राजा ब्राह्मणो के परामर्श से शासन का सचालन किया करते थे, उन्हे ब्राह्मणो की अवज्ञा करने का साहस नही होता था। परन्तु इस समय के ब्राह्मणो का साहस भी विलुप्त होगया था। वह अपने राजा को विवेक की शिक्षा नही दे पाए, उसके अत्याचारो के विरुद्ध एक शब्द भी नही कह सके। आश्चर्य तो यह है कि देवताओ ने अपना देवत्व छोड कर दैत्यपन स्वीकार कर लिया, आसुरी कार्यो का अनुमोदन ही नही किया वरन् उसमे भाग लेकर ब्राह्मणत्व पर कलक का टीका लगा लिया। विष्णु पुराण (१।१७।५१–५२) मे वह राजा से कहते हैं कि 'यदि प्रह्लाद हमारे कहने से भी विपक्षी के पक्ष का त्याग न करेगा, तो हम इसे नष्ट करने के लिए किसी प्रकार भी व्यर्थ न होने वाली कृत्या का प्रयोग करेगे।"

कंस के अत्याचारों का भी विस्तृत वर्णन इस पुराण में है। अपने पिता को कैद में डाल कर स्वयं राज्यसत्ता हथियाने का विश्व के इतिहास में औरंगजेब का उदाहरण मिलता है। इस कुप्रवृत्ति का प्रारम्भ शायद कंस से ही होता है। भारतीय संस्कृति का अनुयायी होकर जब वह अपने जन्मदाता को जेल की काल कोठरी में सड़ने के लिए बाध्य कर सकता है तो जनता को निर्भय रूप से दबाने में उसे क्यों दर्द होगा? स्वाभाविक है कि पापी का मन आशंकाओं से ओत प्रोत रहता है, वह हर क्षण किसी भी दुर्घटना के लिए भयभीत रहता है। भले ही वह ईश्वरीय सत्ता को न स्वीकार करता हो परन्तु उसके कुकृत्य भय के जन्मदाता बनते हैं और बुरे भविष्य के सूचक होते हैं। कंस को भी निरन्तर यही आशंका रहती थी कि उसे कोई अज्ञात शक्ति अवश्य नष्ट कर देगी। आकाश वाणी के माध्यम से बताया गया है कि देवकी के उदर से जन्मा बालक तो उसका काल सिद्ध होगा। वह अपनी सुरक्षा के लिए निर्मम हत्याओं पर उतारू होगया। अनेकों शिशुओं का अन्त करने पर भी उसकी प्यास न बुझी। माता-पिता और पत्नी के बाद बहिन का सम्बन्ध प्रिय होता है। भाई बहिन की सुरक्षा का संकल्प रक्षाबन्धन पर करता है। उसके बच्चों को अपने बच्चों के तुल्य मानता है। जो व्यक्ति अपनी बहिन के बच्चों को मौत के घाट उतार सकता है, वह अपने प्रजाजनों का क्या मूल्यांकन कर सकता है? ऐसा निर्दयी राजा तो मच्छरों और मक्खियों की तरह लोगों को मरवाता होगा। ऐसे शासक के राज्यकाल में प्रजा सदैव अपने सर को तलवार नीचे ही रखा समझती है।

कंस के अत्याचारों का वर्णन पंचम अंश के कई अध्यायों में है। (५ । ३ । २३-२५) में है कि जब वसुदेव कृष्ण को नन्द के यहाँ छोड़ आये और उनके स्थान पर एक कन्या ले आए तो कंस ने उसे मार दिया। "इधर कन्या को लेकर आये हुए वसुदेवजी ने उसे देवकी के शयनागार में शयन करा दिया और फिर पहिले के समान ही स्थित हो गये और उन्होंने तुरन्त ही देवकी के सन्तान उत्पन्न होने की सूचना दी। यह सुनते ही कंस ने शीघ्रता

पूर्वक वहाँ जाकर उस कन्या को पकड लिया और देवकी के रोकने पर भी उसे शिला पर पछाड दिया।"

इसके बाद उसने यह राजाज्ञा प्रसारित की पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हो, उन्हे देवताओ के अहित के निमित्त मार डालना चाहिये। देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि तेरी मृत्यु कही अन्यत्र उत्पन्न हो चुकी है। इसलिये पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालकों पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक बलवान बालक प्रतीत हो, उनका वध कर देना चाहिये। (५।४।११-१३)

कंस ने नवजात शिशुओ के वध के लिये ऐसी स्त्रियो की नियुक्ति की थी जो अपने स्तनो पर विष लगा लेती थी और स्तनपान करते ही बालक मर जाता था। कृष्ण के वध के लिये पूतना ने प्रयत्न किया। (५।५।७) कृष्ण को गोद मे उठाया और उन्हे अपना स्तन-पान कराने लगी। ऐसा लगता है कि कस ने शिशु वध का राष्ट्र व्यापी अभियान चलाया था और उसकी सफलता के लिये हर सम्भव उपाय अपनाये गये थे। शिशु वध को व्यापक योजना का सचालन केवल कस ने ही किया था। इस स्थिति मे माता-पिता अपने बच्चो को घर की कैद मे ही बन्द रखते होगे। घर की चारदीवारी उनके लिये जेल के समान ही बन जाती होगी क्योकि राज्यकर्मचारियो को पता चलने पर किसी भी क्षण उन पर मुसीबत आ सकती थी। कंस अपने इस हत्याकाण्ड के लिए जगद्विख्यात होगये; क्योकि शिशुओ की निर्मम हत्याओ का श्रेय केवल उसे ही प्राप्त हुआ है। ऐसे जालिम शासको का आज नाम निशान भी नही है। इस दृष्टि से तो आज का बुरा शासन भी उस समय के शासन से सैकड़ो गुना अधिक स्वच्छ, स्वस्थ व श्रेष्ठ है।

हत्याएँ—

छोटी छोटी बातो पर हत्याएँ अब भी होती हैं और पहले भी होती थी। हत्या से मानव मन की क्रूरता का परिचय मिलता है। यह मूल्यवान मानव शरीर जो आत्म-विकास के लिये प्राप्त हुआ है, उसे क्षण भर मे नष्ट कर देना

महान पाप है। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश के १३ वें अध्याय में स्यमन्तक मणि पर अनेकों हत्याएँ होने का वर्णन है। सत्राजित के पास मणि थी, शतधन्वा ने सोते हुए उसकी हत्या कर दी। (४।१३।७१) पिता की हत्या से अत्यन्त रोष में भरकर सत्यभामा ने कृष्ण को शतधन्वा का वध करने के लिये प्रेरित किया। कृष्ण ने बलराम से कहा "अब आप यहाँ से उठकर रथ पर बैठिए और शतधन्वा का वध करने के प्रयत्न में लग जाइये।" (४।१।३।८०)।

माताओं द्वारा पुत्रों की हत्या करने का भी अनोखा उदाहरण है। "भरत की तीन पत्नियाँ थी। उन्होंने नौ पुत्र उत्पन्न किये। भरत ने जब उन्हें अपने अनुरूप न बताया तो उनकी माताओं ने अपने परित्याग किये जाने की आशंका से, उन पुत्रों की हत्या कर दी।' (४।१२।१४–१५) पिता जैसे योग्य पुत्र उत्पन्न न हो, तो कोई उन्हें मार नहीं देता। माता का कोमल हृदय तो कभी सहन नहीं कर सकता। यह निर्दयता की सीमाओं का उल्लंघन है।

नरमांस का भक्ष—

पशुओं का मांस खाकर लोग अपनी पशुता का परिचय देते तो हैं। दानवता की चरम सीमा तक पहुंचने वाले जो कृत्य उस समय होते थे—वह दुष्कृत्य है नरमांस का भक्ष। यह एक कथात्मक उदाहरण से स्पष्ट है। सौदास ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। जब यज्ञ के समाप्त होने पर आचार्य वसिष्ठ जी वहाँ से चले गये तब एक राक्षस वसिष्ठ जी का रूप धारण कर वहाँ आकर कहने लगा—यज्ञ की समाप्ति पर मुझे मनुष्य-मांस युक्त भोजन कराया जाना चाहिये, इसलिए तुम वैसा भोजन बनवाओ, मैं क्षण भर में लौट कर आता हूं। यह कहता हुआ वह वहाँ से चला गया। फिर वह रसोइये का रूप धारण कर राजाज्ञा से मनुष्य मांसमय भोजन बना कर राजा के समक्ष लाया। राजा ने उसे स्वर्णपात्र में रखा और वसिष्ठजी के आने पर उसने उन्हें वह नरमांस निवेदन किया। तब वसिष्ठ जी ने मन में विचार किया, यह राजा कितना कुटिल है जो जानते हुए भी मुझे यह मांस दे रहा है। फिर यह जानने के लिये कि यह किस जीव का मांस है, उन्होंने समाधि का आश्रय लिया और

ध्यानावस्था मे उन्होने जान लिया कि मनुष्य का मांस है। तब तो वसिष्ठजी अत्यन्त क्रोधित और क्षुब्ध मन हुए और उन्होने तत्काल ही राजा को शाप दे डाला कि तूने इस अत्यन्त अभक्ष्य नर मांस को मेरे जैसे तपस्वी को जान-बूझ कर आहार हेतु दिया है, इसलिये तेरी लोलुपता नरमास मे ही होगी। (४ । ४ । ४५५३)

नरभक्षी राक्षसो के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। विष्णु पुराण (४।४।५९–६३) के अनुसार "एक दिन उस राक्षसत्व प्राप्त राजा ने एक मुनि को ऋतुकाल मे अपनी पत्नी से रमण करते हुए देखा। उस अत्यन्त भीषण राक्षस रूप वाले राजा को देखकर भय से भागते हुये उन दम्पति मे से उसने मुनि को पकड लिया। उस समय मुनि पत्नी ने उससे अनेक प्रकार अनुनय विनय करते हुये कहा—हे राजन् ! प्रसन्न होइये। आप राक्षस नही, इक्ष्वाकु-वश के तिलक रूप महाराज मित्रसह हैं। आप सयोग सुख के ज्ञाता हैं, मुझ अतृप्ता के पति की हत्या करना आपके लिये उचित नही है। इस प्रकार उस ब्राह्मणी द्वारा अनेक प्रकार से विलाप किये जाने पर भी जैसे व्याघ्र अपने इच्छित पशु को जगल मे पकड कर भक्षण कर लेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण को पकड कर उसने खा लिया।"

माँस, मदिरा का सेवन और जुए की कुप्रवृत्ति—

राजवशो मे मास का सेवन होता था। पुराणकार ने लिखा है। "राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध का आरम्भ किया और अपने पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध योग्य अन्न लाने की आज्ञा दी। उसने उनकी आज्ञा मानकर धनुषबाण को ग्रहण किया और वन मे आकर मृगो को मारने लगा। उस समय अत्यन्त क्षुधार्त होने के कारण विकुक्षि ने उनमे से एक खरगोश भक्षण कर लिया और शेष मास पिता के समक्ष लाकर रखा।" (४।२।१५–१६)

मदिरापान के भी अनेको उदाहरण पुराण मे दिये गये हैं जिनसे विदित है कि उस समय मदिरा का प्रचलन था और उसे राजवश मे बुरा नहीं माना जाता था।

शतधन्वा से प्राप्त एक स्यमन्तक मणि अक्रूरजी के पास थी, उस पर काफी विवाद हुआ, उसे सभी हथियाना चाहते थे, बलरामजी की दृष्टि उस पर थी परन्तु उसे सुरक्षित रखने के लिये पवित्रता का जीवन व्यतीत करना आवश्यक था। इसलिए विवाद का निराकरण करते हुए कृष्ण ने कहा "यदि आर्य बलरामजी इसे अपने पास रखते हैं तो उन्हें अपने मदिरा पान आदि सभी भोगो को छोडना पडेगा।" (४।१३।१५७)।

"जब मनोहर मुख वाले बलरामजी वन मे घूम रहे थे, तब मदिरा की गन्ध पाकर उन्होने उसके पान करने को इच्छा की।" (५।२५।५) "एक दिन बलरामजी रैवतोद्यान मे रेवती और अन्य सुन्दरियो के साथ बैठे हुए मद्य पी रहे थे।" (५।३६।११) 'फिर कृष्ण बलरामादि सब यादव रथो पर चढकर प्रभास क्षेत्र गये। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सभी यादवो ने महापान किया।" (५।३७।३८–३९)।

यथा राजा, तथा प्रजा। जब राजा मदिरा का सेवन करते थे तो प्रजा भी अवश्य करती होगी।

कृष्ण और बलराम को जुआ खेलने वाला भी बताया गया है। यथा "प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध का विवाह सस्कार पूर्ण हो चुकने पर कलिंगराज आदि प्रमुख नरेशो ने रुक्मी से कहा—यह बलराम जी द्यूतक्रीडा मे चतुर न होते हुए भी उसके बडे इच्छुक रहते हैं।" (५।२८।१०–११) 'तब बल-मद से उन्मत्त हुआ रुक्मी उन राजाओ से बहुत अच्छा' कहकर सभा मे गया और बलरामजी के साथ द्यूतक्रीडा करने लगा।" (५।२८।१५) (५।३४–३५) मे श्रीकृष्ण को जुआ खेलते हुए दिखाया गया है।

अवैध सन्तान—

काम के वशीभूत होकर अवैध सतानो को उत्पन्न करने की भी घटनाओ का पता चलता है। "जब उर्वशी ने पुरुरवा को देखा तो उसके सुन्दर रूप को देखकर वह आकर्षित हुई। अन्य अप्सराओ ने भी उसके साथ विहार करने की इच्छा प्रकट की। एक वर्ष की समाप्ति पर जब राजा पुरुरवा पुनः वहाँ

पहुँचे तो उर्वशी ने उन्हे 'आयु' नामक एक शिशु प्रदान किया। फिर उसने उनके साथ एक रात्रि रहकर पांच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए गर्भ धारण किया।" (४।६।६८-७४)।

ब्रह्मा के पौत्र और अत्रि के पुत्र चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण किया और अनुचित रूप से व्यभिचार किया। इस पर घोर युद्ध हुआ और तारा बृहस्पति को मिल गई। तारा को गर्भ रह गया था। इस पर बृहस्पति ने तारा से कहा कि मेरे क्षेत्र मे दूसरे के पुत्र को धारण करना अनुचित है। इस प्रकार की धृष्टता ठीक नही है। इसे निकाल कर फेंक दो। तारा ने उस गर्भ को सीको की झाडों मे फेंक दिया। तारा ने स्वीकार किया कि यह गर्भ चन्द्रमा से है।" (४।६।२-२२)।

अवैध संतान की उत्पत्ति चरित्रहीनता का लक्षण है।

कामासक्ति और भोगलिप्सा—

कामासक्ति और भोग की कुछ विचित्र घटनाएँ विष्णु पुराण मे दी गई हैं। 'एक बार सत्यधृति (अहिल्या के परपौत्र) ने अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी को देखा तो उसके प्रति कामासक्त होने से उनका वीर्य स्खलित होगया और सरकण्डे पर जा गिरा।' (४।१०।६५)।

विश्वामित्र की तरह कण्डु नामक ऋषि का एक अप्सरा के जाल मे फँसकर लम्बे समय तक भोगासक्त होने का वर्णन है। विवरण इस प्रकार है। (१।१५।११-२१) "प्राचीन काल मे वेदज्ञ ऋषियो मे श्रेष्ठ कण्डु नामक एक ऋषि हुए, जिन्होंने गोमती के सुरम्य तट पर घोर तपस्या की। तब इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिये प्रम्लोचा नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा नियुक्त की, जिसने उन महर्षि का चित्त चंचल कर दिया। उनके मोह जाल मे पड कर वे महर्षि सौ वर्ष से भी अधिक काल तक मदराचल मे भोगासक्त पड़े रहे। इसके पश्चात् एक दिन उस अप्सरा ने उन महर्षि से कहा—हे ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्ग लोक को प्रस्थान करूँगी, आप प्रसन्न होकर मुझे जाने की अनुमति दीजिये। उसकी बात सुनकर उसमे आसक्तिवान ऋषि ने कहा कि

अभी कुछ दिन और ठहरो। उनके अनुरोध पर वह अप्सरा सौ वर्ष तक और उनके साथ रहती हुई विविध भोगों को भोगती रही। तब उसने पुनः उनसे कहा कि अब मुझे स्वर्ग जाने की अनुमति दीजिये। इस पर ऋषि ने उससे कहा कि अभी कुछ दिन और ठहरो। इस प्रकार फिर सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब उसने मुसका कर मुनि से कहा—"भगवन्! अब मैं स्वर्गलोक को जाती हूँ।" यह सुन कर मुनि ने उसे अपने हृदय में लगा लिया और बोले कि वहाँ तो तुम्हें बहुत समय लगेगा, इसलिये अभी क्षण भर तो रुको। तब वह श्रेष्ठ कटि वाली अप्सरा उन ऋषि के साथ दो सौ वर्ष से कुछ कम समय तक और क्रीड़ा करती रही।

वह अप्सरा जब-जब ऋषि से स्वर्ग लोक को जाने की बात कहती, तब-तब कण्डु ऋषि उससे ठहरने का आग्रह करते।

जब काम तपस्वी ऋषियों को भी पतित करने में समर्थ है तो साधारण व्यक्तियों की क्या बिसात है। अतः इसे काम के प्रति सावधान रहने के लिये चेतावनी समझना चाहिये।

भोगों में लिप्त होने का राजा ययाति का उदाहरण अपने ढंग का एक ही है। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी उसने एक हजार वर्ष तक भोग करने की इच्छा व्यक्त की। दो पुत्रों ने तो उसे अपना यौवन देने से इन्कार कर दिया परन्तु पुरु ने ययाति की वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था दे दी यौवन प्राप्त कर के ययाति ने एक हजार वर्ष तक विश्वाची और देवयानी अपनी पत्नियों के साथ अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग किया। (४।१०—१।२२)

लम्बे समय तक भोगों में लिप्त होना एक दोष है और पुत्र का यौवन छीन कर वासना की तृप्ति करना दूसरा दोष है। पुत्र की खुशियों को छीनने वाले पिता इस घोर कलियुग में भी नहीं मिलते हैं।

चन्द्रमा ने देवगुरु पत्नी तारा से व्यभिचार किया। गुरु पत्नी शिष्य के लिये पूज्य होती है। उस पर आसक्त होना घोर पतित अवस्था का

परिचायक है। इन्द्र ने छल से अहिल्या को दूषित किया। कामासक्त पुरुष किसी भी अनुचित उपाय को अपनाने मे सकोच नही करता।

अश्लीलता का प्रदर्शन—

कृष्ण की रास लीला मे कुछ अश्लीलता की भी गन्ध आती है। "एक चतुर गोपी श्रीकृष्ण के गीत की प्रशंसा करते हुये अपने बाहुओ को पसार कर उन से लिपट गई।" "गोपियो के कपोलो को स्पर्श करती हुई श्री कृष्ण की भुजाएं उनमे पुलकावलि रूपी धान्य को उत्पन्न करने के निमित्त स्वेद रूपी मेघ हो गई।" (५।१३।५५)। "वे रास रस की रसिका गोपियाँ अपने पति, पिता, माता, भ्राता आदि के द्वारा रोकी जाने पर भी न रुकती और रात्रि मे कृष्ण के साथ रास विहार करती थी।" (५।१३।५६) "शत्रुओ के मारने वाले मधुसूदन भी अपनी कैशोरावस्था के भाव मे रात्रिकाल मे उन गोपियो के साथ विहार करते थे।" (५।१३।५०)।

बहुपत्नी-प्रथा—

आज तो किसी की एक से अधिक पत्नी नही होती है। यदि कोई विरला उदाहरण मिल भी जाए तो उसे असम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और समाज भी उसे हेय दृष्टि से देखता है। परन्तु विष्णुपुराण कालीन भारत ऐसा नही था। राजा प्राय विलासी और कामी होते थे, एक पत्नी से उनकी वासना की भूख नही मिटती थी इसलिए वह अनेको विवाह करते थे। इस पर उस समय कोई रोक नही थी और न बहु-विवाह ही बुरी दृष्टि से देखा जाता था। उदाहरण के लिए "ब्रह्मा जी ने अपनी दस कन्याएं धर्म के और तेरह कश्यप के साथ व्याह दी। फिर काल-परिवर्तन मे नियुक्त हुई अश्विनी आदि २७ कन्याएं चन्द्रमा को दी।" (१।१५—७७।७८) (४।६।६) मे चन्द्रमा को ब्रह्मा का पौत्र कहा गया है परन्तु यहाँ उन्हे दामाद बना दिया गया है।

"दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याएं उत्पन्न की, उनमे से दस धर्म को, १३ कश्यप को, २७ चन्द्रमा को और चार अरिष्टनेमि को व्याह दी।" (१।१५—१०३।४७)।

महर्षि सौभरि ने राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह किया (अंश ४, अध्याय २)

"राजा शशिविन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थीं जिन के दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए" (४।१२—४।५) ।

सात बहिनों का विवाह वसुदेव जी के साथ हुआ था । (४।१४।१४)

आनन्द दुंदुभि नाम वाले वसुदेव जी की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा, देवकी, नाम की अनेक पत्नियाँ थीं । (४।१५।१८)

इस मृत्युलोक में प्रकट हुए भगवान् वासुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुईं । उन सब रानियों के उदर से भगवान् के एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न हुए । (४।१५—३४।३५) ।

'भरत की तीन पत्नियाँ थीं । उन्होंने ९ पुत्र उत्पन्न किये ।" (४।१४।१४)

'कालिय की सैकड़ों नाग पत्नियाँ थीं ।" (५।६।१६) (स्मरण रहे कालिय नाग जाति के नेता थे) ।

"रुक्मिणी के अतिरिक्त श्री कृष्ण की सात रानियाँ थीं । इनके अतिरिक्त कृष्ण की १६००० रानियाँ और थीं ।" (५।२८—३।५)

सम्भव है उस समय स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या न्यून हो और एक से अधिक स्त्रियाँ रखने की स्वतन्त्रता हो ।

बहु संतान प्रवृत्ति—

आज देश की आबादी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है । आबादी का तीव्र गति से बढ़ना राष्ट्र की सब से गम्भीर समस्या होगई है । आबादी से सम्बन्धित खाद्य संकट ने अनेकों क्षेत्रों में अकाल की सी स्थिति उत्पन्न कर दी है । विदेशों से काफी तादाद में खाद्य सामग्री मंगवाने पर भी पूर्ति नहीं हो पा रही है । इसलिये आज अधिक संतान अभिशाप सिद्ध हो रही है क्योंकि इस महंगाई के युग में अधिक बच्चों का ठीक तरह से पालन पोषण सम्भव नहीं है ।

प्राचीनकाल मे स्थिति इसके विपरीत थी। आबादी कम थी। कृषि प्रधान देश होने के कारण खाद्य सामग्री आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होती थी, इसलिये लोग अधिक संतान उत्पन्न करने के आकांक्षी रहते है। यह विष्णु पुराण के कुछ उदाहरणो स स्पष्ट हो जाएगा —

"दक्ष प्रजापति के प्रसूति से २४ कन्याएँ उत्पन्न हुईं।" (१।७।२२)। "सुना जाता है कि फिर दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याऐं उत्पन्न की।" (१।१५।१०३)। "वैश्वानर के वे दोनो कन्याएँ मरीचि पुत्र कश्यप जी की पत्नियाँ हुईं जिनके साठ हजार पुत्र हुए।" (१।२१।८)। 'रैवत का पुत्र रैवत ककुद्मी हुआ जो अत्यन्त धार्मिक और अपने सौ भाइयो मे ज्येष्ठ था।" (४।१।६५)। "शतबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्धाता ने विवाह किया जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ उत्पन्न हुई।" (४।२।६६)। "कालान्तर मे उन राजकुमारियो के द्वारा सौभरि मुनि ने डेढ़ सौ पुत्र उत्पन्न किए।" (४।२।११२)। भगवान और्व ने सगर पत्नियो को वरदान देते हुए कहा।" तुम मे से एक से वंश वृद्धि करने वाला एक पुत्र उत्पन्न होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्रो की उत्पत्ति होगी।" (४।४।३)।

"रजि के अत्यन्त बली और पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए।" (४।६।१)। "राजा शशिबिन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थीं जिनसे दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे।" (४।१२।४।५)। "भगवान् वसुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुईं जिनके उदर म भगवान ने एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किय थे।" (४।१५—३४।३५)। "महर्षि च्यवन के वंशज सोमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुए।" (४।१६।७२)। धृतराष्ट्र द्वारा गान्धारी से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए।' श्री कृष्ण ने मुर के सात सहस्र पुत्रो का अपने चक्र की धार रूप ज्वाला मे पतंग के समान जला दिया।" (५।१८- "अत्यन्त बली भगवान ने नरकासुर के अन्तःपुर मे जाकर सोलह हजार कन्याओ को देखा।" (५।१८।३१)। "इसी प्रकार भगवान को

अन्य पत्नियों से भी अठाईस हजार आठ सौ पुत्रों का जन्म हुआ।" (५।३८।५)।

संख्या के सम्बन्ध में अतिशयोक्तियाँ इसमें अवश्य हैं परन्तु अधिक संतान उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का इससे पता चलता ही है। अधिक संतान भी उस समय गौरव का कारण मानी जाती होगी।

विवाह सम्बन्धी अनियमितताएँ—

विवाह सम्बन्ध से विकृतियाँ आज में पनपी हों, ऐसी बात नहीं है। पहले भी यह विद्यमान थी। युग की परिस्थितियों के अनुसार उनका रूप भले ही कुछ बदल गया हो। आज अश्लील फिल्मों को देख कर युवक युवतियाँ वासना की भूख से प्रेरित होकर प्रेम का नाटक करते हैं और अपने जीवन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस उत्तेजना में वह अपने धर्म संस्कृति और मान्यताओं को भी तिलांजलि देते हैं। अनेकों हिन्दू युवक और युवतियों ने इस अन्धे प्रेम के वशीभूत होकर अपनी संस्कृति को छोड़ने का निश्चय किया। प्राचीनकाल में भी इस प्रकार के विवाह होते थे।

राजा पुरुरवा—स्वर्ग की प्रधान अप्सरा उर्वशी पर आसक्त हो गये और उससे विवाह का, प्रस्ताव किया। (४।६–३६।४०)। उर्वशी ने अपनी कुछ शर्तें रखी जो राजा ने स्वीकार कर ली और विवाह हो गया।

उषा और अनिरुद्ध का उदाहरण भी इसका साक्षी है। उषा स्वप्न में एक युवक को देख कर उसे अपना जीवन साथी बनाने को उद्यत हो गई। इसके लिये उसने काफी प्रयत्न किया। देश-विदेश में अपने दूतों को भेजा होगा। जब युवक का पता चल गया तो उसे वहाँ मंगवाया गया और विवाह हो गया। यह गन्धर्व विवाह का अनोखा उदाहरण है।

अनमेल विवाह की भी ऐसी घटना दी गई है जिसकी पुनरावृत्ति आज जैसे घोर कलयुग में भी सम्भव नहीं है। राजा ज्यामघ की रानी शैब्या से कोई सन्तान नहीं थी परन्तु वह उसके भय से दूसरा विवाह नहीं कर सकता था। एक बार युद्ध में उसे एक सुन्दर राजकुमारी मिल गई। वह उस पर आसक्त

होगया और उससे विवाह की योजना बनाई ताकि उसको कोई सन्तान हो जाये। इसी दृष्टि से राजा ने राजकुमारी को अपने रथ पर बिठा लिया और सोचा कि शैव्या की अनुमति से इससे विवाह कर लूंगा। जब राजधानी पहुंचा तो शैव्या ने राजकुमारी के सम्बन्ध मे पूछा तो राजा ने भय से कहा कि यह मेरी पुत्रवधू है। इस पर शैव्या ने कहा कि मेरा तो कोई पुत्र नही है फिर आपकी पुत्रवधू कैसे हुई। राजा न डरते हुये कहा "मैं ने तुम्हारे होने वाले पुत्र के लिये अभी से यह पत्नी निश्चित कर दी है। रानी इस पर सहमत होगई। कुछ समय व्यतीत होने पर शैव्या के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ उसी से उस राजकन्या विवाह हुआ। (४।१२—२३।३७)।

लडका अभी इस ससार मे आया नही और युवती कन्या से उसका विवाह निश्चित हो गया। नियमानुसार तो लडके की आयु लडकी से ६-७ वर्ष अधिक होनी चाहिय। उस युवती की आयु यदि कम से कम १५ वर्ष मानी जाये तो भी वह पति से १६ वर्ष बडी हो गई क्योकि उसके आने के बाद शैव्या ने गर्भ धारण किया था। वृद्धो के साथ तो छोटी आयु की कन्याओ के विवाह होते देखे गये हैं परन्तु बडी आयु की लडकियो के साथ छोटी आयु के लडको के विवाह कम ही सुनने मे आते है। यह घटना सामाजिक पतन की ही सूचक है।

हिन्दू सस्कृति मे सपिण्ड विवाहो का निषेध है परन्तु कृष्ण की आज्ञा से वह सम्पन्न हुए है। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने रुक्मी की कन्या की कामना की और उस कन्या ने भी प्रद्युम्न का स्वयंवर मे वरण किया। (५।१८।६) रुक्मी—कृष्ण-पत्नी रुक्मिणी का भाई था। इसका अर्थ हुआ प्रद्युम्न ने अपने मामा की कन्या से विवाह किया जो आज यहा भी सम्भव नही है। प्रद्युम्न ने उस रुक्मी सुता मे अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न किया। श्री कृष्ण ने रुक्मी की पौत्री के साथ उसका विवाह किया। श्रीकृष्ण से द्वेष होते हुये भी रुक्मी ने अपने दौहित्र को अपनी पौत्री देने का निश्चय कर लिया। हिन्दुसस्कृति मे यह विवाह वैध नही है परन्तु हुए हैं और वह भी श्रीकृष्ण के सरक्षण में।

ऊँच नीच भेद-भाव—

ऊँच-नीच के भेदभाव मानव के अपने ही बनाये हुये हैं। भगवान् ने सब को समान अधिकार देकर पृथ्वी पर अवतरित किया है। ईश्वर द्वारा बनाई हुई जितनी वस्तुए हैं, सभी प्राणी उनका समान रूप से उपभाग करते हैं। सूर्य की किरणें, वायु, जल आदि किसी जाति या प्राणी विशेष के साथ किसी बात का भी पक्षपात नहीं करते। प्राकृतिक वस्तुओं का समवितरण प्रेरित करता है कि हमे हर प्राणी के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये। जातियो और वर्णों के भेदभाव आपसी संघर्षों की उत्पत्ति के ही कारण बनते हैं। हिन्दू संस्कृति मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र-चार वर्ण कार्य की सुविधा की दृष्टि से बनाये गये हैं। बडे-छोटे की दृष्टि से नही। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हैं। महाभारतकार का कहना है कि पहले यहाँ केवल एक ब्राह्मण वर्ण ही था। शान्ति पर्व अ० १८८ के श्लोक १० मे भृगु ने कहा है 'वर्णों की कोई विशेषता नही। इस समस्त ससार का ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणमय ही बनाया है पश्चात् कर्मो के अनुसार वर्ण बने।" भागवतकार का भी यही कथन है।, "सर्व प्रथम एक ही सर्ववाङ्मय प्रणव, एक ही अद्वैत नारायण, एक ही अग्नि और एक ही वर्ण था।" (६।१४) भगवान ने गीता (४।१३) मे भी कहा है कि मैंने गुण कर्म के विभाग के अनुसार ही चार वर्ण उत्पन्न किये हैं। हर वर्ण को अपने धर्म और कर्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करना चाहिये। यही भगवान् ने आदेश किया।

जिन जातियो ने समानता के सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप दिया, वह तीव्र गति से बढती गई और अब भी बढ रही हैं। परन्तु जहाँ ऊँच-नीच के रोग ने जन्म लिया, उसका ह्रास होता चला गया। दुर्भाग्य से हिन्दू जाति का एक यह विशेष अवगुण रहा है। कुछ कुण्ठित बुद्धि के शास्त्रकारो ने भी इसका समर्थन किया और उसके आधार पर यह रोग व्यापक रूप से फैला। शूद्रो को छोटा व घृणित समझ कर उनकी घोर उपेक्षा की गई, उनसे अधिकार छीन लिये गए, समाज मे उनको अपने साथ बैठने तक नही दिया गया, जहाँ तक हो सका, उन्हे दबाया गया। अन्य सम्प्रदायो ने इस कमजोरी का लाभ

उठाया। उन्हे गले लगाया गया और सभी प्रकार की सुविधायें दी गई। भारत मे सर्व प्रथम १७०० मुसलमान आये परन्तु आज उनकी सख्या करोडो मे है। उपेक्षित जातियों का धर्म परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है। सारे दक्षिण पूर्व एशिया में हिन्दुओ का राज्य था, परन्तु कुण्ठित विचारधारा से धीरे-धीरे सभी राज्य समाप्त हो गये, आज उनके अवशेषो को देख कर ही सन्तुष्ट होना पड़ता है।

वर्णों मे भेद होने के कारण खानपान मे भी भेद हो गया। अपने को ऊँचा समझने वाला वर्ण दूसरे के हाथ का बनाया भोजन नही करता। दूसरे वर्णों का क्या एक वर्ण मे ही विभिन्न प्रकार के भेदो ने जन्म लिया और खानपान के नियम बन गये। इन विषयो का उल्लेख होने पर विवाद उठ खडे होते हैं। विष्णु पुराण (५।३७।४१।४५) के अनुसार यादवो मे भी यह मतभेद थे और उनका नाश इसी कारण से हुआ। पुराणकार ने कहा है—'मेरा पदार्थ शुद्ध है, तेरा भोजन ठीक नही। इसी प्रकार विवाद करते हुए उन यादवो मे सघर्ष होने लगा। तब वह दैवी प्रेरणा से परस्पर शस्त्र प्रहार करने लगे और जब शस्त्र भी समाप्त हो गये, तो उन्होने निकटवर्ती क्षेत्र से सरकण्डे ग्रहण किये। वह सरकडे वज्र जैसे लग रहे थे, उन्ही के द्वारा वे परस्पर मे आघात-प्रत्याघात करने लगे।"

यह कुप्रवृत्ति आज भी विद्यमान है, हिन्दू सस्कृति के उत्थान के लिये इसका जड से उन्मूलन होना आवश्यक है।

बड़ों का अनादर—

यदुवश के नाश का कारण बडो के प्रति अशिष्टता का प्रदर्शन बताया गया है। वर्णन इस प्रकार है—

"एक बार यादवो के बालको ने पिण्डारक क्षेत्र मे विश्वामित्र, कण्व और नारदादि महर्षियो को देखा। तब उन्होंने जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री वेश मे सजा कर उन मुनियो से प्रणाम करके पूछा कि—'इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये इसके क्या उत्पन्न होगा ?

यादव बालकों की हँसी को ताड कर उन महर्षियों ने क्रोध पूर्वक कहा—इसके मुसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवों के नाश का कारण हो जायगा। मुनियों के ऐसा कहने पर उन बालकों ने राजा उग्रसेन को जाकर सब वृतान्त यथावत् सुनाया। उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण करा कर समुद्र में फिकवा दिया, जिससे बहुत से सरकंडे उत्पन्न हो गये। उस मूसल का भाले की नोक जैसा एक भाग चूर्ण करने से रह गया, उसे भी समुद्र में डलवा दिया था, उस भाग को एक मछली ने निगल लिया। मछेरों द्वारा पकड़ी गई उस मछली के चीरने पर निकला हुआ मूसल का वह टुकड़ा जरा नामक व्याध ने उठा लिया। (५।३७।६।१४)

यही श्री कृष्ण के पञ्चभौतिक शरीर को नष्ट करने का कारण बना। जब यादव आपस में लड़ने-झगड़ने लगे तो इन्हीं सरकंडों से एक दूसरे को मारा और यदुवंश का नाश हुआ।

इस उदाहरण से यह शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया है कि जब समाज इतना पतित हो जाता है कि वह सामान्य शिष्टाचारों का भी पालन नहीं कर सकता, तो इसे उसके भावी नाश का ही लक्षण समझना चाहिए। साम्ब के पेट से ऋषियों के शाप से मूसल निकला या नहीं, इस विवाद में पड़ने से कोई लाभ नहीं। हमें तो यह देखना है कि जिन बच्चों को इतनी भी नैतिक शिक्षा न दी जाती हो कि उन्हें अपने बड़ों के साथ किस नम्रता और सम्मान का व्यवहार करना चाहिए, वह अपना भौतिक विकास कुछ भी करलें आत्मिक प्रगति की ओर वह एक पग भी नहीं बढ़ सकते। पुराणकार की दृष्टि से जब समाज में अशिष्ट विचारधारा का व्यापक प्रसार हो जाता है, तो उस समाज को नष्ट हुआ ही समझना चाहिए।

अपहरण—

बलपूर्वक अपहरण अन्याययुक्त कार्य है, आज भी हम नित्य समाचार पत्रों में इसे पढ़ते रहते हैं। परन्तु प्राचीन काल में भी ऐसी घटनायें होती थी। यह राज्य शासन की अव्यवस्था की सूचक हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

"उर्वशी और पुरुरवा के मध्य हुई प्रतिज्ञा को जानने वाले विश्ववसु ने एक रात्रि में गन्धर्वों के साथ पुरुरवा के शयनागार में जाकर उसके एक मेष का अपहरण कर लिया। तब उर्वशी ने कहा कि मुझ अनाथ के पुत्र का अपहरण करके कौन लिये जा रहा है?" (४।६।५३)। "जब विवाह होने में एक दिन शेष था तब श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया।" (५।२७।६)। "अर्जुन के देखते-देखते ही उन अहीरों ने एक एक स्त्री को घसीट-घसीट कर हरण कर लिया।" (५।३८।२६)। "एक बार जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयंवर से बलपूर्वक हर लिया था।" (५।३५।४)

लोभ के दुष्परिणाम—

लोभ के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालने वाली घटनाओं का भी यदा-कदा वर्णन है। राजा सत्राजित के पास एक स्यमन्तक मणि थी। अक्रूर कृतवर्मा और शतधन्वा ने षड्यन्त्र रचा और मणि को प्राप्त करने के लिये शतधन्वा ने सोते हुए सत्राजित की हत्या कर दी (४।१३।७१)। सत्राजित सत्यभामा का पिता था। उसने श्री कृष्ण को प्रेरित किया कि वह उसके पिता की हत्या का बदला लें। शतधन्वा श्रीकृष्ण के भय से घर से भाग निकला। कृष्ण बलदेव ने उसका पीछा किया। कृष्ण ने चक्र से शतधन्वा का मस्तक काट दिया। एक मणि के लिये दो हत्यायें हुईं। इन हत्याओं के पीछे मणि को प्राप्त करने का लोभ ही था।

संक्षिप्त में यह विष्णु कालीन भारत की सामाजिक दुर्दशा का पुराण के ही काण्डों में चित्रांकन किया गया है। इस से उस समय की सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

—:o:—

सुधार और आसुरी शक्तियों का विनाश

पिछले अध्याय मे विष्णु पुराण मे भारत की सामाजिक दुर्दशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस दुर्दशा को ऐसे ही बने रहने दिया गया है, ऐसी बात भी नहीं है। अनेको प्रकार के सुधार किये गये, आसुरी शक्तियो के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया गया और देवरत्न पुष्ट किया गया, निरकुश राजाओ का विरोध किया गया, उनके शासन को बदला गया और राष्ट्र मे हर प्रकार की शान्ति बनाए रखने का प्रयत्न किया गया। जहाँ पतन के लक्षण मिलते हैं। वहाँ उत्थान की व्यावहारिक रूप रेखा भी देखने की उपलब्ध होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है —

ऐसा लगता है कि कृषि का विकास राजा पृथु के काल मे ही हुआ और नगरो की बसाने की व्यवस्था का समय भी वही है। विष्णु के पुराण (१।१३।८३ ८८) मे कहा है " राजा पृथु ने अपने धनुष की कोटि से हजारो पर्वतो को उखाड-उखाड कर एक ही स्थान पर एकत्र कर दिया। इस से पहले पृथ्वी समतल नही थी तथा पुर, ग्राम आदि का विभाग भी नही हुआ था। उस समय अन्न, कृषि, व्यापार आदि का कोई क्रम नही था। इसका आरम्भ पृथु के शासन काल मे ही हुआ। जहाँ-जहाँ पृथ्वी समतल हुई, वही-वही प्रजा जा बसी। उस समय तक केवल फल मूलादि का आहार किया जाता था। उस समय राजा पृथु ने स्वायभुव मनु को बछडा बनाया और अपने हाथ से पृथ्वी रूपिणी गौ से सब शस्यो का दोहन किया। उमी अन्न के आधार पर अब प्रजा जीवन यापन करती है।"

इससे पूर्व पृथ्वी और पृथु का सवाद है। पृथु जनता के हित के लिये पृथ्वी का बध करना चाहते है। पृथ्वी भयभीत होकर कहती है मैंने जिन औषधियो को अपने मे लीन कर लिया है, यदि आप चाहे तो मैं उन्हे दूध रूप मे दे सकती हूँ। (१।१३।६७)। इससे भूमि सुधार की वृहद् सफल योजनाओ का परिचय मिलता है।

जब राजा वेन के समय में शासन मे घोर अव्यवस्था फैली और दीन दु खी मनुष्यो ने धनवानो को लूटना आरम्भ कर दिया (१।१३।३१) तो मह-

षियो ने परामर्श किया और वेन को दांये हाथ को मथकर पृथु को उत्पन्न किया (१।१३।३१)। जब ब्राह्मणों ने देखा कि वेन जुल्म ढा रहा है तो वेन के स्थान पर योग्य शासक को नियुक्त किया गया।

पृथु की सुव्यवस्था का प्रतीकात्मक रूप मे वर्णन करते हुये कहा गया है "उनके समुद्र मे जल स्थिर होकर रहता था, और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे। इसमे उनकी ध्वजा का कभी पतन नही हुआ। पृथ्वी बिना जोते बोऐ ही धान्य उत्पन्न करती और पकाती थी, चिन्तन मात्र से अन्न पक जाता था। गाऐं कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थी तथा पुष्प-पुष्प मे मधु भरा रहता था" (१।१३।८-५०)।

कृष्ण ने राष्ट्र मे अशान्ति उत्पन्न करने वाली आसुरी शक्तियों का दमन किया। कालिय नाग से उन्होंने युद्ध किया और उसे परास्त कर यमुना क्षेत्र से हटने के लिए बाध्य किया। नाग उस समय एक जाति थी और कालिय उस जाति का नेता था। वह जाति लूट मार कर जनता को परेशान करती थी। कृष्ण ने उन लोगो को अन्यत्र बसने के लिए बाध्य किया (पचम अश-अ० ८)।

कृष्ण बलराम ने धेनुकासुर का बध किया (५।८।६)। बलराम जी ने प्रलम्बासुर को यमपुर पहुँचाया (५।६।३६)। कृष्ण ने केशी दैत्य को समाप्त किया (५।१६।६-२०)। चाणूर मुष्टिक का अन्त किया (५।२०।७१)। कुवलिया पीड को परास्त किया (५।२०।३६)। फिर कस को पछाड कर उस के भी प्राण निकाल लिए (५।२०।८७)। कृष्ण और बलराम ने जरासध की सेना को पराजित किया (५।२२।८) और कैद से हजारो कन्याओं को छुडाया।

जब हिरण्यकशिपु के मस्तिष्क मे विकृति आई और वह अपने को ईश्वर मानने लगा तो भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर उसका वध किया (१।२०।३२)। कोई-नर-सिंह—मानवों म सिंह ही ऐसे कुमार्गियो का अन्त कर सकता है।

पुराणकार प्रेरित करते हैं कि जब-जब धर्म की हानि हो, अधर्म का बोलबाला हो, घोर सामाजिक अव्यवस्था फैल रही हो तो महान् आत्माएँ अवतरित होकर सुधार करती हैं।

भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा

भारतीय संस्कृति आदर्श संस्कृति है। सारे विश्व को सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा और प्रेरणा देने का श्रेय इसे ही प्राप्त है। इसकी उत्कृष्टता और आदर्शवादिता के कुछ उदाहरण विष्णु पुराण से चुनकर नीचे दे रहे हैं :—

राष्ट्रीय नेता–ब्राह्मण की कर्तव्य-निष्ठा–

प्राचीन वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण देश का नेता, कर्णधार और उन्नायक होता था, क्षत्रिय शासक इनके निर्देशन में ही शासन चलाते थे। वह तपस्वी त्यागी व निःस्वार्थी होते थे। राष्ट्र के रोगों का निरीक्षण करके उनका उपचार करना ही उनका कार्य होता था। वह ज्ञान के धनी देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाए रखते थे, अपने यजमान का चरित्र निर्दोष रखना तो वह अपना आवश्यक कर्तव्य मानते थे। जब-जब भी देश पर सङ्कट आया, उन्होंने उसे दूर करने के लिये प्रयत्न किये।

विष्णु-पुराण के अनुसार वेन एक निरंकुश, अहङ्कारी, नास्तिक राजा हुआ था। हिरण्यकश्यप की ही तरह भगवान् की अपेक्षा अपने सम्मान पर अधिक बल देता था। उसकी घोषणा थी–"मेरे आदेश का पूर्ण रूप से पालन करो, किसी को भी दान, यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! जैसे स्त्री का परम धर्म पति सेवा है, वैसे ही आपका परम धर्म मेरी आज्ञा का पालन है" (१।१३।२३–२४)। ब्राह्मणों ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह न माना और उसकी अनियमिततायें बढ़ती ही गईं, तब उन्होंने उसे मार डालने का निश्चय किया। ऐसा लिखा है कि "पहिले से ही मृत हुए उस राजा को मन्त्रपूत कुशों के आघात से वध कर दिया" (१।१३।२४)।

वेन की मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने वेन के दाएं हाथ को मथा, जिससे वेन पुत्र पृथु की उत्पत्ति हुई (१।१३।३८–३९) जिन्हें विधि पूर्वक राजाधिकार देकर अभिषिक्त किया गया (१।१३।४०)। उसके पिता ने जिस प्रजा को अप्रसन्न किया था, उसी प्रजा को उसने प्रसन्न किया (१।१३।४८)। पृ

के उन्नत राज्य के सम्बन्ध मे वर्णन है कि "उनके समुद्र मे चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हे मार्ग दे देते थे, इसस उनकी ध्वजा का कभी पतन नही हुआ। पृथ्वी जोते-बोये बिना ही अन्न उत्पन्न करती और पकाती थी, चिन्तन मात्र स ही अन्न पक जाता था, गौएँ कामधेनु के समान सर्व काम-प्रद थी तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था" (१।१३।४६-५०)।

राज्य मे सुशासन, सुधार और सुव्यवस्था स्थापित होने का श्रेय उन ब्राह्मणो को है जिन्होने शासन मे से अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले तत्वों को निकाल फेंका और ऐसे हाथो मे सत्ता सौंपी जो प्रजा के हितो का सच्चे अर्थों में सरक्षण करने वाले थे। इसमे राज्य मे सुधार हुए और प्रजा प्रसन्न हुई और उसे एक आदर्श राज्य की सज्ञा दी गई। आज ऐसे ब्राह्मणो का अभाव है। जब-जब देश ब्राह्मणहीन हो जाता है, तभी उस पर सङ्कट आता है, तभी सुशासन कुशासन मे परिवर्तित हो जाता है। आज यह परम्परा प्रायः नष्ट सी हो गई है। शासन मे स्वार्थपरता का बोलबाला होने के कारण वह प्रजा के हित की नही सोच सकता। ऐसे ब्राह्मण भी नही हैं, जो वेन को हटाकर पृथु जैसे शासको का नियुक्त करें। जब तक इस देश का ब्राह्मण पुन नही जागेगा, उसका उत्थान असम्भव ही है।

धार्मिक उदारता-

वैष्णव धर्म एक उदार धर्म है। इसमे ऊँच-नीच के कोई भेद नही है। इसमे किसी वर्ग को नीचा समझ कर उसकी उपेक्षा नही की जाती वरन् सबको गले से लगाया जाता है। सबको वैष्णव भक्ति का समान अधिकार है। भक्ति के क्षेत्र मे अधिकारों की कोई दीवार खडी नही की गई है। यही इसकी महान् विशेषता है। विष्णु पुराण इसका साक्षी है। जम्बू द्वीप के वर्णों और जातियो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'उस द्वीप म अर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी सज्ञक जातियाँ हैं, वही क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है। वहाँ अर्यक आदि जातियाँ ही सर्वेश्वर श्रीहरि का सोम रूप से यजन करती हैं।" (२।४।१७, १६)

शाल्मल द्वीप मे कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण यह जातियाँ रहती हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। यह यज्ञ करने वाले व्यक्ति सर्वात्मा, अव्यय और यज्ञाश्रय वायु रूप विष्णु का श्रेष्ठ यज्ञों से यजन पूजन करते हैं।" (२।४।३०—३२)

"अपने-अपने कर्मों में लगी हुई चार जातियाँ दम्भी, शुष्मी, स्नेह और मन्देह संज्ञक हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। अपने प्रारब्ध को क्षीण करने के निमित्त शास्त्र सम्मत कर्म करते हुए ब्रह्म रूप जनार्दन की उपासना से अपने प्रारब्ध फल के दाता उस अत्यन्त उग्र अहङ्कार को क्षीण करते हैं।" (२।४।३८, ४०)।

"पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य संज्ञक वर्ण ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। वे वहाँ रुद्र रूपी भगवान विष्णु का यज्ञादि से पूजन करते हैं।" (२।४।५५, ५६)।

"वहाँ मग, मागध, मानस और मदग नामक चार वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। उस शाक द्वीप मे शास्त्र सम्मत कर्म करने वाले उन चतुर्वर्णों द्वारा सूर्य रूपी भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है।" (२।४।७०, ७१)।

इस धार्मिक उदारता के कारण वैष्णव धर्म का देश-विदेश मे विस्तार हुआ। सभी वर्ण समान रूप से यज्ञो मे सम्मिलित होते थे परन्तु खेद है कि आज उन अधिकारो को सीमित कर दिया गया है और एक विशेष वर्ग को ही यज्ञ करने का अधिकार दिया गया है। यह वैष्णव धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो का हनन है। यदि यही स्थिति बनी रही तो यह धर्म भी सकुचित होता चला जायगा।

श्रद्धा-कृतज्ञता–विश्व बन्धुत्व की उच्चतम भावना—

श्रद्धा भारतीय सस्कृति का प्राण है। इसे निकाल देने पर वह प्राण-हीन सी ही हो जायेगी। भगवत्प्राप्ति की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिये भी यह आवश्यक है। इसीलिये इसे जाग्रत रखने और बढ़ाने के लिये अनेको विधि-विधान

और उपाय बताये गये है ताकि इसके सहारे साधक निरन्तर आगे बढ़ता चला जाये। विष्णु पुराण (३।११।२६, ३६) मे कहा है "स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता, ऋषि और पितरो का उन-उनके तीर्थों से तर्पण करे। देवताओ और ऋषियो के तर्पण में तीन-तीन बार और प्रजापति के लिये एक ही बार पृथ्वी मे जल छोडे। पितरो और पितामहो की तृप्ति के लिये भी तीन बार ही जल छोड़ना चाहिये, इसी प्रकार प्रपितामहों की तृप्ति करे, मातामह और उनके पिता और पितामह को यत्नपूर्वक तीर्थ जल से प्रसन्न करे। माता को, प्रमाता को, उसकी माता को, गुरु पत्नी को, गुरु को, मामा को, प्रिय मित्र को अथवा राजा को मेरा दिया हुआ यह जल प्राप्त हो। इस प्रकार कहता हुआ, सब भूतो के लिये देवादि का तर्पण करके अपने इच्छित सम्बन्धी को जल दे। देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माड, पशु पक्षी, जलचर, भूमिचर, वायु का आहार करने वाले सब जीव मेरे द्वारा दिय गये इस जल से तृप्त हो—ऐसा देवादि के तर्पण मे कहे। सम्पूर्ण नरकों मे स्थित हुए जो-जो जीव विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएँ प्राप्त कर रहे हैं, उनकी तृप्ति के लिये जल देता हूं। जो मेरे बन्धु हैं अथवा अबन्धु हैं या पहिले किसी जन्म मे बन्धु थे या जो मुझसे जल-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हो—क्षुधा-पिपासा से व्याकुल कोई भी प्राणी जहां कहीं भी हो वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस तिल-जल से तृप्त हो जांय।"

बडो का सम्मान करना हिन्दू संस्कृति की एक महान् विशेषता है। यह सामान्य शिष्टाचार मे सम्मिलित है। माता-पिता, गुरु व वृद्धजनो की आज्ञा पालन यहाँ साधारण नियम था, जिसका हर कोई पालन करता था। इस नियम मे इतनी दृढता आ गई थी कि वृद्धजनो की मृत्यु हो जाने पर भी उनके प्रति सम्मान बना रहता था। उस सम्मान के प्रतीक रूप मे उन्हे जल से तर्पण आदि किया जाने लगा। जिन पूर्वजो के कारण आज हमारा इतना उत्थान हो पाया है, उनके उस कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। कृतज्ञता के प्रदर्शन के लिये ही यह विधान बनाए गये हैं।

कृतज्ञता का गुण मानवता का लक्षण है। जो इससे हीन है उसमे मानवता का अभाव समझना चाहिये।

यह कृतज्ञता, श्रद्धा और सहयोग की भावना केवल अपने सम्बन्धियो तक ही सीमित नही है। इसमे सभी प्राणियो को श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। विश्व के सभी अभावग्रस्तो और दु:खियो के प्रति सद्भावना व्यक्त की गई है, शत्रुओ के प्रति भी सहानुभूति प्रकट की गई है। इससे विश्व बन्धुत्व की भावना जागृत होती है और हम समस्त विश्व के प्राणियो को अपना सम्बन्धी मानने लगते हैं। माता-पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री आदि के सीमित पारिवारिक सम्बन्धो से ऊँचा उठकर हम अपने दृष्टिकोण को विस्तृत करने की प्रेरणा मिलती है और हम सारे ससार को अपना परिवार मानने की ओर प्रेरित होते है। यह भावना जब परिपक्व हो जाती है, उस उन्नत अवस्था को ही आत्म विस्तार, आत्म कल्याण, आत्मोन्नति आदि कहा जाता है।

राम राज्य–आदर्श शासन–

शाक द्वीप मे रामराज्य की सी स्थिति का वर्णन है। "उन सातो वर्षों मे कही भी धर्म का क्षय, पारस्परिक कलह अथवा मर्यादा का नाश कभी नही होता।" (२।४,६८, ६६)। "वहाँ के निवासी रोग, शोक, राग-द्वेषादि से परे रहकर दस हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं। उनमे ऊँच-नीच, मरने-मारने आदि जैसे भाव नही हैं और ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष तथा लोभादि का भी अभाव है" (२।४।७६, ८०)।

इससे स्पष्ट है कि शाक द्वीप में धर्म सस्कृति और आस्तिकता का व्यापक विस्तार था और प्रजा बुद्धिमान् व विवेकी थी। उनके विचार शुद्ध व पवित्र थे तभी वह लम्बी आयु और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करते थे। विचारो मे स्थिरता, दृढता और स्वभाव मे शान्ति होन के कारण ही छोटी छोटी बातो पर कलह क्लेश और सघर्षों से बचा जा सकता है। यह आदर्श शाक द्वीप म था। इसे राम राज्य मे सम्बोधित किया जा सकता है। आज यह स्थिति स्वप्न जैसी ही है।

विष्णु पुराण में जहाँ कंस, हिरण्यकशिपु आदि जैसे अन्यायी राजाओं के कुशासन का वर्णन है जिससे प्रजा त्राहि त्राहि कर उठी थी, वहाँ न्याय-मूर्ति, कर्तव्य परायण और अपने को प्रजा का सेवक मानने वाले आदर्श राजाओं के सुशासन का भी उल्लेख है जो अपने अहं की पुष्टि के लिये जनता पर अनुचित आदेश लादना आत्मा का हनन मानते थे। आदर्श शासक जनता के जानमाल की सामूहिक आपत्तियों से सुरक्षा अपना नैतिक कर्तव्य मानता है। प्रजा-राजा का अनुकरण करती है। इसलिये राजा की नैतिक व धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी ऐसी उच्च होनी चाहिए जिससे जनता प्रेरणा प्राप्त करे और अपना उद्देश्य निर्धारित करते हुए उसे मापदण्ड मानें।

वेन पुत्र पृथु की प्रजा इतनी सुखी और समृद्ध थी कि उसके राज्यकाल के सम्बन्ध में कहा गया है—"पृथ्वी जोते-बोए बिना ही धान्य उत्पन्न करती और पकाती थी" (१।१३।५०)। अतिशयोक्ति की शैली में यहाँ तक कहा गया है कि—चिन्तन मात्र से ही अन्न पक जाता था, गायें कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थीं तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था।" प्रजा की अनुकूलता का वर्णन करते हुए कहा गया है—"उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे, इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ" (१ १३।४९)। इसमें जड़ पदार्थों को राजा की आज्ञा का पालन करते बताया गया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रजा उनसे कितनी प्रसन्न होगी।

राजा कार्तवीर्य के राज्यशासन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि—"उसने बल, पराक्रम, आरोग्य सुरक्षा, और व्यवस्थापूर्वक पिचासी हजार वर्ष तक इस पृथ्वी पर राज्य किया था।" (४।१२।१८) राजा को आदर्श शासक बनने के लिये सद्गुणी होना चाहिए। कार्तवीर्य के सम्बन्ध में लिखा है कि—"यज्ञ, दान, विनम्रता और विद्या में कोई भी राजा कार्तवीर्य के समान नहीं हो सकता। उसके राज्यकाल में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं हुआ।" (४।१२।१७) यज्ञ और दान से अभिप्राय लेने का ही नहीं देने का भी है अथवा निःस्वार्थता की प्रवृत्ति की ओर संकेत है। राजा को आराम नहीं

घोर परिश्रम करना चाहिए, आलस्य नहीं, क्रियाशीलता उसका आदर्श होना चाहिए, उसे सदैव चारों ओर से सजग रहना चाहिए। वह अपने को बड़ा नहीं जनता का सेवक समझे, अहंकार से फूलने का रोग उसे न लगने पाये। वह विनम्रता की मूर्ति होना चाहिए, वह केवल धन सम्पत्ति का ही नहीं गुणों का भी भण्डार होना चाहिए। ऐसे शासन में सुव्यवस्था स्थिर रहती है। वर्तमान शासकों को भी इन से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

गुरुजनों के प्रति शिष्टाचार का पालन-आदर्श विद्यार्थी जीवन--

आजकल विद्यार्थी वर्ग से सभी विचारशील चिन्तित हैं। आज्ञा नहीं अवज्ञा ही उनकी एक मात्र विशेषता हो गई है। गुरुजनों का सम्मान तो स्वप्नवत हो गया है। उन्हें अपमानित करने में भी तनिक लज्जा नहीं आती। कभी-कभी तो मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। विद्यार्थी अपने निर्माताओं को गुरुजन नहीं केवल वेतन भोगी अध्यापक मानते हैं जिन्हें अपने अनुकूल मोड़ना वह अपना अधिकार समझते हैं। यह उच्छृङ्खलताएँ स्कूल कालेज तक ही सीमित नहीं रहती, शासन के विरुद्ध भी कड़ी से कड़ी कार्यवाही करने में संकोच नहीं करते। उनके लिये तोड़ फोड़, मार पीट साधारण सी बात हो गई है। शिष्टाचार के नाते गुरुजनों का सम्मान आवश्यक नहीं मानते। आरुणि, उद्दालक, एकलव्य आदि के देश में इतना अन्तर दुःख का विषय है। प्राचीन काल का विद्यार्थी आज्ञा पालक, सेवाभावी, अनुशासित और आवश्यक शिष्टाचार का पालन करने वाला होता था। विष्णु पुराण (३।९।१।७) के अनुसार—'बालक को उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन परायण होकर और ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु गृह में निवास करना चाहिए। वहाँ रह कर शौच और आचार-व्रत का पालन तथा गुरु-सेवा करे एवं व्रतादि के पालनपूर्वक स्थिर चित्त से वेदाध्ययन करे। दोनों सन्ध्याओं में एकाग्र मन से सूर्य और अग्नि की उपासना करे तथा गुरुदेव का अभिवादन करे। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय। इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिए। गुरु जी रहें तभी उनके सामने बैठ

कर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे। जब आचार्य जल मे स्नान करलें तब स्नान करे और नित्य उनके लिये समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करें। इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट हो।

प्राचीन काल के विद्यार्थी जीवन की यही व्यवहारिक रूप रेखा थी जिसे आज भी आदर्श माना जाता है। यदि आज का विद्यार्थी वर्ग इस शिष्टाचार का पालन करने लगे तो विद्यार्थी समाज से सम्बन्धित उलझी गुत्थियाँ सहज मे ही सुलझ जायें। यह भारतीय सामाजिक सुव्यवस्था का ही चमत्कार था कि विद्यार्थी अपने आचार्य के दृढ अनुशासन मे रहते थे। आज विदेशी शिक्षा प्रणाली के कारण वह अनुशासन भङ्ग हो गया। प्राचीनता को अपनाये बिना समस्या का समाधान असम्भव है।

अतिथि सत्कार-प्रेम विकास की साधना—

प्राचीन काल मे अतिथि सत्कार को गृहस्थ का एक आवश्यक गुण माना जाता था। अतिथि की उपेक्षा करने वाले या उसका स्वागत न करने वाले को हीन दृष्टि से देखा जाता था। उत्तम गृहस्थ अतिथि को खिला कर ही स्वयं भोजन करते थे। भोजन का समय होने पर वह अपने द्वार पर जाकर अतिथि की प्रतीक्षा करते थे। विष्णु पुराण (२।१५।८।१०) में निदाघ का वर्णन है कि— वह बलिवैश्वदेव के पश्चात् अपने द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा मे खड़ा था तभी महर्षि ऋभु उसे दिखाई दिये और वह उन्हें अर्घ्य देकर अपने घर में ले गया।"

अतिथि का सत्कार न करने वाले की भर्त्सना की गई है। "जिसके घर पर आया हुआ अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अपने सब पाप कर्म उस गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्यकर्मों को साथ ले जाता है। अतिथि का अपमान उसके प्रति गर्व और दम्भ का व्यवहार, उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चाताप, कटु भाषण अथवा उस पर प्रहार करना नितान्त अनुचित है। (३।११।१५।१६)

विष्णु पुराण (३।११।६६।५१) मे भी कडे शब्दो का प्रयोग किया गया गया है—"जिसके घर से अतिथि विमुख लौटता है, उसे वह अपने समस्त पाप देकर उसके सभी शुभ कर्मों को साथ ले जाता है। धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—यह सभी देवता अतिथि के शरीर मे बैठ कर उसके साथ भोजन करते हैं। इसलिये अतिथि सत्कार के लिये गृहस्थ पुरुष को यत्नशील रहना चाहिए। जो मनुष्य अतिथि को भोजन कराये बिना स्वयं ही भोजन कर लेता है, वह तो केवल पाप का ही भक्षण करता है।"

कैसे अतिथि का स्वागत करना चाहिए, इसका विश्लेषण करते हुए कहा गया है। "यदि अतिथि मिल जाय तो उसे स्वागत पूर्वक आसन दे और चरण धोकर सत्कार करे और श्रद्धा पूर्वक उसे भोजन कराता हुआ मधुर वाणी से बातचीत करता हुआ उसके गमनकाल मे पीछे-पीछे जाकर उसे प्रसन्न करना चाहिए। जिस व्यक्ति के नाम और निवास स्थान आदि का पता न हो, उसी अतिथि का सत्कार करे। अपने ही ग्राम मे निवास करने वाला पुरुष आतिथ्य का पात्र नही होता। जिसके पास कोई सामान न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके वंशादि का ज्ञान न हो और जो भोजन करने के लिये इच्छुक हो, ऐसे अतिथि का सत्कार न करना या भोजन न कराना अधोगति को प्राप्त कराने वाला है। आगत अतिथि का अध्ययन गोत्र, आचरण, कुल आदि कुछ न पूछे और हिरण्यगर्भ बुद्धि से उसका पूजन करें।"

(३।११।५७।६१)

अतिथि सत्कार मानव मात्र के प्रति प्रेम के विकास को साधना है जो आत्मोत्थान मे सहायक सिद्ध होती है।

तप द्वारा ही कठिनाइयों का अन्त सम्भव है—

ध्रुव का जीवन जीने की कला का मार्गदर्शक है। ध्रुव से पितृ स्नेह का अधिकार छीना जाता है। वह उद्विग्न हो उठते हैं। वह उसे अपने बल पर प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, घोर तप करते हैं। इसी तप को सृष्टि रचना का मूल बताया गया है। भगवान् मनु का कहना है कि—"समस्त लोकों में जो कुछ भी श्रेष्ठ दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके मूल, मध्य और अन्त में तपस्या

विद्यमान है। त्रिकालदर्शी ऋषियों ने यह शक्ति तप के बल पर ही प्राप्त की है। दुस्तर, दुष्प्राप्य, दुर्गम और दुष्कर सभी कार्यों का प्रतिकार तप ही है। स्वर्ग का साधन तप ही है। तप के फलस्वरूप ही पवित्र हृदय वाले ऋषियों के अन्तःकरण में बड़े ज्ञान का अवतरण हुआ है भौतिक जीवन में ध्रुव को कठिनाइयाँ आई। उसने डटकर मुकाबिला किया वह उनसे डरा नहीं, घबराया नहीं, खोया नहीं, निराश नहीं हुआ। उसने उसके समाधान का उपाय सोचा। हमारा जीवन भी कठिनाइयों से ओत प्रोत है। यदि हम उनसे डर गये तो जीवन काटना भी असम्भव हो जायगा। दुःखों को धैर्य पूर्वक सहन करना चाहिए। राम जैसे अवतारी पुरुषों को और कृष्ण के सखा पाण्डवों को जब घोर संकटों का सामना करना पड़ा है तो साधारण जीव उनसे कैसे बच सकते हैं? दुःख तो संघर्ष की प्रेरणा देने आते हैं। यदि व्यक्ति को संघर्ष करने का अवसर न मिले तो इस ओर मन से निकम्मा हो जाता है। संघर्ष व्यक्ति को क्रियाशील और शक्तिशाली बनाने आता है। उसमें कितनी प्रसन्न होगी।

ध्रुव के तप को विफल करने को अनेकों प्रयत्न किये गये। माया रूपी सुनीति ने विलाप किये (१ १२।१४।१५)। भयंकर राक्षसों ने डराया धमकाया (१।१२।२०, १८)। परन्तु ध्रुव अपने निश्चय पर अटल रहे। हमारा भी यही जीवन आदर्श होना चाहिए तभी प्रगति पथ पर आरूढ़ हो सकेंगे। कठिनाइयों का अन्त तप द्वारा ही सम्भव है।

देवता से मानवी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन—

विष्णु पुराण ५।३०।४३–५१ के अनुसार कृष्ण पत्नी सत्यभामा को जब इन्द्राणी का पारिजात वृक्ष पसन्द आया जिसके सुगन्धित पुष्पों से वह अपने केशों को सजाती थी तो उसने कृष्ण को इसे द्वारका ले जाने के लिये प्रेरित किया। वह जानती थी कि इससे इन्द्र व समस्त देवताओं के साथ संघर्ष आवश्यम्भावी है। परन्तु वह इससे नहीं डरी। उसने शची को सन्देश भेजते हुए गर्वपूर्वक चुनौती देती है कि—यदि तुम्हारे पति तुम्हें अत्यन्त प्रेम करते हैं और तुम्हारे वश में हैं तो मेरे पति को पारिजात ले जाने से रोको। मैं तुम्हारे पति को जानती हूँ कि वे देवताओं के अधीश्वर हैं, फिर भी मैं

मानुषी होकर तुम्हारे पारिजात को लिये जाती हूँ।" (५।३०।५६।५१)।

इस पर कृष्ण और इन्द्र सहित देवताओं में संघर्ष हुआ जिसमें देवताओं को पराजित होना पड़ा। इस कथा से यह ध्वनि निकलती है कि मानव देवताओं से श्रेष्ठ हैं। देवता भोग करते हैं, मानव भोग और कर्म दोनों करता है। मानव अपने बल, पौरुष और पराक्रम से उच्चतम स्थिति तक पहुँचने में समर्थ है। इसमें मानव का गौरव झलकता है।

स्वर्ग से भी आगे बढ़ने की आशा—

सारा विष्णुपुराण पाप और पुण्य के संघर्ष से भरा हुआ है। इसमें पापी व्यक्तियों का भी वर्णन है जो अहङ्कार के वशीभूत होकर अपने अह का प्रदर्शन करने के लिये दूसरों का दमन करते हैं परन्तु अन्त में उन्हें अपने दुष्कर्मों पर पछताना पड़ता है। इसमें ऐसी भी पुण्य आत्माओं की कथाओं का उल्लेख है जो सत्कर्मों को ही अपने जीवन का आलम्बन बनाती रही है और समस्त प्राणियों में अपने इष्टदेव के दर्शन करती रही हैं। विष्णु पुराण (३।७।४४) ने इसी पाप को नरक और पुण्य को स्वर्ग की संज्ञा दी है। तभी पापात्माओं के चरित्रों का वर्णन करके वैसे कर्मों से बचने की प्रेरणा दी है। साथ ही साथ पुण्य के सचय की शिक्षा भी दी गई है ताकि साधक ऊपर उठ सके क्योंकि ऊपर उठना ही स्वर्ग है। भागवत के अनुसार सात्त्विक गुणों का विकास ही मनुष्य के लिये स्वर्ग है।

पुराणकार अपने साधक को स्वर्ग तक ही सीमित नहीं रखना चाहते। स्पष्ट रूप में कहते हैं कि केवल नरक में ही दुःख नहीं है, स्वर्ग में भी है,क्योंकि वहाँ से नीचे गिरने की आशङ्का से जीव को सदा अशान्ति ही रहती है (५।५।५०)। स्वर्ग के सुख भोग कर पुनः पृथ्वी पर आना पड़ता है। अतः यह अन्तिम लक्ष्य नहीं है। इससे आगे बढ़ना होगा। इस प्रगति पर सन्तोष नहीं करना चाहिए। स्वर्ग से भी आगे के लोकों की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

भविष्य वाणी—एक वैज्ञानिक प्रक्रिया—

भारतवर्ष तपस्वी और वैज्ञानिक ऋषियों की भूमि रहा है। ऋषि

त्रिकालज्ञ होते थे, वह भूत, भविष्य का ज्ञान रखते थे। वह जो भविष्य वाणियाँ करते थे, वह प्रायः सत्य निकलती थीं। विष्णु पुराण मे भी कुछ भविष्य वाणियो का वर्णन है। (४।२१।३, ८) के अनुसार "इस काल मे राज्य करने वाले महाराज परीक्षित के चार पुत्र जनमेजय, श्रुउसेन, उग्रसेन, भीमसेन होगे। जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र होगा, जो याज्ञवल्क्य मुनि से वेद-शिक्षा प्राप्त कर और कृप से शस्त्रास्त्र विद्या प्राप्त करके महर्षि शौनक द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेगा। शतानीक का अश्वमेघदत्त नामक पुत्र होगा। अश्वमेघदत्त का पुत्र अधिसीम कृष्ण और अधिसीम कृष्ण का पुत्र निचक्नु होगा। निचक्नु गगाजी द्वारा हस्तिनापुर वहा ले जाने पर कौशाम्बी में निवास करेगा।"

चौथे अंश के २४ वें अध्याय के श्लोक ७०—९३ मे भी कुछ भविष्य की बातें कही गई हैं—यह सभी राजा एक ही काल मे पृथ्वी पर होगे, यह अल्प प्रसन्नता वाले, अधिक क्रोध वाले, अधर्म और असत्य भाषण मे रुचि वाले स्त्री, बालक और गौओ का वध करने वाले, पर-धन-हारी, न्यून शक्ति वाले, तमयुक्त, विकसित होते ही पतन को प्राप्त होने वाले, अल्पायु, अल्प पुन्य, बडी अभिलाषा वाले और महान् लोभी होगे। यह सब देशो को परस्पर मे एक कर देने वाले होगे। इन राजाओ के आश्रय मे रहने वाले बलवान् म्लेच्छ और अनार्य व्यक्ति, उनके स्वभाव के अनुसार आचरण करते हुए सम्पूर्ण प्रजा को ही नष्ट कर डालेंगे। इससे दिनो-दिन धर्म और अर्थ की धीरे धीरे करके हानि होती जायगी और जब यह क्षीण हो जायेंगे तो सम्पूर्ण विश्व ही नष्ट हो जायगा। उस समय धन ही कुलीनता का सूचक होगा, बल ही सब धर्मों का चिह्न होगा, परस्पर की चाहना ही दाम्पत्य-सम्बन्ध की करने वाली होगी, स्त्रीत्व ही भोग का साधन होगा। झूठ ही व्यवहार म जीत कराने वाला होगा, जलवायु की श्रेष्ठता ही पृथ्वी की श्रेष्ठता का लक्षण होगा, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्व का कारण होगा, रत्नादि धारण ही श्लाघा का हेतु होगा, बाह्य चिह्न ही आश्रमो के सूचक होगे, अन्याय ही वृत्ति का साधन होगा, निर्भयता और धृष्टतापूर्वक भाषण ही पाडित्य होगा, निर्धनता ही साधुता का कारण समझा

जायगा। स्नान साधन का हेतु, दान धर्म का हेतु और स्वीकृति ही विवाह का हेतु होगा। सज धज कर रहना ही सुपात्रता का द्योतक होगा, दूर देश का जल ही तीर्थ जल होगा, छद्मवेश ही गौरव होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमंडल में नाना प्रकार के दोषों के फैलने से सब वर्णों मे जो-जो बली होगे वही वही राजा राज्य को हथिया लेंगे।"

भविष्य की बातें जानने मे भारत इतना दक्ष था कि अलग से एक भविष्य पुराण का ही निर्माण हो गया। भविष्य कथन एक विश्वसनीय सिद्धांत है, यह एक विज्ञान है, साधना है। महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन मे इसका समर्थन किया है और साधना का संकेत किया है। उन्होने लिखा है "तीनो परिणामो (धर्म, लक्षण, अवस्था) मे संयम करने से अतीत और अनागत (भूत, भविष्यत्) का ज्ञान होता है (३।१६)। संसार के समस्त पदार्थ इन तीन परिणामों के अन्तर्गत आ जाते है। इसमे संयम करने से तमोगुण और रजोगुण का निवारण होता है और सतोगुण का विकास होता है। इसी से भूत और भविष्यत् का ज्ञान होता है।

यह भारत की एक गौरवमय उपलब्धि है जिस पर हमे गर्व है।

दोषों, दुर्गुणों और कुरीतियों से चेतावनी

दुर्गुण मानव के महान शत्रु हैं। वह शक्तियो का ह्रास करते हैं। शक्ति के विकास से ही सुख शान्ति की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए इसको नष्ट करने वाले शत्रुओं से सावधान किया गया है—

बड़ों के अनादर के दुष्परिणाम—

शिष्टाचार भारतीय संस्कृति की नींव है। जो इसका आचरण नही करता, वह उद्दण्ड और अशिष्ट माना जाता है। आचारो मे माता, पिता, गुरु और वृद्धजनो के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना सर्वोपरि है। सम्मान न करके जो ऋषि, ब्राह्मणो और अपने से बडो की हँसी, मजाक और अनादर करते हैं, उनके घोर दुष्परिणाम विष्णुपुराण मे वर्णित किए गये हैं।

पंचम अंश के दसवें अध्याय मे वर्णित कथा के अनुसार यादव बालको ने ऋषियो के साथ मनोरंजन का प्रोग्राम बनाया। उन्होने जाम्बवती पुत्र साम्ब को स्त्री वेष मे सजा कर ऋषियो से कहा "इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये, इसके क्या उत्पन्न होगा ?" (६–८) ऋषि यादव बालको की चाल को ताड़ गये और क्रोधपूर्वक कहा—"इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवो के नाश का कारण हो जायगा।" (६–१०) और अन्त मे यही हुआ।

एक बार अप्सराओ ने अष्टावक्र के आठ स्थानो से टेढ़े शरीर को देखा तो स्वभावतः हँसी छूट पडी और छिपाने पर भी न छिप सकी। महर्षि ने उन्हे शाप दिया कि तुमने मेरे कुबड की हँसी उडाई है, इसलिये तुम भगवान् विष्णु को पति रूप मे पाकर भी लुटेरो द्वारा अपहृत होगी।"(६।३८।७६-८२)

इन कथाओ से बडो के अनादर करने से सावधान करते हुए सम्मान की प्रेरणा दी गई है।

अविवेक-अज्ञानता का लक्षण है—

विवेक कहते हैं—सत्य असत्य के निर्णय करने की शक्ति को। जो व्यक्ति इस शक्ति से च्युत है,वह अन्धकार मे भटकता रहता है और गौरवमयी मानव योनि पाकर के भी अमानवो के से काम करता है। मानवता की सिद्धि के लिये विवेक का जागरण आवश्यक है। विष्णुपुराण मे अविवेक को नष्ट करने के लिये अनेकों स्थलो पर महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। एक स्थान पर कडे शब्दो मे कहा है "अज्ञान के अन्धेरे में पड़ा हुआ जीव यह भी भूल जाता है कि मैं कहाँ से आया ? कहाँ जाऊँगा ? मैं कौन हूँ ? मेरा रूप क्या है ? मैं कौन से बन्धन मे किस कारण बँधा हूँ ? मैं क्या करूँ, क्या न करूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? धर्म क्या है अधर्म क्या ? किस अवस्था मे कैसे रहूँ ? कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य क्या है ? इस प्रकार विवेक रहित पशु के समान वह घोर अज्ञान से उत्पन्न दुखो को भोगते है।" (६।५।२१–२४)

अहङ्कार एक महारोग—

आत्मिक पतन मे जहाँ अन्य अवगुणो का हाथ रहता है, वहाँ अहङ्कार

को भी एक ऊँचा स्थान प्राप्त है। भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में कोई विरला ही ऐसा व्यक्ति बचा होगा, जो इसके कुप्रभावों से पीडित न हुआ हो। इसके प्रहार व्यापक रूप से काम करते हैं। इसीलिये तो गीताकार (१८।१६) ने कहा कि "जो सस्कृत बुद्धि न होने के कारण यह समझे कि मैं ही अकेला कर्ता हू, समझना चाहिए कि वह दुर्मति कुछ नही जानता।" अहङ्कार के प्रदर्शन के लिये पुराण मे अनेको कथाओ का चयन किया गया है जिनमे वेन और हिरण्यकशिपु के चरित्र प्रमुख हैं। वेन ने तो कहा था। "मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो। तुम जिसे यज्ञेश्वर एव भगवान् कहते हो, वह कौन है ?" (१।१३।२०) उसने प्रजा को अपनी पूजा करने का आदेश दिया था। हिरण्यकशिपु,प्रह्लाद से विष्णु की अपेक्षा अपना सम्मान चाहते थे। प्रह्लाद ने इसका विरोध किया तो हिरण्यकशिपु का अहङ्कार भडका, इसी अग्नि मे उसने प्रह्लाद को जलाना चाहा, परन्तु अहङ्कारी व्यक्ति तो स्वय उससे जलता है, वह क्या दूसरे को जलायेगा ? अहङ्कार की उत्पत्ति का अर्थ है शक्ति की ह्रास का आरम्भ। इसीलिये अहङ्कारी का सर सदैव नीचा होने वाली कहावत कही जाती है। पुराणकार इसे भी व्यवहारिक रूप मे बताते हैं। विश्व विख्यात हजारो महान योद्धाओ पर विजय प्राप्त करने वाले अर्जुन अनाथ बालाओ को ले जाते हुए अपार दस्युओ से उनकी रक्षा करने से अपने मे असमर्थ पाते हैं और लूट लिये जाते हैं (५।३८।१२–१५)।

केवल भौतिकवादी राजा लोग इस रोग के रोगी रहे हो, ऐसा नहीं है। तपस्वी ऋषि भी इससे हार मान चुके हैं। इन्द्र ऐरावत पर चढ़े जा रहे थे। दुर्वासा ने एक पुण्यमाला इन्द्र को दी। इन्द्र ने हाथी के मस्तक पर डाल दी। हाथी ने उसे पृथ्वी पर फेंक दिया। महर्षि का अहङ्कार इससे उत्तेजित होगया। उनके क्रोध की ज्वाला भडक उठी और उन्होने इन्द्र को शाप दिया कि "तेरा यह त्रिभुवन भी अब शीघ्र ही हीनता को प्राप्त होगा।" (१।९।१६)

इस छोटी सी गलती के लिये इतना बड़ा दण्ड अनुचित ही है। वह क्या न देते, अहङ्कार ने जो उनके मस्तिष्क पर नियन्त्रण कर लिया था।

पुराणकार ने इस महारोग से सावधान रहने की प्रेरणा दी है।

क्रोध से शक्ति नाश—

क्रोध ऐसी अग्नि है जिसमें हमारा शरीर, मन और बुद्धि सब जलते रहते हैं। शास्त्रों ने इसे नरक का द्वार, पाप का मूल और महा शत्रु कहा है क्योंकि यह आत्मिक बल को नष्ट करता है। गांधी जी ने कहा कि "क्रोध के लक्षण शराब और अफीम दोनों से मिलते हैं।" गीता (२।६३) में कहा कि "क्रोध से अविवेक होता है, अविवेक से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धि नाश और बुद्धि नाश से सर्वनाश हो जाता है।"

इस क्रोध से पुराणकार ने बार-बार विभिन्न कथाओं द्वारा सावधान किया है। एकबार वसिष्ठ ने जब देखा कि राजा निमि ने उसके स्थान पर गौतम को होता नियुक्त कर लिया है तो शाप दे डाला कि तुम देह रहित हो जाओ। (४।५।७-८) जब राजा सोकर उठे तो उन्हें भी क्रोध आया। उन्होंने गुरु को शाप दिया कि वह भी देह रहित हो जाएँ (९-१०)।

इन्द्र ने जब महर्षि दुर्वासा द्वारा पुष्पमाला का अनादर किया तो क्रोध-पूर्वक शाप दिया कि तुम श्रीहीन हो जाओ (१।९।१६)। महर्षि पाराशर ने एक बार क्रोध में आकर राक्षसों के विनाशार्थ यज्ञ किया जिस में प्रतिदिन सैकड़ों हजारों राक्षस भस्म होने लगे (१।१।१३-१४)। तब वसिष्ठ ने उन्हें रोका कि "इसे शान्त करो। मूर्ख व्यक्ति ही क्रोध किया करते हैं, ज्ञानीजन ऐसा नहीं करते हैं। (१।१।१७) ज्ञान के भण्डार ऋषिगण स्वर्ग और मोक्ष में बाधा स्वरूप क्रोध का परित्याग कर देते हैं। इसलिए तुम क्रोध के वशीभूत मत हो।" (१५-१९)

निर्मल और असदिग्ध रहेगी।" (२५–२७) जिस शान्त मन मे क्रोध की ज्वाला नही भटकती, उसी मन मे ऐसे परिणामो की सम्भावना हो सकती है।

मोह से बन्धनों की दृढ़ता—

प्रेम अमृत है। इसे प्राणीमात्र पर छिड़कना चाहिये। यह मानव का परम धर्म है। इससे वंचित व्यक्ति जड़ गिना जाता है। परन्तु प्रेमी के प्रति लगाव और लिप्तता हानिकारक है। यह लगाव ही कुमति है जो बन्धन और दुःख का कारण है। इससे निवृत्ति की साधना बड़ी तत्परतापूर्वक करनी चाहिये क्योकि विष्णुपुराणकार ने ऋषि और तपस्वियो को भी इसमे फँसते हुए बताया है।

भरत तपस्वी और ज्ञानी थे परन्तु एक हरिणी से उनका मोह होगया। भयभीता हरिणी का गर्भ नदी मे गिरा और उन्होने पकड़ कर उसका पालन किया। इससे तो उनके प्राणीमात्र के ऊपर अपार प्रेम की झलक मिलती है (२।१३।१६)। परन्तु मरते हुए भी उसका स्मरण करते रहना उनके लिये हानिकारक होगया और उन्हे हरिणी की योनि मे जाना पड़ा।

महर्षि सौभरि अत्यन्त तपस्वी थे। एक बार उन्हे विवाह की सूझी। एक नही राजा मानधाता की ५० कन्याओ से विवाह कर लिया और १५० पुत्र उत्पन्न किए। वह सोचने लगे "क्या यह मेरे पुत्र मधुर बोली बोलेगे ? अपने पैरो से चलेंगे ? युवावस्था को प्राप्त होगे ? क्या मैं इन सबको पत्नी सहित देख सकूँगा ? फिर इनके भी पुत्र होगे, तब क्या मैं अपने को पुत्र-पौत्रो से सम्पन्न देख पाऊँगा ?" (४।२।११४)।

इस तरह हमारे मोह की कोई सीमा नही है। जिनसे मोह करते हैं, उन्हे एक दिन नष्ट होना है फिर इन अनावश्यक लगावो से क्या लाभ है ? इससे निवृत्त होना ही ज्ञान और विवेक का लक्षण है।

धन का अपव्यय—

धन मानव के ज्ञान-अज्ञान की महान कसौटी है। शरीर आत्मिक

उत्थान की साधना के लिए मिला है। अत. उसे भगवान का मन्दिर समझ कर स्वस्थ व हृष्ट पुष्ट रखना कर्तव्य है परन्तु हर समय उसी के लालन-पालन मे लगे रहना अज्ञानता है। इसीलिये ईसा को कहना पडा कि सुई की नोक मे से एक ऊँट को निकलना सम्भव है परन्तु एक धनवान का स्वर्ग मे जाना सभव नही है, क्योकि वह धन की तृष्णा से हर समय ग्रस्त रहता है और उसे प्राप्त करने के लिए अनुचित उपाय अपनाता है। विष्णुपुराण ने प्रेरणा दी है कि धन का उपार्जन किया जाये अवश्य परन्तु उसका आधार धर्म होना चाहिये (६।२।२४) विना धर्म के प्राप्त धन नरक का द्वार सिद्ध होता है। ईमानदारी से कमाया धन ही स्वर्गीय सुख और शान्ति का प्रदाता है। पुराणकार ने वास्तविकता का वर्णन करते हुए लिखा है। 'धन के उपार्जन और रक्षण मे अत्यन्त कष्ट होता है और फिर उसे अनुचित मार्ग से व्यय करने पर भी बहुत ही दु ख भोगना पडता है।" (२६) उपार्जन और सरक्षण दोनो म सावधानी बरतनी पडती है। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु का सदुपयोग करता है, वह उसे अधिक मात्रा मे उपलब्ध होती है क्योकि वह उसके लिय अपने को अधिकारी सिद्ध करता है। इसके विपरीत दुरुपयोग करने वाले से छीन ली जाती है। इसलिये चेतावनी दी गई है कि धन के व्यय मे ध्यान रखना चाहिये।

लोग अनुचित उपायो से कमाये धन को यश और कीर्ति के लिये दानमे देते रहते हैं। विष्णुपुराण ने इसका भी विरोध किया है और कहा है कि जो धन धर्म से कमाया गया हो, उसे ही दान और यज्ञो मे देना उचित है (६।२।२४)।

वन्धन का कारण तृष्णा—

धन, वैभव और अन्य भौतिक ऐश्वर्यों की तपस्या जीव को वन्धन में डालकर आवागमन के चक्र में घुमाती रहती है। इसका वर्णन राजा ययाति के अनुभव के माध्यम से दिया गया है। उसने अपने पुत्र आयु का यौवन लेकर

हजार वर्ष तक भोगों को भोगा। इतने लम्बे सम्पर्क तथा अनुभव के बाद अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा—

"भोगों के भोगते रहने से उनकी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती किन्तु आज्याहुति से प्रवृद्ध होने वाले अग्नि के समान निरन्तर बढ़ती जाती है। भू-मण्डल पर जितने भी धान्य, जौ, स्वर्ण, पशु, और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्य के लिये भी तृप्त नहीं कर सकते, इसलिये इस तृष्णा का सर्वथा त्याग करना चाहिए। जो तृष्णा खोटी बुद्धि वालों द्वारा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक त्यागी जा सकती है और जो वृद्धावस्था में भी शिथिलता को प्राप्त नहीं होती, उसी तृष्णा को त्याग कर बुद्धिमान पुरुष पूर्ण रूप से सुखी हो जाता है। जीर्णावस्था प्राप्त होने पर बाल और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु उनके जीर्ण होने पर भी धन और जीवन की आशा जीर्ण नहीं हो पाती। इन विषयों मे आसक्त रहते हुए मेरे एक हजार वर्ष अतीत हो गये, फिर भी उनके प्रति नित्य ही इच्छा रहती है। इसलिये, अब मैं इनको त्याग कर अपने चित्त को ब्रह्म में लगाऊँगा, निर्द्वन्द्व तथा निर्मम होकर मृगो के साथ विचरण करूँगा।" (४।१०।२२,२४,२६-२६)।

ययाति के अनुभव से लाभ उठा कर हमें भी अपने जीवन मे मोड लाना चाहिए।

पापों का परिणाम नरक—

शास्त्रो मे अनेको प्रकार के नरको वर्णन है। विष्णुपुराण मे भी यह नाम आये है। "तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, काल सूत्र, अवीचिक, यह सब नरक लोक हैं। वेदो की निंदा करने वाले, यज्ञो म बाधा डालने वाले और अपने धर्म को त्याग का आचरण करने वालो का यहीं स्थान कहा गया है।" (१।६—४०।४२) नारकीय यातनाओ का वर्णन गरुड पुराण आदि मे है। विष्णु पुराण मे भी उनका सक्षिप्त वर्णन

"पहले तो यमदूत उसे अपने पाश में बाँध लेते और फिर इन पर दण्ड प्रहार करते हैं। तब अत्यन्त दुर्गम मार्गों को पार करने पर यमराज का दर्शन हो पाता है। फिर तपे हुय बालू अग्नियन्त्र, शस्त्रादि से भीषण एव असह्य नरक-यातनाएँ भोगनी होती हैं। नरकवासी को गाडने शूलों पर चढ़ाने सिंह के मुख में डालने गिद्धों द्वारा नुचवाने, हाथियों से कुचलवाने, तेल में पकाने, दलदल में फँसाने ऊपर से नीचे गिराने तथा क्षेपणयन्त्र से दूर फिकवाने रूप जिन-जिन कष्टों की प्राप्ति होती है, उनकी गणना असम्भव है। (६।५—४४।४६)।"

इन यातनाओं से जो बचना चाहे, उसे उन कर्मों से दूर रहना चाहिये जिनका परिणाम नरकों में प्राप्त होता है।

"नरक प्राप्ति के कारणों पर चर्चा करते हुए कहा गया है। अज्ञान के तामसिक होने से अज्ञानी पुरुषों की प्रवृत्ति तामसिक कर्मों में होती है, इसके कारण वैदिक कर्म लुप्त हो जाते हैं। कर्म लोप का फल मनीषियों ने नरक कहा है। (६।५—२५।२६) एक कारण और बताया है। "जो व्यक्ति अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करते, उन्हें नरक की ही प्राप्ति होती है।" (२।५।३४) आत्मनिरीक्षण करने वाला व्यक्ति ही दुष्कर्मों को छोड़ कर सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है। तभी उसकी निवृत्ति नरक से हो सकती है। पुराणकार चाहते हैं कि हम पूर्व पापों का प्रायश्चित् करके स्वर्ग के पथ पर आरूढ़ हों।

पशुबलि हिन्दू धर्म पर महान कलंक

जाता है। यज्ञ पवित्रतम कार्य है। इससे सारे विश्व के प्राणियों का कल्याण होता है। इसके साथ पशुबलि जैसे जघन्य कार्य को मिलाना पशुता से भी गिरने के समान है। विष्णु पुराण ने इस बात का विरोध करते हुये कहा है "यदि यज्ञ में बलि होने वाले पशु को स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता का बलिदान कर के ही उसे स्वर्ग क्यों नहीं प्राप्त करा देता।" ? ३।१८।२७)

इस बुद्धिवादी युग में भी बलि का प्रचलन है। यह हिन्दू धर्म पर कलंक है।



आचार दर्शन

सभ्य और असभ्य की पहचान की यदि कोई कसौटी है तो वह आचार ही है। यही पतन और उत्थान की सीमा रेखाएँ खींचने वाले हैं। आचारहीन मनुष्य पशु तुल्य ही माना जाता है। आचार की शिक्षा ग्रहण व्यक्ति ही सभ्य कहा जाता है। भारतीय आचार दर्शन शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य के लिये हितकर है नागरिकता की उत्तम शिक्षाओं से भी यह ओत-प्रोत है। प्रात व साय के अलग-अलग आचार हैं। लोकाचार के सामान्य नियमों की भी प्रेरणा दी गई है। सदाचार तो भारतीय सस्कृति की आधार शिला ही है। विष्णु पुराण के आधार पर यहाँ उनका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

सदाचार—

सदाचार की प्रेरणा भारतीय सस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। विष्णु पुराण भी उससे अछूता नहीं है। सदाचार की परिभाषा का वर्णन करते हुए कहा गया है 'सत्‌ग्रंथों का अर्थ साधु होता है और दोष रहित को भी साधु कहते हैं। उस साधु पुरुष का आचरण ही सदाचार कहा गया है। (३।११।३)।

विष्णु भक्ति की श्रेष्ठता का आधार सदाचार ही है। (३।७।२२) में कहा है "जो निर्जन स्थान में पराए स्वर्ण को भी पड़ा देखकर उसे तिनके के समान मानता है, उसे भगवान् का भक्त समझो।" भगवान् के निवास की

कसौटी वह पुरुष है जो 'स्वच्छ चित्त, मत्सरताहीन, प्रशान्त, पुनीत चरित्र, सब प्राणियो का प्रेमी, सहृदय तथा हित की बात कहने वाला, निरभिमान तथा माया से अलग रहता है" (३।७।२४)।

पर नारी में आसक्ति रखने वाले को इहलोक व परलोक दोनों के बिगड़ने का भय दिखाया गया है (३।१२।१२४) क्योंकि इस लोक में आयु का ह्रास और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है। इसलिये पुराणकार ने प्रेरित किया है कि "पर नारी से तो वाणी या मन से भी सङ्ग न करे" (३।११।१२३) केवल अपनी ही स्त्री से ऋतुकाल में सङ्ग करे (१२५)।

कुछ व्यावहारिक उपयोग के आचारो की भी शिक्षा दी गई है। जैसे "स्वप्न रूप में भी अप्रिय भाषण न करे। मिथ्या वचन प्रिय हो तो भी न बोले और परदोषों को किसी से न कहे।" (३।१२।४) "किसी के साथ वैर आदि रखने मे रुचि न रखे " (५)। "लोक निन्दित, पतित, उन्मत्त, बहुतो के वैरी, मिथ्याभाषी, अत्यन्त व्यय करने वाले, परनिन्दा मे रुचि रखने वाले और दुष्टो के साथ कभी मित्रता न करे।" (३।१२।६।७)। 'जो कुटिल पुरुषो से भी प्रिय भाषण करता है,मोक्ष सदा उसके हाथ मे स्थित रहता है" ३।१३।४२ "ज्ञानी पुरुषो का कर्तव्य है कि वह उसी प्रकार का सत्य बोलें जिससे दूसरो को सुख मिले। यदि किसी सत्य वाक्य से दूसरो का अहित होता हो तो मौन रहना ही उचित है " (३।१३।४३)।

यह सद-आचार साधक को दिन-दिन ऊँचा उठाते हैं। मानवता के लिये इनका आचरण आवश्यक है।

प्रातःकाल के आचार—

भारतीय संस्कृति एक आदर्श संस्कृति है। मानवता का विकास इसका प्रमुख उद्देश्य है। आत्म विकास मानव का अन्तिम लक्ष्य है। प्रारम्भिक पाठ तो शिष्ट आचार हैं जिनके आचरण से हम समाज मे उत्तम नागरिक के रूप मे रह सकें। यदि नागरिकता के साधारण नियमो का पालन सम्भव न हो तो आत्म-विकास की भी सम्भावना नही हो सकती। भारतीय ऋषियो ने प्रात-

काल उठने से लेकर रात्रि काल तक ऐसे नियमो का चयन किया जो व्यक्तिगत और सामाजिक–दोनों दृष्टियो से लाभदायक हैं। वह केवल नियम ही नही हैं। यदि उन पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उनके गहन रहस्यों का पता चलेगा। *यह निश्चय है कि बिना उपयोगिता के किसी भी नियम* को इन आचारो मे स्थान नही दिया गया है।

विष्णु पुराण (३।११।८–२१) मे मल मूत्र सबधी स्वास्थ्योपयोगी *नियमो का दिग्दर्शन कराया गया है "ब्रह्म मुहूर्त म उठने के पश्चात् ग्राम के* नैऋत्य कोण वाली दिशा मे जितनी दूर छोडा हुआ बाण जा सकता है, उतनी दूर से भी आगे बढ कर मल-मूत्र का त्याग करें और अपने घर के आंगन मे पाँव धोने का जल अथवा जूठा जल न डालें। अपनी छाया पर या वृक्ष की छाया पर अथवा गो, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजाति वाले किसी पुरुष के सामने जाकर कभी मलमूत्र न करें। इसी प्रकार जोते हुए खेत, अनाज युक्त भूमि, गौओ के गोष्ठ, जन-सभा, मार्ग के मध्य, नदी, आदि तीर्थ, जल या जलाशय के किनारे और श्मशानादि मे कभी मल मूत्र विसर्जन न करें। सम्भव हो तो दिन मे उत्तर की ओर मुख करके और रात मे दक्षिण की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करें। मल त्याग के समय पृथिवी को तिनको से ढक ले और सिर पर वस्त्र लपेट ले और उस स्थान पर अधिक समय तक न रहे तथा मुख से भी कुछ न बोले।"

"*बाँबी की मिट्टी, चूहों द्वारा बिल से निकाली हुई, जल के भीतर की,* घर लीपने की, चींटी आदि जीवो द्वारा निकाली हुई, हल द्वारा उखाडी हुई तथा शौच कर्म से बची हुई मिट्टी को शौच कम म काम न लें। हे राजन! उपस्थ मे एक बार, गुदा मे तीन बार, बाँये हाथ मे दस बार और दोनो हाथो मे सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है। फिर निर्गंध, फेनहीन जल से आचमन करे और यत्न पूर्वक अधिक मिट्टी ग्रहण करे। उसमे पाँवो को शुद्ध करें। पाँव धोने के उपरान्त तीन बार कुल्ला और फिर दो बार मुख का धोवे। फिर जल ग्रहण करके उससे इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, बाहु, नाभि और हृदय को स्पर्श करे। फिर भली प्रकार स्नान करके बालों को सँभाले और आवश्यकता-

नुसार दर्पण, अंजन दूर्वा आदि मांगलिक द्रव्यों का विधिपूर्वक प्रयोग करें।

मल मूत्रोत्सर्ग के बाद स्नान करना चाहिए (३।११।२४–२५)। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता ऋषि और पितरों का तर्पण करने का आदेश है (२६)। श्लोक २४–३६ में तर्पण के विस्तृत नियम दिये गये है। तर्पण को केवल अपने सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं रखा गया वरन् प्राणी मात्र को, चाहे वह मनुष्य, पक्षी, पशु जलचर, थलचर या अपना विरोधी ही क्यों न हो, उसे जलांजलि देने का नियम है (३५–३६) क्योंकि मूल रूप मे सभी प्राणी एक हैं। जो इस एकता को अनुभव करता है, उसी का आत्मविकास हुआ समझना चाहिए।

तर्पण के बाद आचमन, सूर्य भगवान् को अर्घ्यदान, गृहदेवता और इष्ट देवता की पूजा और अग्निहोत्र का विधान है (३।११।३८–४२)। फिर पृथ्वी पर बलि भाग रखने और अतिथि की प्रतीक्षा करने का आदेश है (५५–५६)।

जो कुछ भी हम खाते हैं, उससे हमारे मन और बुद्धि का निर्माण होता है, सुख दु ख के कर्मों का यही आश्रय है, इसलिये भोजन सम्बन्धी नियमों को बहुत ही पैनी दृष्टि से बनाया गया है। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से तो वह लाभदायक हैं ही, मानसिक व बौद्धिक पवित्रता के लिये भी वह आवश्यक हैं। भावना योग का भी इसमें समावेश है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के यह अनुकूल हैं। मनोविज्ञान ने इन्हें उपयोगी पाया है। विष्णु पुराण (३।११।६१–६६) में भोजन सम्बन्धी नियम इस प्रकार वर्णित हैं—जो मनुष्य स्नान के बिना ही भोजन कर लेता है, उसे मल भक्षण करने वाला समझो। जप किये बिना भोजन कर लेना रुधिर और मूत्र पान करना है। असंस्कृत अन्न का भोजन करने वाला कीड़ों का और बिना दान किये खा लेने वाला विष का भोजन करता है। इसलिये गृहस्थ जिस प्रकार भोजन करे उस विधि को श्रवण करो। स्नान के अनन्तर देवताओं ऋषियों और पितरों का तर्पण कर हाथ में श्रेष्ठ रत्न धारण पूर्वक पवित्रता से भोजन करे। जप और अग्निहोत्र के बाद शुद्ध वस्त्र पहिरे तथा अतिथि, ब्राह्मण, गुरुजन और

अपने आश्रितों के भोजन करने के पश्चात् श्रेष्ठ पुष्पमालादि धारण और हाथ पाँव प्रक्षालन आदि से शुद्ध होकर भोजन करे और भोजन करते समय इधर-उधर दृष्टिपात न करे।"

"अन्यमनस्क भाव को त्याग कर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पथ्य अन्न को मन्त्रपूत जल के छींटे देकर उसका आहार करे। किसी दुराचारी पुरुष से प्राप्त, घृणोत्पादक या बलि वैश्वदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न को त्याग दे तथा अपने भोजन योग्य अन्न में से कुछ अंश अपने शिष्य अथवा अन्य क्षुधार्त व्यक्तियों को देकर शुद्ध पात्र में अन्न रख कर उसका भक्षण करें। किसी बेंत आदि के आसन पर स्थित पात्र में, अयोग्य या संकुचित स्थान में अथवा असमय में भोजन न करे। प्रथम अग्नि को अन्न का अग्रभाग देकर ही भोजन करें। मन्त्रपूत, प्रशस्त तथा ताजा अन्न का भोजन करे। परन्तु, मूल और सूखी शाखाओं के और चटनी में गुड़ के पदार्थों के प्रति यह नियम लागू नहीं हैं। सारहीन पदार्थों का भोजन न करना ही इस कथन का उद्देश्य है। मधु, जल, घृत, दही, सत्तू आदि के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पूरा ही भक्षण न करे।"

"एकाग्र मन से भोजन करना चाहिये। पहिले मीठे, फिर नमकीन, फिर खट्टे और अन्त में कड़ुवे तीक्ष्ण पदार्थों का भोजन करे। जो मनुष्य प्रथम द्रव पदार्थ, मध्य में कठिन पदार्थ और अन्त में पुनः द्रव पदार्थ भक्षण करता है, उसके बल और आरोग्य का कभी क्षय नहीं होता। इस प्रकार अनिषिद्ध पदार्थों का वाणी के संयमपूर्वक भोजन करे। अन्न का कभी तिरस्कार न करे। पहिले पाँच ग्रास मौन रह कर खाय, वह पाँच प्राणों की तृप्ति करने वाले हैं। भोजन के पश्चात् भले प्रकार आचमन करे और पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके हाथों को उनके मूल-देश तक धोकर पुनः विधिवत आचमन करे। फिर स्वस्थ और शान्त मन से आसन पर स्थित हो और अपने इष्ट देवताओं का ध्यान करे। "प्राणवायु से प्रदीप्त हुआ जठराग्नि आकाश से आकाशमय अन्न का परिपाक करता हुआ मेरी देहगत पार्थिव धातुओं का पोषण करें, जिससे मैं सुखी रहूँ, यह अन्न मेरे देह में स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि

और वायु के बल की वृद्धि करे तथा इन्हीं चारों तत्त्वों के रूप में हुआ यह अन्न मुझे सुखदायक हो।"

"यह अन्न प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान को पुष्ट करे, जिससे मुझे बाधा रहित सुख मिल सके। मेरे भोजन किये हुए सब अन्न को अगस्ति नामक अग्नि और बड़वानल पचावें, उनके परिणाम से उत्पन्न होने वाला सुख दें और उससे मेरे देह को आरोग्य लाभ हो। देह तथा इन्द्रियादि के अधिष्ठाता केवल भगवान् श्री हरि ही प्रधान हैं, इस सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन का सब अन्न पककर मुझे आरोग्य-लाभ करावे। भोजन करने वाला, अन्न तथा उसका परिपाक-यह सब विष्णु ही है। इसी सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन किये हुए इस अन्न का परिपाक हो-इस प्रकार यह कह कर अपने पेट पर हाथ फेरे और यत्नपूर्वक अधिक श्रम उत्पन्न न करने वाले कार्यों को करने लगे।"

इन नियमों को धर्म के साथ मिला दिया गया है परन्तु वास्तव में यह स्वास्थ्य के वैज्ञानिक नियम हैं जिनके साथ मनोविज्ञान के तथ्यों को भी गूँथा गया है।

भोजन के पदार्थों में स्वच्छता सर्वोपरि है। इस पर काफी बल दिया गया है (३।११।८८) अथवा न करने वाले को अन्नपानविद नरक की प्राप्ति का भय दिया गया है (१०२)। अतिथियों और [illegible] पूजन करके भोजन करे।

सायंकाल के आचार—

शयन का वैज्ञानिक नियम इस प्रकार है—"शयन के समय पूर्व अथवा दक्षिण की ओर सिर रखे, अन्य दिशाओं में सिर रखना रोग उत्पन्न करने वाला होता है (३।११।१११)" [illegible] धर्म सूत्र (१।१।८) ने भी उत्तर और पश्चिम की ओर सिर करके शयन करने का निषेध किया गया है क्योंकि उत्तरीय ध्रुव व दक्षिण-ध्रुव की ओर आकर्षण का प्रवाह चलता है, उसका मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। [illegible] ने पश्चिम की ओर सिर करने का निषेध किया गया है क्योंकि इस दिशा को देव दिशा [illegible]

किया गया है। सुश्रुत संहिता–सूत्रस्थान १६।६ ने इस तथ्य का समर्थन किया है। इसका वैज्ञानिक कारण बताते हुए एक विद्वान् ने लिखा है—"समस्त ब्रह्माण्ड की गति ध्रुव की ओर होती है और ध्रुव की स्थिति उत्तर दिशा मे होती है। इस कारण ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत पृथ्वी के भीतर की विद्युतधारा भी दक्षिण दिशा से उत्तराभिमुख प्रवाहित होती है। यदि हम उत्तराभिमुख सिर करके सोवें तो वह पार्थिव-विद्युत हमारे पैरो से होकर सिर की ओर प्रवाहित होगी, जिससे सिर मे कई रोग हो जायेंगे और स्नायुपुंज मे अस्वाभाविक उत्तेजना की वृद्धि होने से प्रवृत्ति अस्वस्थ रहा करेगी।"

समागम सम्बन्धी वैज्ञानिक निषेधात्मक नियमो का उल्लेख करते हुए पुराणकार ने (३।११।११२–१८) लिखा है–"ऋतुकाल को प्राप्त हुई अपनी ही भार्या से समागम करे। पुल्लिंग नक्षत्र मे, युग्म रात्रियो मे बहुत रात गये तथा श्रेष्ठ समय देखकर ही नारी से संगति करे। अप्रसन्न मन वाली, रोगिणी, रजस्वला, अभिलाषा-हीन, क्रोधमयी, दुखिनी या गर्भवती के साथ संगति न करे। जो सरल स्वभाव की न हो, अभिलाषा हीन या दूसरे पुरुष की कामना वाली हो, भूख से व्याकुल या अधिक भोजन किये हुए हो ऐसी पत्नी, स्त्री गमन योग्य नहीं है। यदि अपने मे भी इन दोषो की स्थिति हो तो उस दशा मे भी संगति नही करनी चाहिए। स्नान करके पुष्प-माला तथा गंध लेपनादि से युक्त होकर काम और अनुराग के सहित स्त्री के पास जाय और प्रतिभोजन करके अथवा भूखा रहने की अवस्था मे संगति न करे। चौदस, अष्टमी, अमावस, पूर्णिमा तथा सूर्य की सक्रान्ति–यह सब पर्व-दिवस हैं। इनमे तैल मर्दन, नारी-संयोग मृत्यु के अनन्तर मल-मूत्र युक्त नरक की प्राप्ति कराने वाला है। विद्वान् पुरुषो को इन सभी पर्व-दिनो मे सयम पूर्वक सत्-शास्त्रों [redacted] अध्ययन, देववन्दन, जप और ध्यानादि कार्य करने चाहिए।"

यह स्वास्थ्य रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी सूत्र हैं।

लोकाचार–

विष्णु पुराण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का प्राचीन ग्रन्थ ही नहीं है,

इसमे अनेको लोकोपयोगी तथ्यो का सकलन है जो लोकाचार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य, शिष्टाचार और सामान्य ज्ञान व उपयोगिता पर वह आधारित है। (३।१२।६--२१) मे इस प्रकार दिए गए है:—

जल प्रवाह के वेग के सामने से कभी स्नान न करें, जलते हुए घर मे कभी न घुसे तथा वृक्ष के शिखर पर भी न चढ़े। दाँतो का आपस मे घर्षण न करे, नासिका को न कुरेदे। बन्द मुँह मे जमुहाई लेना, खाँसना या श्वास छोडना वर्जित है। जोर से न हँसें, अधोवायु का शब्द सहित त्याग न करे, नखो को न चबावे, तिनका न तोड़े तथा भूमि पर न लिखे। मूँछ-दाढी के बालो को भी न चबावे, दो ढेलो को परस्पर मे न घिसे तथा निन्दित और अशुद्ध नक्षत्रो का दर्शन न करे। नग्नावस्था वाली परनारी को न देखे, उदय या अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन न करें। शव या शव की गन्ध से घृणा न करे, क्योकि शव गन्ध चन्द्रमा का अंश है। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन तथा दुष्टा स्त्री की निकटता—इन सबको रात्रिकाल मे त्याग दे। अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और ज्योतियो की छाया को कभी भी न लाघे तथा सूने जङ्गल या सूने घर मे भी अकेला न रहे। केश, अस्थि, काँटे, अशुद्ध वस्तु बलि, भस्म, तुष और स्नान से गीली हुई भूमि को दूर से ही त्याग दे। अनार्य पुरुष का सङ्ग और कुटिल मनुष्य में आसक्ति न करे, सर्प के समीप न जाय और नीद खुलने पर देर तक न लेटे। जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्या पर लेटने और व्यायाम करने मे अधिक देर न लगावे। दांत और सींग वाले पशुओं को, ओस को, सामने की वायु को और धूप को सर्वथा छोड़ दे। नङ्गा होकर स्नान, शयन और आचमन न करे और बालो को खोलकर आचमन या देवपूजन ही करे। हवन, देव-पूजन, आचमन, पुण्याहवाचन और जप मे एक वस्त्र धारण पूर्वक ही प्रवृत्त न हो। सशय हृदय पुरुषों का कभी साथ न करे। सदाचारी पुरुषो का सदा साथ करे, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के साथ तो आधे क्षण रहना भी प्रशंसनीय है।"

गुरुजनो के सामने पैर न पसारे और उच्चासन पर न बैठने का आदेश है (३।१२।२४)। गुरु ब्राह्मण-देवता और माता-पिता की पूजा मे अगेर-

धारियो के जीवन की सफलता मानी गई है (५।२।१४)। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियो के समक्ष थूकने और मल मूत्र विसर्जन करने का निषेध है (३।१२।२७)। भोजन, हवन, देव-पूजन के समय थूके व छीके नही (२६)। पूज्य पुरुषो का अभिवादन किए बिना घर से बाहर न जाए (३१)।

यह लोकाचार की उपयोगी बातें हैं जो प्रत्येक उत्तम नागरिक को जाननी आवश्यक हैं। अध्यात्म का आरम्भ आचार से होता है। जो आचार मे दक्ष नही है, उसके आत्म-साधना मे सफलता प्राप्त करने मे सन्देह ही है।

जीवन निर्माण के अमूल्य सूत्र

विष्णुपुराण जीवन निर्माण का साधना विधान प्रस्तुत करता है, जिन पर चलकर मानव का पूर्ण उत्थान सम्भव है। यह सिद्धान्त अनुभव गम्य और वेद शास्त्र अनुमोदित हैं। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है--

मोक्ष प्राप्ति का साधन-निष्काम कर्मयोग--

शास्त्रकारो की घोषणा है कि मन को निष्काम कर देने से मोक्ष की प्राप्ति होती है (मनु ६।३४, अमृत बिन्दु २)। "जिसका मन एक बार शुद्ध और निष्काम हो जाता है, उस स्थितप्रज्ञ पुरुष से फिर कभी पाप होना सभव नही अर्थात् सब कुछ करके भी वह पाप पुण्य से अलिप्त रहता है" (बौद्ध ग्रथ) गीताकार (२।५१) ने भी कहा है "समत्व बुद्धि से जो ज्ञानी पुरुष कर्म-फल का त्याग करते हैं, वे जन्म के बन्ध से मुक्त होकर परमेश्वर के दुःख विरहित पद को जा पहुँचते हैं।" इसीलिए भगवान ने स्वय कहा कि "मुझे कर्म का लेप अर्थात् बाधा नही होगी क्योंकि कर्म के फल मे मेरी इच्छा नही है। जो मुझे इस प्रकार जानता है, उसे कर्म की बाधा नही होती।"

प्रह्लाद को जब भगवान् के दर्शन हुए और भगवान् ने वर मांगने को कहा तो इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर उसने कहा "हजारो योनियो मे से

में जिस-जिस योनि को प्राप्त होऊँ, उस उसमे ही मेरी भक्ति आप मे सदैव अक्षुण्णय रूप से बनी रहे। जैसे अविवेकी जन विषयो मे अविचल प्रीति रखते हैं, वैसे ही आप मेरे हृदय से कभी भी प्रथक न हों।" (१।२०।१८,१९)

ऐसी निष्काम बुद्धि से जो भी भगवान् की भक्ति करता है। वह चिंता-मुक्त जीवन व्यतीत करता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है।

ईश्वर प्राप्ति का साधन ज्ञान साधना—

ज्ञान की परिभाषा करते हुए विष्णुपुराण (६।५।८६-८७) मे कहा गया है। "वे ही समष्टि और व्यष्टि रूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्त हैं, वे ही सर्वसाक्षी, सर्वज्ञाता और सबके स्वामी हैं और वे ही सर्वशक्ति सम्पन्न पर-मेश्वर सज्ञक हैं। वे दोष रहित, मल रहित, विशुद्ध और एक रूप परमात्मा जिसके द्वारा देखे या जाने जाते हैं, वही ज्ञान है और इसके विपरीत अज्ञान है।" साधना मे ज्ञान को उच्चतम स्थान प्राप्त है तभी गीता ४।३८ में कहा गया है। "इस लोक में ज्ञान के समान पवित्र सचमुच और कुछ भी नही है।" "पापी से पापी हो, तब भी वह इस ज्ञान नौका से तर जाती है (गीता ४।३६) यह ज्ञान रूपी अग्नि शुभ-अशुभ बन्धनो को जला डालती है (गीता ४।३७)। ज्ञान से मोह का नाश होता है और साधन समस्त प्राणियो को अपने मे भगवान् दीखने लगता है (गीता ४।३५)। ज्ञान से ही परमेश्वर की प्राप्ति कही गई है (महा भारत का० ३८०।३)। ज्ञानी को कर्म दूषित नहीं कर सकते (छांदोग्य ४।१४।३)। इसी आधार पर विष्णुपुराण (२।६।४८) में ज्ञान को परब्रह्म कहा गया है। इसी के माध्यम से वह ईश्वर से मिल सकता है।

आत्म-विकास की कसौटी साम्यभाव—

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हर प्राणी में आत्मा का निवास है। वह आत्मा एकरस अविनाशी, अवध्य है। गलना, सड़ना अथवा नष्ट होना उसकी प्रकृति में नही है। नाश तो पंचभौतिक शरीर का होता है। अतः ज्ञानी पुरुषो का कहना है कि बाह्य आकृति से भले ही जीवधारियो मे अन्तर

प्रतीत होता हो, वस्तुतः उनका कोई अन्तर नहीं है। सर्वत्र एक आत्मतत्व ही बिखरा हुआ है। ऐसा जानना और अनुभव करना ही ज्ञान है। जो व्यक्ति अपने को किन्हीं भौतिक विशेषताओं के कारण दूसरों से बड़ा समझता है, वह इसकी अज्ञानता है। इस अज्ञानता से शक्ति क्षीण होती है क्योंकि वह अपने को एक साधारण प्राणी मानने लगता है और ज्ञान से शक्ति का विकास होता है, क्योंकि वह अपने को महान आत्मा अनुभव करता है। प्रह्लाद की सफलता का रहस्य समान भाव में ही था। वह किसी को अपना शत्रु व वैरी नहीं समझता था। तभी किसी भी आपत्ति का उस पर प्रभाव न पड़ा। उसने स्वयं दैत्य पुत्रों को शिक्षा देते हुए कहा था। "तुम सबके प्रति समान दृष्टि रखो क्योंकि सर्व समानता ही भगवान् अच्युत की परम आराधना है।" (१।१७।६०)।

साधना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचने का सरल मार्ग--भक्ति—

भक्ति का अर्थ है प्रेम। नारद भक्ति सूत्र में कहा है कि परमात्मा में परम प्रेम ही भक्ति का स्वरूप है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में परम अनुराग का नाम ही भक्ति है। गर्ग मुनि का मत है कि भगवान् की कथा अर्थात् नाम, रूप, गुण और लीला के कीर्तन में अनुराग का नाम ही भक्ति है। भागवत में लिखा है "भगवान् की महिमा और गुणगान श्रवण करते ही समुद्र की ओर प्रस्थान करती हुई गंगाजी की अविच्छिन्न धारा की तरह चित्त की जब निष्काम अविच्छिन्न गति हो जाती है, उसी को भक्तियोग कहते हैं।" वास्तव में अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त द्वारा अनुभव करने की साधन प्रणाली को ही भक्ति मार्ग कहा गया है।

विष्णुपुराण में भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं "जिस तरह विषय भोगों में लिप्त लोगों में विषयों के प्रति एक-चित्त प्रीति होती है, उसी तरह भगवान् के प्रति अटूट और अविच्छिन्न प्रेम ही भक्ति का लक्षण है।"

इसी भक्ति भावना को विकसित करने के लिये विष्णुपुराण (१।१७। ८६।८६) में कहा गया है "जो शान्ति, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, वरुण,

सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्येन्द्र, किन्नर, मनुष्यों और पशुओं के अपने मन से उत्पन्न दोषों से, ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा और गुल्मादि रोगों से; तथा द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ और किसी भी अन्य भाव से नष्ट नहीं हो सकती, वह अत्यन्त निर्मल परम शान्ति भगवान् केशव में मन लगाने से ही प्राप्त हो सकती है।" भगवान् ने गीता में भक्तों को स्वयं आश्वासन देते हुए कहा है—"वह भक्ति से मेरा तात्त्विक ज्ञान पायेगा और तात्त्विक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह मुझमें प्रवेश पा जायेगा (१८।५५)।

इससे स्पष्ट है कि भक्ति से साधना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचना सम्भव है।

शक्ति-संचय का साधन-सद्गुण—

सद्गुण मानव की सच्ची सम्पत्ति है। धन वैभव तो धूप छाया की तरह क्षीण हो जाता है परन्तु सद्गुण सदैव साथ रहते हैं और मानव को अपने परम लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होते हैं। दुर्गुण इस प्रगति में बाधा उपस्थित करते हैं, इसलिये वह मानव के सबसे बड़े शत्रु माने गये हैं। इसलिए विष्णुपुराण ने सद्गुणों के विकास पर बल दिया है।

गुणों के अभाव की चर्चा करते हुए कहा गया है "जब गुण नहीं तो पुरुष में बल, शौर्यादि भी नहीं रहता और जिसमें बल शौर्यादि नहीं, उसे कहीं भी आदर प्राप्त नहीं होता।" (१।९।२१) इसका अभिप्राय यह है कि दुर्गुण शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सभी शक्तियों पर कुठाराघात करते हैं और उन्हें नष्ट करते रहते हैं। दुर्गुणी शक्तिहीन होता है और सद्गुणी शक्तिशाली, पुराणकार की प्रेरणा है कि जिसे शक्ति सञ्चय के पथ पर चलना हो, वह सद्गुणों को अपनावे। इसीलिए कहा गया है कि "सद्गुणों से ही मनुष्य प्रशंसित होता है" (१।१३।४७) शक्ति का ही सर्वथा पूजा और सम्मान होता है और शक्तिहीन का तिरस्कार।

गुणों के आधार पर ही मनुष्य के जीवन का निर्माण होता है क्योंकि "गुणों की प्रेरणा से प्राणियों की प्रवृत्ति होती है।" (२।१।४) यही गुण

उसे चोर, डाकू या महात्मा बनाते हैं, यही महान पुरुष या दर-दर का भिखारी बनाते हैं, यही क्षुद्र या उच्च बनाते हैं, यही कलंकित करते हैं और यही प्रशंसित। अतः दुर्गुणों से सावधान रहकर सद्गुणों के विकास में लग जाना चाहिए।

कथाओं के माध्यम से भी सद्गुणों की प्रशंसा की गई है। अक्रूरजी को सद्गुणी घोषित करते हुए कहा गया है कि जब उन्होंने नगर का त्याग किया तो वहाँ दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रव होने लगे(८।१३।१२७-१२८) जब उन्हें वापिस लाया गया तो सभी उपद्रवों की शान्ति होगई (१३०)।

पौण्ड्रकवंश में वासुदेव नामक एक राजा हुआ था, जिसे अज्ञान से भ्रमे हुए मनुष्य वासुदेव रूप से अवतीर्ण हुआ कह कर उसकी स्तुति करते थे। इससे वह भी यह मान बैठा कि मैंने ही वासुदेव रूप से भूतल पर अवतार लिया है। इस प्रकार अपने को भूल जाने के कारण उसने भगवान् विष्णु के सभी चिह्नों को धारण कर लिया। फिर उसने भगवान् श्रीकृष्ण के पास दूत के द्वारा यह संदेश भेजा कि अरे मूढ! तू वासुदेव नाम और चक्रादि सब चिह्नों को अभी त्याग कर दे और यदि अपना जीवन चाहता है तो मेरी शरण में उपस्थित हो (५।३४।४-७)।

भगवान् कृष्ण ने स्वयं उपस्थित होकर उसका गर्व मर्दन किया। पौण्ड्रक ने विष्णु के बाह्य चिह्न धारण करके ही विष्णु का अवतार बनना चाहा। वेषभूषा को धारण करने से कोई वैसा नहीं बन जाता, यह निर्माण गुणों के आधार पर ही होता है। यह गुण ही क्षुद्र से महान बनाते हैं। बाह्य आकार आकर्षक हो या न हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए पुराणकार ने नाशवान शरीर की सजावट की ओर ध्यान न देकर सद्गुणों के विकास पर बल दिया है।

धर्म पालन का अभिप्राय विवेकयुक्त व्यवहार—

धर्म का अर्थ केवल पूजा, पाठ और मन्दिर में जाकर भगवान् की साकार मूर्ति के समक्ष सर झुकाना ही नहीं है। धर्म के बड़े व्यापक अर्थ हैं।

प्रायः इसके प्रति गलत धारणा बनाई जाती है। हमारे शास्त्रकारों ने इसका सुन्दर स्पष्टीकरण किया है।

"जो व्यवहार अपने विरुद्ध हो, उसको दूसरे के साथ मत करो। यही धर्म का तत्व है" (विष्णुधर्मोत्तर ३।२५५।४४) "जिस व्यवहार से इस लोक में आनन्द भोगते हुए परलोक में कल्याण प्राप्त हो, वही धर्म है" (वैशेषिक)। 'न्याययुक्त कार्य धर्म और अन्याययुक्त कार्य अधर्म है, यही श्रेष्ठ पुरुषों का मत है" (महाभारत, वनपर्व २०७।६७)। "सत्य बोले और प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न कहे, मिथ्या प्रिय न कहे, यह सनातन धर्म है"(मनु० ४।१३८)। यही पाण्डित्य है, यही चतुरता है, परम धर्म है कि आय से अधिक खर्च न हो" (पद्म पु० सृष्टि खण्ड अ० ५०)। धर्म के तीन स्कन्ध हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान" (छान्दोग्य) समग्र मानव जाति का-प्राणीमात्र का-जिससे हित होता हो, वही धर्म है" (तिलक)। "दया धर्म का मूल है" (तुलसी)। "सत्य बोलना, सब प्राणियों को एक जैसा समझना, इन्द्रियों को वश में रखना, ईर्ष्या द्वेष से बचना, क्षमा, शील, लज्जा, दूसरों को कष्ट न देना, दुष्कर्मों से अलग रहना, ईश्वर भक्ति, मन की पवित्रता, साहस, विद्या, यह १३ धर्म के लक्षण हैं। इनका पालन सबसे उत्तम धर्म है" (भीष्म)।

इसी धर्म को विष्णुपुराण में अपनी स्वाभाविक शैली में अभि०व्यक्त किया है। १।७।२३ में कहा है "श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुटि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति और वपु ये तेरह कन्याएँ भार्या रूप में धर्म ने ग्रहण की।' अर्थात् यह गुण धर्म के जीवन साथी रहते हैं। आगे २६।३१ श्लोकों में कहा गया है "इसी प्रकार मेधा ने श्रुत, क्रिया ने दण्ड, नय और विनय, बुद्धि ने बोध, लज्जा ने विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख और कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया। धर्म के यही सब पुत्र हैं। धर्म पुत्र काम ने रति से हर्ष को प्रकट किया। धर्म के जो पुत्र घोषित किये गये हैं, वह धर्म पालन के सहज परिणाम हैं। यह धर्म की सुन्दर व्याख्या है।

धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिए कथा का भी सहारा लिया गया है। एक बार दैत्य "धर्म के पालक, वेदमार्ग पर चलने वाले तथा तपोनिष्ठ होगये" (३।१८।३६)। देवता घबराये। विष्णु के पास गये। विष्णु ने अपनी देह से माया-मोह को उत्पन्न किया जो दैत्यों के पास गया। उसने अनेकों युक्तियों से दैत्यों को वैदिक मार्ग से हटा दिया, धर्म से विमुख कर दिया (३।१८।७-११) तब देवता दैत्यों पर विजय प्राप्त करने में सफल होगये। इससे स्पष्ट है कि धर्म पालन में शक्ति, सिद्धि और सफलता है और अधर्म में विफलता है। इस प्रकार से पुराण ने धर्म पालन की प्रेरणा दी है।

ईश्वरीय शक्ति के सहवास से निर्भयता प्राप्ति—

प्रह्लाद का चरित्र निर्भयता का प्रतीक है। विष्णु के प्रति उसकी एक निश्चित धारणा बन चुकी थी जिसे उसके पिता नहीं चाहते थे परन्तु प्रह्लाद ने उसे अपने मन से हटाने से मना कर दिया। हिरण्यकशिपु ने उसे अपनी अवज्ञा समझा और पुत्र को डाँटा, फटकारा और घोर दण्ड का भय दिया परन्तु जिसको विश्व की महानतम् शक्ति का सहारा प्राप्त हो, वह सासारिक शक्तियों से क्यों भयभीत हो ? कथा के अनुसार पिता ने पुत्र को वह मृत्यु तुल्य दण्ड दिए जो एक सहृदय पिता अपने पुत्र के लिए कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। सर्पों से डसवाया गया (१।१६।३७) जिनका उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पडा। सर्पों ने कहा इसके काटने से हमारी दाढ़े विदीर्ण हो गईं, मणियों में दरारें पड गईं, फणों में दर्द होने लगा (१।१७ ।४०)। पर्वत की शिखर के समान विशाल देह वाले दिग्गजों ने उस बालक को पृथ्वी पर डालकर अपने दाँतों से रौंदने की चेष्टा की (१।१७।४२)। अग्नि ने उसे भस्म करने की चेष्टा की (१।१७।४६) परन्तु प्रह्लाद ने कहा 'मुझे सभी दिशाएँ ऐसी शीतल लग रही है जैसे मेरे चारों ओर कमल के पुष्प बिछ रहे हों (१।१७।४७)। रसोईयों ने उसे हलाहल विष दिया (१।१८।४) वह भगवन्नाम के प्रभाव से तेजहीन हो गया। उसे वह बिना

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो कार्य भी हम करते हैं, उनका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तमन मे हो जाता है। इस चित्रण को आध्यात्मिक भाषा मे रेखाएँ कहा जाता है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० फ्राइड। अन्तंमन पर हुए चित्रण को ही भाग्य रेखाएँ कहा जाता है। वैज्ञानिको ने इन रेखाओं का मनन अध्ययन किया है। डा० ईवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होने अपने अनुसंधान के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि जब मस्तिष्क के भूरे चर्बीदार पदार्थ को सूक्ष्म दर्शक यन्त्रो से देखा गया तो उसके एक-एक परमाणु पर असख्य रेखाएँ अकित हुई मिलीं। यह रेखाएँ क्रियाशील प्राणियो मे अधिक और क्रिया शून्य प्राणियो मे कम देखी गई। विशेषज्ञो का कहना है कि यही रेखाएँ उपयुक्त समय पर कर्मों का साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

कर्मो का सूक्ष्म रेखाकन स्वचालित यन्त्र द्वारा ही अपने आप होता रहता है। इस प्रतिक्रिया को समझने के लिए चित्रगुप्त रूपी देवता का नाम रखा गया है कि वह प्राणियो के सभी कर्मों को निरन्तर अपनी बही मे लिखता रहता है और मृत्यु के पश्चात् जब प्राणी को यमराज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्यो का लेखा-जोखा बताते हैं, उसी के अनुसार उसे फल मिलता है। यह चित्रगुप्त वास्तव में हमारा अन्तंमनगुप्त मन ही है जो निरन्तर हमारे कार्यों के चित्र लेता रहता है और उन्हे सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आने पर उन्हें प्रकट कर देता है।

विष्णु पुराण मे कर्म सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। (१।१।१७) मे कहा है "कोई किसी का वध नही करता है क्योकि सब अपने-अपने कृतकर्मों का फल भोग किया करते है।" कर्म की अमिट रेखाओ का वर्णन करते हुए कहा गया है (१।११।१७) "पूर्व जन्म के कर्म का फल कोई नही मिटा सकता और जो तूने नही दिया, उसे कोई दे नही सकता।"

बडे विश्वास के साथ कहा गया है (१।१९।५-६) "जो मनुष्य दूसरो का बुरा नही करना चाहता, उसका अकारण ही कभी अनिष्ट नही होता। जो मनुष्य मन, वचन,कर्म से किसी को कष्ट देता है, उसे उस परपीडा रूप कर्म के द्वारा उत्पन्न हुआ अत्यन्त अशुभफल प्राप्त होता है।"

कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करने वाले जब श्रेष्ठ कर्म करते हैं तो वह अपने निश्चित उज्वल भविष्य की आशा रखते हैं। इसीलिए कहा गया गया है "श्रेष्ठ चित्त वाला होने से मुझे दैविक, मानसिक अथवा भौतिक दु:ख कैसे मिल सकता ?" (१।१९।८)।

यह सिद्धान्त निश्चित भविष्य की आशा का प्रेरक है।

सफलता की कुञ्जी—पुरुषार्थ

वैसे तो उत्थान के लिये पुराणकार ने अनेको मार्ग और साधनाओ का मार्ग-दर्शन किया है परन्तु ध्रुव चरित्र के माध्यम से जो पुरुषार्थ का वर्णन किया गया है, वह सब से श्रेष्ठ माना जायेगा क्योंकि वही सब साधनाओ के मूल में है। इसी के बल पर सभी साधनाये सफल होती हैं।

ध्रुव को अपने अधिकारो से वंचित होना पडा। वह घबराया नही। अपने अधिकार के लिये पात्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यह पात्रता प्राप्त करने के लिये उसने पुरुषार्थ का सहारा लिया। उस ने स्वयं कहा "किसी दूसरे के द्वारा दिये हुये पद की अभिलाषा नही करता, मैं तो अपने पुरुषार्थ से ही उस पद को पाना चाहता हू जिसे पिता जी भी नही प्राप्त कर सके हैं।"

उन्नति की कोई सीमा नही है। इस से असीम उन्नति की आशा की जाती है। जिस तरह ध्रुव ने पुरुषार्थ से अमर पद पाया, उस तरह पुराणकार विश्वास दिलाते हैं, कि हर कोई ऐसा कर सकता है।

संघर्ष का उद्देश्य अधिकार नहीं कर्तव्य हो

हर युग मे हर तरह के व्यक्ति हुए हैं। कोई न्याय या अन्यायपूर्वक, स्वार्थ या लोभवश संघर्ष करके अपने अधिकार प्राप्त करते हैं और किन्ही

ने न्याय और कर्तव्य के लिये अपने जीवन खपा दिये, कोई अपने क्षेत्र के विस्तार में लगा रहा है, कोई उनकी सुव्यवस्था में। कंस, रावण और हिरण्य-कशिपु जैसे राजा अन्याय के लिये प्रसिद्ध है और राम, कृष्ण जैसे राजा अपने न्याय के लिये। जब राम ने रावण पर विजय प्राप्त करली तो वह सुविधापूर्वक लंका के शासक बन सकते थे परन्तु उन्होंने इसे अपना अधिकार नहीं समझा, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इसे विभीषण को दे दिया। यही उचित था।

यही आदर्श विष्णु पुराण (पञ्चम अंश के २१ वें अध्याय में) में कृष्ण द्वारा उपस्थित किया गया है। कंस के उत्पात बहुत बढ़ रहे थे, वह दमन की नीति का अनुयायी था। प्रजा अत्यन्त दुःखी थी, जिसने शासन के विरुद्ध सर उठाया, उसे दबा दिया गया। कृष्ण ने भी विरोध किया। कंस ने कृष्ण को मारने के अनेकों प्रयत्न किये परन्तु वह सफल नहीं हुआ। कृष्ण की योजना सफल हुई, क्योंकि कंस की दमन नीति से उसके सहायक भी उसके विरोधी हो गये थे और गुप्त रूप से कृष्ण का साथ दे रहे थे। कृष्ण ने कंस को मार कर सत्ता हथियाने का प्रयत्न नहीं किया। कंस अन्याय की प्रतिमा थे। उसे नष्ट करना ही उनका उद्देश्य था। वह चाहते तो स्वयं शासन की बागडोर सम्भाल सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कंस के पिता उग्रसेन को उन्होंने शासक नियुक्त किया। उन्होंने अधिकार के लिये नहीं कर्तव्य के लिए संघर्ष किया और कर्तव्य की पूर्ति होने पर स्वयं अलग हो गये। यही आदर्श है जिस के पालन की आज आवश्यकता है।

अनधिकार चेष्टाओं से दूर रहने के कुछ और उदाहरण भी विष्णु-पुराण में दिये गए हैं। एक बार कृष्ण और सत्यभामा इन्द्रपुरी गये। सत्य-भामा को शची के पारिजात वृक्ष के पुष्प पसन्द आये और कृष्ण को पारिजात ले जाने के लिये प्रेरित किया। जब वह वृक्ष को ले जाने लगे तो द्वारपालों ने रोका, इन्द्र व अन्य देवता भी वहाँ आगये और उस वृक्ष पर घोर संग्राम हुआ। अन्त में इन्द्र की पराजय हुई और इन्द्र कृष्ण को पारिजात ले जाने से रोक न सके। सत्यभामा ने कहा "मुझे इस पारिजात रूप पराई सम्पत्ति

को ग्रहण करने की आवश्यकता नही है। (५।३०।७६) मैं ने तो शची का गर्व मर्दन करने के लिये यह युद्ध कराया था।"

राजा शान्तनु का उदाहरण प्रेरणाप्रद है। विष्णु पुराण (४।१०-१४।२१) मे इस प्रकार कथा वर्णित की गई है। शान्तनु के शासन काल मे एक समय बारह साल पर्यन्त बरसात नही हुई। तब अपने समस्त राज्य को समाप्त होता देख कर नृप शान्तनु ने विप्रो से पूछा "मेरे देश मे वर्षा का अभाव क्यो है ? इसमे मेरी क्या त्रुटि है। ब्राह्मण बोले—"जिस राज्य को आप भोग रहे हैं, वह आपके ज्येष्ठ भ्राता का है, इसलिये आप तो केवल सरक्षक मात्र हैं।" यह सुन कर शान्तनु ने पुनः पूछा—"इस परिस्थिति मे अब मुझे क्या करना अभीष्ट है ?" ब्राह्मणो ने उत्तर दिया—"आपके ज्येष्ठ भ्राता देवापि किसी प्रकार पतित या अनाचारी होकर राज्य मे पदच्युत होने योग्य न हो, तब तक इस राज्य के अधिकारी वही हैं। इसलिये आप इस राज्य को अपने भाई को ही सोप दें, आपका इससे कोई सम्बन्ध नही।"

शान्तनु ने अपने अनधिकार को स्वीकार किया। पुराणकार के अनुसार ब्राह्मणो के वचन सुन कर दुखित एव शोकाकुल राजा शान्तनु ब्राह्मणो को सग लेकर ज्येष्ठ भ्राता को राज्य सोपने वन को गये। वे सभी सरलमति विनीत व्यवहारी राजकुमार देवापि के आश्रम पर पहुचे। जहां ब्राह्मण उन्हे समझाते रहे और "ज्येष्ठ भ्राता को ही राज्य करना चाहिये।" आदि वेदो के अनुसार नीति एव उपदेशपूर्ण वचन कहने लगे। लेकिन देवापि ने वेद नीति के विरुद्ध उनसे अनेक प्रकार से दूषित वचन कहे। जिन्हे सुनकर शान्तनु से उन ब्राह्मणो ने कहा—हे नृप ! चलिये, अब अधिक आग्रह करने की आवश्यकता नही है। आदि काल से आराध्य वेद वाक्यो के विरुद्ध दूषित वचन कहने से देवापि पतित हो गये हैं। अब आप चलें अनावृष्टि का दोष समाप्त होकर आपके राज्य मे वर्षा प्रारम्भ हो गई है। चूंकि बडा भाई इस प्रकार पतित हो चुका है, इस कारण अब आप सरक्षक या परिवेत्ता मात्र नही हैं। फिर शान्तनु अपने राज्य को लौट आये और शासन करने लगे।"
(४।२०—२३।२४)

शान्तनु को जब यह पता चला कि राज्य पर उसका अधिकार नहीं है तो वह उसे छोड़ने के लिये तैयार हो गये। अनाधिकार पूर्वक राज्य करने से वर्षा का अभाव हो गया था परन्तु जब बड़े भाई को ब्राह्मणों ने अयोग्य पाया और शान्तनु को राज्याधिकार मिल गया तो वर्षा आरम्भ होगई। अनधिकार चेष्टा से दैवी प्रकोप होता है और अधिकार पूर्वक कार्य करने पर दैवी सहायता मिलती है। कथा का अभिप्राय यह है कि हमें अविवेक के वश में हो कर अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। इस सीमा रेखा के प्रति सदैव सतर्क रहना चाहिए क्योंकि अनधिकार की सीमा में प्रवेश करके कलह, क्लेश, संघर्ष, कठिनाई और घोर विरोधों का सामना करना पड़ेगा जिससे मन हर समय अशान्त रहेगा और यह भी सम्भव नहीं कि वह अनधिकार का प्रयत्न सफल हो जाये।

आत्म निरीक्षण

मानव अपूर्ण है। यह अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिए पूर्ण की ओर प्रवृत्त होता है। ईश्वर पूर्ण है, दोष रहित है। उससे अनुकूलता प्राप्त करने के लिए अपने दोषों का परिमार्जन करना पड़ेगा। विवेक की जाग्रति बिना यह सम्भव न होगा। कौन-सा कार्य करने योग्य है और कौन-सा न करने योग्य, ग्रहण और त्याग योग्य कर्मों का निरीक्षण करना होगा। उचित और अनुचित को परखना होगा और उचित को स्वीकार करना होगा। अपने गरेबान में झाँक कर देखना होगा कि मुझ में कौन-कौन से दोष हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है, जिन से आत्म विकास में बाधा उपस्थित हो रही है। चार पुरुषार्थों पर विचार करना चाहिए। अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम को सन्तुलित रखना आवश्यक है ताकि सुविधापूर्वक आगे बढ़ा जा सके। विष्णु पुराण (३।११—५।७) में इन तीनों पुरुषार्थों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है "गतिमान पुरुष को स्वस्थ चित्त से ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर अपने धर्म तथा धर्म कार्य में बाधक विषयों पर विचार करना चाहिये और उस कार्य का

भी विचार करे जिससे धर्म और अर्थ की हानि न हो। इस प्रकार दृष्टादृष्ट अनिष्ट की शान्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम इन तीनो के प्रति समभावी हो। धर्म के विरुद्ध जो अर्थ और काम हैं, उनका त्याग करे और ऐसे धर्म को छोड़ दे जो आगे चल कर दु:खमय हो जाय अथवा समाज के विरुद्ध हो।"

इस प्रकार का आत्मनिरीक्षण ही एक ऐसा उपाय है जिसमे दोषो को अनुभव करके उनका परिमार्जन किया जा सकता है।

सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार–प्रेममय व्यवहार–

महर्षि सौभरि ने राजा मान्धाता की ५० कन्याओ के साथ विवाह किया। यह विस्तृत चरित्र चतुर्थ अंश के दूसरे अध्याय मे वर्णित है। एक बार मान्धाता यह जानने के लिये महर्षि के आश्रम मे गए कि उनकी कन्याएँ किस परिस्थिति में रह रही हैं। राजा सभी कन्याओ से मिले। सभी हर प्रकार से सुखी थी, किसी तरह का उन्हे अभाव न था परन्तु हर कन्या ने अपने इस दु:ख का वर्णन किया कि "हमारे पति यह महर्षि मेरे भवन से कभी निकलते ही नही, मुझ पर ही अत्यधिक स्नेह रहने के कारण यह हर समय मेरे ही पास रहते हैं, मेरी अन्य बहिनो के पास कभी नही जाते" (४।२।१०६–७)। सभी पत्नियाँ यह अनुभव करती हैं कि उनके पति उनसे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। यही दाम्पत्य जीवन की सफलता का चिह्न है। महर्षि भले ही योग बल से सभी पत्नियो के साथ एक ही समय में रह पाते हों परन्तु वास्तविकता यह है कि वह अपनी पत्नियो को सन्तुष्ट करने मे सफल रहे। गृहस्थ जीवन उसी का सफल माना जाना चाहिये जिसकी पत्नी यह अनुभव करे कि जहाँ तक उसकी जानकारी है, अन्य पतियो की अपेक्षा उसके पति उससे अधिक प्रेम करते हैं। यह सन्तोष ही गृहस्थ जीवन के सुखी होने की नीव है। यही उत्तम कसौटी है।

गृहस्थ योग है–

गृहस्थ को बन्धन नहीं, योग की संज्ञा दी गई। अज्ञानियो के लिये तो यह बन्धन ही है क्योकि इसमे सैकड़ो तरह के झंझट पग-पग पर उपस्थित

होते रहते हैं, परन्तु विवेकी पुरुष इस संघर्षमय जीवन को ही अपने उत्थान का माध्यम मानते हैं। इसमें जो दुःख आते हैं, वह विकास के भविष्य की आशा लेकर आते हैं। गृहस्थ मे क्रियाशीलता, चेतना और जागरूकता बनी रहती है, जो आत्मिक साधना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गृहस्थ किसी पर निर्भर नहीं रहता, अन्य आश्रमों का यह आश्रय स्थल है, यह किसी की सहायता नही चाहता, यह औरों की सहायता करता है। इसलिए इस आश्रम मे आत्मविकास की काफी सम्भावना निहित है। तभी विष्णुपुराण (३।११।६।११) में गृहस्थ के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है" पितरों की पिण्डदानादि से, देवताओं की यज्ञादि के अनुष्ठान से, अतिथियों को अन्न-दान से, ऋषियों की स्वाध्याय से, प्रजापति की पुत्रोत्पादन से, भूतों की बलि से और सम्पूर्ण विश्व की वात्सल्य भाव से सन्तुष्टि करे। अपने इन कर्मों के द्वारा वह पुरुष श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर लेता है। भिक्षावृत्ति पर निर्भर रहने वाले परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों आदि का आश्रय भी यह गृहस्थाश्रम ही है, इसीलिये इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।"

गृहस्थ को प्रेरणा देते हुए कहा गया है (३।१२।१-७) कि "वह प्रतिदिन देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, गुरुजन और आचार्य का पूजन करे तथा दोनों समय सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र करे। संयम पूर्वक रहे। किसी के किंचित मात्र धन का भी अपहरण न करे, अप्रिय भाषण न करे, परनारी मे प्रीति न करे, दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे"। आज इन आदर्शों और कर्तव्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता, इसलिए इस परम पवित्र गृहस्थ आश्रम का बोझ अनुभव किया जाता है।

गुरुजनों का सम्मान-एक सामान्य शिष्टाचार—

'अद्वयतारक' उपनिषद् के अनुसार गुरु ही परब्रह्म है, गुरु ही परम गति है, गुरु ही परम विद्या है, गुरु ही परायण योग्य है, गुरु ही पराकाष्ठा है, गुरु ही परम धन है। वह उपदेष्टा होने के कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है। यही भारतीय संस्कृति की धारणा है। प्राचीनकाल मे गुरु निःस्वार्थी, निर्लोभी,

तपस्वी होते थे और निरन्तर अपने शिष्यों के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहते थे, तभी तो महर्षि ऋभु अपने पुराने शिष्य निदाघ के निवास स्थान पर अद्वैत और आत्मबुद्धि की शिक्षा देने जाते हैं (विष्णु पुराण २।१६।१८) और निदाघ उनकी सेवा करते हैं, आज्ञा का पालन करते हैं और गुरु के आदेश के अनुसार साधना में लग जाते हैं।

प्राचीन व्यवस्था में गुरु को काफी सम्मान दिया जाता था। बालक को गुरु गृह में रहकर गुरु सेवा का आदेश दिया गया है (३।६।१-२)। गुरु के प्रति शिष्टाचार का पालन करते हुए (३।६।२-६) में कहा गया है, गुरुदेव का अभिवादन करे। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे-पीछे चले और जब बैठे तब नीचे बैठ जाय। इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिये। गुरुजी कहें तभी उनके सामने बैठकर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे। जब आचार्य जल में स्नान कर लें तब स्नान करे और नित्य प्रति उनके लिये समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करे। इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो।"

गुरुजनों की आज्ञा के पालन से सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन ग्रन्थ में पाया है। गुरु अन्धकार व अविवेक को नष्ट करते हैं अतः शिष्टतापूर्वक उनका सम्मान करना चाहिये।

पितृ सेवा—युग का परम धर्म—

पूर्वक वर्तता है, वह जीता हुआ भी मृतक के समान है और मरने पर नरक को जाता है" अध्यात्म रामायण (६।३१)। पिता की प्रसन्नता के लिए भीष्म प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है। श्रवणकुमार की सेवा को कौन भुला सकता है? इसीलिए पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए विष्णु पुराण ने भी कहा है, "पिता सर्वत्र प्रशंसनीय है, वही गुरुओं के परम गुरु हैं, इसीलिए उन्हीं की स्तुति करनी चाहिये" (१।१८।१३)। पुराणकार ने भगवान कृष्ण के मुख से कहलवाया है "माता-पिता की सेवा किए बिना व्यतीत हुआ आयु भाग असाधुत्व को प्राप्त कराता हुआ व्यर्थ हो चला जाता है" (५।२१।३)।

राजा ययाति शुक्राचार्य के शाप से असमय में ही वृद्ध हो गये। फिर यह छूट मिली कि वह अपने किसी पुत्र का यौवन लेकर अपनी वृद्धावस्था उसे दे सकते हैं और यौवन के भोगों को भोग सकते हैं। ययाति पुत्र पुरु ने अपना यौवन पिता को अर्पित करते हुए कहा, "यह तो आपका मुझ पर परम अनुग्रह है। इस प्रकार कहकर पुरु ने उनकी वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था उन्हें दे दी" (४।१०।१६-१७)। पितृ सेवा का यह भी एक अनोखा उदाहरण है—अपना यौवन पिता को अर्पित करना। यही सीख पुराणकार देना चाहते हैं कि पिता की सेवा हमारा परम धर्म होना चाहिए।

समय का सदुपयोग—

समय को एक मूल्यवान् सम्पत्ति माना जाता है। जो इसका सदुपयोग करता है, सफलता उसके पैर चूमती है, दुरुपयोग करने वाले को रोते-झींकते और भाग्य को कोसते ही देखा गया है। क्षीण परिस्थितियों में पले व्यक्तियों ने उसकी सिद्धि से महान् सफलताएँ प्राप्त की हैं और उत्तम अवसर प्राप्त व्यक्तियों का जीवन उसके अभिशाप से नष्ट हो गया।

माता-पिता अपने बच्चों को वही शिक्षा देते हैं जो माया रूपी सुनीति ने ध्रुव को अपने साधना-पथ से विचलित होने के लिए दी थी कि "क्योंकि अभी तो तेरी आयु खेलने-कूदने की ही है, फिर अध्ययन करने योग्य होगी, उसके बाद भोगों को भोगने का समय होगा और अन्त में तप करने की अवस्था

प्राप्त होगी। हे पुत्र ! तुझ सुकुमार की जो बाल्यावस्था है, उस खेलने की अवस्था मे तू तपस्या का अभिलाषी हुआ है, अरे, तू क्यों इससे अपना सर्वनाश करने को तत्पर है ? मुझे प्रसन्न करना ही तेरा परम धर्म है, इसलिये तू अपनी आयु के अनुकूल ही कर्मों को कर, मोह का अनुवर्तन कर और इस तपस्या रूपी अधर्म से अब विमुख होजा।" (१।१२।१८-२०)।

तभी तो पुराणकार ने प्रेरणा दी है, "मूर्ख मनुष्य बाल्यावस्था मे खेलते-कूदते, यौवनावस्था में विषयो मे फँसे रहते और वृद्धावस्था मे असमर्थ हो जाते हैं। इसलिए विवेकी मनुष्य को बाल, युवा या वृद्धावस्था का विचार न करके, बाल्यावस्था से ही अपने कल्याण में लग जाना चाहिये" (१।१७।७५।७६)। बाल्यावस्था और यौवन मे इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं। वह कठोर से कठोर साधना करने मे समर्थ होती हैं। वृद्ध होने पर तो वह शिथिल हो जाती हैं, फिर उनसे कुछ भी नही बन पाता। इसलिए यह अवस्था पहुँचने से पूर्व ही समय का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी गई है।

राजा खट्वांग ने भी आयु से पूर्व एक मुहूर्त के समय का अच्छा उपयोग किया। उसने देवासुर संग्राम मे देवताओ की सहायता की थी। इसलिए देवताओ ने उससे वर मांगने को कहा (४।४ ७५-७६)। उस समय उसकी एक मुहूर्त की आयु रह गई थी। राजा एक अबाध गति वाले यान पर बैठकर मृत्यु लोक मे पहुँचा और बोला, "यदि मैंने कभी अपने धर्म को नही छोडा, यदि सब देवता, मनुष्य, पशु पक्षी और वृक्षादि मे भगवान् के अतिरिक्त कुछ और नही देखा तो मुझे निर्बाध रूप से भगवान् श्री विष्णु की प्राप्ति हो" (४।४।८०)। यह कहकर खट्वांग अपना चित्त परमात्मा में लगाकर लीन हो गये। तभी ऋषि कहा करते हैं कि 'खट्वांग जैसा कोई भी राजा पृथ्वी पर नहीं होना है जिसने केवल एक मुहूर्त जीवन के शेष रहते हुए स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर अपनी बुद्धि से तीनो लोको को पार किया और भगवान् को प्राप्त कर लिया" (४।४।८१-८२)।

पुराणकार की प्रेरणा है कि हमें एक क्षण भी नष्ट किए बिना अपने

लक्ष्य की ओर निर्बाध गति से चलते जाना चाहिए और समय जैसी मूल्यवान् सम्पत्ति को नष्ट न करके उसका सदुपयोग करना चाहिये।

साधना का भूषण--क्षमा--

विष्णु पुराण (१।१।२०) में क्षमा को साधुना का भूषण कहा गया है। यह निर्बलता का चिन्ह नहीं, शक्ति का द्योतक है। अपराधी को दण्ड देना तो साधरण नियम है। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी लम्बे समय के अनुभव के बाद निश्चित किया है कि अपराध वृत्ति को दण्ड के भय से सुधारा जाना सम्भव नहीं है, उसके लिये अन्य उपाय अपनाने चाहिए। अपराधी को दण्ड दिला कर मन को कुछ सतोष अवश्य हो जाता है परन्तु उससे किसी का भी भला नहीं होता। अपराधी की अपराध वृत्ति उत्तेजित होती है और दण्ड दिलाने वाले के मन में शत्रुता के भाव दृढ होते हैं। पुराणकार प्रह्लाद की कथा के माध्यम से अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हैं। प्रह्लाद के पिता ने उसे अनेकों प्रकार के मृत्यु दण्ड दिये जिनसे वह बच निकला। विष्णु भगवान के जब उसे दर्शन हुए और उन्होंने वर माँगने के लिये कहा तो प्रह्लाद ने साधुता का परिचय देते हुए कहा--"मेरे देह पर शस्त्राघात करने, अग्नि में जलाने, सर्पों से कटवाने, भोजन में विष देने, पाशवद्ध कर समुद्र में डालने, शिलाओं से दबाने तथा अन्यान्य दुर्व्यवहार मेरे साथ करने के कारण जो पाप मेरे पिता को लगे हैं, उन पापों से वह शीघ्र छूट जायें" (१।२०।२२--२४)। यह है सच्ची क्षमा। पिता ने पुत्र को अपना विरोधी समझकर उसे यमपुर पहुँचाने के सभी सम्भव प्रयत्न किये तो पुत्र भी वैसा कोई वर माँग सकता था जिससे अपना बदला लिया जा सके परन्तु उसने अज्ञानी जान कर क्षमा कर दिया। यह महानता का लक्षण है।

स्पष्टवादिता--साहसी जीवन का परिचायक गुण--

मन और व्यवहार में अन्तर होना एक अवगुण है। ऐसे व्यक्ति पर कोई भी विश्वास नहीं करता। इससे अन्ततः हानि ही होती है। जो मन में है, वह क्रिया में होना एक विशेषता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों का विश्वासपात्र

बनता है और उसे हर तरह का सहयोग मिलता है। विष्णु पुराण ऐसी स्पष्ट-वादिता का समर्थक है। एक बार देवताओं और दैत्यो मे युद्ध होने को था। दोनों ब्रह्मा के पास अपना भविष्य पूछने गये। ब्रह्मा ने उन्हें कहा कि जिस पक्ष के साथ राजा रजि शस्त्र धारणपूर्वक युद्ध करेगा, वही पक्ष जीतेगा (४।६।४–५)। दैत्य उसके पास गये। रजि ने यह शर्त रखी कि यदि विजयी होने पर मैं दैत्यो का इन्द्र बन सकूँ तो मैं तुम्हारी ओर से युद्ध करने को तैयार हूँ। इस पर दैत्यो ने स्पष्ट रूप से कहा—'हम जो कह देते हैं, उससे विपरीत आचरण कभी नही करते। हमारे इन्द्र प्रह्लाद हैं और उन्ही के लिये हम इस संग्राम मे तत्पर हुए हैं" (४।६।८)। दैत्य हार गये परन्तु उन्होने कपट नही किया, स्पष्ट रूप से रजि को वास्तविकता से परिचय कराया।



प्रभावशाली व्यक्तियों का चित्रण

विष्णु पुराण में प्रभावशाली व्यक्तियो को उभारने का प्रयत्न किया गया है। शिक्षाओ और प्रेरणाओ का व्यक्ति के मस्तिष्क पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि मान्यमान्य व्यक्तियो की सच्ची घटनाओ से। इसीलिये पुराणकारो ने जीवन उत्थान के सूत्रो को कथाओ के माध्यम से या की शैली अपनाई। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्हें दो प्रकार के व्यक्तियों में लाना पड़ा—एक अच्छे और दूसरे बुरे। अच्छे के गुणो को ग्रहण किया जा सके और बुरे की बुराइयों के प्रति सजग रहा जाय।

पहली श्रेणी मे अनेको महान् और आदर्श आत्माओं को लिया गया है। जनक (४।५।१२) आदर्श कर्मयोगी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। राजा होकर भी वह सभी भोगों मे अलिप्त रहते हैं। क्षत्रिय होकर ब्राह्मणो और सन्यासियो तक को शिक्षा देते हैं। हर व्यक्ति पुरुषार्थ के बल पर महानतम पद प्राप्त कर सकता है।

ध्रुव ने बाल्यकाल मे भगवत्प्राप्ति की साधना प्रारम्भ की। वह आज-कल के भौतिकवादियों को चेतावनी है, जो अपने बच्चो को स्कूल की पुस्तको

के प्रतिरिक्त ग्रौर कुछ पढने की ग्राज्ञा ग्रौर प्रेरणा नही देते। ध्रुव को ग्रपने ग्रधिकारो से वंचित किया गया। वह किसी के पास रोया नहीं,गिडगिड़ाया नही। पुरुषार्थ के बल पर उसने ग्रपना ग्रधिकार प्राप्त किया। विश्व की हर शक्ति पुरुषार्थ के सामने घुटने टेक देती है। जो व्यक्ति परिस्थितियो का रोना रोकर भाग्य ग्रौर ईश्वर को कोसा करते हैं, उन्हे ध्रुव के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए कि वह ग्रपनी बुरी से बुरी परिस्थितियो को पुरुषार्थ से सुधार सकते हैं।

प्रह्लाद निर्भयता के प्रतीक हैं। जो साधक शरीर-भाव से ऊँचा उठ कर ग्रात्म-भाव में स्थित हो जाता है, उसे ससार की महानतम शक्तियो से भी भय नहीं लगता,क्योकि वह समझता है कि उसका यह पचतत्वो का शरीर तो ग्राज नही कल नष्ट हो ही जायगा। इसके नष्ट होने पर भी मेरा नाश सम्भव नही है, मैं तो ग्रविनाशी तत्व हूं। यह छाप जिसके मन पर स्थायी रूप से पड जाती है, वह विष, ग्रग्नि से क्यो मरेगा ? पर्वतो से गिरने ग्रौर समुद्र मे डूबने से उसका क्या होगा ? वह तो सर्वत्र एक जैसी स्थिति मे रहेगा। जीवन की सफलता इसी मे है न कि भौतिक ऐश्वर्यों के सचय मे।

"सगर का जन्म तपोवन मे हुग्रा था। उनका राज्य छिन गया था। जब वह बडा हुग्रा तो ग्रपने सभी शत्रुग्रों को परास्त करके सात द्वीपो वाली सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य किया" (४।४।४६)। ग्रपने छीने हुए ग्रधिकारों को पराक्रम से वापिस लिया जा सकता है।

भागीरथ भी पुरुषार्थ के प्रतीक ही है जो गगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने मे सफल हुए ग्रौर पृथ्वी को स्वर्ग बना दिया। स्वर्ग से ग्रवतरित होने की कथा को बुद्धिवादी न भी मानें तो यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उसने बाँध बनवाकर गगाजल को एक निश्चित दिशा मे प्रवाहित करने की योजना बनाई ग्रौर सफल हुए।

कृष्ण बलराम ने तो मिलकर कंस, जरासध जैसी ग्रजेय शक्तियो को पराजित किया ग्रौर धेनुकासुर, प्रलम्बासुर जैसे ग्रनिष्टकारी तत्वो का विध्वंस

किया। यह उच्चकोटि की परमार्थ साधना है। इसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर कोई अपना सकता है।

वसुदेव देवकी अपने धुन के पक्के थे। वह जानते थे कि उनके हर शिशु का वध कर दिया जायगा। साधारण बुद्धि तो यह निर्णय करती कि अपने बच्चो को आंखो के सामने मरते देखने की अपेक्षा यही उचित था कि उन्हें उत्पन्न ही न किया जाय परन्तु उनका निश्चय था कि उनकी सतान कस का अन्त करेगी। वह अपने हृदय को कटता देखते रहे परन्तु दृढ निश्चय और सकल्प एक दिन सफल होता ही है। वह कृष्ण को बचाने मे सफल हुए जिसने कस को यमपुरी पहुँचाकर देश में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना की।

नन्द का बलिदान भी कम महत्व का नही है। उसने दूसरे के शिशु को बचाने के लिये अपनी कन्या को बलिवेदी पर चढा दिया। उस त्याग का ही यह फल हुआ कि कस जैसी महान् शक्ति को तोड-फोड दिया गया। त्याग से बडे-बडे कार्य होते देखे गये हैं।

विरोधी व्यक्तित्व भी कम प्रभावशाली नही हैं। रावण (४।१५) ने लका को स्वर्णमय बना दिया था। वह महान् पडित और भौतिक विज्ञानी था, वह स्वर्ग तक सीढी बनाने के प्रयत्न में था परन्तु सीताजी के प्रति आसक्त होने से वह कलङ्कित हो गया। विद्वान् और ऐश्वर्यशाली होना ही पर्याप्त नही है, चरित्रवान् होना महानता की प्रथम कसोटी है। वह सब तरह से प्रभावशाली था परन्तु एक अवगुण, दुश्चरित्र ने घुन का काम किया।

कस का विस्तृत चरित्र विष्णु पुराण मे उपलब्ध है (पचम अंश, अध्याय १६–२१)। उसकी निर्दयता का विशिष्ट उदाहरण है। जनता पर अन्याय और जुल्म ढाना तो प्राचीन राजाओं के लिये एक साधारण बात रही है परन्तु अपनी बहिन की सतानो का वध कहीं नहीं सुना गया। जो कहीं न सुना गया, न देखा गया, वह कस ने किया। जो राजा अपने सगे सम्बन्धियों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है, उससे कल्पना की जा सकती है कि जनता के लिये वह कितना जालिम होगा। कस के चरित्र से स्पष्ट है कि अन्याय

और निर्दयता से शक्ति का ह्रास होता है। इतने शक्तिशाली सम्राट् को एक बालक कृष्ण ने परास्त कर दिया। न्याय का पक्ष लेने वाली छोटी शक्तियाँ अन्यायों की शक्तियों पर सहज ही विजय प्राप्त कर सकती हैं।

जरासंध' के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। यह कंस का ससुर था। जब कृष्ण ने कंस का वध किया तो वह असंख्य सेना लेकर मथुरा पर चढ़ाई करने आ गया। यादवों की थोड़ी-सी सेना ने उसकी विशाल सेना को एक नहीं अठारह बार परास्त किया। अन्याय और अत्याचार उसका भी एक अवगुण था। उसने दूसरे राजाओं की हजारों कन्यायें अपने यहाँ कैद कर ली थीं। अन्याय शक्ति को विध्वंस करने वाला है।

वेन ने राजपद पर अभिषिक्त होते ही यह घोषित कर दिया था कि—"मैं भगवान् हूँ, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ। इसलिये अब कोई पुरुष दान और यज्ञादि न करे" (१) १३ (१३–१४)। राज्य के लिये इस अहितकर मनोभावना को देखकर महर्षियों ने पहिले से ही मृत उस राजा का मन्त्रपूत कुशों के आघात से वध कर दिया (१।१३।२६)। अहंकार शक्तिशाली को भी शक्तिशून्य कर देता है। ऋषियों ने उसके बाँये हाथ को मला और पृथु की उत्पत्ति की, उसे ही राज्य शासन सौंपा। अहङ्कार का सदैव सर नीचा होता है।

हिरण्यकशिपु की घोषणा भी वेन से मिलती-जुलती है। उसने भी प्रह्लाद से कहा था, "मेरे अतिरिक्त और कौन परमेश्वर हो सकता है?" (१।१७।२३)। राज्य और शक्ति के अहङ्कार ने उसे अन्धा कर दिया था। वह अपने को विश्व की समस्त शक्तियों का सिरमौर मानता था। उसका वध स्वयं भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर किया। यह निश्चित है कि विश्व के सभी ऐश्वर्य और भौतिक शक्तियाँ प्राप्त होने पर भी जिसके मन में अहङ्कार घुसा हुआ है, उसका अन्त बुरा ही होना है, उसे दुर्दिन देखने ही पड़ते हैं।

कृष्ण के नेतृत्व में यादवों ने प्रशंसनीय विकास किया परन्तु जब विलासिता और मद्यपान आदि की कुप्रवृत्तियाँ उनमें पनपने लगीं और ऊँच नीच के भेद-भावों ने जन्म लिया (५।३७।४२)। तब उनमें आपसी संघर्ष होने

लगे और कृष्ण स्वयं उन्हें ध्वस्त करने की सोचने लगे। इन कुरीतियों और कुप्रवृत्तियों ने मनोमालिन्य का रूप लिया, फिर संघर्ष, युद्ध और समाप्ति। अवगुण व्यक्ति के ऊँचे व्यक्तित्व को भी नष्ट कर देते हैं।

वैदिक युग में इन्द्र का एक सर्वोच्च, सम्मानित पद था। इन्द्र से सम्बन्धित लगभग साढ़े तीन हजार मन्त्र वेदों में आते हैं। इतने मन्त्र और किसी देवता को समर्पित नहीं हुए हैं। परन्तु विष्णु पुराण में उसे सत्ता लोलुप, द्वेषी कामी और ईर्ष्यालु दिखाया गया है। (१।२१।३२-३८) के अनुसार कश्यप पत्नी दिति के गर्भ के इन्द्र ने सात खण्ड कर दिये। पंचम अंश के दसवें अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र यज्ञ की उपेक्षा की और गोवर्धन की पूजा की, (५।१०।४४)। पंचम अंश के तीसरे अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र को पारिजात वृक्ष ले जाने पर नीचा दिखाया। नरकासुर वध के लिये इन्द्र कृष्ण से प्रार्थना करते हैं (५।२८।१०-१२)। इन्द्र को तपस्वियों का तप भ्रष्ट करते हुए दिखाया गया है और वह भी सुन्दर स्त्रियाँ भेजकर उन्हें काम-जाल में फँसा कर (१।१५।११ १३)। कण्व ऋषि का तप एक अप्सरा के सहयोग से भ्रष्ट किया गया। महानतम व्यक्तित्वों के भी गिरने की सम्भावना रहती है। अतः सदैव जागरूक रहना ही बुद्धिमानी है। आत्म निरीक्षण द्वारा अपने दोषों पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए और उन्हें पनपने के अवसर न देने चाहिये क्योंकि जीवन के अन्तिम क्षणों में भी पतन की अवस्था आ सकती है।

कंस अन्याय का प्रतीक था। वह नष्ट हुआ। अन्याय को जो भी सहयोग देगा वह नष्ट होगा, यह निश्चित है। पूतना ने कंस की आज्ञा से कृष्ण का बध करना चाहा परन्तु उसका वही अन्त हुआ जो अन्याय के पक्षपातियों का होता है।

अहिल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी, इन्द्र ने गौतम का वेष बदल कर अहिल्या से सम्भोग किया। वह शापवश पत्थर की हो गई। उसने अपना दोष स्वीकार किया, अपनी गलती पर वह पछताई। गौतम ने उसे स्वीकार कर लिया। मोक्ष धारण करने वाली अहिल्या ने राम के समक्ष अपना दोष

माना होगा। इसीलिए कहा गया कि वह उनके दर्शन करने से पाप-मुक्त हो गई (४।४।६१)।

इसी तरह चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा से सम्भोग किया, उसके गर्भ रह गया। इस पर दानवों और दैत्यों में युद्ध हुआ। ब्रह्माजी बीच में पड़े और तारा को बृहस्पति को दिलवा दिया। बृहस्पति ने उस गर्भ को निकाल फैंकने के लिए कहा। आदेश का पालन किया गया। तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। जब यह पूछा गया कि यह किसका बालक है तो तारा ने इसे चन्द्रमा का स्वीकार किया (४।६।३२)। दोष बहुत बड़ा है परन्तु स्वीकार किया गया बृहस्पति ने उसे अपनाया।

इन दो उदाहरणों से दोषी स्त्रियों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति स्पष्ट हो जाती है। दोष सबसे होते हैं और जब वह दोष को स्वीकार कर लेते हैं तो दोष को समाप्त हुआ माना जाता है।

इन दो प्रकार के विरोधी व्यक्तित्वों से अपने जीवन का मार्ग चुनने में सहायता मिलती है।

साम्प्रदायिक एकता-अनेकता का प्रतिपादन

विष्णु-पुराण विष्णु-प्रधान पुराण है। यह स्वाभाविक ही है कि इसमें अन्य देवताओं की अपेक्षा विष्णु को महान् सिद्ध किया जाए, जिस तरह से शिव सम्बन्धी पुराणों में शिव को प्रधान और अन्यों को गौण माना गया है। वैष्णव धर्म उदार धर्म है। इसमें ऊँच-नीच का कोई भेद भाव नहीं है, जो भी इधर झुका उसे गले लगाया गया, चाहे वह कोई भी हो, यह भागवत और विष्णु पुराण आदि विष्णु-प्रधान-पुराणों से स्पष्ट है। फिर भी पुराणकार की श्रद्धा अपने इष्टदेव की ओर विशेष होती है और वह त्रिदेव को एक मानते हुये भी अनेक स्थानों पर दोनों में विवाद करा कर उस पुराण से सम्बन्धित देव को प्रधान और दूसरों को गौण बना ही देता है। उदाहरण के लिए कृष्ण और शंकर युद्ध का वर्णन है—जिसमें शङ्कर, कृष्ण से पराजित होते हुए दिखाए गये हैं। (१।३३–२१।२६)

एक और स्थान पर शङ्कर को कृष्ण से नीचा दिखाया गया है। पंचम अंश के ३४ वें अध्याय में वर्णन है कि पौण्ड्रक के वसुदेव राजा ने विष्णु का वेश बना कर सारे चिन्ह धारण किये और कृष्ण को चुनौती दी। कृष्ण ने उसे स्वीकार किया। वसुदेव पराजित हुए। कृष्ण ने उसके सहायक काशी नरेश का भी सर काट दिया। काशी नरेश के पुत्र ने शङ्कर को प्रसन्न करके कृत्या उत्पन्न की जो अपनी विकराल ज्वालाओं के साथ द्वारका में आई। कृष्ण ने चक्र छोड़ा तो वह भागी। शङ्कर की प्रदान की हुई कृत्या कृष्ण के चक्र के सामने न रुक सकी (५।३४—२८।४३)।

ब्रह्मा को भी गौण मानने के कई उदाहरण इस पुराण में हैं। जब देवासुर संग्राम में देवता पराजित हुए तो ब्रह्मा ने उनकी समस्या का स्वयं समाधान न करके भगवान विष्णु की शरण में जाने के लिये प्रेरित किया। (१।६—३।४)

ब्रह्मा देवताओं को लेकर भगवान विष्णु के पास पहुँचे। ब्रह्मा से विष्णु की ऐसी प्रार्थना कराई गई है जैसे आर्त स्वर से कोई भक्त अपने इष्टदेव के प्रति करता है (१।६—४०।५०)। इसका उद्देश्य ब्रह्मा की हीनता और विष्णु की महानता का प्रतिपादन करना है।

इसी तरह से ध्रुव आख्यान (१।१२।६६) में ध्रुव भगवान विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं—' हे देव ! ब्रह्मा आदि वेदों के ज्ञाता भी जिनकी गति का ज्ञान नहीं रखते, उनका स्तवन मैं अबोध बालक कैसे कर सकता हूँ।"

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि विष्णु को शिव और ब्रह्मा से बड़ा सिद्ध किया गया है। वैसे पुराणकार ने तीनों को एक शक्ति, एक शक्ति के विभिन्न रूप भी माना है और तीनों के साम्य की स्थापना की है, जिससे उनकी निष्पक्षता और उदारता का परिचय मिलता है।

विष्णु पुराण (१।२—६६।६६) में कहा है। "एक मात्र भगवान् जनार्दन ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के नामों को ग्रहण करते हैं।" १।४।१६ में पृथ्वी ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा है।

"हे प्रभो ! सृष्टि आदि के लिए आप ही ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, का स्वरूप धारण करते हो, तुम ही सर्व भूतों के कर्ता हो, तुम ही रखने वाले और तुम ही विनाश करने वाले हो।" (१।६।२३) मे विष्णु और शिव की एकता स्थापित करते हुए कहा गया है 'यदि विष्णु शिव हैं तो लक्ष्मी पार्वती हैं।"

'ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप मे जिन अभूतपूर्व देव की शक्तियाँ हैं, वही भगवान श्री हरि का परम पद है।" (१।६।५६) । "देवताओं ने कहा—हे नाथ ! आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य, यमराज होते हुए भी निर्विशेष हैं।" (१।६—६८।६४)।

प्रह्लाद ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा "ब्रह्मा रूप से विश्व के सृष्टा, विष्णु रूप से पालक और रुद्र रूप से संहारक त्रिमूर्तिधारी भगवान को नमस्कार है।" (१।१६।६६)।

विष्णु की तीनों शक्तियों का समन्वय रूप घोषित करते हुये कहा गया है। "जिस जीव द्वारा जो कुछ भी उत्पत्ति होती है, उस सब में भगवान विष्णु का हेतु ही एकमात्र कारण है। इसी प्रकार स्थावर जगम प्राणियों में से यदि कोई किसी का अन्त करता है, तो वह अन्त करने वाला भी भगवान का अन्त करने वाला रौद्र रूप होता है। इस प्रकार से वह भगवान ही समस्त विश्व के सृजन, पालन और संहारकर्त्ता हैं, तथा वह स्वयं ही जगद्रूप हैं।" (१।२२–३८।४०)।

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं।" (१।२२।५८)।

भगवान के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है—"आपका जो स्वरूप कल्प के अन्त में सभी भूतों का अनिवार्य रूप से भक्षण कर लेता है, उस काल रूप को नमस्कार है। प्रलयकाल म देवादि सब प्राणियों को सामान्य रूप से भक्षण करके नृत्य करने वाले आपके रुद्र रूप को नमस्कार है।" (३।१७–२५।२६)।

रचना का विस्तृत वर्णन है। वैसे तो सारा विष्णु पुराण ही ईश्वर की सत्ता और महत्ता की पुष्टि करता है परन्तु सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन १।२।१०,१५,२१, १।१२।५७,६७,७४, १।१४।२६, १।१७।१५,२४, ६।४।३७-३८, मे विशेष रूप से किया गया है।

१।६।१३ मे मन की शुद्धि को परमात्म प्राप्ति का साधन बताया गया है। भगवान् उसी पर प्रसन्न होते हैं जो किसी की निन्दा और मिथ्या भाषण नही करता और खेदजनक वचन नही कहता (३।८।१३)। ईर्ष्यालु, निन्दक, सन्तो का तिरस्कार करने वाला और दान न देने वाला भगवान को प्राप्त नही कर सकता (२।७।२६)

१।२।१६, ५०-५३, और ६।४।३४ मे प्रकृति का चित्राकन किया गया है। १।२।२५, १।७।४२,४३, ३।३।१, ६।४।१५-१६, ५।५।१ मे विभिन्न प्रकार के प्रलयों का वर्णन है। इससे यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रलय ही स्वभाविक रूप से आती है और आती रहेगी। उत्तम साधक को सदैव अपने सामने प्रलय के दर्शन करते रहने चाहिए और निर्भय रूप से विचरना चाहिए। जो प्रलय से निर्भय हो गया, वह ससार की किसी भी विपत्ति से नही घबड़ा सकता।

तृतीय अश के १८ वें अध्याय मे एक कथा द्वारा भारतीय मनोविज्ञान को सुन्दर रूप से उभारा गया है जिससे निराश से निराश व्यक्तियों मे भी आशा की उमगें उछलने लगती हैं। २।१२।६६ मे वेदान्त विज्ञान का सार दिया गया है।

१।१।१७, १।११।१७-१८, १।१६।५,८ मे कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और यह साहस पूर्वक कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरो का बुरा नही करना चाहता, उसको अकारण भी कभी कष्ट नही होता। इसी सिद्धान्त से व्यक्ति भविष्य निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है। वह केवल अपने कर्मों को सुधार कर किसी से भयभीत नही होता। वह अपने भाग्य को स्वय बनाता है।

राजा खाण्डिक्य के सामने जब राज्य और परलोक दोनों मे से चुनने का अवसर आता है तो वह राज्य की उपेक्षा करके परलोक को ही पसन्द करते हैं। इस कथा मे पृथ्वी के भौतिक सुखो और ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व दिया है। (६।६।२६-३१)।

४।२४।१४७ मे काल की शक्ति का उल्लेख है। भरत, महत और रघुवंशियो का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ क्योकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष न रही। किसी की यहाँ स्थायी रूप से रक्षा सम्भव नही है। कर्मों के अनुसार भोग भोग कर सभी को समयानुसार जाना है। तो फिर जब काल की तलवार घूमती है तो रोना, पीटना और दुःखी होना कैसा? यह अज्ञानता और निश्चित तथ्यो पर अविश्वास का व्यक्त करना है। ज्ञानी वही है जो प्रसन्नतापूर्वक काल की गति को देखता है।

६।७।२८ मे मन को बन्धन और मोक्ष का कारण बताया गया है और प्रेरणा दी गई है कि मन को विषयो से हटाकर मोक्ष मार्ग की ओर लगाना चाहिए। इस साधना मे दक्ष व्यक्ति ही जीवन की सफलता प्राप्त करता है।

१।६।३-८ मे ब्रह्मा से चारो वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। ३।८। २०–३३ मे चारो वर्णों के धर्मों का विवेचन है।

१।४।२२ मे विष्णु को यज्ञ रूप कहा गया है। यज्ञ के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है "देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं। इससे यज्ञ कल्याण का मूल है '(१।६।७-८)। यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्थित को पा सकते हैं (१।६।१०)। यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है। मनुष्यो का उपकार करने वाला है और नित्य होने वाले पच सूना पापो को दूर करने वाला है" (१ ६।२९) वह सम्पूर्ण विश्व हवि से ही उत्पन्न हुआ है "(१।१३।२५)।" प्राचीन बर्हि ने यज्ञ द्वारा अपनी प्रजा

रचना का विस्तृत वर्णन है। वैसे तो सारा विष्णु पुराण ही ईश्वर की सत्ता और महत्ता की पुष्टि करता है परन्तु सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन १।२।१०,१५,२१, १।१२।५७,६७,७४, १।१४।२६, १।१७।१५,२४, ६।४।३७-३८, मे विशेष रूप से किया गया है।

१।६।१३ में मन की शुद्धि को परमात्म प्राप्ति का साधन बताया गया है। भगवान् उसी पर प्रसन्न होते हैं जो किसी की निन्दा और मिथ्या भाषण नही करता और खेदजनक वचन नही कहता (३।८।१३)। ईर्ष्यालु, निन्दक, सन्तो का तिरस्कार करने वाला और दान न देने वाला भगवान को प्राप्त नही कर सकता (२।७।२६)

१।२।१६, ५०-५३, और ६।४।३४ मे प्रकृति का चित्राकन किया गया है। १।२।२५, १।७।४२,४३, ३।३।१, ६।४।१५-१६, ५।५।१ मे विभिन्न प्रकार के प्रलयो का वर्णन है। इससे यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रलय ही स्वभाविक रूप से आती है और आती रहेगी। उत्तम साधक को सदैव अपने सामने प्रलय के दर्शन करते रहने चाहिए और निर्भय रूप से विचरना चाहिए। जो प्रलय से निर्भय हो गया, वह ससार की किसी भी विपत्ति से नही घबडा सकता।

तृतीय अश के १८ वे अध्याय मे एक कथा द्वारा भारतीय मनोविज्ञान को सुन्दर रूप से उभारा गया है जिससे निराश से निराश व्यक्तियों मे भी आशा की उमगे उछलने लगती हैं। २।१२।६६ मे वेदान्त विज्ञान का सार दिया गया है।

१।१।१७, १।११।१७-१८, १।१६।५,८ मे कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और यह साहस पूर्वक कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरो का बुरा नही करना चाहता, उसको अकारण भी कभी कष्ट नही होता। इसी सिद्धान्त से व्यक्ति भविष्य निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है। वह केवल अपने कर्मों को सुधार कर किसी से भयभीत नही होता। वह अपने भाग्य को स्वय बनाता है।

राजा खाण्डिक्य के सामने जब राज्य और परलोक दोनो मे से चुनने का अवसर आता है तो वह राज्य की उपेक्षा करके परलोक को ही पसन्द करते हैं। इस कथा मे पृथ्वी के भौतिक सुखो और ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व दिया है। (६।६।२६-३१)।

४।२४।१४७ मे काल की शक्ति का उल्लेख है। अस्वर, महत और रघुवंशियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ क्योकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष न रही। किसी की यहाँ स्थायी रूप से रक्षा सम्भव नही है। कर्मों के अनुसार भोग भोग कर सभी को समयानुसार जाना है। तो फिर जब काल की तलवार घूमती है तो रोना, पीटना और दुखी होना कैसा? यह अज्ञानता और निश्चित तथ्यो पर अविश्वास का व्यक्त करना है। ज्ञानी वही है जो प्रसन्नतापूर्वक काल की गति को देखता है।

६।७।२८ मे मन को बन्धन और मोक्ष का कारण बताया गया है और प्रेरणा दी गई है कि मन को विषयो से हटाकर मोक्ष मार्ग की ओर लगाना चाहिए। इस साधना मे दक्ष व्यक्ति ही जीवन की सफलता प्राप्त करता है।

१।६।३-८ मे ब्रह्मा से चारो वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। ३।८।२०—३३ मे चारो वर्णों के धर्मों का विवेचन है।

१।४।२२ मे विष्णु को यज्ञ रूप कहा गया है। यज्ञ के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है "देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं। इससे यज्ञ कल्याण का मूल है"(१।६।७-८)। यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्थित को पा सकते हैं (१।६।१०)। यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है। मनुष्यो का उपकार करने वाला है और नित्य होने वाले पव सूना पापों को दूर करने वाला है" (१।६।२६) यह सम्पूर्ण विश्व हरि से ही उत्पन्न हुआ है "(१।१३।२५)।" प्राचीन बर्हि ने यज्ञ [illegible]

की अत्यन्त वृद्धि की "(१।१४।३)।" राजाम्रो ने यज्ञेश्वर भगवान का महायज्ञों द्वारा यजन करके इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लिया (२।१९।१२०)। इस तरह यज्ञ जैसी महान साधना की ओर प्रेरित किया गया है।

गाय के प्रति भगवान कृष्ण का विशेष आकर्षण दिखाया गया है। (५।६।१८।१२)। इन्द्र यज्ञ की उपेक्षा करके गोवर्धन की पूजा आरम्भ की गई है (५।१०।४४)। इस का विद्वान यह अर्थ लगाते हैं कि यह गोबर को धन मानने की ओर सकेत है।

पुराणो में प्रतीकात्मक शैली का खुलेरूप मे प्रयोग किया जाता है। भगवान विष्णु का स्वरूप स्वयं इनसे गुथा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ चार दिशाओं, यज्ञ कुण्ड, चार देवता, चारो वेद, विकास की चार अवस्थाओं, चार आधारभूत मानसिक, प्रक्रियाओ, चार आश्रमो, चार वर्गों, चारों ओर से सुरक्षा, चार दैवी गुणो, जीवन के चतुर्मुखी उद्देश्य और अन्तःकरण की वृत्तियो को परिष्कृत करने की ओर सकेत है। उनकी आठ भुजाएँ स्वास्थ्य, विद्या, धन, व्यवसाय, संगठन, यश शौर्य और सत्य के विकास की ओर इंगित करती हैं।

जीवन को परिष्कृत करने वाले सस्कारों का भी विष्णुपुराण में वर्णन है। (३।१३।१) मे जन्म के समय का विधान दिया गया है और जातकर्म सस्कार करने को कहा गया है। (३।१०।८-१०) मे नामकरण का विधान और नामकरण के सम्बन्ध में उपयोगी मनोवैज्ञानिक जानकारी दी गई है कि नाम किस प्रकार के होने चाहिए। उपनयन व विद्याध्ययन की भी प्रेरणा दी गई है। (३।१०।१२) फिर गृहस्थ मे प्रवेश की आज्ञा दी गई है (१३)। विवाह और कन्या के चुनाव के सम्बन्ध मे निर्देश दिये गए हैं (१७-२१)। सन्यास की भी चर्चा है (१४)। ३।१३।८-१३ मे दाहसस्कार का विधान दिया गया है।

इस तरह से अत्यन्त उपयोगी विषयो का चयन इस पुराण में किया गया है।

विष्णुपुराण उच्चकोटि का सुधारात्मक व प्रेरणात्मक ग्रंथ है

आजकल भी कोई सुधारात्मक ग्रन्थ लिखा जाए तो सर्व प्रथम वर्तमान पतित समाज और कुशासन का निरीक्षण होगा और तत्पश्चात् सुधार के लिए सुझाव दिए जायेंगे। राष्ट्र विकास के चहुंमुखी सुझाव ही उपयोगी माने जायेंगे बजाए एकांगी विकास के। विष्णु पुराण ने सर्वांगीण उन्नति के लिए ही भूमिका तैयार की है। उन्होंने स्वभाविक रूप से पहले सामाजिक दुर्दशा, राजनीतिक परिस्थितियाँ, और नीतियों को प्रस्तुत किया है। वह भली प्रकार जानते थे कि भारतीय संस्कृति का गौरव महान है परन्तु फिर भी साहस के साथ ऐसे-ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया है जिनकी सारे विश्व में पुनरावृत्ति सम्भव नहीं हो सकी। ऐसे हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किए हैं कि पाठक को अन्याय के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है। उस समय की राजनीतिक अव्यवस्था अहंकारी, निरंकुश, अन्यायी राजाओं के कारण हुई जो स्वयं को ही भगवान् समझते थे। वेन और हिरण्यकशिपु के नाम इस कोटि में आते हैं। कंस ने सत्ता की स्थिरता के लिए क्रूरता का सहारा लिया। हिरण्यकशिपु ने विरोध को दबाने लिये शक्ति का दुरुपयोग किया। छोटी-छोटी बातों पर हत्यायें की जाती थी। मांस मदिरा का सेवन और जुए की कुप्रवृत्ति का प्रचलन था। नरमांस भक्षी के भी उदाहरण दिए गए हैं। बलराम तक मदिरा का सेवन करते थे। व्यभिचार के परिणाम स्वरूप अवैध सन्तान भी होती थीं। कण्डु जैसे ऋषि भी कामासक्त होते दिखाए गए हैं। कृष्ण पर अश्लीलता का आरोप लगाया गया है। राजा एक से अधिक पत्नी रखते थे। जनता में भी यह प्रवृत्ति हो गयी। अधिक पत्नियों से अधिक संतान होना स्वाभाविक है। अधिक सन्तान के उचित पालन पोषण में अड़चन पड़ती है। अनेकों प्रकार की उलझनें उत्पन्न हो जाती है। गन्धर्व विवाहों का भी प्रचलन था। स्वप्न में देख पुरुष के

साथ भी विवाह होने की विलक्षण घटनायें हैं अनमेल विवाहो की भी सूचना मिलती है। सपिण्ड विवाह भी खुले रूप मे होते थे। ऊँच-नीच का भेदभाव भी माना जाता था, व्यवहारिक शिष्टता का अभाव था, बड़ो का उपहास किया जाता था। कन्याओ के अपहरण की भी कथायें दी गई हैं। जनता का नैतिक चरित्र गिरा हुआ था और शासन मे अन्याय अत्याचार का बोलबाला था।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जब अन्याय अपनी सीमाओ का उल्लघन करने लगता है तो न्याय की स्थापना के लिए महान आत्माएँ अवतरित होती हैं, प्रकृति इस सतुलन को बनाये रखना चाहती है। जब राजा वेन से जनता परेशान थी तो राष्ट्रीय नेताओ ने मिलकर वेन को हटा दिया। पृथु ने कृषि, शासन और अन्य आवश्यक सुधार किए। जब हिरण्यकशिपु के जुल्म बढ़े तो नृसिंह द्वारा उसका वध हुआ। कस का कृष्ण द्वारा वध कराया गया। अन्याय शक्ति का घुन है। अन्यायी का भवन रेत की दीवार पर खड़ा बताया जाता है। यह विष्णुपुराण से भी स्पष्ट है कि क्योकि शक्तिशाली सम्राटो का विरोध छोटी शक्तियो ने किया और उन्हे सफलता मिली।

पुराणकार केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता को ही पर्याप्त नही मानते हैं। वह सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करने के लिए नैतिक व आध्यात्मिक विकास भी आवश्यक समझते हैं। इसलिये सावधानी और सुरक्षा की भी सामग्री प्रस्तुत की गई है। उनका विचार है कि सद्गुणो के विकास के लिए अवगुणों पर पहले ध्यान देना होगा। अत वह काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, तृष्णा, मोह, धन के अपव्यय, अविवेक, अशिष्टता, भोग-विलास, व्यभिचार, पशुबलि व वैवाहिक कुरीतियो की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं और चेतावनी देते हैं कि यदि उनसे बचा न गया तो व्यक्तिगत व सामाजिक उत्थान अशक्त हो जायेगा।

पुराणकार ने क्रमिक विकास का नियम अपनाया है। उन्होने आचार की पूरी योजना प्रस्तुत की है। वह आत्मसाधना से पूर्व नागरिकता की परीक्षा

ई उत्तीर्ण होना आवश्यक मानते हैं। इसलिये प्रातः व सायं के अलग-अलग अपनाने योग्य आचार दिये हैं, लोकाचार व सदाचार की उपयोगी शिक्षाएँ दी हैं।

जीवन निर्माण के लगभग सभी सूत्रों का संकलन कर लिया गया है। गृहस्थ में प्रवेश करके दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए सूत्र दिये गए हैं, गृहस्थ को योग मानकर उसको साधना की प्रेरणा दी गई है, माता-पिता की सेवा, अतिथि पूजन, गुरुजनों का सम्मान, शिष्टाचार व सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। पुरुषार्थ, कर्तव्यनिष्ठा से उत्थान की सम्भावनाएँ प्रदर्शित की गई हैं। समय के सदुपयोग, सहनशीलता, क्षमाशीलता निर्भयता, उद्योग और क्रियाशीलता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। धर्म की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है और भक्ति ज्ञान, वैराग्य, निष्काम कर्मयोग और साम्ययोग द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया गया है। सदैव आत्म-निरीक्षण द्वारा विवेक की स्थिरता, दोषों, दुर्गुणों पर पैनी दृष्टि रखने को कहा है।

बन्धन और मोक्ष के कारणों पर भी विचार किया है और मोक्ष के लिए मन की शुद्धि को आवश्यक माना गया है। पृथ्वी के समस्त ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक सुधार को श्रेष्ठ माना गया है। कर्म, उद्योग, तप, पुरुषार्थ और कर्तव्य निष्ठा से उन्नति के उच्चतम पद पर पहुँचने का आश्वासन दिया गया है। यह शिक्षाएँ क्रियात्मक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं जिनका विशेष प्रभाव पड़ता है।

उपयोगी भोजनादि के नियम से लेकर अद्वैत तक की साधनाओं का वर्णन है। बार-बार दोषों के परिमार्जन की चेतावनी और नैतिक विकास पर बल दिया गया है। पुराण का पाठ करते हुए पाठक के अपने दोष और दुर्गुण उभर कर सामने आ जाते हैं और कथाओं के माध्यम से यह भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है कि इनके यह दुष्परिणाम होंगे। इससे भय की उत्पत्ति और विवेक की जाग्रति होती है। इस मिश्रित प्रतिक्रिया से वह सुधार के आवश्यक पग उठाता है, अपनी आत्मा स्वयं उसे बार-बार धिक्कारती है और उसे अपने दुष्कर्मों पर ग्लानि होती है। आत्मग्लानि से घुटन उत्पन्न होती है। यह घुटन ही सुधार का मार्ग प्रशस्त करती है।

उपरोक्त तथ्यो से विदित होगा कि विष्णुपुराण का लेखन एक विशेष उद्देश्य से किया गया है और वह है राष्ट्र का नैतिक व आध्यात्मिक सुधार। इसलिये इसे यदि उच्चकोटि का सुधारात्मक व प्रेरणात्मक ग्रन्थ कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

